CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिंधु सभ्यता

लेखक
डा० किरण कुमार थपल्याल
डा० संकटा प्रसाद शुक्ल

उत्तर प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी
लखनऊ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

A.CC. NO
4714

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उ० प्र० हिं० ग्रं० अ० प्रकाशन-171

सिंधु सभ्यता

लेखक
किरनकुमार थपल्याल एम. ए., पी-एच. डी.
रीडर, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व
लखनऊ विश्वविद्यालय
लखनऊ

संकटाप्रसाद शुक्ल एम. ए., पी-एच. डी.
लेक्चरर, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय
कुरुक्षेत्र

उत्तर प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, लखनऊ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिशिष्ट	विषय	पृष्ठ
8.	गोदी-बाड़ा	293
9.	सिंधु सभ्यता में खोपड़ी की शल्य-चिकित्सा	296
10.	सिंधु सभ्यता की परवर्ती भारतीय सभ्यता को देन	297
11.	तिथि निर्धारण की रेडियो कार्बन विधि	300
12.	सिंधु सभ्यता और वैदिक संस्कृति	306
13.	सिंधु सभ्यता के बाद की कुछ उत्तर भारतीय संस्कृतियां	311
मुख्य संदर्भ-ग्रंथ सूची		321

पाठक, कृपया फलकों पर क्रमशः I से XXIX की संख्या अंकित कर लें।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रस्तावना

शिक्षा आयोग (1964-66) की संस्तुतियों के आधार पर भारत सरकार ने 1968 में शिक्षा संबंधी अपनी राष्ट्रीय नीति घोषित की और 18 जनवरी 1968 को संसद् के दोनों सदनों द्वारा इस संबंध में एक संकल्प पारित किया गया। उस संकल्प के अनुपालन में भारत सरकार के शिक्षा एवं युवक सेवा मंत्रालय ने भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षण की व्यवस्था करने के लिए विश्वविद्यालयस्तरीय पाठ्य पुस्तकों के निर्माण का एक व्यवस्थित कार्यक्रम निश्चित किया। उस कार्यक्रम के अंतर्गत भारत सरकार की शत प्रतिशत सहायता से प्रत्येक राज्य में एक ग्रंथ अकादमी की स्थापना की गयी। इस राज्य में भी विश्वविद्यालयस्तर की प्रामाणिक पाठ्य पुस्तकें तैयार करने के लिए हिंदी ग्रंथ अकादमी की स्थापना 7 जनवरी, 1970 को की गयी।

प्रामाणिक ग्रंथ निर्माण की योजना के अंतर्गत यह अकादमी विश्वविद्यालय-स्तरीय विदेशी भाषाओं की पाठ्य पुस्तकों को हिंदी में अनूदित करा रही है और अनेक विषयों में मौलिक पुस्तकों की भी रचना करा रही है। प्रकाशन ग्रंथों में भारत सरकार द्वारा स्वीकृत पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया जा रहा है।

उपर्युक्त योजना के अंतर्गत वे पांडुलिपियाँ भी अकादमी द्वारा मुद्रित करायी जा रही हैं जो भारत सरकार की मानक ग्रंथ योजना के अंतर्गत इस राज्य में स्थापित विभिन्न अभिकरणों द्वारा तैयार की गयी थीं।

प्रस्तुत ग्रंथ में डॉ० किरनकुमार थपल्याल व डॉ० संकटाप्रसाद शुक्ल ने 'सिंधु सभ्यता' संबंधी आधुनिकतम खोजों से पाठकों को अवगत कराने का प्रयास किया है। पुस्तक की पाण्डुलिपि का पुनरीक्षण प्रसिद्ध विद्वान् श्री मुनीशचन्द्र जोशी, अधीक्षण-पुरा[illegible] भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, उत्खनन शाखा–2, पुराना किला, नई दिल्ली ने किया है। इस बहुमूल्य सहयोग के लिए हिंदी ग्रंथ अकादमी इन महानुभावों के प्रति आभारी है।

मुझे आशा है कि यह पुस्तक विश्वविद्यालय के छात्रों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगी और इस विषय के विद्यार्थियों तथा शिक्षकों द्वारा इसका स्वागत अखिल भारतीय स्तर पर किया जायगा। उच्चस्तरीय अध्ययन के लिए हिंदी में मानक ग्रंथों के अभाव की बात कही जाती रही है। आशा है कि इस योजना से इस अभाव की पूर्ति होगी और शिक्षा का माध्यम हिंदी में परिवर्तित हो सकेगा।

हजारीप्रसाद द्विवेदी
अध्यक्ष,
शासी मंडल
उ० प्र० हिंदी ग्रंथ अकादमी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भूमिका

सिंधु सभ्यता की खोज से पहले मौर्यकाल से पूर्व की भारतीय पुरातत्व 'सामग्री नहीं के बराबर ज्ञात थी। सिंधु सभ्यता के उद्‌घाटन से तृतीय-द्वितीय सहस्राब्दी की एक विकसित नागरिक सभ्यता का ज्ञान हुआ जिसके निर्माण-कार्य और उपकरण मिस्र और मेसोपोटामिया की सभ्यता के समान विकसित थे और कुछ अर्थों में तो उससे भी बढ़कर थे।

अब तक इस सभ्यता के अनेक स्थलों का पता चल चुका है और इन स्थलों से प्राप्त मृद्भाण्डों और कुछ अन्य प्रकार के उपकरणों में पर्याप्त एकरूपता पाई गई है। चूंकि इस संस्कृति के खोज के प्रथम चरण में जो स्थल मिले वे सिंधु और उसकी सहायक नदियों के तट पर ही स्थित थे अतः मार्शल ने इसे 'सिंधु सभ्यता' नाम दिया। अब जब इस सभ्यता के अवशेष सिंधु के कांठे से दूर गंगा जमुना के दोआब और नर्मदा ताप्ती के मुहानों के समीप तक मिल चुके हैं, भौगोलिक दृष्टि से इस सभ्यता के लिए सिंधु सभ्यता नाम समीचीन नहीं लगता। पुरातत्वविदों ने इसके लिए 'हड़प्पा सभ्यता' नाम सुझाया है, जो उस पुरातत्व परंपरा पर आधारित हैं जिसके अनुसार सभ्यता अथवा संस्कृति का नामकरण उसके सर्व प्रथम ज्ञात स्थल के नाम पर किया जाता है। किंतु 'सिंधु सभ्यता' नाम अत्यधिक प्रचलित है और विस्तृत क्षेत्र में पाये जाने के बावजूद अभी भी सिंधु तट पर मोहेंजोदड़ो और सिंधु की सहायक नदी रावी के तट पर हड़प्पा इस सभ्यता के सबसे विशाल, सबसे सुनियोजित और सबसे संपन्न नगर हैं। अतः इस [illegible] में इस सभ्यता के लिये सिंधु सभ्यता का ही प्रयोग मुख्यतः किया गया है, किंतु कहीं-कहीं 'हड़प्पा सभ्यता' पद भी प्रयुक्त हुआ है।

सिंधु-सभ्यता अनेक विश्वविद्यालयों के प्राचीन इतिहास के पाठ्यक्रम का महत्त्वपूर्ण अंग है। इस विषय पर उपलब्ध अधिकांश मौलिक ग्रंथों में विद्वानों ने किसी विवादास्पद विषय पर मुख्यतः अपने ही मत का उल्लेख किया है, दूसरे मतों का उल्लेख या तो किया ही नहीं या अत्यंत सूक्ष्म रूप से ही किया है। छात्रों को तो सभी महत्त्वपूर्ण मतों से परिचित होना ही चाहिए। हमने किसी मत विशेष को अधिक समीचीन मानते हुये भी सभी मतमतान्तरों से छात्रों को अवगत कराने की चेष्टा की है। सिंधु सभ्यता पर कई साल पहले छपे ग्रंथ प्रकाशन के समय तक उपलब्ध साक्ष्यों के संदर्भ में तो उपयुक्त थे किंतु अनेक महत्त्वपूर्ण नये साक्ष्यों के कारण अब वे उतने उपयुक्त नहीं रहे। हमने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विभिन्न विद्वानों के ग्रंथों और लेखों (देखिये, पुस्तक के अंत में ग्रंथ और लेख-सूची) तथा व्यक्तिगत रूप से प्रेरित सूचनाओं के आधार पर सिंधु सभ्यता संबंधी आधुनिकतम खोजों से पाठकों को अवगत कराने का प्रयास किया है।

सिंधु सभ्यता के कई उपकरण या उपकरण-प्रकार तत्कालीन जनजीवन के एक से अधिक पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं। हमने जिस संदर्भ में उनसे अधिक से अधिक प्रकाश पड़ता है वहां उसके बारे में विस्तार पूर्वक लिखा है, दूसरे संदर्भों में उनका संक्षिप्त उल्लेख कर विस्तृत विवरण युक्त अध्याय का संदर्भ दे दिया है। ऐसे विषयों का जिनका विभिन्न अध्यायों के अंतर्गत समुचित प्रतिपादन नहीं हो पाया अथवा जो सिंधु सभ्यता से पूर्ववर्ती अथवा परवर्ती संस्कृतियों से संबंधित हैं, हमने परिशिष्ट के रूप में विवेचन किया है, तकनीकी शब्दावली के लिये मुख्यतः भारत सरकार द्वारा प्रकाशित 'पारिभाषिक शब्द-संग्रह' का सहारा लिया गया है। हम भाषा संबंधी सुझावों के लिए श्री मोहनकृष्ण डबराल, द्वितीय अध्याय के विषय-सामग्री संबंधी सुझावों के लिये श्री रवीन्द्रसिंह बिष्ट, और प्रेसकापी तैयार करने में सहायता के लिए श्रीमती चन्द्रकला थपल्याल के आभारी हैं। हिन्दी ग्रंथ अकादमी के अध्यक्ष आचार्य श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी और निदेशक श्री ब्रह्मदत्त दीक्षित के भी हम आभारी हैं जिनके सत्प्रयत्न एवं प्रेरणा से इस ग्रंथ का प्रणयन और शीघ्र प्रकाशन की व्यवस्था हो सकी है।

चित्रों का कापीराइट भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण का है।

किरणकुमार थपल्याल
संक्टा प्रसाद शुक्ल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 1

सिंधु सभ्यता का विस्तार एवं महत्त्वपूर्ण स्थलों का संक्षिप्त परिचय

सिंधु सभ्यता की सबसे बड़ी विशेषता इस सभ्यता की विभिन्न स्थलों में प्राप्त भौतिक सामग्री का बहुत-कुछ समरूप होना है। सिंधु नगरों की भवन-

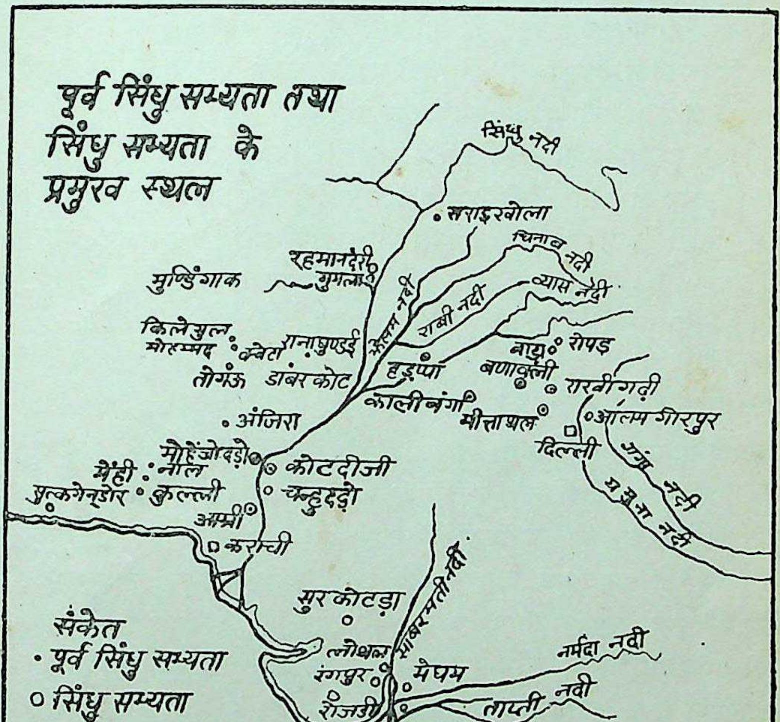

निर्माण विधि, नालियों की योजना, ईंटों, मृद्भाण्डों, आयुधों, आभूषणों, मुद्राओं, नाप-तौल आदि में बहुत-कुछ एकरूपता देखी जा सकती है। हड़प्पा और मोहें-जोदड़ो के संदर्भ में तो यह एकरूपता अत्यंत स्पष्ट है। इन दोनों नगरों के इमारतों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की निर्माण-प्रणाली, मृद्भाण्डों के आकार-प्रकार तथा अलंकरण में ऐसी भिन्नता नहीं है जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि अमुक वस्तु मोहेंजोदड़ो की है तथा अमुक वस्तु हड़प्पा नगर की। यद्यपि यह सत्य है कि वास्तु संबंधी कुछ बातें किसी स्थलविशेष में विशिष्ट रूप से मिली हैं (जैसे मोहेंजोदड़ों में विशाल स्नानागार) जो किसी स्थानीय आवश्यकता की पूर्ति के लिए थीं। यह रोचक है कि मोहेंजोदड़ो में नगर के अनेक बार उजड़ने तथा बसने पर भी नगर-विन्यास में, अन्तिम चरण को छोड़ कर, विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। किन्तु सामान्य मूलभूत एकता को स्वीकार करते हुए भी अब कुछ क्षेत्रीय विशिष्टताओं को भी स्वीकार करना ही होगा। उदाहरणार्थ गुजरात में इस सभ्यता के कुछ मूलभूत उपकरणों में समानता होते हुए भी वहां अनेक ऐसे तत्व मिलते है जो नये हैं और कुछ सिंधु सभ्यता के तत्व जो मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा में प्रमुखता से पाये गये हैं, या तो यहां हैं ही नहीं या बहुत नगण्य रूप में हैं।

सिंधु सभ्यता के अवशेष विस्तृत भू-भाग में टीलों के रूप में पाये गये हैं। ये टीले नगर और ग्राम दोनों प्रकार के स्थलों के परिचायक हैं। हड़प्पा की एक पुरैतिहासिक संस्कृति के महान् केन्द्र के रूप में खोज रायबहादुर दयाराम साहनी ने सन् 1921 ई० में और मोहेंजोदड़ो की राखालदास बनर्जी ने 1922 में की। कालान्तर में ननीगोपाल मजुमदार द्वारा सिंध क्षेत्र में (1927–31 के बीच) और ऑरल स्टाइन के द्वारा बलूचिस्तान एवं गेड्रोशिया क्षेत्र में किये गये सर्वेक्षणों और सीमित उत्खननों से सिंधु सभ्यता के अनेक स्थलों का पता लगा। स्वतंत्रता-प्राप्ति से पूर्व मुख्यतः सिंधु और उसकी सहायक नदियों के समीपवर्ती क्षेत्र में पाये गये सिंधु सभ्यता के स्थलों की ही जानकारी थी; यद्यपि इसका प्रभाव बलूचिस्तान की कुछ संस्कृतियों पर विद्वानों ने आंका था, और सौराष्ट्र में रंगपुर में भी इस सभ्यता का स्थल होने की संभावना बहुत पहले व्यक्त की गयी थी (जो बाद के उत्खननों से सही सिद्ध हुई)। ऑरेल स्टाइन ने राजस्थान और बहावलपुर के क्षेत्र में सर्वेक्षण से सिंधु सभ्यता के कुछ स्थलों का पता लगाया था। अब तो 1947 में भारत के विभाजन के बाद भारतीय क्षेत्र में कई अन्य महत्त्वपूर्ण स्थान, यथा लोथल, रोपड़, कालीबंगां आदि का पता लगा है। उधर पाकिस्तान में भी कुछ नये स्थल मिले जिनमें मोहेंजोदड़ो से लगभग 30 मील की दूरी पर स्थित कोटदीजी विशेषरूप से उल्लेखनीय है। पुरातात्विक खोजों तथा उत्खननों से स्पष्ट हो गया है कि इस सभ्यता का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत था। इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि बहुत पहले मार्शल ने स्पष्ट रूप से यह धारणा व्यक्त की थी कि गंगा की घाटी में भी इसका विस्तार मिलना चाहिए, और उनकी यह धारणा अब कुछ सीमा तक सत्य सिद्ध हो चुकी है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुछ समय पूर्व तक इस सभ्यता की उत्तरी सीमा रोपड़ (पंजाब) थी। अब सुलेमान पर्वत के पूर्वी पाद में गोमलघाटी में दानी ने कई स्थल खोजे हैं जिनमें गुमला विशेष महत्त्वपूर्ण है। तक्षशिला के पास में सराय खोला नामक स्थल मिला है। नर्मदा नदी की घाटी में मेधम, तेलोद और भगत्राव और उससे भी दक्षिण में ताप्ती नदी की निचली घाटी में मालवण (जिला सूरत) नामक स्थल हैं—ये तीनों ही स्थल समुद्र के निकट हैं और व्यापारिक महत्त्व के रहे होंगे। पूर्व में यमुना की सहायक हिण्डन नदी के किनारे आलमगीरपुर (जिला मेरठ, उत्तर प्रदेश) और इससे भी पूर्व[1] तथा पश्चिम में मकरान के समुद्री तट पर कराची से 300 मील पश्चिम में स्थित सुत्कगेनडोर तक स्पष्ट है। डाबरकोट (उत्तरी बलूचिस्तान) सिंधु सभ्यता की उत्तरी सीमा का द्योतक है। यद्यपि कुछ विद्वानों ने यह संभावना व्यक्त की है कि सिंधु सभ्यता का विस्तार कौशाम्बी और उससे भी पूर्व तक रहा हो, तथापि पुष्ट प्रमाणों के अभाव में निश्चय-पूर्वक कुछ कहना कठिन है। कुछ विद्वानों की धारणा है कि गंगा की घाटी में विस्तृत पुरातात्विक सर्वेक्षण से न केवल इस क्षेत्र में सिंधु सभ्यता के प्रसार पर ही प्रकाश पड़ेगा अपितु उससे सिंधु सभ्यता और गंगा-घाटी की सभ्यता के मध्य की कड़ी को भी जोड़ा जा सकेगा। उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर रंगनाथ राव ने इस सभ्यता के क्षेत्र का विस्तार लगभग 1600 किलोमीटर पूर्व से पश्चिम और 1100 किलोमीटर से अधिक उत्तर से दक्षिण में आंका है। अब उत्तर में सराय खोला नामक स्थल का ज्ञान होने पर उत्तरी-दक्षिणी सीमा और अधिक विस्तृत हो गयी है। इस विस्तृत भू-भाग में कुछ विशाल नगर (यथा हड़प्पा, मोहें-जोदड़ो), कुछ कस्बे (यथा रोपड़), तथा कुछ ग्राम (यथा आलमगीरपुर) थे। लोथल समुद्री व्यापार का केन्द्र रहा होगा, जब कि मकरान के समुद्र-तटवर्ती सुत्कगेनडोर, सोत्का-कोह और बालाकोट ने बन्दरगाहों के रूप में पश्चिमी एशिया के साथ होने वाले व्यापार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई होगी। हाल ही के तुर्कमेनिया क्षेत्र के उत्खनन से स्पष्ट हो गया है कि सिंधु सभ्यता का मध्य-एशिया के साथ भी सम्पर्क था। सिंधु सभ्यता का विस्तार प्राचीन मेसो-पोटामिया, मिस्र तथा फारस की सभ्यताओं के क्षेत्र से कहीं अधिक था। दोनों

---

1 सहारनपुर (उत्तर प्रदेश) जिले में यमुना की सहायक नदी मस्करा के तट पर बड़गांव में साधार तश्तरियां, चर्ट पत्थर के फलक, मिट्टी के पिंड, कांचली मिट्टी की चूड़ी और ताम्रनिधि के छल्लों से मिलता-जुलता एक तांबे का छल्ला मिला है। सहारनपुर जिले में ही आबखेड़ी नामक स्थल में कुछ बर्तन ऐसे मिले हैं जो सिंधु सभ्यता के बर्तनों से कुछ समानता रखते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिस्र की लम्बाई मिलाकर लगभग साढ़े नौ सौ किलोमीटर है और लगभग यही विस्तार मेसोपोटामिया के क्षेत्र का भी है। सिंधु सभ्यता के अवशेष इनसे कहीं अधिक विस्तृत क्षेत्र में पाये गये हैं। अरब सागर के मकरान तट पर अवस्थित सुत्कगेन-डोर और आलमगीरपुर के ध्वंसावशेषों के बीच लगभग 1600 किलोमीटर का अन्तर है। यदि इस सभ्यता के विस्तार-क्षेत्र को संस्कृति ही नहीं साम्राज्य का भी विस्तार मान लिया जाय (जैसा कुछ विद्वानों ने सुझाया है), तो रोमन साम्राज्य से पहले विश्व में शायद ही इतना विशाल राज्य कहीं रहा हो।

फेयरसर्विस का कहना है कि सिंधु सभ्यता का विस्तार मुख्य रूप से गेहूँ उपजाने वाले क्षेत्र—सिंध, पंजाब और गुजरात में हुआ। दिल्ली के पूर्ववर्ती क्षेत्र एवं ताप्ती नदी के दक्षिण में चावल की उपज मुख्य रूप से होती है। इससे ऐसा लगता है कि सिंधु वासियों ने ऐसे स्थलों को ही चुना जो गेहूँ उपजाने के लिए उपयुक्त हैं। यद्यपि सिंधु सभ्यता के कुछ थोड़े से स्थल पर्वतीय क्षेत्र में भी पाये गये हैं, तथापि साधारणतः इस सभ्यता के स्थल मैदानी क्षेत्र में ही हैं, जो निश्चय ही एक महान् सभ्यता के विकास के लिए अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त वातावरण प्रस्तुत करते हैं। साथ ही इस सभ्यता के पास लगभग तेरह सौ किलोमीटर का समुद्रतट था जो समुद्री व्यापार के लिए उपयुक्त सुविधाएं प्रदान करता था। नीचे इसके कुछ मुख्य स्थलों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

बलूचिस्तान

सुत्कगेनडोर—यह कराची से लगभग 300 मील पश्चिम में और बलूच-मकरान समुद्र-तट से 56.32 किलोमीटर उत्तर में दाश्त नदी के पूर्वी किनारे पर स्थित है। स्टाइन ने इसे 1927 में खोजा और यहां पर परीक्षण-गर्त खोदे। 1962 में जार्ज डेल्स ने सर्वेक्षण किया और उन्हें यहां पर बन्दरगाह, दुर्ग और निचले नगर की रूपरेखा मिली। दुर्ग एक प्राकृतिक चट्टान के ऊपर और इर्द-गिर्द था और उसके अन्दर हड़प्पा सभ्यता की भांति कच्ची इंटों का चबूतरा बना था। आधार पर किंचित् तराशे पत्थरों की दीवार थी, जो एक स्थान पर लगभग 8 मीटर चौड़ी है। दुर्ग की दीवार में बुर्ज और द्वार भी थे। डेल्स ने दुर्ग (गढ़ी) में सिंधु सभ्यता के तीन चरणों की पहिचान की। उसके अनुसार मूलतः समुद्र सुत्कगेनडोर के बहुत समीप था और इसने एक बन्दरगाह के रूप में सिंधु सभ्यता और बेबीलोन के मध्य व्यापार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई होगी, आज कुछ प्राकृतिक परिवर्तनों के कारण यह स्थान समुद्र से काफी दूर हो गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सोत्काकोह—यह स्थान परिन से लगभग 8 मील, शादी-कौर नदी की घाटी में सुत्कगेनडोर से पूर्व में स्थित है। इसे डेल्स ने 1962 में खोजा था। यहां पर भी दो टीले मिले हैं। पूर्वी टीले के पूर्वी किनारे पर लगभग 488 मीटर लम्बी दीवार होने के साक्ष्य मिले हैं। अनुमानतः सोत्काकोह भी आकार-प्रकार में सुत्कगेनडोर की तरह था। प्राप्त भाण्ड सिंधु सभ्यता के प्रकार के हैं। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि सोत्काकोह बन्दरगाह न होकर संमुद्र तट और समुद्र से दूरवर्ती भू-भाग के मध्य व्यापार का केंद्र रहा होगा।

डाबरकोट—उत्तरी बलूचिस्तान की पहाड़ियों तक सिंधु-संस्कृति के स्थल मिले हैं। यहीं पर सिंध नदी से लगभग 200 किलोमीटर दूर लोरालाइ के दक्षिण में झोंव घाटी में डाबरकोट स्थित है। सिंधु-संस्कृति का यह स्थल अपनी स्थिति एवं स्वरूप के कारण पुरातत्त्व की दृष्टि से यथेष्ट महत्त्व का है। यहां का टीला 34.4 मीटर ऊंचा है और लगभग 365 मीटर की परिधि में फैला है। सिंधु घाटी में कंधार जाने वाले मार्ग पर स्थित इस महत्त्वपूर्ण स्थल पर अभी तक विशेष उत्खनन नहीं हो सका है। किंतु ऐसी आशा की जाती है कि इसके उत्खनन से सिंधु संस्कृति के मूल पर प्रकाश पड़ेगा क्योंकि सतह के सर्वेक्षण के दौरान यहां पर सिंधु संस्कृति के साथ ही उससे पूर्वकालीन और उत्तरकालीन संस्कृतियों के अवशेष भी मिले हैं। यह भी पता चला है कि सिंधु सभ्यता के अवशेष टीले के अपेक्षाकृत ऊपरवाले भाग में हैं और इसलिए आशा की जाती है कि टीले के निचले भाग के उत्खनन से सिंधु सभ्यता के मूल और प्रारंभिक चरण के बारे में महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ेगा।

सिंध

कोटदीजी—कोटदीजी सिंध प्रांत के खेरपुर नगर से 24 किलोमीटर दक्षिण और मोहेंजोदड़ो से 40.24 किलोमीटर पूर्व में है। 1935 में धुर्ये ने इस स्थल से कुछ मिट्टी के बर्तन प्राप्त किये थे जो प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम बम्बई में संगृहीत हैं। पाकिस्तान पुरातत्त्व विभाग के निदेशक फजल अहमद खां ने 1955 और 1957 में अपेक्षाकृत छोटे पैमाने पर उत्खनन कराया। उत्खनन से हड़प्पा सभ्यता के नीचे एक और सभ्यता के अवशेष मिले जिसे 'कोटदीजी' संस्कृति नाम दिया गया। कुल सोलह परतों में नीचे के बारह 'कोटदीजी' संस्कृति के हैं। उसके ऊपर एक परत परिवर्तन काल की द्योतक है और सबसे ऊपर की तीन परतें सिंधु सभ्यता के उपकरणों से युक्त हैं। कोटदीजी संस्कृति के भाण्ड हड़प्पा में रक्षा-दुर्ग के पहले वाले चरण में प्राप्त भाण्डों से मिलते-जुलते हैं। इस संस्कृति में सिंधु सभ्यता की तरह चर्ट के फलक और पक्की मिट्टी के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पिंड मिले हैं, किंतु इस काल में ताम्र और कास्य का प्रयोग अत्यल्प मात्रा में हुआ। ऐसा लगता है कि कोटदीजी की प्राक् सिंधु बस्ती अग्निकांड से नष्ट हुई और फिर सिंधु सभ्यता के लोग इस स्थल पर आकर बसे। नवागंतुकों ने भवनों की नींव पत्थर की बनाई और दीवारें कच्ची ईंटों की। ताम्र और कांस्य का प्रयोग शुरू हुआ। पत्थर के बाणाग्र यहां के सिंधु सभ्यता काल की विशेषता है जो अन्य सिंधु सभ्यता के स्थलों में नहीं मिलती। सिंधु सभ्यता के काल में नगर-निर्माण सुनियोजित था। घरों की नींव में चुने-पत्थर का प्रयोग किया गया है। घरों में नालियों का समुचित प्रबंध न था।

अलीमुराद—अलीमुराद सिंध में दादू से लगभग 32 किलोमीटर दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। यह तीन से पांच फुट मोटी लापरवाही से तराशे पत्थरों की प्राचीर से रक्षित छोटा सा लगभग वर्गाकार क्षेत्र है जो 76 मीटर लम्बा और इतना ही चौड़ा है। इस दीवार के अन्दर और बाहर इमारतों के अवशेष और एक कुआं भी मिले हैं। अन्य वस्तुओं में मृण्मूर्ति, चर्ट-फलक तथा सेलखड़ी, कर्निलियन आदि के मनके मिले हैं। यह एक ग्रामीण स्थल था।

मोहेंजोदड़ो—यह सिंधु नदी के पूर्वी किनारे पर है और सिंधु के मुख्य प्रवाह तथा पश्चिमी धारा के मध्य ऐसे क्षेत्र में है जो यदाकदा बाढ़ से क्षतिग्रस्त होता रहा है और आज भी होता रहता है। यह दक्षिण में लगभग 6 मीटर ऊंचा है और उत्तर में लगभग 12 मीटर। मोहेंजोदड़ो का अर्थ सिंधी भाषा में "मृतकों का टीला" है। यद्यपि यह एक प्राचीन स्थल के रूप में कुछ समय पहले से ही ज्ञात था, तथापि इसके पुरैतिहासिक स्वरूप का प्रथम परिचय दिलाने का श्रेय सन् 1922 में राखाल दास बनर्जी को मिला। यह उत्खनित सिंधु नगरों में से सबसे महत्त्वपूर्ण और सम्पन्न नगर है। जब बनर्जी इस ध्वस्त नगर के शीर्ष पर बने कुषाण-कालीन स्तूप का उत्खनन करा रहे थे तो उन्हें स्तूप के नीचे कुछ विशिष्ट प्रकार की मुद्राएं और अन्य सामग्री प्राप्त हुई। चूंकि इस तरह की वस्तुएं हड़प्पा में पहले ही मिल चुकी थीं और एक वर्ष पूर्व 1921 में वहां पर प्रारंभ किये गये उत्खनन से उन वस्तुओं का पुरैतिहासिक काल का होना सिद्ध हो चुका था, अतः बनर्जी ने तुरंत ही यह निष्कर्ष निकाल लिया कि मोहेंजोदड़ो में भी पुरैतिहासिक अवशेष छुपे पड़े हैं। सिंधु सभ्यता के इस महत्त्वपूर्ण नगर के सांस्कृतिक कोष का उद्‌घाटन करने के लिए मार्शल के नेतृत्व में 1922 से 1930 तक खोदाई कराई गई। जिन पुराविदों के निरीक्षण में उत्खनन कार्य हुआ उनमें राखलदास बनर्जी, मैके, काशीनाथ दीक्षित, हारग्रीव्ज़, दयाराम साहनी और माधोसरूप वत्स के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यहां नगर में निर्माण के कम से कम नौ चरण मिले। नगर-निर्माण योजना, भवन, मृद्‌भाण्ड, मुहरें तथा अन्य कलाकृतियां सभी अत्यंत विकसित सभ्यता की सूचक थीं। कुछ साल बाद मैके के नेतृत्व में फिर खोदाई हुई। फिर सर मार्टिमर ह्वीलर ने मुख्य रूप से इस बात का पता लगाने के लिए कि मोहेंजोदड़ो के जलमग्न स्तरों में किस तरह की सामग्री छिपी पड़ी है, 1950 में यहां पर सीमित उत्खनन कार्य कराया। ह्वीलर ने जल तल के नीचे भी लगभग तीन मीटर खोदाई कराई, किंतु अप्रयुक्ता धरती तक वे भी नहीं पहुंच सके। 1964 और 1966 में अमेरिका के पुराविद् डेल्स ने अप्रयुक्ता धरती तक पहुंचने के उद्‌देश्य से मोहेंजोदड़ो में उत्खनन किया। खोदी हुई खाई में बार-बार जल एकत्र हो जाने से उत्खनन कार्य में बाधा हुई, तथापि वेधन (ड्रिलिंग) द्वारा नीचे के स्तरों के विषय में कुछ महत्त्वपूर्ण सूचनाएं संकलित करने में सफलता मिली। इन जलमग्न स्तरों से जो मृद्‌भाण्ड व अन्य वस्तुएं मिली हैं वे पुराविदों के अनुसार बलूचिस्तान की सभ्यताओं के मृद्‌भाण्डों से बहुत कुछ मिलती-जुलती हैं। वे उसी तरह की हैं जैसी की हड़प्पा में सुरक्षात्मक प्राचीर के निर्माण से पूर्व काल में पायी गयी है।

चन्हुदड़ो—चन्हुदड़ो नामक स्थल मोहेंजोदड़ो से दक्षिण-पूर्व दिशा में लगभग 128.75 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। सिंधु नदी यहां से अब 21 कि.मी. की दूरी पर बहती है, किंतु सिंधु सभ्यता के काल में वह इसके बिल्कुल समीप बहती थी। इस स्थान पर मूलतः एक ही बड़ा टीला था, किंतु वर्षा, आतप, और वात ने मिल कर इसे तीन खंडों में बांट दिया है। ननी गोपाल मजूमदार ने इस स्थल को 1931 में ढूंढा था और तीन सप्ताह तक इसका उत्खनन कराया। फिर मैके ने 1935 में इसका उत्खनन किया। चन्हुदड़ो में जलस्तर तक ही उत्खनन किया जा सका। उसके नीचे जो अवशेष हैं उनके बारे में कुछ भी पता नहीं है। उत्खनन में सबसे नीचे सिंधु संस्कृति, उसके बाद झूकर संस्कृति और उसके बाद झांगर संस्कृति के अवशेष मिले हैं। इन तीनों संस्कृतियों के बीच कितना काल-व्यवधान रहा, यह कहना कठिन है। सिंधु संस्कृति के तीन निर्माण-चरण पाये गये और एक निर्माण-चरण व दूसरे निर्माण-चरण के मध्य एक बाढ़-स्तर मिला है। प्रत्येक चरण में जो पुनर्निर्माण हुआ उसमें पूर्व-चरण में अपनायी गयी भवन-निर्माण शैली व रूप रेखा का अनुसरण नहीं किया गया। सिंधु सभ्यता के संदर्भ में प्राप्त बर्तन, मुद्रा, ताम्र उपकरण, मनके, बाट-बटखरे आदि हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो से प्राप्त इसी तरह की वस्तुओं से मिलते-जुलते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पंजाब

हड़प्पा—हड़प्पा मोण्टगोमरी जिले (पाकिस्तान) में इसी नाम के कस्बे से पंद्रह मील पश्चिम-दक्षिण-पश्चिम में रावी नदी के बाएं किनारे पर स्थित है। आज यह नदी से लगभग साढ़े नौ किलोमीटर दूर है, किंतु सिंधु सभ्यता के काल में यह नदी के तट से अधिक दूर न रहा होगा और वर्षा अधिक होने पर यह क्षेत्र अकसर बाढ़ग्रस्त हो जाता रहा होगा। 1856 ई० में रेलवे लाइन बिछाने के लिए रोड़ी की आवश्यकता हुई। जान ब्रंटन और विलियम ब्रंटन को, भला रोड़ियों के लिए हड़प्पा की ईंटों से अच्छा और क्या साधन मिल सकता था। आज लगभग डेढ़ सौ किलोमीटर की लम्बाई तक रेलगाड़ी इन प्राचीन ईंटों की बनी रोड़ियों के ऊपर चलती है। वैसे इसके पहले भी आस-पास के निवासियों ने अज्ञात मात्रा में प्राचीन ईंटों को खोद कर प्रयोग कर लिया था। लगातार ईंटों के निकालने से इमारतों की रूपरेखा तो पहले ही विगड़ चुकी थी, जो रूपरेखा बची वह रेलवे लाइन की रोड़ी बिछाने के लिए ईंटे निकालने के कारण और भी नष्ट हो गई।

हड़प्पा के टीले के बारे में प्रथम उल्लेख चार्ल्स मैसन ने 1826 में किया था। उसके बाद जनरल कनिंघम 1853 और 1873 में इस टीले पर गये। उन्होंने इस टीले से कुछ प्राचीन वस्तुएं उपलब्ध कीं और 1875 में कुछ मुद्राएं और अन्य उपकरणों को आर्क्योलाजिकल सर्वे रिपोर्ट में छपवाया। 1912 में जे० एफ० फ्लीट ने भी ब्रिटिश संग्रहालय द्वारा उपलब्ध की गई सिंधु सभ्यता की कुछ वस्तुओं पर रायल एशियाटिक सोसायटी की पत्रिका में एक लेख लिखा। किंतु कनिंघम और फ्लीट इस स्थल के पुरातात्त्विक महत्त्व को भलीभांति नहीं आंक सके। 1921 में जब सर जान मार्शल पुरातत्त्व विभाग के महानिदेशक थे, रायबहादुर दयाराम साहनी ने इसका पुनरन्वेषण किया और 1923–24 तथा 1924–25 में खुदाई करवाई। इसके बाद 1926–27 से 1933–34 तक यहां पर माधो स्वरूप वत्स के निदेशन में उत्खनन हुए जिनकी रिपोर्ट वत्स ने दो जिल्दों में छापी। इन उत्खननों से यह स्पष्ट हो गया कि हड़प्पा सिंधु सभ्यता का अत्यंत महान् केंद्र था। 1946 में ह्वीलर ने फिर यहां उत्खनन किया जिससे महत्त्वपूर्ण नये तथ्यों की जानकारी प्राप्त हुई जिनमें एक टीले की पहिचान गढ़ी के रूप में किया जाना विशेष उल्लेखनीय है। अनुमानतः मूल रूप में यहां नगर 5 किलोमीटर के क्षेत्र में बसा था।

रोपड़—रोपड़ पंजाब में शिवालिक पहाड़ी की उपत्यका में स्थित है। यज्ञदत्त शर्मा के निर्देशन में इस स्थान की खोदाई 1953 से 1956 तक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुई थी। यह टीला लगभग 15 मीटर ऊंचा है। भौगोलिक दृष्टि से यह सामरिक महत्त्व की जगह पर स्थित है, जहां पर हिमालय की तलहटी और मैदान मिलते हैं। सतलज नदी यहीं पर पंजाब की उपजाऊ भूमि में प्रवेश करती है। यहां छह संस्कृतियों के अवशेष मिले हैं। प्रथम काल में सिंधु संस्कृति के अवशेष मिले हैं। इसके दो चरण हैं—नीचे के स्तरों में विकसित हड़प्पा सभ्यता के उपकरण मिले; ऊपरी सतह पर कुछ नये प्रकार के बर्तन भी मिले। उत्खनन सीमित क्षेत्र में किये जाने के कारण नगर-निर्माण की रूपरेखा पर विशेष प्रकाश नहीं पड़ा। मुद्रा केवल एक ही मिली। हड़प्पा संस्कृति के अनेक विशिष्ट बर्तन मिले हैं, किंतु इस संस्कृति के बर्तनों के कुछ प्रकार यहां नहीं मिलते और कुछ बर्तन ऐसे मिले हैं जिन पर नये प्रकार के डिजाइन हैं। घर साधारण कच्ची ईंट और नदी से प्राप्त उपल से बने थे। कांचली मिट्टी एवं अन्य प्रकार के आभूषण, ताम्र कुल्हाड़ी, चर्ट फलक हड़प्पा प्रकार के ही मिले हैं। एक कब्रिस्तान भी मिला है। हड़प्पा संस्कृति के स्तरों के बाद कुछ अंतराल से एक नई संस्कृति के अवशेष मिले हैं जिसके मृद्भाण्डों में चित्रित धूसर भाण्ड मुख्य हैं।

बाड़ा—रोपड़ के पास ही स्थित बाड़ा की खोदाइयों से प्राप्त मृद्भाण्ड ह्रास-जनित हड़प्पा संस्कृति के द्योतक हैं, किंतु उनमें से कुछ भाण्डों पर चित्रित अभिप्राय बलूचिस्तान तथा कोटदीजी और कालीबंगां के पूर्व-हड़प्पा संस्कृति-कालीन अभिप्रायों से भी कुछ समानता रखते हैं।

संघोल—पंजाब के लुधियाना जिले में, चंडीगढ़ से 40 किलोमीटर दूर स्थित संघोल टीले की खोदाई पंजाब पुरातत्त्व विभाग की ओर से एस० एस० तलवार तथा रवीन्द्र सिंह बिष्ट ने कराई। निम्नतम स्तरों में अंतिम सिंधु सभ्यता प्रकाल के अवशेष पाये गये हैं, जिनके ऊपर अंतराल के साथ चित्रित-धूसर भाण्ड तथा ऐतिहासिक काल के अवशेष मिले। निम्नतम स्तरों में दीवालें कुटी मिट्टी और कच्ची ईंटों की थीं। तांबे की दो छेनियां, कांचली मिट्टी की चूड़ियां, बाली और मनके पाये गये हैं। कुछ वृत्ताकार नाते मिले जो अग्निस्थल के रूप में प्रयुक्त लगते हैं। संघोल की इस प्रथम संस्कृति में बाड़ा और रोपड़ की सिंधु सभ्यता के चरण और कब्रिस्तान एच (हड़प्पा) के कुछ तत्त्वों का समन्वय पाया गया। चित्रण की विधा में पूर्व सिंधु सभ्यता कालीन कालीबंगां के तत्त्व भी मिलते हैं।

हरयाणा

राखीगढ़ी—हरयाणा में भी कई सिंधु-संस्कृति-कालीन स्थल खोज लिए

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गये हैं। इनमें मीत्ताथल बथावली और राखीगढ़ी उल्लेखनीय हैं। जींद जिले में जींद नगर से 11 किलोमीटर दक्षिण में स्थित राखीगढ़ी सिंधु सभ्यता का एक विशाल स्थल है इसकी खोज सूरजभान और आचार्य भगवान देव ने की थी। यहां पर प्रागू सिंधु और सिंधु सभ्यता कालीन अवशेष मिले हैं। कुछ वर्ष पूर्व इस स्थल से कई तांबे के उपकरण भी उपलब्ध हुए थे। सिंधु लिपि युक्त एक लघु मुद्रा भी उपलब्ध हुई।

बणावली—बणावली हिस्सार जिले के फतेहाबाद तहसील में प्राचीन सरस्वती, जो अब सूख चुकी है, की घाटी में स्थित है। हरयाणा राज्य के पुरातत्त्व विभाग के तत्त्वावधान में रवींद्र सिंह बिष्ट ने 1973–74 में यहां उत्खनन कराया। टीला लगभग ग्यारह मीटर ऊंचा है और उत्तर-दक्षिण की ओर 600 मीटर तथा पूर्व-पश्चिम की ओर 400 मीटर के क्षेत्र में फैला है। यहां पर सिंधु संस्कृति से पहले की संस्कृति और सिंधु संस्कृति के अवशेष मिले। प्रथम काल के मृद्‌भाण्ड कई आकार-प्रकार के हैं और इनमें कुछ चित्रित तथा कुछ सादे हैं जो बहुत कुछ कालीबंगां प्रथम के संदर्भ में प्राप्त मृद्‌भाण्डों के समान हैं। इस काल में भी नगर नियोजन का साक्ष्य मिलता है जिसमें सड़कें चौराहे पर काटती हुई मिलती हैं और पक्की ईंटें भी कुछ इस काल की मिली हैं। तत्पश्चात् प्रथम काल की सतहों के ऊपर सिंधु संस्कृति के अवशेष मिलते हैं। जो अल्प उत्खनन हुए हैं, उनसे इतना तो स्पष्ट हो गया है कि बणावली सिंधु संस्कृति का एक सुनियोजित और महत्त्वपूर्ण नगर था। मृद्‌भाण्ड आकार-प्रकार और चित्रण की दृष्टि से अन्यत्र सिंधु सभ्यता के संदर्भ में प्राप्त मृद्‌भाण्डों के समान हैं। तांबे के बाणाग्र, उस्तरे, मनके, चर्ट फलक, कानीलियन, गोमेद और कांचली मिट्टी के मनके, पशु और मानव मृण्मूर्तियां, बाट-बटखरे, मिट्टी के गोफन गोलियां, सिंधु लिपि वाली एक मुद्रा और कुछ मुद्रा छापें भी पायी गयी हैं कुछ मृद्‌भाण्ड खण्डों पर भी सिंधु लिपि के अक्षर उत्कीर्ण हैं।

मीत्ताथल—मीत्ताथल हरयाणा प्रदेश के भिवानी जिले में भिवानी से उत्तर-पश्चिम में स्थित है। यहां पर सतह से कुछ ताम्र-निधि के उपकरण मिले थे। 1968 में पंजाब विश्वविद्यालय के तत्त्वावधान में सूरजभान ने यहां पर उत्खनन कराया। उनके मतानुसार टीले के पूर्व में जो लगभग 400 मीटर चौड़ी प्राकृतिक खाई है वह यमुना के प्राचीन प्रवाह मार्ग की द्योतक है जो आगे चल कर राजस्थान में दृषद्वती और सरस्वती सरणि (system) से मिलती थी। मीत्ताथल के प्रथम काल के मृद्‌भाण्ड कालीबंगां के प्रथम काल के बर्तनों से मिलते जुलते हैं। इस काल में भवन-निर्माण कच्ची ईंटों से होता था। दूसरे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काल की संस्कृति सिंधु-संस्कृति है जिसके अवशेषों को दो चरणों में बांटा गया है—प्रथम चरण विकासशील और दूसरा चरण ह्रासोन्मुख; प्रथम चरण में सुनियोजित नगर की नींव डाली गई और यहां पर भी गढ़ी और निचले नगर की परियोजना नगर-निर्माण में दिखाई देती है। सड़कें पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण दिशा को जाती थीं। इस काल में सिंधु सभ्यता के सामान्य भाण्डों के साथ कुछ पहले काल (कालीबंगां प्रथम प्रकाल) के बर्तन भी प्रचलित रहे। सिंधु सभ्यता के द्वितीय चरण में निश्चित रूप से ह्रास के लक्षण मिलते हैं। इमारतों का निर्माण निम्नकोटि का था और खण्डित ईंटों से भी निर्माण होने लगा था। मृद्भाण्डों के आकार-प्रकार और चित्रण-शैली भी पहले की अपेक्षा निम्नकोटि के हैं। कुछ ताम्र-उपकरण यथा चपटी कुल्हाड़ी तथा परशु ताम्रनिधि के उपकरणों से मिलते-जुलते हैं। पानपात्र और चंचुक जो सिंधु सभ्यता के खास बर्तनों के प्रकारों में से हैं, शनैः शनैः कम होते गये और बाद में उनका प्रचलन ही बंद हो गया। अन्य उपकरणों में खिलौने गाड़ियों के पहिये, पशु आकृतियां, भृत्पिण्ड, गोफन गोलियां, पत्थर के बाट और फलक, मिट्टी और शंख की चूड़ियां और पत्थर की अंगूठी उल्लेखनीय हैं।

राजस्थान

कालीबंगां—पुराकालीन सरस्वती और दृषद्वती (जिनकी पहचान क्रमशः घग्घर और चौतांग नदियों से की गई है) की घाटियों में, जो आज सूखी पड़ी हैं, किसी समय सिंधु संस्कृति फूली-फली थी। इसके प्रमाण वे अनगिनत टीले हैं जो राजस्थान की रेतीली भूमि अपने वक्ष में पुराविदों के लिए छिपाये बैठी है। ऑरेल स्टाइन ने भूतपूर्व बहावलपुर रियासत में हक्रा (घग्गर नदी का ही विस्तार) नदी के सूखे रास्ते में प्राग्-हड़प्पा संस्कृति के करीब ग्यारह प्राचीन स्थल 1942 में ढूंढ निकाले थे और लगभग एक दशक बाद अमलानंद घोष ने 1953 में लगभग दो दर्जन हड़प्पा संस्कृति के स्थल राजस्थान के भूतपूर्व बीकानेर रियासत में खोज निकाले। इनमें गंगानगर जिले में घग्गर (प्राचीन सरस्वती) के किनारे पर स्थित कालीबंगां प्रमुख है। यहां पर सिंधु सभ्यता के अवशेषों के नीचे प्राग्-सिंधु सभ्यता के अवशेष मिले हैं। कालीबंगां में उत्खनन ब्रजवासी लाल और बालकृष्ण थापड़ के निर्देशन में 1961 में मुख्य रूप से हड़प्पा संस्कृति के उद्भव के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए और साथ ही 'स्कूल ऑफ आर्क्योलाजी' के विद्यार्थियों को महत्त्व-पूर्ण पुरातात्त्विक स्थल के उत्खनन का प्रशिक्षण देने के उद्देश्य से आरंभ किया गया था। मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा की भांति यहां भी दो टीले थे—एक छोटा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पश्चिम में और दूसरा बड़ा पूर्व में। महत्त्व की बात यह है कि ये दोनों टीले सुरक्षा दीवार से घिरे थे। छोटे टीले पर पहले हड़प्पा संस्कृति से पूर्व की संस्कृति के लोग बसे हुए थे फिर हड़प्पा संस्कृति के लोग बसे। बड़े टीले पर केवल हड़प्पा सभ्यता के ही उपकरण मिले। कुछ विद्वानों का सुझाव है कि संभवतः हड़प्पा, मोहेंजोदड़ो और कालीबंगां हड़प्पा साम्राज्य (?) की तीन राजधानियां थी (विस्तार के लिए देखिए परिशिष्ट 'सिंधु सभ्यता की संभावित राजधानियां')। गढ़ी ही नहीं बल्कि नीचे नगर की बस्ती भी रक्षात्मक दीवार से घिरी होने के कारण भारत की ताम्राश्म-युगीन संस्कृति के मानचित्र पर इसका विशिष्ट स्थान है।

उत्तर प्रदेश

आलमगीरपुर—सन् 1958 तक हड़प्पा-संस्कृति के अवशेष गंगा-यमुना दोआब में नहीं मिले थे। किंतु इसी साल यमुना की सहायक हिण्डन नदी के बायें तट पर उससे 3.21 किलोमीटर की दूरी पर इसके अवशेष मिले। यह मेरठ से साढ़े तीस किलोमीटर पश्चिम, दिल्ली से लगभग 45 किलोमीटर उत्तर-पूर्व में है। यहां पर भारत सेवक समाज का शिविर लगाया जा रहा था तो अचानक कुछ पुराकालीन सामग्री प्रकाश में आई जो भारतीय पुरातत्त्व विभाग द्वारा परीक्षित होने पर सिंधु संस्कृति-कालीन प्रतीत हुई। कालांतर में किये गये उत्खननों से इसकी पुष्टि हुई। यहां 'सिंधु' प्रकार के मृद्भाण्ड, मृत्पिण्ड और मनके मिले। आलमगीरपुर में प्राप्त सामग्री ह्रासोन्मुखी हड़प्पा सभ्यता की द्योतक है। एक भी मुद्रा यहां पर नहीं मिली और सिंधु सभ्यता के कुछ भाण्डों के प्रकार भी यहां पर अनुपलब्ध हैं।

गुजरात

शि० रंगनाथ राव ने सुझाया है कि सिंधु सभ्यता के लोगों का सौराष्ट्र में पदार्पण संभवतः व्यापारिक कारणों से हुआ। अनुमानतः लोथल में इस सभ्यता का आगमन मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा नगरों की नींव पड़ने के अल्पकाल (लगभग अर्द्ध-शताब्दी) के भीतर ही हो गया था। रंगपुर की नींव लोथल के कुछ समय बाद पड़ी (देखिए नीचे)। राव का मत है कि सौराष्ट्र के और उसके समीप के सिंधु सभ्यता के कुछ स्थल प्राचीन समुद्रतट पर स्थित हैं जो इसके द्योतक हैं कि सिंधु सभ्यता के लोग सौराष्ट्र में समुद्री मार्ग से आये होंगे। जो स्थल समुद्र तट से कुछ दूर हैं वे व्यापारिक लाभ के लिए अथवा आर्थिक परिस्थितियों के कारण बसाये गये होंगे। जगतपति जोशी ने हाल ही में कच्छ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में किये सर्वेक्षणों एवं उत्खननों के आधार पर मत व्यक्त किया है कि सिंधु सभ्यता के लोगों ने सौराष्ट्र आने के लिए भूमि-मार्ग का प्रयोग किया। सांकलिया की धारणा कि कुछ लोग भूमि-मार्ग और कुछ समुद्री मार्ग से आये होंगे, अधिक समीचीन लगती है।

रंगपुर—रंगपुर लोथल से लगभग 50 किलोमीटर उत्तर-पूर्व में और अहमदाबाद के दक्षिण-पश्चिम में भूतपूर्व लिम्बिडि राज्य में भादर नदी के तट पर धुन्धुका रेलवे स्टेशन से करीब 5 किमी की दूरी पर है। 1934 में रंगपुर टीले को सड़क-निर्माण के सिलसिले में खोदने पर कुछ मृद्भाण्ड मिले जिन्हें हड़प्पा सभ्यता का करार दिया गया। माधोसरूप वत्स ने 1931–34 में, मोटेश्वर दीक्षित ने 1947 में शि० रंगनाथ राव ने 1953–54 में इस टीले का उत्खनन कराया। वत्स और धुर्ये ने इसे हड़प्पा संस्कृति का स्थल घोषित किया था, किंतु दीक्षित ने इसमें संदेह व्यक्त किया। राव द्वारा अपेक्षाकृत विस्तृत क्षेत्र पर उत्खनन किये जाने पर न केवल यह हड़प्पा संस्कृति का केंद्र निश्चित रूप से सिद्ध हुआ बल्कि इससे हड़प्पा संस्कृति के ह्रास काल के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हुई। राव का अनुमान है कि सिंधु सभ्यता का प्रारंभ रंगपुर में लोथल से आये बाढ़ पीड़ित लोगों द्वारा हुआ और इसलिए रंगपुर में सिंधु सभ्यता का उदय लोथल से बाद में हुआ। लेकिन सांकलिया के मतानुसार इस बात की पूरी संभावना है कि रंगपुर और लोथल दोनों ही स्थलों में इस सभ्यता का प्रारंभ लगभग एक ही समय में हुआ।

रंगपुर की खुदाई में सबसे नीचे लघु अश्म मिले। इनके साथ बर्तन नहीं पाये गये। उसके बाद यहां पर सिंधु सभ्यता से पूर्व की संस्कृति के अवशेष मिले जिसके केवल बर्तन ही ज्ञात हैं। जिनमें (1) लाल अभ्रकी—जिसमें हत्थेदार कटोरा और बाहर की ओर फैले रिम वाला छोटा बर्तन, (2) पाण्डु रंग का बर्तन जिसमें घड़े और तश्तरियां हैं और (3) खुरदरे घूसर बर्तन मुख्य हैं। इसके बाद सिंधु सभ्यता के अवशेष मिले हैं जो विकसित सिंधु-संस्कृति के चरण के द्योतक हैं। सिंधु सभ्यता के विशिष्ट स्मारक, नालियां, कच्ची ईंटों के सुरक्षा दुर्ग, मृद्भाण्ड, आभूषण, औजार, बांट और मृत्पिंड मिले हैं, किंतु 'मातृदेवी' की मूर्तियां और मुद्राएं नहीं मिलीं। हड़प्पा संस्कृति के मृद्-भाण्डों से भिन्न कुछ नये आकार-प्रकार के मृद्भाण्ड मिले हैं। फलक चकमक पत्थर की जगह जैस्पर से बने थे। इसके ऊपर चमकीले लाल मृद्भाण्ड की संस्कृति के अवशेष मिले जो ह्रासोन्मुखी सिंधु सभ्यता से ही विकसित हुई थी। सिंधु सभ्यता के उपकरणों के साथ ही काले-लाल भाण्ड भी मिले। मृद्भाण्डों तथा अन्य पुरातात्त्विक वस्तुओं के अध्ययन से प्रतीत होता है कि यहां पर सिंधु

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सभ्यता का अंत अचानक नहीं हुआ अपितु वह मध्य-भारतीय ताम्र-पाषाण संस्कृति के सम्पर्क में आकर परिवर्तित हुई और अंततः अपना अस्तित्व विलीन कर बैठी ।

लोथल—लोथल सौराष्ट्र क्षेत्र में सिंधु सभ्यता का सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है । यह टीला अहमदाबाद जिले में इसी नाम के नगर से लगभग 16 किमी दक्षिण में सरगवाला गांव की सीमा में स्थित है । संभवतः प्राचीन काल में यह साबरमती और भोगावा नदियों के संगम पर स्थित था, किंतु आज यह संगम से लगभग सवा तीन किलोमीटर दक्षिण-पश्चिम में है । यहां पर किये गये उत्खनन से सिंधु सभ्यता के इतिहास में एक नया अध्याय जुड गया है ।

लोथल का टीला आज लगभग 3.220 किमी की परिधि में फैला है । उत्खाता शि० रंगनाथ राव के मतानुसार आज यह अपने मूल रूप का आधा ही रह गया है । देखने से यह बहुत ऊँचा नहीं लगता, लगभग 3.5 मीटर ही ऊंचा है, पर खोदाई में 6.7 मीटर गहराई तक प्राचीन अवशेषों की प्राप्ति हुई हैं । सबसे नीचे अभ्रकी लाल रंग के मृद्भाण्ड मिले हैं जो राव के मतानुसार सिंधु सभ्यता के लोगों के आने से पहले के लोगों के हैं । ये लोग ताम्र से परिचित थे और साथ ही उल्टे रख कर बर्तन पकाने की विधि (inverted firing) से भी परिचित थे और इस विधि से काले-लाल भाण्ड बनाते थे । यह कहना कठिन है कि इस संस्कृति का उद्गम भारतीय भूमि में हुआ कि विदेश में । सिंधु सभ्यता के काल में भी लोथल में इस तरह के भाण्ड बनते रहे थे ।[1] इसके बाद नगर के पूरे जीवन-काल में एक ही सभ्यता–सिंधु सभ्यता रही । नगर सुनियोजित था और सीधी सड़कों द्वारा खण्डों में विभक्त था । नालियों का सुंदर प्रबंध था । कब्रिस्तान बस्ती से थोड़ी दूर पर था । प्रायः सिंधु सभ्यता के सभी प्रकार के विशिष्ट उपकरण, बर्तन, मुद्राएं बाट-बटखरे, आभूषण, ताम्र तथा पाषाण उपकरण आदि यहां मिले हैं । विशेषज्ञों का कहना है कि सिंधु सभ्यता के काल में समुद्र भी इसके नजदीक ही लगभग 5 किलोमीटर के भीतर था । यहां पर एक गोदी मिली है जो समुद्री आवागमन तथा व्यापार के लिए महत्त्वपूर्ण थी । पश्चिमी एशिया के साथ सिंधु सभ्यता के सम्पर्क में इसका महत्त्वपूर्ण योगदान था । राव के मतानुसार लोथल में सिंधु सभ्यता के

---

1. अभ्रकी भाण्डों के साथ अन्य निम्न उपकरण मिले हैं—मिट्टी के तकुए, पत्थर के मनके, शंख की चूड़ी, हाथी दांत और तांबे के उपकरण । ताम्र का प्रयोग विशेषतया इस संस्कृति के लोगों का पर्याप्त उन्नत होने का साक्ष्य प्रस्तुत करता है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लोग लगभग 2400 ई० पू० में आये। यहां पर संस्कृति के पांच प्रकाल मिले हैं। एक से चार प्रकाल हड़प्पा संस्कृति के हैं जिन्हें 'ए' चरण की संज्ञा दी गई है। पांचवें प्रकाल को 'बी' चरण नाम दिया गया है। इस चरण में हड़प्पा संस्कृति के साथ नये तत्त्वों का सम्मिश्रण पाया गया है। कई बार यह भीषण बाढ़ से क्षतिग्रस्त हुआ। लोथल में इस विकसित सिंधु सभ्यता के बाद ह्रासोन्मुखी और किंचित् परिवर्तित सिंधु सभ्यता के दर्शन भी होते हैं।

रोजदि—रोजदि भादर नदी के तट पर राजकोट से लगभग 55 किमी दक्षिण में स्थित है। यह स्थल बड़े-बड़े पत्थरों की दीवार से घेर कर सुरक्षित किया गया था। सुरक्षा के लिए इस प्रकार की व्यवस्था हड़प्पा सभ्यता में अपने ढंग की है। घर लगभग दो फुट ऊंचे कच्ची ईंटों के चबूतरे पर बने थे जिन पर मिट्टी कूट कर ऊपर से चूना बिछाया गया था। इसे तीन चरणों में बांटा गया है। 'ए' चरण में हड़प्पा प्रकार के बर्तन, आभूषण, ताम्र उपकरण तथा लघुपाषाण उपकरण मिले जिनके निर्माण में फ्लिंट के स्थान पर जैस्पर का प्रयोग हुआ है। इस काल का अंत अग्निकांड से हुआ। 'बी' चरण भी हड़प्पा 'ए' की ही तरह का था, पर इसमें कुछ पांडु मृद्भाण्ड और कुछ काले-लाल मृद्भाण्ड खण्ड मिले हैं। 'सी' चरण में बिना तराशे पत्थरों की इमारतों के अवशेषों के साथ 'प्रभास' प्रकार के बर्तन भी मिलते हैं।

सुरकोटड़ा—कच्छ जिले में अदेसर से 12 किलोमीटर उत्तर-पूर्व में स्थित सुरकोटड़ा की खोज (1964 ई० में) और उसका उत्खनन श्री जगतपति जोशी के निदेशन में किया गया। I ए (प्रथम काल के प्रथम चरण) में यहां पर गढ़ी और आवास क्षेत्र मिला है। गढ़ी के बाहर परकोटा से घिरा बड़ा क्षेत्र था। परकोटा कच्ची ईंटों और मिट्टी के लोंदों से बना था और 5 से 8 रद्दे तक पत्थर से आच्छादित था। आवास स्थल भी कच्ची ईंटों की रक्षा दीवार से सुरक्षित था। रक्षा दीवार नींव के पास लगभग सात मीटर चौड़ी थी। इस काल के अधिकांश मृद्भाण्ड अन्यत्र प्राप्त सिंधु सभ्यता के बर्तनों से मिलते-जुलते हैं यद्यपि कुछ पूर्ववर्ती संस्कृति के संपर्क के भी द्योतक हैं। शवाधान के उदाहरण मुख्यतः अस्थि-कलशों के रूप में मिले हैं। बड़ी चट्टान से ढकी एक कब्र सिंधु सभ्यता में अपने ढंग की एक ही है। प्रथम काल के द्वितीय चरण में, जिसका अंत एक भीषण अग्निकांड से हुआ था, सिंधु सभ्यता के बर्तनों के साथ ही एक नयी तरह का लाल भाण्ड भी मिला है। तृतीय चरण में भी हड़प्पा सभ्यता के तत्त्व विद्यमान रहे, किंतु इस चरण में सफेद रंग के चित्रित काले और लाल भाण्ड काफी संख्या में पाये गये। घोड़े की हड्डियां इस चरण की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मालवण—यह काठियावाड़ के सूरत जिले में ताप्ती नदी के निचले मुहाने पर स्थित है। संभवतः यह सिंधु सभ्यता का एक बंदरगाह था। आल्विन तथा जोशी ने 1967 में इस स्थल का पता लगाया और 1970 में यहां पर सीमित उत्खनन किया। यहां पर उपलब्ध सांस्कृतिक सामग्री दो काल की है—प्रथम काल में सिंधु सभ्यता के अंतिम चरण के द्योतक तथा सैन्धवोत्तर संस्कृत सभ्यता के ताम्राश्म उपकरण मिले, और द्वितीय काल के उपकरण ऐतिहासिक काल के हैं। प्रथम काल में पूर्व-पश्चिम जाती हुई एक खाई मिली जो 1.50 मीटर चौड़ी थी और 18.30 मीटर तक लम्बाई में मिल चुकी है। संभवतः यह सिंचाई के लिए नहर थी। उत्तर की ओर कच्ची ईंटों का चबूतरा मिला। इस काल में लाल, पाण्डु, चमकीले लाल, काले और लाल इत्यादि प्रकार के मृद्-भाण्ड मिले हैं। ये मृद्भाण्ड इस बात के द्योतक हैं कि मालवण में मध्य भारतीय (मालवा) दक्कनी और सौराष्ट्र के ताम्र-पाषाण कालीन संस्कृति का संगम रहा। यही नहीं, यह भी संभावना है कि आंध्र (कर्नूल) क्षेत्र का प्रभाव भी इस स्थल की संस्कृति पर पड़ा। विभिन्न प्रकार के पत्थरों के बने शल्क और क्रोड, तांबे और कांसे के उपकरण, सांड की मृण्मूर्तियां, कार्नलियन के मनके आदि भी मिले हैं। कई जंगली तथा पालतू पशुओं की हड्डियां भी पायी गयी हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 2

सिंधु सभ्यता का उद्भव

सिंधु सभ्यता जिस रूप में मिली है वह एक विकसित संस्कृति का रूप है। इसके प्रारंभिक चरण और क्रमिक विकास के बारे में निश्चित जानकारी नहीं है। सिंधु सभ्यता के जनक कौन थे? वे स्थानीय थे अथवा विदेशी? यदि वे बाहर से आये तो कहां से और किस जाति से संबंधित थे और शांतिपूर्वक आये अथवा आक्रमणकारी के रूप में? और यदि भारतीय भूमि के लोग ही इस संस्कृति के निर्माता थे तो एक लघु ग्रामीण संस्कृति से उस महान् नागरिक संस्कृति के क्रमिक विकास के निश्चित सूत्र क्यों नहीं मिलते? इन सब समस्याओं का निश्चित उत्तर देना कठिन है।

इन समस्याओं पर विचार करने के पूर्व इस बात का उल्लेख करना समीचीन होगा कि मार्शल के उत्खननों और उनके विवरण के अनुसार, मोहेंजोदड़ो में भवन निर्माण के स्तर उद्घाटित हुए हैं। इन स्तरों को तीन कालों में बांटा गया है—तीन स्तर अंतिम, तीन मध्य और एक प्रारंभिक काल का। किंतु यहां पर निम्नतम उत्खनित स्तरों के नीचे भी अवशेष हैं जो जल-स्तर के आ जाने से खोदे नहीं जा सके हैं। निम्नतम खोदे गये स्तरों के अवशेष भी सुविकसित नगर-सभ्यता का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। नगर-जीवन की जटिलता, भवनों का सुनियोजित होना, कला एवं उद्योग धंधों का उत्कर्ष, इन सबके विकास में कई पीढ़ियों का संचित और क्रमिक विकासशील ज्ञान अपेक्षित होता है। उनको चित्रलिपि के अक्षर-चिह्नों का विकास साधारण चित्रों से हुआ होगा जो दीर्घावधि तक कुशलतापूर्वक विकास करने के पश्चात् ही एक निश्चित रूप धारण कर सके होंगे। इतर देशों से व्यापार-वाणिज्य का विशेष विकास नगर-संस्कृति के विकसित काल में ही संभव हुआ होगा। किंतु विकास के प्रथम चरणों के द्योतक साक्ष्य अप्राप्य हैं। क्या पता मोहेंजोदड़ो में निचले जलीय स्तर के नीचे ही सैंधव सभ्यता के मूल की कुंजी छुपी हो? अब तक जो तथ्य उपलब्ध हैं उन्हीं के आधार पर यहां सिंधु सभ्यता के मूल पर विचार किया जायेगा। एक मत इसका श्रेय मेसोपोटामिया की संस्कृति को देता है, दूसरा ईरानी-बलूची-सिंध संस्कृतियों और भारत की ग्रामीण संस्कृतियों से इसे विकसित मानता है।

चूंकि मेसोमोटामिया में संस्कृति का विकास कालक्रम की दृष्टि से हड़प्पा संस्कृति से पहले हुआ था और संभवतः सभ्यता का विचार यहीं पर सबसे पहले

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उद्भासित हुआ था, अतः कुछ विद्वान हड़प्पा संस्कृति का प्रेरक मेसोपोटामिया की संस्कृति को मानते हैं। उनके अनुसार सभ्यता की भावना सर्वप्रथम मेसोपोटामिया से थल मार्ग द्वारा मिस्र पहुंची, जिसने वहां की वास्तुकला तथा लिपि को कुछ परिवर्तनों एवं परिवर्धनों सहित अपना लिया। कालांतर में यह सभ्यता की भावना भारत भी पहुंची और सिंधु सभ्यता की प्रेरक बनी। गार्डन तथा कतिपय अन्य विद्वानों का कथन है कि उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर इस अनुमान की गुंजाइश नहीं कि भारतीय धरती पर इस सभ्यता का विकास क्रमिक व धैर्यपूर्ण प्रयासों द्वारा हुआ।

मेसोपोटामिया से इस सभ्यता के अनुप्राणित होने के पक्ष में ह्वीलर ने एक महत्त्वपूर्ण तर्क यह प्रस्तुत किया है कि मोहेंजोदड़ो के राजकीय अन्नागार और गढ़ी तथा दक्षिणी-पूर्वी बुर्ज के, जो प्राप्त अवशेषों में सबसे पहले के निर्माण-कार्यों में हैं, निर्माण में लकड़ी के शहतीरों का प्रयोग हुआ है। ह्वीलर के अनुसार इनके निर्माता कच्ची ईंटों से भवन निर्माण करने के अभ्यस्त थे और चूंकि इस तरह की निर्माण-प्रक्रिया मेसोपोटामिया में विशेष रूप से लोकप्रिय थी, अतएव, उनके अनुसार, हड़प्पा संस्कृति के जनक मेसोपोटामिया के लोग हो सकते हैं।

गॉर्डन (1958, 5) का तर्क है कि मेसोपोटामिया के लोगों ने सभ्यता के मूल तत्त्वों को लेकर नये वातावरण के अनुरूप उन्हें ढाल कर एक शताब्दी के भीतर ही अपनी दूरदर्शिता और अध्यवसाय से संस्कृति का ऐसा प्रतिरूप तैयार किया जो कि दीर्घकाल तक चला। उनके अनुसार यह संभव नहीं लगता कि मोहेंजोदड़ो जैसे नगर का विकास हड़प्पा संस्कृति के ग्रामों से हुआ, अतः ऐसी संभावना अधिक है कि बाहर से आये लोगों ने विकसित सभ्यता के तत्त्वों को यहां पर नवीन पृष्ठभूमि में आरोपित कर आमरी संस्कृति के ग्रामों को प्रभावित किया, और हड़प्पा संस्कृति का विकास द्रुतगति से होने के फलस्वरूप आमरी की खेतिहर अर्थ व्यवस्था को अपने प्रभाव-क्षेत्र के अंतर्गत कर लिया। गॉर्डन का अनुमान है कि मेसोपोटामिया के लोग समुद्री मार्ग से, समुद्र के किनारे-किनारे होकर आये। वे टायनबो की इस धारणा को इस संदर्भ में उद्धृत करते हैं कि समुद्र से यात्रा के समय लोग कुछ चुने हुए उपकरण ही अपने साथ ले जाते हैं। इन चुने उपकरणों को भी छोटे टुकड़ों में ही ले जाया जाता है और नये स्थल में पहुंचने पर उन्हें नये ढंग से जोड़ा जाता है जिससे वे मूल से भिन्न लगने लगते हैं। समुद्री मार्ग से आने के पश्चात् नये वातावरण में नये सिरे से नयी चुनौतियों का सामना करने के फलस्वरूप ये लोग नई संस्कृति का विकास कर सके।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गॉर्डन का कहना है कि हड़प्पा संस्कृति के नगरों में कच्ची ईंटों का प्रयोग थोड़ा बहुत सभी चरणों में मिलता है (मुख्य रूप में चिनाई-भराई के लिए), ऐसी भी संभावना है कि इस संस्कृति के आदि निर्माता कच्ची ईंटों से मकान बनाते रहे हों और कालांतर पक्की ईंटों का उपयोग करने लगे हों—जो हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो की मुख्य विशेषता है। यह भी लगता है कि बाहर से आने पर उन्हें यहां पर जो लोग मिले वे भी कुछ उन्नतिशील थे और नागरिकता का कुछ सबक सीख चुके थे। नवागन्तुकों ने मानों इन्हें प्रभावित करने के लिए ही गढ़ियां बनायी हों।

सांकलिया ने बलूचिस्तान के कुछ स्थलों से प्राप्त वर्गाकार या आयताकार चबूतरों की ओर ध्यान आर्कषित किया है। ये ऊपर की ओर क्रमशः संकरे होते हुए सीढ़ियों की तरह बने हैं। कुछ तो 1 मीटर से भी अधिक ऊंचे हैं और उनके सिरे पर पक्की और कच्ची ईंटों से निर्माण किया गया है। उन्होंने मत व्यक्त किया है कि यदि ये ज़िगुरेट के अवशेष हैं तो ये बलूचिस्तान में मेसोपोटामिया के प्रभाव के द्योतक हो सकते हैं। ह्वीलर तो सिंधु सभ्यता के कृत्रिम चबूतरों और मेसोपोटामिया के कृत्रिम ज़िगुरेट के टीलों को एक ही प्रकार के राजतंत्र की प्रेरणा से निर्मित होने की संभावना मानते हैं। उनके अनुसार हड़प्पा के बैरक जैसे भवन सुमेर के पुरोहित-नियंत्रित उद्योग से संबंधित लगते हैं। लेकिन उनके अनुसार ये समानताएं मेसोपोटामिया से सीधे ही सिंधु सभ्यता के लोगों द्वारा सीखने के निश्चित प्रमाण नहीं माने जा सकते और सामाजिक प्रगति के समान स्तर पर पहुंचने के उपरांत सिंधु सभ्यता के लोग स्वतः भी उनका विकास कर सकते थे।

किंतु यह प्रश्न भी उठता है कि यदि मेसोपोटामिया वाले इस सभ्यता के जनक थे तो उनकी लिपि और सिंधु सभ्यता की लिपि में इतनी भिन्नता क्यों है? इस प्रश्न के उत्तर में गॉर्डन का मत है कि इसका सही कारण बताना तो कठिन है पर कदाचित् या तो उन्होंने मूल स्थान से अपनी अलग राष्ट्रीय विशेषता बनाये रखने के उद्देश्य से लिपि में भिन्नता रखी अथवा ऐसा इसलिए किया कि नये लोगों की वाणी को व्यक्त करने के लिए उनकी लिपि पर्याप्त नहीं थी। ज्ञातव्य है कि हड़प्पा लिपि में तीन सौ या उससे कुछ अधिक चिह्न हैं, जब कि कीलाकार लिपि में लगभग नौ सौ चिह्न हैं। वे इस बात की भी संभावना मानते हैं कि यह जान बूझ कर सुधारात्मक परिवर्तन किए जाने का उदाहरण भी हो सकता है। पर इस सुधार किये जाने में अधिक समय नहीं लगा। उनका कहना है कि मोहेंजोदड़ो में मुद्राएं वहां पर सबसे नीचे के स्तरों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में नहीं मिलतीं और द्रवी मोम विधि से मूर्तियों का निर्माण भी वहां पर दूसरे चरण से ही शुरू हुआ ।

ह्वीलर के कथनानुसार विचार प्रबल होते हैं और उचित परिस्थितियों में बहुत शीघ्र फैलते हैं और इस भाव को नये परिप्रेक्ष में कुशलतापूर्वक क्रियात्मक रूप देने से नगर निर्माण कला के क्षेत्र में सिंधु सभ्यता के निर्माता प्रारम्भ से ही मेसोपोटामिया से आगे बढ़ गये । कुछ ऐसे मेधावी लोग रहे होंगे जिन्होंने नदियों की समस्या की चुनौती स्वीकार की और एक निश्चित योजना के आधार पर नगर-निर्माण किया जिसकी प्रमुख विशेषता थी नदी से सुरक्षा । उन्होंने लोगों को संगठित किया होगा क्योंकि ऐसे कार्यों में सामूहिक सहयोग अपेक्षित है । बांध बनाये गये, नहरें निकाली गयीं और कृषिकर्म का विकास हुआ । संक्षेप में, वातावरण पर विजय प्राप्त करने का पूरा प्रयास किया गया और एक औद्योगिक तथा व्यापारिक समाज का निर्माण हुआ । इसके अतिरिक्त समय-समय पर नगर क्षतिग्रस्त हुए तो उनका जीर्णोद्धार भी किया गया । प्रारंभ से ही संस्कृति विस्तार बिना किसी विशेष दीर्घकालीन चिंतन के एकाएक तीव्र गति से हुआ ।

हड़प्पा संस्कृति और मेसोपोटामिया की संस्कृतियों में अन्य कई आधार-भूत भिन्नताएं हैं । यह सच है कि मेसोपोटामिया में, पुरातत्त्व के साक्ष्यों के अनुसार, सिंधु सभ्यता से भी पूर्व नागरिक सजगता के प्रमाण मिलते हैं, किंतु सिंधु सभ्यता में नगर का नियोजन एवं सार्वजनिक स्वच्छता की व्यवस्था मेसो-पोटामिया ही नहीं वरन् विश्व की समस्त प्राचीन सभ्यताओं में श्रेष्ठ पाया गया है । मेसोपोटामिया में मंदिर महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं किंतु इनका कोई निश्चित प्रमाण सिंधु सभ्यता के किसी भी स्थान पर उद्‌घाटित नहीं हुआ है । मेसोपोटा-मिया और मिस्र के समान भव्य कब्रें भी हड़प्पा संस्कृति में नहीं मिली हैं । शासक वर्ग के लिये हड़प्पा सभ्यता में दुर्ग बनाए गये थे जो विशिष्ट प्रकार के हैं । दोनों सभ्यताओं की भौतिक वस्तुओं में, यथा आयुध, मृद्‌भाण्ड, पाषाण मूर्तियां, मृण्मूर्तियां और मुहरों में महत्त्वपूर्ण असमानताएं हैं । दोनों की लिपि में भी पर्याप्त अंतर है । ये एक दूसरे से ऊपरी विशिष्टता के कारण आसानी से अलग पहचाने जा सकते हैं । इन भिन्नताओं के बावजूद ह्वीलर, जो सिंधु सभ्यता के विकास में मेसोपोटामिया के योगदान को अत्यंत महत्त्वपूर्ण समझते हैं, का कहना है कि नागरिक भावना का स्रोत मेसोपोटामिया ही है, किंतु सिंधु सभ्यता तथा मेसोपोटामिया में घनिष्ट संबंध होने पर भी उस भावना का विभिन्न क्षेत्रों में भौतिक उपकरणों के निर्माण में जो रूप दिया गया वह पर्याप्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भिन्न हो सकता है। उन्होंने ऐतिहासिक काल से अपने मत की पुष्टि में कुछ साक्ष्य प्रस्तुत किये हैं।[1]

दूसरे मत के अनुसार हड़प्पा सभ्यता की वस्तुएं मेसोपोटामिया, और मेसोपोटामिया की सभ्यता की जो कुछ वस्तुएं हड़प्पा संस्कृति के स्थानों के उत्खननों से प्राप्त हुई हैं वे केवल परस्पर आदान-प्रदान, व्यापार-वाणिज्य की ही सूचक लगती हैं; और इन्हें एक ही क्षेत्र की इस संस्कृति के उद्गम को सिद्ध करने के लिए प्रमाण नहीं माना जा सकता। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि प्रारंभ से ही सिंधु संस्कृति में भारतीयता के तत्त्व मिलते हैं जो परवर्ती सभ्यता में भी पाये जाते हैं। कुछ विद्वान सिंधु सभ्यता का मूल ईरानी-बलूची संस्कृतियों को मानते हैं। बलूचिस्तान में पिछले कुछ वर्षों में किये अपने सर्वेक्षण के पश्चात् फेयरसर्विस इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि बलूचिस्तान में चतुर्थ सहस्राब्दी ई० पूर्व संस्कृतियों का प्रादुर्भाव हुआ और इनके विकास में ईरानी संस्कृतियों का (और अप्रत्यक्ष रूप से ईरानी संस्कृति के माध्यम से ही मेसोपोटामिया की संस्कृति का) पर्याप्त योगदान था।[2] किंतु इन बलूच संस्कृतियों का निरंतर भारतीयकरण होता रहा। सिंधु और बलूचिस्तान में हड़प्पा से पूर्व काल की संस्कृतियों का विकास होता गया। उत्खनन के दौरान सिंधु में आमरी और कोटदीजी I, संस्कृति, दक्षिण-मध्य बलूचिस्तान में नाल और कुल्ली संस्कृति, पंजाब में हड़प्पा, और राजस्थान में कालीबंगां में सिंधु सभ्यता के स्तरों के नीचे पहले की संस्कृति के अवशेष मिले हैं। इन संस्कृतियों के संदर्भ में ऐसे मृद्भाण्ड मिले हैं जो उत्तरी बलूचिस्तान के रानाघुण्डाई III और पेरिआनो-घुण्डाई में प्राप्त मृद्-भाण्डों से काफी मिलते जुलते हैं। कालांतर में शनैः शनैः बलूच संस्कृतियों को

---

1. ह्वीलर कहते हैं कि इस्लामी मस्जिद, गुम्बद वाले मकबरे और दीवाल बनाने की प्रेरणा भारतीयों ने फारस से ली। लेकिन शाह अब्बास के इस्फहान की अकबर की फतेहपुर सीकरी से तुलना इस बात को स्पष्ट कर देती है कि एक ही विचार उस समय भी जबकि भारत एवं फारस के बीच पर्याप्त राज-नैतिक आदान-प्रदान था, दो क्षेत्रों में कितनी भिन्नता के साथ व्यक्त किया जा सकता है।

2. इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि कालीबंगां के प्रथम काल से ही साधारण चूल्हों के साथ तंदूरी चूल्हे भी मिले हैं। तंदूरी चूल्हों का रिवाज आज भारत में पश्चिमी एशिया की अपेक्षा काफी कम है। सांकलिया ने सुझाव दिया है कि कालीबंगां प्रथम काल में तंदूरी चूल्हों का मिलना पश्चिमी राजस्थान का ईरान तथा पश्चिमी एशिया से सम्पर्क का द्योतक है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीयता ने प्रभावित किया जिसका प्रमाण वहां से प्राप्त कूबड़वाला बैल, पीपल की पत्ती का अलंकरण, ईंटों के प्रयोग और नालियों के निर्माण में परिलक्षित होता है। फेयरसर्विस और कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार सिंधु में हड़प्पा सभ्यता बलूच संस्कृतियों के भारतीयकरण के फलस्वरूप हुए विकास का चरमोत्कर्ष है, बलूचिस्तान में कुल्ली संस्कृति इसके कुछ निकट आती है![1]

फेयरसर्विस के अनुसार इस सभ्यता का उद्भव और विस्तार बलूची (ईरानी) संस्कृतियों का सिंधु की आखेट पर निर्भर करने वाली किन्हीं वन्य और कृषक संस्कृतियों के पारस्परिक प्रभाव के फलस्वरूप हुआ। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि बहुत पहले पैटरसन ने यह मत व्यक्त किया था कि सुक्कर और रोहरी की पाषाण कर्मशाला लगभग सिंधु सभ्यता के प्रारंभिक चरण के समय की है। डि टेर्रा का मत है कि इस क्षेत्रीय संस्कृति से सिंधु सभ्यता का विकास हुआ होगा। धर्म इसका प्रमुख आधार था जिसके कारण इस संस्कृति के नागरीकरण की दिशा में तीव्र विकास हुआ और कालांतर में ईसी अत्यधिक धार्मिकता के कारण इसमें गत्यवरोध भी हुआ। पर्वतीय क्षेत्र से लोग उत्तम भूमि और पर्याप्त जल के लिए पंजाब और सिंधु के मैदान में आये होंगे। पर्वतीय प्रदेश में आर्थिक रूप से उतना निर्भर नहीं रहा जा सकता जितना कि मैदानी प्रदेश में। जन संख्या और मवेशियों के बढ़ने से, और शायद पैतृक सम्पत्ति के बँटवारे से भी परिवार के भरण-पोषण के लिए कृषि के उपयुक्त भूमि की कमी हो गई होगी। यह भी हो सकता है कि किसी वर्ष फसल खराब हो जाने के कारण वे लोग काफी संख्या में मैदानी अंचल की ओर चल पड़े हों। लेकिन ऐसा नहीं है कि वे पहाड़ी क्षेत्र को छोड़ कर सीधे मैदानी क्षेत्र में आ गये हों। वे धीरे-धीरे पड़ावों में आये होंगे और कुछ समय तक पहाड़ी अंचल और मैदानी अंचल के बीच पड़ावों की एक श्रृंखला बन गई होगी। इस संस्कृति के निर्माता जब पर्वतीय क्षेत्र से नदी के तट पर मैदान में आये होंगे तो उनके विचारों में महान् परिवर्तन हुआ होगा। नदियों से यातायात व सिंचाई की सुविधा, आहार के लिए

---

1. सांकलिया का अनुमान है कि इस बात की पर्याप्त संभावना है कि उत्तरी बलूचिस्तान में डाबर कोट में या सिधु के मैदान में जैकोबाबाद से लगभग 22 किमी दूर स्थित जुडेईरोजोदड़ो के उत्खनन से सिंधु सभ्यता के मूल के बारे में कोई जानकारी मिल जाय। डाबरकोट के टीले में तो सिंधु सभ्यता के अवशेष इससे पूर्वकालिक और परवर्ती संस्कृतियों के बीच बिखरे मिले हैं। सांकलिया का सुझाव है कि मूल के संबंध में जानकारी प्राप्ति के लिए कुछ ग्रामीण स्थलों का पूरा उत्खनन करना ठीक होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मछलियों की सुलभता और निरंतर अपने साथ लायी मिट्टी से भूमि को उपजाऊ बनाने की क्षमता संस्कृति के तीव्र विकास व विस्तार में सहायक हुई। किसी महान् सभ्यता के विकास के लिए ऐसा वातावरण अत्यंत उपयुक्त और अपेक्षित है। उपजाऊ मिट्टी से इतना अन्न सुगमता से पैदा किया जा सकता था जिससे अपनी आवश्यकता पूरी हो जाय और साथ ही उन लोगों का भी भरण-पोषण हो सके जो स्वयं तो कृषि उत्पादन नहीं करते किंतु धातु व अन्य प्रकार के विभिन्न उपकरण बनाते थे और प्रशासन कार्य चलाते थे। जब धातुकर्म करने वाले तथा अन्य धंधे करने वाले बिना स्वयं कृषि किए अपने उपकरणों के बदले पर्याप्त खाद्यान्न प्राप्त करने लगे तो वे कहीं अधिक दत्तचित्तता से कार्य करने लगे और नयी विकसित लाभदायक तकनीकों का प्रयोग करने लगे और इन विकसित उपकरणों से और अधिक उत्पादन होने लगा। इससे ही नागरीकरण का मार्ग तीव्रता से प्रशस्त हुआ भौगोलिक परिस्थितियों एवं वातावरण की कठिनाइयों के कारण पर्वतीय क्षेत्र में थोड़ी-थोड़ी दूर पर भी अलग-अलग संस्कृतियों का विकास हुआ। किंतु मैदानी क्षेत्र में तीव्रगति से विकास और विस्तार की पूरी संभावनाएं थीं।[1] विभिन्न प्रकार की वस्तुएं जिनका अभाव हो, विकसित यातायात के साधनों के कारण व्यापार द्वारा आसानी से प्राप्त की जा सकती हैं। किंतु नदियों की घाटियों के मैदानों में संस्कृति के लिये जहां ये लाभ थे वहीं महान् चुनौतियां भी थीं। जहां नदियां लाभकारी थीं, वहीं हानिकारक भी थीं। समय-समय पर भयंकर बाढ़ें आने के कारण नगर का क्षतिग्रस्त होना स्वाभाविक था। यहां पर संस्कृति के प्रथम निर्माताओं को मैदान में नदी के तट पर सभ्यता के निर्माण के लाभ और हानि का पूरा परिचय मिल गया होगा और उन्होंने सामूहिक रूप से संगठित एवं अनुशासित होकर कार्य करने की आवश्यकता को भी भली तरह महसूस किया होगा। विकास के क्रमशः होने के साक्ष्यों के अभाव में ऐसी कल्पना की गयी है कि इस सभ्यता का विकास शनैः-शनैः न होकर किसी महान् प्रबुद्ध नेता या नेताओं के सुयोग्य निदेशन में स्फुटन हुआ। यह उल्लेखनीय है कि सिंधु सभ्यता के अंतर्गत नगरों का ही निर्माण नहीं हुआ बल्कि गांव भी बसे। वास्तविकता तो यह है कि ग्रामों की संख्या नगरों की अपेक्षा कहीं

---

1. फेयरसर्विस का कहना है कि भारत-पाक उपमहाद्वीप के सीमावर्ती क्षेत्रों में भेड़ बकरियों के विशाल पैमाने पर पाले जाने का साक्ष्य है; सिंध सभ्यता में भेड़ बकरी पालने का साक्ष्य तो मिलता है पर गाय, बैल, भैंस जैसे पालतू पशुओं का विशेष महत्त्व रहा था। यह भी यायावर चरवाहे और मैदान में स्थायी रूप से बसे कृषकों के भेद का द्योतक है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधिक है। बलूचिस्तान और सिंध की ग्रामीण संस्कृतियों के लोगों को इन ग्रामों के बसाने में कठिनाई की गुंजाइश कम ही थी। फेयरसर्विस का कहना है कि जिस प्रक्रिया से सिंधु सभ्यता का निर्माण हुआ वह उस प्रक्रिया का ही तर्क-संगत परिणाम लगता है जो उस समय उसके निकटवर्ती अंचलों में चल रही थी। हाल ही में टेपे याह्या (दक्षिणी ईरान के केरमन प्रांत) के उत्खनन में चतुर्थ सहस्राब्दी ई० पूर्व के अंत और तीसरी सहस्राब्दी ई० पूर्व के प्रारंभ की ऐसी संस्कृति का उद्‌घाटन हुआ है जिसके लोग लेखन कला से परिचित थे। और इस बात की संभावना है कि सिंधु सभ्यता के लोगों ने लेखन कला की प्रेरणा इस संस्कृति से ही ली हो।

राजस्थान के कुछ स्थलों, और कुछ अन्य क्षेत्रों से भी, ऐसे मृद्‌भाण्ड मिले हैं जो प्राग्-हड़प्पा-कालीन मृद्‌भाण्डों से समानता लिए हैं। इस तरह के मृद्‌भाण्ड श्री अमलानंद घोष को 1953 में सर्व प्रथम सोथी (बीकानेर क्षेत्र) नामक स्थान पर और बाद में अब लुप्तप्राय सरस्वती दृषद्वती नदियों की घाटियों में उत्तरी राजस्थान के गंगा नगर जिले में अनेक स्थानों पर मिले। कुछ समय पूर्व तक इस तरह के बर्तनों को (जो तब केवल सर्वेक्षण से प्राप्त हुए थे, उत्खनन से नहीं) सिंधु सभ्यता के बाद का समझा जाता था। किंतु अब कालीबंगां (गंगा नगर जिला) की खोदाई के प्रकाश से ये हड़प्पा संस्कृति से पहले की संस्कृति के सिद्ध हुए हैं। इन बर्तनों वाली संस्कृति को कुछ ने 'सोथी' संस्कृति और कुछ ने 'कालीबंगां प्रथम' नाम दिया है। कुछ विद्वानों ने, जिनमें अमलानंद घोष मुख्य हैं, इस (सोथी) संस्कृति से हड़प्पा संस्कृति के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान की संभावना व्यक्त की है। इस सिलसिले में घोष इस बात पर बल देते हैं कि सोथी और सिंधु सभ्यता के भाण्ड कुछ स्थलों में साथ-साथ मिलते हैं जिसका अर्थ हुआ कि दोनों समकालीन भी रहीं। जगतपति जोशी द्वारा हाल ही में सुरकोटड़ा (कच्छ) में किये गये उत्खनन से भी सोथी (कालीबंगां प्र०) प्रकार के बर्तन और सिंधु सभ्यता के बर्तन प्रारंभिक चरण से ही साथ साथ मिलते हैं। घोष का मत है कि इस धारणा के बजाय कि बाहर से लोगों ने सिंधु घाटी और अन्य सिंधु सभ्यता के क्षेत्र में आकर उपनिवेश बसाये, यह अधिक तर्क संगत मालूम देता है कि भारत के ही लोगों ने, जिनका मस्तिष्क ग्रहणशील था और जिन्होंने मेसोपोटामिया से नागरिक जीवन का भाव ग्रहण किया था और मेसोपोटामिया के लोगों से अधिक योजनाबद्ध निर्माणकार्यों के द्वारा, शायद सुमेरियों से अच्छे बनाने की होड़ में, सिंधु सभ्यता के नगरों का निर्माण किया था। सम्पन्नता के लिए उन्होंने मेसोपोटामिया से व्यापारिक संबंध स्थापित किये और विभिन्न क्षेत्रों में मानकीकरण किया। निश्चित अधिकार-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाद से शासित नदियों की घाटी में स्थित नगरों का चरमोत्कर्ष होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। उनका कहना है कि सीमित जन-संख्या और एक कुशल बहुमुखी नेतृत्व के द्वारा इस तरह की उपलब्धि एक-दो पीढ़ी में भी हो सकती थी। इनकी इस उपलब्धि को देख कर हो सकता है उनके अन्य क्षेत्रों के लोगों ने भी इस प्रगति की दिशा में उनका अनुसरण किया हो।[1] सिंधु सभ्यता के ग्रामीण स्थलों, जिनकी संख्या इस सभ्यता के नगरों की अपेक्षा कहीं अधिक है, के लोगों ने पूर्ववर्ती कृषक समुदाय के आर्थिक ढांचे तथा उनके बर्तन बनाने आदि की परंपरा को काफी हद तक बनाये रखा होगा और इसके साथ ही नये तत्त्वों को भी ग्रहण किया होगा।

मेसोपोटामिया की प्रेरणा वाले मत के विरुद्ध भी विद्वानों ने प्रभावशाली तर्क दिए। उनका कहना है कि यदि इस संस्कृति के आदि निर्माताओं ने मेसोपोटामिया से प्रेरणा ली होती तो कम से कम प्रारंभिक चरण में नगर-योजना की रूपरेखा सुमेरीय रूपरेखा के अनुरूप होती, जो बात नहीं है। साथ ही अगर ये पश्चिमी एशिया से व्यापार द्वारा बहुत जल्दी मानक स्थापित करना चाहते तो उनके माप-तौल पश्चिमी एशिया के नगरों में प्रयुक्त माप-तौल पर आधारित होते, पर ऐसा भी नहीं है। राव के अनुसार सिंधु सभ्यता के मूल का श्रेय उसी संस्कृति को दिया जा सकता है जो सिंधु सभ्यता से कालक्रम की दृष्टि से पूर्व की हो और सिंधु सभ्यता के साथ-साथ उसके विद्यमान होने के साक्ष्य हों और उनमें परिवर्तन के क्रमिक चरण स्पष्ट हों उसमें वे तत्त्व, सूत्र रूप में ही सही, हों जो सिंधु सभ्यता की विशिष्टता है, यथा नगर-नियोजन, नागरिक स्वच्छता का प्रबन्ध, लेखन-कला का ज्ञान, मुद्रा और बांट का ज्ञान, धातु-कला का ज्ञान और ऐसे मृद्भाण्डों का निर्माण जिन्हें सिंधु सभ्यता के मृद्भाण्डों का पूर्वरूप माना जा सके। उनके अनुसार इस सभ्यता का विकास सिंधु की स्थानीय संस्कृतियों द्वारा शनैः-शनैः दीर्घावधि में हुआ। उनके अनुसार लोथल में इस बात के साक्ष्य मिले हैं कि सिंधु संस्कृति के लोगों का ही साधारण संस्कृति से विकसित सभ्यता में परिणित होने में पर्याप्त समय लगा।

---

1. वे सिंधु सभ्यता के नरकंकालों पर किए सरकार के शोधकार्यों के परिणामस्वरूप उपलब्ध साक्ष्य का उल्लेख करते हैं जिनके अनुसार मोहेंजोदड़ो के सैंधव सभ्यता के लोग आधुनिक सिंध के वासियों, हड़प्पा वासियों का आधुनिक पंजाबियों और लोथल के लोग आधुनिक गुजरात के लोगों से मिलते-जुलते हैं जिससे सिंधु सभ्यता के सभी स्थलों के लोगों का एक जाति का न होना सिद्ध होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिंधु सभ्यता और सोथी संस्कृति के मृद्भाण्डों में कुछ समानताएं है, यथा मत्स्य शल्क और पीपल की पत्ती का चित्रण, रस्सी के निशान का अलंकरण, साधार तश्तरी, उथले नांद, और बर्तनों के छल्लेदार आधार, यह साक्ष्य महत्त्व-पूर्ण हैं। धर्मपाल अग्रवाल, ब्रिजेट अल्चिन, रेमण्ड अल्चिन आदि विद्वानों ने यह धारणा व्यक्त की है कि सोथी सिंधु सभ्यता से पूर्व की अलग संस्कृति नहीं थी बल्कि वह सिंधु सभ्यता का ही प्रारंभिक रूप थी। अग्रवाल के अनुसार ग्रामीण सोथी संस्कृति का ही नागरिक रूप सिंधु सभ्यता है, और यह ग्रामीण स्वरूप उसके नागरिक रूप के साथ कुछ काल तक समकालीन रहा। सिंधु सभ्यता के ग्रामीण स्थलों में सोथी का प्रभाव अधिक समय तक रहा यद्यपि उस पर सिंधु सभ्यता का प्रभाव भी पड़ता रहा। ब्रिजेट और रेमण्ड अल्चिन, कोटदीजी तथा कालीबंगां में 'तथाकथित' प्राग् सिंधु संस्कृति और सिंधु संस्कृति के मध्य निरंतरता मानते हैं। इनके अनुसार मोहेंजोदड़ो में 1932 में 'डी के' क्षेत्र के सातवें खण्ड में निम्नतम अनावरित स्तरों से उसी प्रकार के भाण्ड मिले जिस तरह के हड़प्पा के गढ़ी वाले टीले में निम्नतम स्तरों पर मिले हैं, अल्चिन युगल के अनुसार मोहेंजोदड़ो के वे स्तर आमरी, हड़प्पा और कोटदीजी में प्राग् सिंधु सभ्यता से सिंधु सभ्यता में परिवर्तन के चरण के समकालिक हैं। अब तो व्हीलर ने भी, जो इस सभ्यता के उद्गम के लिये मेसोपोटामिया को मुख्य श्रेय देने के पक्ष में है, चेतावनी दी है कि इस सभ्यता के मूल के लिये बाहरी स्रोत ढूंढ़ने में कहीं 'दिया तले अंधेरा' की उक्ति चरितार्थ न हो। यह सही है कि जैसे जैसे नये साक्ष्य मिलते जा रहे हैं वैसे वैसे विद्वान् सिंधु सभ्यता के मूल को भारत में ही होने के विषय में गहराई से सोचने लगे हैं। लेकिन यह भी स्वीकारना होगा कि सोथी और सिंधु सभ्यता में स्तर भेद और पर्याप्त सांस्कृतिक भिन्नता है। जिन स्थलों में 'सोथी' संस्कृति के बाद सिंधु संस्कृति के अवशेष मिले है उनमें ऐसा लगता है मानो सिंधु सभ्यता उस स्थल पर अध्यारोपित की गई हो और एक साथ छा गई हो।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 3

नगर-विन्यास एवं स्थापत्य

विस्तृत क्षेत्र में फैली सिंधु सभ्यता के कुछ टीले नगरों के द्योतक हैं और कुछ छोटे कस्बों और गांवों के। ग्रामीण संस्कृति के टीले संख्या में अधिक हैं किंतु पुराविद् स्वाभाविक रूप से विस्तृत, वैभवपूर्ण और विकसित नागरिक जीवन की संस्कृति वाले टीलों के प्रति अधिक आकर्षित हुए हैं और ग्रामीण संस्कृति के टीले अपेक्षाकृत उपेक्षित रहे हैं। यही कारण है कि हमें सिंधु सभ्यता के नागरिक जीवन के बारे में उसके ग्रामीण जीवन से कहीं अधिक जानकारी उपलब्ध है। इस अध्याय में हम पहले नगर-विन्यास और भवन निर्माण संबंधी विशिष्टताओं का उल्लेख करेंगे और फिर कुछ महत्त्वपूर्ण स्थलों के विन्यास और विशिष्ट स्मारकों का विवरण देंगे।

मोहेंजोदड़ो के विशेष संदर्भ में
सिंधु सभ्यता के नगर-विन्यास तथा स्थापत्य की सामान्य विशेषताएं[1]

सिंधु सभ्यता के नगर प्राचीनतम सुनियोजित नगर हैं। हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो तथा सिंधु सभ्यता के कुछ दूसरे स्थलों में जिस तरह का नगर विन्यास हमें मिलता है वह इस बात का साक्षी है कि विधिवत् नक्शा बनाकर और आजकल की नगरपालिका की तरह की किसी तत्कालीन संस्था द्वारा उसे स्वीकृत कराके ही भवन-निर्माण किया गया होगा। प्रायः सड़कें एक दूसरे को समकोण पर काटती हैं और नगर को आयताकार खण्डों में विभाजित करती हैं। यही बात लोथल, कालीबंगां सुरकोटडा आदि नगरों में भी दिखायी पड़ती है। मोहेंजोदड़ो में जो सबसे चौड़ी सड़क मिली है वह 10 मीटर से कुछ अधिक चौड़ी है, जिसे पुराविदों ने राजपथ नाम दिया है। सड़कों के निर्माण में हवा का भी ध्यान रखा गया था। हवा के झोंकों से सड़क के दोनों ओर के मकानों की वायु शुद्ध हो जाती थी। चौड़ी सड़कों पर कई बैलगाड़ियां एक साथ समानान्तर चल सकती थीं। मोहेंजोदड़ो, हड़प्पा, लोथल आदि स्थलों में सिंधु सभ्यता काल की सड़कों के बारे में जो जानकारी मिली है उससे पता चलता है कि उस काल की किसी भी सड़क

---

1. इस शीर्षक के अंतर्गत यदि किसी स्थल विशेष का उल्लेख नहीं है तो विवरण मोहेंजोदड़ो के साक्ष्य पर आधारित है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को ईंट आदि बिछाकर पक्का नहीं बनाया गया था। केवल मोहेंजोदड़ो की एक सड़क पर टूटे बर्तन और खण्डित ईंटें पड़ी मिली हैं जिससे ऐसा लगता है कि इस सड़क को पक्का बनाने की दिशा में प्रयोग किया जा रहा था। न जाने क्यों यह ठीक नहीं समझा गया। कच्ची सड़क के कारण गर्मी में धूल उड़ती रही होगी। धूल से निवारण के लिए शायद नगरपालिका ने पानी छिड़कने का प्रबंध किया रहा होगा; किंतु वर्षा के बाद इन सड़कों में कीचड़ भर जाता रहा होगा। ऐसी परिस्थिति में बैलगाड़ियां कैसे चलती रही होंगी और पैदल लोग भी कैसे यात्रा करते रहे होंगे, यह आसानी से समझ में नहीं आता। सड़कों की सफाई का प्रबंध अवश्य उत्तम लगता है।

भवन विभिन्न आकार-प्रकार के हैं जिनकी पहिचान धनाढ्यों के विशाल भवन, सामान्य जनों के साधारण घर, दुकानें, सार्वजनिक भवन इत्यादि से की जा सकती है। साधारणतया घर पर्याप्त बड़े थे और उनके मध्य में आंगन होता था। आंगन के एक कोने में ही भोजन बनाने का प्रबंध था और इर्द-गिर्द चार या पांच कमरे बने थे। प्रत्येक घर में स्नानागार और घर के पानी की निकासी के लिए नालियों का प्रबंध था और कई घरों में कुएं भी थे। गलियां 1 मीटर से 2.2 मीटर तक चौड़ी थीं। ये गलियां चक्करदार या भूलभुलैया जैसी नहीं हैं जैसा कि भारत और अन्य कई एशियाई देशों के नगरों में अधिकतर होती हैं, वे सीधी हैं, और निश्चय ही उनका निर्माण योजनाबद्ध तरीके से किया गया था।

हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो दोनों नगर लगभग 5 किलोमीटर के घेरे में बसे थे। इन दोनों नगरों तथा कालीबंगां, सुरकोटडा आदि की नगर-निर्माण योजना में पर्याप्त समानता दृष्टिगोचर होती है। इनमें प्रत्येक स्थान पर दो मुख्य टीले हैं—एक छोटा और दूसरा बड़ा किंतु अपेक्षाकृत नीचा। इतना ही नहीं, सभी में छोटा ऊंचा टीला बड़े नीचे टीले के पश्चिम में स्थित है और गढ़ी का द्योतक है। कालीबंगां में तो निचला नगर भी रक्षा दीवार से सुरक्षित था पर हड़प्पा में ऐसा नहीं। कालीबंगां और हड़प्पा में गढ़ी और निचले नगर के बीच खाली जगह है। मोहेंजोदड़ो में इस बात के साक्ष्य दिखते हैं कि गढ़ी और निचले नगर के मध्य नहर या सिंधु नदी की एक शाखा बहती थी। लोथल और सुरकोटडा में गढ़ी और निचला नगर दोनों एक ही सुरक्षा दीवार से रक्षित थे।

सिंधु संस्कृति के नागरिक भवनों के निर्माण में सजावट और बाहरी आडम्बर के विशेष प्रेमी नहीं थे। उनके भवनों में न अलंकरण ही दिखता है और न विविधता ही, ऐतिहासिक काल में अलंकरण भारतीय स्थापत्य का आवश्यक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अंग रहा है। नगरों के ध्वंसावशेषों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे कि वे आधुनिक व्यवसायिक नगरों के अवशेष हों। संभवतः सिंधु सभ्यता के लोगों की व्यवसायिक बुद्धि ने स्थापत्य में सुन्दरता से कहीं अधिक उपयोगिता की ओर ध्यान देने को प्रेरित किया हो। कई विद्वानों, विशेषतः पिगट ने भवन-निर्माण शैली में एकरूपता की आलोचना की है जो उनके अनुसार लोगों के अत्यधिक परंपरावादी दृष्टिकोण का फल है। सिंधु सभ्यता में न तो सुमेर की भांति विशाल मंदिरों के अवशेष मिले हैं और न मिस्र जैसी भव्य और प्रभावशाली कब्रें। सिंधु सभ्यता की ईंटों में वह चित्ताकर्षक कारीगरी नहीं है जो हमें परवर्तीकालीन सारनाथ, भीतरगांव, और पहाड़पुर की ईंटों में दिखलाई पड़ती है। कालीबंगां का एक फर्श का उदाहरण एकमात्र अपवाद है जिसके निर्माण में अलंकृत ईंटों का प्रयोग हुआ है।

यों काष्ठ-कला के विकास में प्राचीन भारत अग्रणी रहा है, यहां तक कि हमें चट्टानों से काट कर बनाये गये चैत्यों में भी, जहां काष्ठ का प्रयोग आवश्यक नहीं था, काष्ठ प्रयुक्त मिलता है। अतः यह भी संभव है कि परवर्ती काल की भांति सिंधु सभ्यता की इमारतों में स्थापत्य तथा सजावट के लिए काष्ठ का प्रचुर मात्रा में प्रयोग होता रहा हो, किंतु उसके अवशेष अब नहीं बचे हैं।

मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा जैसे नगरों का भवन-निर्माण सादा होते हुए भी उच्च कोटि का है। इन दोनों नगरों में भवन निर्माण के लिए पक्की ईंटों का प्रयोग किया गया है। यह उल्लेखनीय है कि सिंधु सभ्यता के समकालीन मेसोपोटामिया में पक्की ईंटों का प्रयोग अपेक्षाकृत बहुत कम हुआ है। सिंधु सभ्यता के ही कई स्थलों, यथा लोथल, रंगपुर आदि में भवनों का निर्माण प्रायः कच्ची ईंटों से हुआ था। हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो की इमारतों के उस भाग के निर्माण में, जो बाहर से दिखाई देता था, कहीं भी खण्डित ईंटों का प्रयोग नहीं किया गया। केवल भराव के लिए ही खण्डित ईंटों का उपयोग हुआ है। ईंटें नदियों द्वारा लायी गयी मिट्टी से बनायी जाती थीं। खुले भट्ठों में पकाने के कारण इनका रंग लाल हो गया है। इनके पकाने में पर्याप्त मात्रा में ईंधन जलाया गया होगा। गीली ईंटों को आज की भांति समतल मैदान में बिछाकर सुखाया जाता था। इसी कारण कुछ ईंटों पर पशुओं के पद-छाप हैं। चन्हुदड़ो की एक ईंट पर पड़े बिल्ली और कुत्ते के पद-चिह्नों के निरीक्षण से स्पष्ट है कि किसी कुत्ते ने बिल्ली का पीछा किया था और इसी भागा-दौड़ी में वे दोनों सुखाने के लिए बिछायी गयी गीली ईंटों के ऊपर से गुजरे थे।

सिंधु सभ्यता में प्रयोग की गई ईंटें अलग अलग आकार-प्रकार की हैं। मोहेंजोदड़ो से प्राप्त सबसे बड़ी ईंट 51.43 सेमी × 26.27 सेमी × 6.35 सेमी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की हैं। कुछ ईंटें 36.83 सेमी × 18.41 सेमी × 10.16 सेमी की मिली हैं। सबसे छोटी ईंटें 24.13 सेमी × 11.05 सेमी × 5.08 सेमी की हैं। जो ईंटें सामान्यतया व्यवहार में आयी हैं वह 27.94 सेमी × 13.97 सेमी × 6.35 सेमी की हैं। सिंधु सभ्यता के प्रायः सभी स्थलों पर जहां भी ईंटों का व्यवहार भवनों के निर्माण में हुआ है, लगभग इसी माप की ईंटें प्रयुक्त हुई हैं। इमारतों के कोनों की चिनाई अंग्रेजी के अक्षर एल (L) जैसी समकोणाकार बनी ईंटों से की गयी है। फन्नीदार ईंटों का प्रयोग कुओं की दीवार और मेंहराब बनाने में किया गया है।

इमारत की नींव भी उसके आकार-प्रकार को ध्यान में रख कर कम या ज्यादा गहरी रखी जाती थी। मोहेंजोदड़ो नगर के मध्य प्रकाल के निवासियों ने इमारतों की नींव गहरी रखने का विशेष ध्यान रखा। छोटी छोटी इमारतों की नींव अपेक्षाकृत कम गहरी थीं। नींव की भराई में खण्डित ईंटों का प्रयोग हुआ है। नगर के अंतिम प्रकाल में संभवतः निर्धन व्यक्तियों ने अपने मकानों की नींवों को गहरा करने की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। उन्होंने पूर्वकालीन खण्डहरों के मलवे के ऊपर ही, नींव की गहराई की परवाह किये बिना ही इमारत बना दी। मोहेंजोदड़ो में अगल-बगल के घर आपस में संयुक्त दीवार से संबद्ध नहीं थे। उनके मध्य साधारणतः बहुत थोड़ा, लगभग एक फुट का फासला छोड़ दिया जाता था, जिसे दोनों तरफ से ईंटों से बंद कर दिया जाता था। स्पष्ट है कि ऐसा चोरों से बचाव के लिए किया जाता था। मोहेंजोदड़ो, हड़प्पा, लोथल इत्यादि नगर नदियों के किनारे पर बसे थे। चूंकि उन्हें बाढ़ से नुकसान पहुंचने का लगातार खतरा रहता रहा होगा अतः उन लोगों ने भवनों को ऊँचाई पर बनाने की ओर विशेष ध्यान दिया था।

मोहेंजोदड़ो की इमारतों में ईंटें चपटी या खड़ी लगाई गई हैं। स्नानागारों में प्रयुक्त ईंटें प्रायः खड़ी जमा दी गयी हैं जिससे सीलन कम रहे। मकानों के फर्श तीन तरह से बनाये जाते थे—मिट्टी की कुटाई करके, समतल और मजबूत कच्ची ईंटें बिछा कर, अथवा पक्की ईंटों का प्रयोग करके। अधिकांशतः फर्श मिट्टी को ठोक-पीट कर बनाये गये हैं। इस विधि से फर्श बनाना आसान भी होता है और सस्ता भी। महत्त्वपूर्ण इमारतों के फर्श प्रायः पक्की ईंटों से निर्मित हैं। इस तरह के फर्शों की मोटाई एक ईंट से लेकर पांच ईंट तक पायी गयी है। कालीबंगां का एक फर्श अलंकृत ईंटों का बना है जिन पर प्रतिच्छेदी वृत्त का अलंकरण है (फ० VIII, 1)।

मोहेंजोदड़ो के अधिकांश घरों में स्नानागार थे, जो कि गली की ओर स्थित होते थे जिससे पानी के निकास में आसानी रहे। स्नानागार के फर्श के निर्माण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में विशेष सावधानी बरती गयी है। इसके लिए सदैव अच्छी तरह पकाई गई ईंटों का प्रयोग किया गया है। ईंटों के किनारे ठीक तरह से घिस दिये जाते थे ताकि वे फर्श पर ठीक-ठीक बैठाए जा सकें। मैके का कहना है कि ये ईंटें आरे से काटकर बिठाई गई हैं। कुछ स्नानागारों में फर्श पर लाल रंग के धब्बे मिलते हैं जो कुछ चमक लिए हैं। हो सकता है कि यह चमक मनुष्यों के बारंबार चलने के कारण घिसने से पैदा हुई हो। फर्श के किनारे पर एक छोटा सा निकास भी छोड़ा जाता था जिससे गंदा पानी आसानी से बाहर निकल सके। स्नान के लिए प्रायः अलग से एक कमरा होता था, किंतु कभी कभी एक बड़े कमरे के कोने में ही स्नान का प्रबंध कर लिया जाता था। स्नान करते समय लोग झांवे से शरीर को साफ करते थे। सिंधु सभ्यता में ये झांवे बड़ी संख्या में मिले हैं। कुछ तो इतने इस्तेमाल किये गये थे कि वे अधिक घिस गए और बेकार हो गये। स्वच्छता के अतिरिक्त धार्मिक अनुष्ठान के रूप में भी लोग स्नान करते थे।

भीतर की ओर तो छोटी-बड़ी सभी दीवारें लगभग सीधी हैं। छोटे भवनों की दीवारों का बाहरी हिस्सा या तो सीधा है या थोड़ा ढाल लिए है, किंतु बड़ी-बड़ी इमारतों की दीवारें प्रायः बाहर की ओर ढाल लिए हैं। मैके ने सुझाया है कि दीवारों को ढालू बनाने का मूल मिट्टी की बनी दीवारों में ढूंढा जा सकता है, किंतु उन्होंने यह भी बताया है कि मिट्टी की बनी दीवारें दोनों ओर से ढालू होती हैं जब कि सिंधु सभ्यता की ईंट की दीवारें बाहर की ओर ही ढालू हैं। कुछ इमारतों में पलस्तर मिट्टी के पलस्तर के साक्ष्य मिले हैं संभवतः उस पर पुताई भी की जाती थी। दीवारें आजकल की तुलना में काफी मोटी हैं। मोहेंजोदड़ो व हड़प्पा जैसे नगरों में धनी सम्पन्न लोगों की कमी नहीं रही होगी। सुरक्षा की दृष्टि से ही दीवारों को पक्की बनाने का विशेष यत्न रहा होगा। मोटी दीवारों से इमारत की मजबूती तो रहती ही है, साथ ही कमरे ठंडे भी रहते हैं। गरम जलवायु वाले स्थलों में गर्मी से राहत पाने के लिए ऐसी दीवारें विशेष उपयुक्त हैं। संभवतः एक से अधिक मंजिल वाले मकान भी थे और कुछ दीवारों को इसलिए भी मोटा बनाया गया होगा ताकि वे ऊपरी मंजिल (या मंजिलों) के भार को भलीभांति वहन कर सकें। दीवारों का अनुलम्ब संरेखण (vertical alignment) अत्यंत सही है जिससे स्पष्ट है कि राज लोगों ने दीवालों को सीधा बनाने में साहुल की सहायता ली होगी।[1]

---

1. मोहेंजोदड़ो से प्राप्त एक चूना-पत्थर के उपकरण की पहचान मैके (फ़० इ०, 408) ने साहुल से की है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दीवारों की जुड़ाई एक तह लम्बाई में, फिर एक चौड़ाई में, फिर लम्बाई में, इस क्रम से ईंटों को रखा जाता था। इस तरह की जुड़ाई में ईंटों के किनारे एक सीध में नहीं पड़ते अतः दीवार अधिक मजबूत होती हैं। कुछ थोड़े से ऐसे भी दृष्टांत मिले हैं जिनमें ईंटों के चपटे हिस्से को खड़ा करके रखा गया है। चिनाई की दृष्टि से इसका कोई महत्व नहीं, शायद विविधता लाने के लिए ऐसा किया गया होगा। संभवतः ऐसी दीवालों पर पलस्तर नहीं लगाया जाता था ताकि ईंटों की यह विशिष्ट प्रकार की चिनाई दिखाई देती रहे। वास्तव में दीवार की चिनाई में ईंटों को विभिन्न रूप से रखने के जो थोड़े से उदाहरण सिंधु सभ्यता में मिले हैं, वे ही दीवालों के अलंकरण का आभास देते हैं, अन्यथा दीवालें एक जैसी सपाट हैं।

बेबीलोन में इमारतों की जुड़ाई में गारे के लिए गीली मिट्टी अथवा गिरिपुष्पक (बिटूमिन) का व्यवहार होता था। वहां पर चूने से जुड़ाई का प्रचलन सिंधु सभ्यता के बाद में प्रारंभ हुआ। सिंधु संस्कृति में मिट्टी का ही मुख्य रूप में प्रयोग हुआ; जिप्सम का मिश्रण ईंटों की चिनाई में गारे के रूप में बहुत कम किया गया। मोहेंजोदड़ो की केवल एक ही इमारत—विशाल स्नानागार के निर्माण में गिरिपुष्पक का प्रयोग मिला है। यह उल्लेखनीय है कि मोहेंजोदड़ो नगर से लगभग 112.65 किलोमीटर की दूरी पर चूना पत्थर उपलब्ध था, किंतु फिर भी वहां के निवासियों द्वारा चूने का प्रयोग मकान की चिनाई में नहीं किया गया। चूने और जिप्सम के मिश्रण का प्रयोग केवल नालियों की जुड़ाई में मिलता है, जहां निरंतर पानी के बहाव के कारण चिनाई को मजबूत बनाना आवश्यक था। प्राचीन मिस्र में चूने का प्रयोग गारे के रूप में तथा रोमन काल में प्लास्टर के लिए किया जाता था।

जिन इमारतों के निचले खण्ड बच रहे हैं उन्हें देखने से ज्ञात होता है कि इमारतों में अधिकांशतः वायु प्रवेश और निकास के लिए मार्ग मात्र दरवाजा ही होता था। दरवाजे लकड़ी के बने होते थे और उनके अवशेष प्राप्त नहीं हैं। ये दरवाजे दीवार के मध्य में न होकर एक किनारे पर होते थे। सामान्य द्वार की चौड़ाई लगभग एक मीटर थी, किंतु कुछ काफी चौड़े भी थे। एक 2.35 मीटर चौड़ा दरवाजा था। संभवतः पशुओं के आवागमन की सुविधा के लिए इसे इतना चौड़ा बनाया गया था। दरवाजों के चूल के लिए ईंटों के द्वार विवर मिले हैं। खिड़कियों के होने के अत्यल्प साक्ष्य उपलब्ध (फ० V, 1) हैं। संभवतः नागरिक अपनी धन-सम्पदा को सुरक्षित और गुप्त रखने के लिए बाहर की दीवारों में खिड़कियां नहीं बनवाते थे। यह भी संभव है कि खिड़कियां ऊपरी भाग में रही हों जो अब शेष नहीं रहे। शायद इस क्षेत्र में गरमी काफ़ी पड़ने के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कारण भी धूप और लू से बचाव के लिए खिड़कियां बहुत कम बनाई गई थीं। अलाबास्टर पत्थर की कुछ खण्डित जालियां प्राप्त हुई हैं। हो सकता है कि इनका प्रयोग खिड़की के लिए किया गया हो। कुछ पकाई मिट्टी की जालियां भी मिली हैं।

दुर्भाग्य से उत्खात वस्तुओं में, एक अपर्याप्त और धुंधली रूप-रेखा वाली मुद्रा को छोड़ कर, किसी वस्तु पर भी किसी भवन का चित्रण नहीं मिलता जिससे तत्कालीन भवनों की पूरी रूपरेखा का ज्ञान प्राप्त हो सके। कुछ घरों में सीढ़ियां (फ० V, 2) मिली हैं जो दीवारों की खड़ी नालियों के साक्ष्य की भांति ऊपरी मंजिल होने का साक्ष्य प्रस्तुत करती हैं। अधिकांशतः सीढ़ियों की पैंड़ बहुत संकरी थीं और दो पैड़ों के बीच की ऊंचाई काफी थी। मैंके को केवल एक सीढ़ी ही अपवाद-स्वरूप ऐसी मिली जिसमें पैड़ों की चौड़ाई काफी थी (फ०इ०, 168)। जिन घरों में सीढ़ियां नहीं मिली हैं वहां कुछ में हो सकता है लकड़ी की सीढ़ियां रही हों जो अब नष्ट हो गई हैं। मोहेंजोदड़ो की तुलना में हड़प्पा में सीढ़ियां बहुत कम मिली हैं।

शायद इमारतों की छतें समतल थीं। छतों पर सरकंडों को चटाई की तरह बिछाकर उन्हें रस्सी से गूंथ दिया जाता था और उसे कड़ियों के बीच रख कर उसके ऊपर मिट्टी की मोटी तह बिछा दी जाती थी। इमारतों के मलबे से खपरैल और कांसे या तांबे को बनी सरियों जैसी कोई वस्तु उपलब्ध नहीं हुई। एक अधजली लकड़ी की कड़ी के साथ तांबे का उपकरण पाया गया है जिसके बारे में अनुमान है कि इसका प्रयोग कड़ियों को जोड़ने में कील की तरह किया गया होगा। इसकी कम संभावना है कि भवनों का ऊपरी भाग चपटा न होकर शिखरनुमा रहा हो।

मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा में कुछ ऐसे कमरों की रूपरेखा भी है जिनमें प्रवेश के लिए कोई दरवाजा नहीं था। संभवतः ऐसे कमरों में ऊपर से सीढ़ी द्वारा पहुंचा जाता था। यह मानना युक्तिसंगत नहीं लगता कि उनका उपयोग निद्रा-कक्ष के रूप में किया जाता था। वे या तो किसी धार्मिक अनुष्ठान से संबंधित थे, या इनका प्रयोग गोदामों की तरह अन्न रखने के लिए किया जाता था।

मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा में भवनों में स्तंभों का प्रयोग कम हुआ है। हो सकता है कि लोग लकड़ी के स्तंभों का प्रयोग करते रहे हों जो अब नष्ट हो गये हैं। स्तंभों के जो अवशेष मिले हैं वे या तो चतुर्भुजाकार हैं या वर्गाकार। गोल स्तंभ सिंधु सभ्यता में अनुपलब्ध हैं, जबकि इस तरह के स्तंभ तत्कालीन मेसोपोटामिया की सभ्यता में लोकप्रिय थे, जहां संभवतः इस तरह के स्तंभ बनाने की प्रेरणा खजूर के पेड़ों से मिली थी। सुमेर में अर्धवृत्ताकार अर्ध-स्तंभों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का निर्माण होता था, किंतु सिंधु सभ्यता में ऐसे उदाहरण नहीं मिलते। लेकिन वृत्ताकार अथवा अर्धवृत्ताकार स्तंभों के अभाव का कारण यह नहीं कि सिंधु संस्कृति के लोग गोल स्तंभ निर्माण करने में सक्षम नहीं थे, क्योंकि उन्होंने फन्नीदार ईंटों का प्रयोग करके गोल कुएं बनाये थे। गोल स्तंभ बनाने के लिए ऐसी ही ईंटों की आवश्यकता होती है।

उत्खननों से पत्थर के अनेक वृत्ताकार चक्के उपलब्ध हुए हैं। इनमें से कुछ 42.67 सेमी से 48.51 सेमी व्यास वाले हैं और 24.89 सेमी से 27.45 सेमी ऊंचे हैं। विद्वानों का विचार है कि इनका प्रयोग लकड़ी के स्तंभों के शीर्ष भाग की सजावट के लिए किया गया था। पत्थर के अन्य अधिकांश छल्ले काफी छोटे हैं और उनके भीतरी भाग का व्यास इतना कम है कि स्तंभ के शीर्ष भाग की मोटाई कम करके भी इनका प्रयोग स्तंभ के शीर्ष के रूप में किया जाना कठिन लगता है।

हड़प्पा सभ्यता में टोडा मेहराव (फ० III, 2) का प्रयोग मिलता है। बेबीलोन और मिस्र की संस्कृति में पुराकाल में गोल मेहराव का प्रचलन था, किन्तु मोहेंजोदड़ो नगर में उसे नहीं अपनाया गया। लोथल में एक आध उदाहरण ऐसे हैं जिनसे गोल मेहराव से सिंधु सभ्यता के लोगों का परिचय होने का प्रमाण मिलता है, लेकिन ये अपवाद स्वरूप हैं, सामान्यत: दन्तक मेहराव का ही प्रयोग होता रहा। सुमेरी और सिंधु संस्कृति के बीच सांस्कृतिक सम्पर्क था, अतः हड़प्पा एवं मोहेंजोदड़ो के लोग गोल मेहराव से अपरिचित रहे हों इसकी संभावना कम ही है। यदि वे इस तरह की मेहराब बनाना चाहते तो बना सकते थे क्योंकि ये लोग फन्नीदार ईंटें बनाना जानते थे।

मोहेंजोदड़ो के निचले नगर के कुछ मकानों में संडास बड़े ढंग से बनाये गये थे। इनकी तुलना पश्चिमी जगत के शौचालयों से की जा सकती है। इन्हें कुछ ढलुआं बनाया गया था। कहीं-कहीं इनमें सीढ़ीदार नाली की व्यवस्था की गई है जो दीवार से होकर सड़क की नाली से मिलती है। दीवार में जिस स्थान से नाली निकाली गयी है उसकी जुड़ाई में कुशलता दिखलायी गयी है। इस कार्य में ईंटों को घिस कर (या आरी से काट कर ?) लगाया गया है।

(सड़कों के किनारे स्थित कुछ इमारतों के कोने घिसे मिले हैं। इन स्थानों से बोझ लादे हुए पशु अथवा सवारियां निकलने से यह घिसावट हुई होगी। हड़प्पा संस्कृति के नगरों की कुछ इमारतों के कोने कुछ गोलाई लिए हुए बनाये गये थे ताकि सामान-लदे जानवर बिना कठिनाई के गुजर सकें।

मोहेंजोदड़ो में इस बात के स्पष्ट साक्ष्य हैं कि समय बीतने पर जनसंख्या बढ़ने के साथ ही ऐसी जगहों पर भी मकान बनने लगे थे जहां साधारणतः

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उनके होने की संभावना नहीं थी। स्पष्ट है कि भवन-निर्माण संबंधी नियमों का पालन कराने में तत्कालीन नगरपालिका जैसी संस्था असमर्थ थी। जैसे-जैसे परिवार में सदस्यों की संख्या बढ़ी, मकान को छोटे-छोटे कमरों में बांटा जाने लगा जिससे भवनों की गरिमा नष्ट हो गई। कुम्हारों के भट्टे जो पहले नगर से बाहर ही बनते थे वे अब नगर के अंदर बनने लगे और उन्होंने प्रमुख सड़कों पर भी अड्डा जमा लियां था।

प्राचीन सभ्यताओं में निकास नालियों का इतना सुन्दर प्रबंध और कहीं नहीं मिलता जितना कि सिंधु सभ्यता में। भारत में भी सिंघु सभ्यता के बाद शताब्दियों तक इस तरह का प्रबंध नहीं मिलता। ये नालियां (फ० III, 1, 2; VII, 1) इस बात की साक्षी हैं कि सिंधु सभ्यता के लोग सफाई के प्रति अत्यंत सजग थे। कुछ नालियां तो थोड़ी गहरी हैं लेकिन कुछ आधे मीटर से भी अधिक गहरी हैं। साधारणतया बड़ी नालियों को पत्थर के खण्डों से ढक दिया गया था और छोटी नालियों को बड़ी ईंटों से। पत्थर आसानी से उपलब्ध नहीं था, अतः आशा की जाती थी कि नालियों को ढकने के लिए पक्की ईंटों का ही प्रयोग वे करते। किन्तु, जैसा कि मैके ने सुझाया है, नालियों के ऊपर से जहां यातायात् मार्ग था वहां ईंटों के जल्दी टूट जाने की संभावना थी और इसीलिए वहां पत्थर का प्रयोग किया गया होगा। घर के कमरों, रसोई, स्नानागार और शौचगृह की निकास-नालियां एक बड़ी नाली में मिलती थीं और विभिन्न घरों से निकली ये बड़ी नालियां अन्ततः एक बड़ी सार्वजनिक नाली में मिलती थी। जिस स्थान पर ऊंची सतह से आती कोई नाली किसी दूसरी नाली से मिलती थी वहां पर ईंटों की चिनाई वाला एक गड्ढा बना देते थे और जहां नाली किसी कोण पर मुड़ती थी वहां उसे गोलाई लिये बना देते थे। इस गोलाई को लाने के लिए फन्नीदार ईंटों का प्रयोग होता था। नरमोखा (मेनहोल) को बड़ी-बड़ी ईंटों से ढका जाता था जिन्हें हटा कर सफाई की जाती थी। ऊपर की मंजिलों से पानी निकालने के लिए भी नालियां होती थीं जो कहीं तो दीवारों में ही ईंटों की जगह खाली छोड़ कर बनी हुई होती थीं। कुछ ईंटों पर नाली कटी हुई मिली हैं। कहीं-कहीं पकाई मिट्टी के बने पाइप की आकृति के परनाले लगाये जाते थे। पक्की मिट्टी के पाइप वाली नालियों के उदाहरण चन्हुदड़ो से विशेष रूप से मिले हैं। मोहेंजोदड़ो में भी इसी तरह के पाइप मिले हैं। ये अलग-अलग हिस्सों में बनाये गये थे और प्रत्येक भाग का एक किनारे का व्यास दूसरे से कम होता था जिसको कि दूसरे भाग के चौड़े हिस्से के भीतर बैठाया जाता था। प्राचीन क्नौसोस और मिस्र में इस तरह के मिट्टी के पाइप मिले हैं। कालीबंगां में लकड़ी की नाली के प्रयोग किये जाने के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी प्रमाण मिले हैं। वहां पर पेड़ के तने को अंदर से खोखला करके उसका नाली के रूप में प्रयोग हुआ है। अन्य सभी सिंधु स्थलों में नालियों का निर्माण इंटों से हुआ है। नाली में प्रयुक्त कुछ इंटों को तो केवल गारे से जोड़ा गया है। किंतु कुछ पर जिप्सम के चूर्ण का प्रयोग हुआ है। नालियों को ढकने में टोडा मेहराब का प्रयोग भी मिलता है। इसका सबसे महत्त्वपूर्ण उदाहरण विशाल स्नानागार के जलाशय की नाली है। (फ० III, 2) यह 1.87 से 2.59 मीटर तक गहरी है और इसे टोडा मेहराब से ढका गया है। नालियों में बीच-बीच में गड्ढे (चहबच्चे) भी बनाये जाते थे जिनमें कूड़ा करकट रुक जाता था और नाली में पानी बहता रहता था, फिर इनकी सफाई करके कूड़ा-करकट निकाल दिया जाता था। सड़क की नालियों के किनारे रेत के ढेर मिले हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि नालियों की नियमित रूप से सफाई की जाती थी। किंतु ये ढेर इस बात के भी द्योतक हैं कि सड़क पर पड़े कचरे को हटाने में कभी-कभी लापरवाही बरती जाती थी। कहीं-कहीं नालियों में बनाये ऐसे गड्ढों में उतरने के लिए सीढ़ियां भी बनी होती थीं। इन गड्ढों को ढकने के लिए कदाचित् लकड़ी के ढक्कन रहे होंगे जो अब नष्ट हो गये हैं। मोहेंजोदड़ो और सिंधु संस्कृति के कई स्थलों में ऐसे भी उदाहरण मिले हैं जिनमें घर के परनाले या छोटी नालियां किसी बड़ी नाली से नहीं जुड़ी हैं; उनमें बहता पानी मिट्टी के ऐसे वृहदाकार घड़ों में गिरता था जिनके पेंदों में छिद्र कर दिये गये थे। पानी तो घड़ों के पेंदों से होकर जमीन में रिस जाता था और फिर इकट्ठा हुए कूड़े कचरे की सफाई कर दी जाती थी। कुछ पक्की इंटों के नावदान भी मिले हैं। मोहेंजोदड़ो में कुछ नालियां ऐसी भी मिली हैं जो कुएं के बिल्कुल पास से जाती थीं। ऐसी दशा में उनका गंदा पानी रिस कर कुएं में पहुंच सकता था और उसका जल दूषित हो सकता था।

नालियों के निर्माण में इस बात का ध्यान रक्खा जाता था कि उनसे बहते प.नी के छींटे राहगीरों पर न पड़ें। वे ढाल पर नालियों को प्रायः सीढ़ीदार बना देते थे जिससे उनमें बहते पानी का वेग कम हो जाय। लोथल की खोदाई से सार्वजनिक नाली का एक बहुत ही सुन्दर उदाहरण मिला है जिसमें घरों की नालियां गिरती थीं। इसमें ईंटों को चूने से बहुत ही सफाई से जोड़ा गया है। ईंटें एक दूसरे से बिल्कुल सटा कर जोड़ी गई हैं। ढाल पर इस नाली को सीढ़ीदार बनाया गया है। इसमें सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता नाली में द्वार का बनाया जाना है। यह द्वार काष्ठ का होने के कारण आज उपलब्ध नहीं है किंतु द्वार के लिए बनी चूल विद्यमान है जिससे कि उसके लगे होने का साक्ष्य मिलता है। इस दरवाजे को जालीदार बनाया गया होगा ताकि पानी छन छन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर वहता रहे और कूड़ा वहीं रुक जाय, जिसकी सफाई नियमित रूप से होती रही होगी।

मोहेंजोदड़ो में निर्माण पुर्ननिमाण के फलस्वरूप भूमि की सतह उठती गयी और उसके साथ ही नालियों को भी ऊँचा करने की आवश्यकता पड़ी। पहले तो उन्होंने नाली की दीवारों को ही ऊंचा करके आसानी से समस्या सुलझानी चाही, पर जैसे-जैसे सड़क की ऊंचाई और उठती गई और इतने से ही काम नहीं बना तो फिर उन्होंने पुरानी नालियों के ऊपर नई नाली का निर्माण किया और इसके लिए अक्सर पुरानी नाली की ही ईंटों का पुनः प्रयोग किया। अंतिम प्रकाल में नगर-निर्माण के विभिन्न पहलुओं में ह्रास के चिह्न मिलते हैं और नालियां भी इसका अपवाद नहीं हैं। इस प्रकाल में नालियों के निर्माण, उनकी सफाई और उनके अनुरक्षण की व्यवस्था में शिथिलता आ गई थी।

सिंधु सभ्यता के कुएं (फ० V, 3) वृत्ताकार अथवा अण्डाकार थे। मोहें-जोदड़ो की अपेक्षा हड़प्पा में बहुत कम कुएं मिले हैं। मोहेंजोदड़ो में प्राप्त कतिपय उदाहरणों के साक्ष्य से ऐसा पता लगता है कि यहां पर सिंधु सभ्यता के प्रारंभिक काल में कुछ कुएं सार्वजनिक प्रयोग के लिए न होकर केवल व्यक्तिगत प्रयोग के लिए थे, क्योंकि उन तक पहुंचने के लिए सड़क से कोई मार्ग नहीं था। पर समय बीतने पर और जनसंख्या बढ़ने के कारण कुछ व्यक्तिगत कुओं को जनता के प्रयोग के लिए भी खोल देना पड़ा। मोहेंजोदड़ो में अंतिम काल में जब सभ्यता ह्रासोन्मुखी थी, नये कुएं बनाये जाने के साक्ष्य नहीं मिलते, वे पुराने कुओं से ही काम चलाते रहे। एक तो नये कुएं खोदने में धन का व्यय बहुत था और दूसरे पिछले काल की ईंटों को खोदकर नीचे कुएं खोदना कठिन भी था। जिन कमरों में कुएं हैं उनका फर्श भली-भांति ईंटें बिछा कर बनायी गयी थी और उनमें घड़े रखने के लिए गहरी जगहें बनी थीं। कभी-कभी ईंटें चिन कर बैठने के लिए थोड़ी ऊंची जगह बना दी गई थी, लोग वहीं बैठ कर अपनी बारी की प्रतीक्षा करते रहते होंगे और न जाने कौन से गीत गुनगुनाते रहते होंगे, कौन से दुखड़े रोते रहे होंगे, क्या हंसी ठिठोली होती रहती होगी। अधिकांश कुएं लगभग .91 मीटर व्यास वाले हैं, पर .61 मीटर व्यास वाले छोटे कुएं और 2.13 मीटर व्यास वाले बड़े कुएं भी मिले हैं। नगर की सतह ऊंची होने से कुएं की जगत को भी ऊपर उठाना पड़ा। कुछ अपवादों को छोड़ कर कुओं की जगतें बहुत नीची होती थीं और निश्चय ही उसमें बच्चों के गिरने का खतरा रहा होगा। ऐसे भी कुएं मिले हैं जो ठीक स्थिति में हैं किंतु फिर भी लोगों ने निर्माण के थोड़े समय पश्चात् ही उनका उपयोग त्याग दिया था। शायद इस कारण कि कोई उसमें गिर गया था।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिंधु सभ्यता के कुछ महत्त्वपूर्ण स्थलों के भवन एवं अन्य निर्माण-कार्य

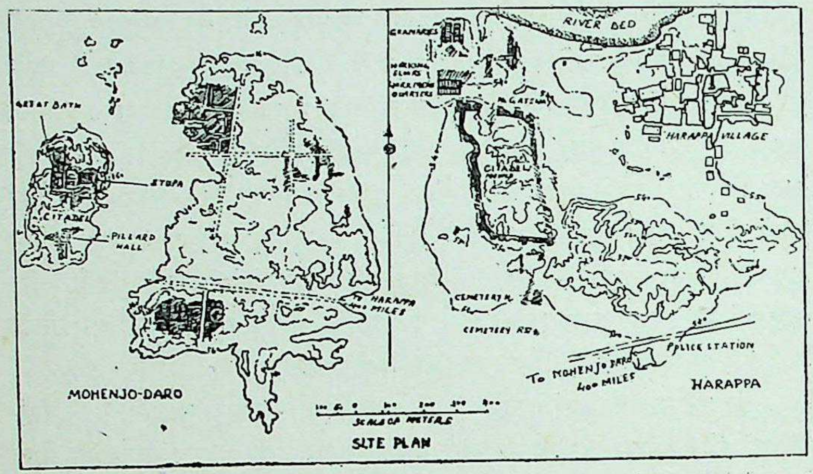

आरेख 2

हड़प्पा

(आरेख 2-3)

लाहौर–मुलतान रेलवे लाइन पर गिट्टी बिछाने के लिए और मकान बनाने के लिए लोगों ने हड़प्पा के टीले की पुरानी ईंटों को खोद-खोद कर प्रयोग किया, जिस कारण यहां पर भवनों की रूपरेखा उतनी अच्छी दशा में नहीं मिली जितनी कि मोहेंजोदड़ो में मिली है ।

हड़प्पा का पश्चिमी टीला गढ़ी था और पूर्वी टीला निचला नगर । गढ़ी आकार में लगभग समानांतर चतुर्भुज है जो उत्तर से दक्षिण दिशा में 420 मीटर और पूर्व से पश्चिम 196 मीटर परिमाप में है । इसका धरातल दक्षिण की अपेक्षा उत्तर की ओर अधिक ऊंचा है । इसकी सर्वाधिक ऊंचाई लगभग 12 से 15 मीटर के बीच में है और इसके निर्माण में मिट्टी और कच्ची ईंटों का प्रयोग हुआ है ।

हड़प्पा की गढ़ी के दक्षिण में किये गये उत्खनन से पता चला है कि सिंधु संस्कृति के पूर्व इस स्थान पर पूर्वगामी लोग कभी निवास करते थे । इनके मृद्-भाण्ड, जो सिंधु संस्कृति के मृत्पात्रों से भिन्न हैं, बलूचिस्तान में विशेषकर रानाघुंडई तृतीय काल के तृतीय (C) चरण से प्राप्त मृद्भाण्डों से सादृश्य रखते हैं । कालांतर में नदी की बाढ़ से सम्पूर्ण आवास-भूमि पर रेत की तह जम गई और फिर इसके ऊपर सिंधु संस्कृति के अवशेष मिलते हैं । इस संस्कृति के प्रथम चरण में ही गढ़ी (दुर्ग) बनाये जाने के साक्ष्य हैं । सर्वप्रथम सुरक्षा के लिए एक सुदृढ़ दीवार (फ० I, 1) का निर्माण किया गया । यह दीवार आधार पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

12.19 मीटर चौड़ी थी और उसकी ऊंचाई 10.66 मीटर थी और वह शनैः

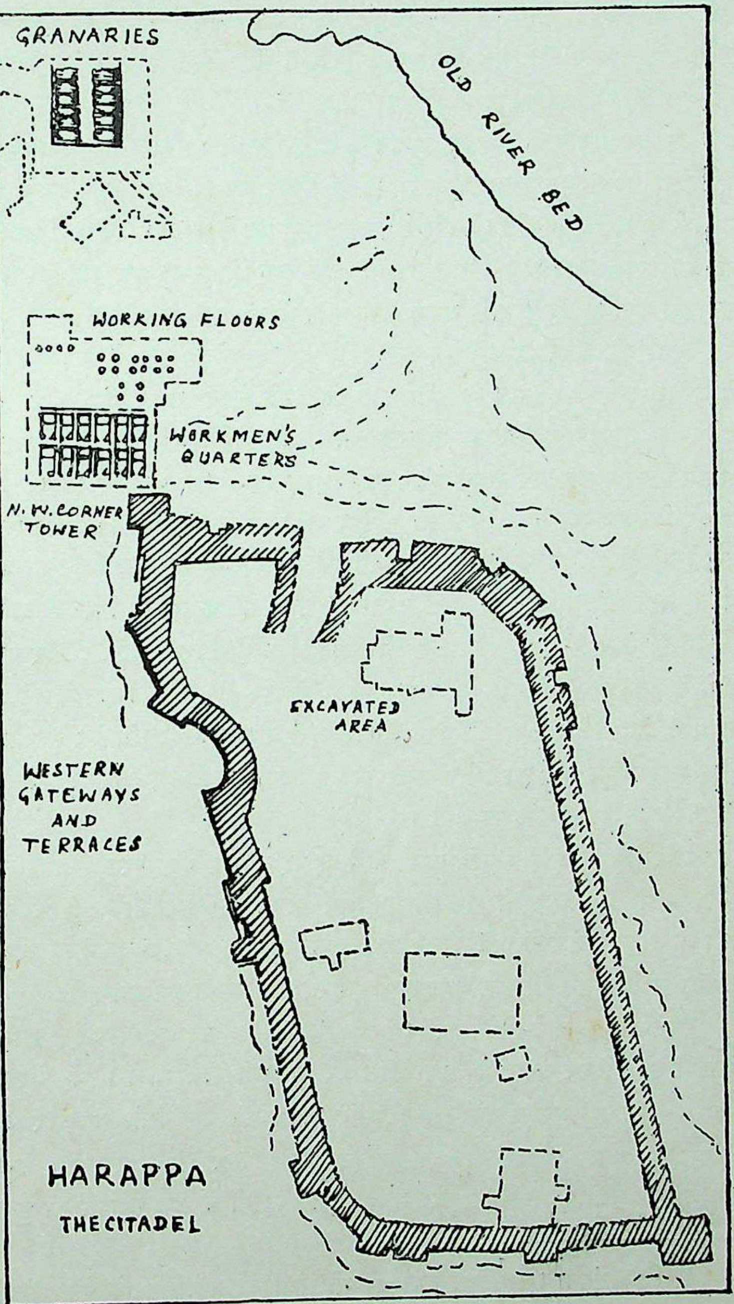

आरेख 3

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शनैः ढलुआं होती गई थी। इसका निर्माण तो कच्ची ईंटों तथा मिट्टी से हुआ था, किंतु बाहरी भाग पर पक्की ईंटें लगाई गई थीं। प्रारंभिक अवस्था में ईंटों की दीवार की पीठ सीधी बनायी गयी थी, किंतु बाद में असुरक्षा की आशंका से उसे तिर्यक कर दिया गया था।

सुरक्षा प्राचीर के अन्दर लगभग 6 मीटर से 7.6 मीटर तक ऊंचा कच्ची ईंटों का एक चबूतरा बनाया गया था जिसकी बाहरी सतह पर पक्की ईंटें लगायी गयी थीं। निर्माण की दृष्टि से यह रक्षा दीवार से अलग था किंतु कालक्रम के संदर्भ में यह समकालीन सिद्ध हुआ है। इसी चबूतरे पर 6 बार इमारतें बनायी गयीं जो बनावट की दृष्टि से अलग अलग चरणों की प्रतीत होती हैं।

गढ़ी की बाहरी दीवार पर कुछ दूरी पर बुर्ज बने थे जिनमें से कुछ दीवार से अधिक ऊंचे थे। गढ़ी के भीतर मुख्य प्रवेश-द्वार उत्तर की ओर था। पश्चिमी द्वार घुमाव लिए था जिसके साथ ही सीढ़ियां भी थीं। ह्वीलर का अनुमान है कि इस द्वार से जो पथ निकलता था वह विशिष्ट प्रकार का था और शायद किसी अनुष्ठान से संबद्ध था। द्वार की रक्षा के लिए रक्षकों के कमरे भी बनाये गये थे। दक्षिण सिरे पर भी गढ़ी में प्रवेश के लिए एक सीढ़ी का प्रबंध था। गढ़ी की प्राचीर को मूलतः खण्डित ईंटों से बनाया गया था। प्राचीर क्षतिग्रस्त हो जाने पर उसकी जगह पर नींव के थोड़े उपर से अच्छी और पकाई ईंटों से उसको निर्मित किया गया। गढ़ी निर्माण के दूसरे प्रकाल में उत्तरी-पश्चिमी किनारे पर पश्चिमी द्वार बंद कर दिया गया। ऐसा संभवतः सुरक्षा की दृष्टि से किया गया होगा।[1] रक्षा-दीवार का निर्माण आक्रमण और बाढ़ दोनों से बचाव के निमित्त किया गया था।

आधुनिक काल में निर्माण-कार्यों के लिए ईंटें खोद कर निकाल ली जाने के कारण गढ़ी के भीतर तो किसी महत्त्वपूर्ण भवन की रूपरेखा नहीं मिली। गढ़ी के बाहर उत्तर में 6.1 मीटर ऊंचे 'एफ' टीले पर 275 वर्गमीटर क्षेत्र में प्राचीन नदी के तट पर कुछ महत्त्वपूर्ण इमारतों की रूपरेखा मिली है।

उत्खनन से छोटे-छोटे घरों की एक बस्ती का उद्घाटन हुआ है। कुल मिला कर सात घर उत्तर में तथा आठ घर दक्षिणी पंक्ति में थे। ये घर एक दूसरे से लगभग एक मीटर की दूरी पर बने थे। इस बस्ती के चारों ओर दीवार थी। प्रत्येक घर का आकार लगभग 17 × 7.5 मीटर है। इनका निर्माण एक जैसी योजना पर हुआ था। कुछ विद्वानों ने इन मकानों की तुलना

---

1. शि० रंगनाथ राव इस बात की भी संभावना मानते हैं कि ऐसा बाढ़ से सुरक्षा की दृष्टि से किया गया था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तेल-एल-अमर्ना के श्रमिकों की बस्ती से की है, किंतु वे बस्तियां नगर का अंग न होकर उससे अलग थीं, जब कि हड़प्पा के ये मकान गढ़ी से बाहर होते हुए भी उससे सीधे संबद्ध लगते हैं। संभवतः ये प्रशासन की ओर से निर्मित श्रमिकों के आवास थे। इन्हीं भवनों के समीप सोलह भट्टियां मिली हैं और उनके पास ही मिट्टी का मूषा। मूषा का प्रयोग तांबा गलाने के लिए किया गया होगा। भट्टी में कंडे और कोयले का प्रयोग हुआ है। यह तांबे के उपकरण बनाने का कारखाना लगता है। शि० रंगनाथ राव का सुझाव है कि इन छोटे-छोटे घरों में शायद ताम्रकार ही रहते थे।

इस श्रमिक आवास से उत्तर दिशा में ईंटों के 18 वृत्ताकार चबूतरे (फ० II, 2) पाये गये हैं। 1946 में व्हीलर द्वारा किये गये उत्खनन में जो चबूतरा मिला उसका व्यास 3.2 मीटर है। इनमें ईंटों को खड़े रूप में रखा गया है। इनमें से प्रत्येक के मध्य में एक गड्ढा है। इनके बीच राख और जले गेहूँ व जौ की भूसी के अवशेष मिले हैं। कुछ विद्वानों का मत था कि ये यज्ञ की वेदियां थीं, किंतु व्हीलर का यह मत कि इनका उपयोग अनाज कूटने के लिए होता था, अधिक समीचीन लगता है। उनके अनुसार इनमें लकड़ी की ओखली लगाई रही होगी जो अब नष्ट हो गई है। इस तरह से अनाज कूटने की प्रथा कश्मीर में आज भी प्रचलित है।

इन चबूतरों और रावी नदी के मध्य में, दोनों ही से लगभग 32 मीटर की दूरी पर, एक ऐसी इमारत के अवशेष (फ० IV, 2) मिले हैं जिसे अन्नागार माना गया है। इस विशाल अन्नागार का निर्माण खण्डों में किया गया था। ऐसे बारह खण्ड मिले हैं जो छः छः की दो कतारों में हैं। इन दो कतारों के मध्य 7 मीटर का फासला है। प्रत्येक खण्ड का क्षेत्रफल लगभग 15.24 × 6.10 मीटर है। इनकी नींव लगभग 1.22 मीटर ऊँची कुटी हुई भूमि पर रखी गयी थी। पश्चिम में दक्षिणी किनारा पक्की ईंटों से सीढ़ीदार बनाया गया था। इस प्रकार दीवार तिर्यक हो गयी। दक्षिणी किनारे पर पूरे हिस्से में पुश्ता बनाया गया था और पूर्वी-दक्षिणी ओर जगह की कमी है, अतः अन्नागार में अन्न उत्तर में नदी की ओर से ही लाया - ले जाया जाता रहा होगा और अन्न लाने में नदी-मार्ग का विशेष उपयोग रहा होगा। अन्नागार के फर्शों में लकड़ी के शहतीर लगाये गये थे। इनके बीच में जगह छूटी थी जिससे हवा आ जा सके और जमीन की नमी से अनाज बचा रहे। रोमन युग में अन्नागार इसी तरह बनते थे। हड़प्पा के इन 12 अन्नागार-भवनों की पूरी जगह 2745 वर्गमीटर से अधिक क्षेत्र में थी और मोहेंजोदड़ो के मूलतः आयोजित अन्नागार के क्षेत्र के लगभग बराबर ही थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐसा प्रतीत होता है कि अन्न से आगमन-निगमन को निरंतर बनाये रखने के लिए अन्नागार शासन द्वारा नियंत्रित थे। यहीं से संभवतः अन्न का वितरण वेतनभोगियों, जिनमें शासकीय अधिकारी, लेखाकर्मी तथा श्रमिक वर्ग सम्मिलित थे, में किया जाता था। बैरक जैसे भवनों में रहने वाले लोग संभवतः राजकीय श्रमिक थे जो मुख्यतः विशाल अन्नागार से संबद्ध थे। इनका कार्य अन्नागार में अन्न पहुंचाना, वहां से अनाज निकालना, उसे कूटना और फिर शासन के आदेशानुसार उसको यथास्थान पहुंचाना था। कुछ श्रमिक समीपस्थ भट्टियों पर भी काम करते रहे होंगे। राव का कहना है कि ये बैरक ठठेरों के रहने के लिए भी हो सकते थे। मोहेंजोदड़ो नगर में तो अन्नागार का निर्माण गढ़ी के अन्दर ही किया गया था। तत्कालीन अर्थव्यवस्था में (देखिए 'आर्थिक जीवन' अध्याय) और अन्ततः शासन प्रबन्ध में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा होगा। दजला-फरात की घाटी के प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण नगरों में अन्नागारों की व्यवस्था थी, जैसा की वहां से प्राप्त लेखों से ज्ञात होता है। निर्माण-विशिष्टता एवं वैज्ञानिकता की दृष्टि से सिंधु संस्कृति के समय के अन्नागार अपना सानी नहीं रखते। यूनान के 'क्लासिकल युग' से पहले ऐसे विशिष्ट अन्नागार विश्व भर में कहीं नहीं मिलते।

मोहेंजोदड़ो
(आरेख 2)

मोहेंजोदड़ो में गढ़ी होने का ज्ञान सर्वप्रथम 1950 में ह्वीलर द्वारा की गई खोदाइयों से हुआ। हड़प्पा की भांति यहां भी गढ़ी कच्ची ईंटों द्वारा निर्मित काफी ऊंचे चबूतरे पर बनायी गयी थी। इसकी ऊंचाई दक्षिण में 6.1 मीटर और उत्तर की ओर 12.19 मीटर तक है। उत्तर दिशा में गढ़ी के ऊपर द्वितीय शती ईसवी में निर्मित बौद्ध स्तूप है। नगर जीवन के मध्य प्रकाल के समय, जब यह सभ्यता चरम विकास पर थी, इसका निर्माण हुआ था। नगर की सार्वजनिक इमारतें, जैसे विशाल स्नानागार, इसी समय बनायी गयीं। इससे भी पूर्व स्तरों में सिंधु संस्कृति की जो इमारतों के अवशेष होंगे उन्हें जलस्तर 9.15 मीटर तक ऊपर उठने के कारण अनावृत्त नहीं किया जा सका है। 1964-65 में गहरी ड्रिलिंग करने से अप्रयुक्त धरती तक (मैदान से 11.9 मीटर की गहराई तक) पहुंच संभव हो पायी, किंतु वहां तक वैज्ञानिक उत्खनन नहीं हो पाया। 1950 में वहां तक खोदने का प्रयास मोटर पम्प से किया गया जो सफल नहीं हो पाया था। हां इतना अवश्य स्पष्ट हो गया कि गढ़ी के निर्माण और पहले की संस्कृति के मध्य काल-व्यवधान नहीं है।

नदी में जल-स्तर का हर वर्ष ऊंचा हो जाना सिंधु संस्कृति के लिए विकट समस्या थी। इसी कारण आरम्भ से ही गढ़ी की सुरक्षा के लिए ईंट और मिट्टी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की सहायता से 13.1 मीटर चौड़े एक पुश्ते का निर्माण कर दिया गया था। उसी समय प्लेटफार्म के साथ-साथ जाने वाली एक पक्की ईंट की नाली का बाद में 4.27 मीटर की ऊंचाई पर पुनर्निर्माण किया गया। बाद में इस पुश्ते को बाहर से भी मजबूत बनाया गया।

मोहेंजोदड़ो की गढ़ी के दक्षिण-पूर्वी किनारे पर पक्की ईंटों का बना एक ठोस बुर्ज मिला है। चबूतरे का समकालीन बुर्ज 9.15 × 6.71 मीटर का था। इसकी नींव विशाल थी। इसकी ईंटों की दीवार की चिनाई में उसे दृढ़ बनाने के लिए लकड़ी का भी प्रयोग किया गया था। लकड़ी का प्रयोग अन्नागार में भी हुआ है जो इसी काल में निर्मित हुआ था। भवनों को मजबूत करने हेतु लकड़ी का प्रयोग कच्ची ईंटों से बनाये जाने वाले भवनों की चिनाई में तो समझ में आता है किंतु पक्की ईंटों के साथ इस तरह चिनाई में लकड़ी का प्रयोग मजबूती की दृष्टि से ठीक नहीं। ह्वीलर ने यह निष्कर्ष निकाला है कि इस टीले के अवशेष और इमारतें यह प्रकट करती हैं कि इनके निर्माता वे थे जो पकी ईंटों की इमारतें बनाने की अपेक्षा कच्ची ईंटों की इमारतें बनाने की कला में प्रवीण थे, और चूंकि मेसोपोटामिया में निर्माण कच्ची ईंटों से ही प्रायः होता था, अतः ह्वीलर इस बात की संभावना मानते हैं कि शायद वहीं से आये लोगों ने ही मोहेंजोदड़ो में इस तरह का निर्माण किया होगा। दक्षिण-पूर्वी कोने में और भी बुर्जे रहे जिनमें से दो तो मूलतः पृष्ठ द्वार के दोनों पार्श्व में थे। कालान्तर में द्वार बन्द कर उस स्थान पर चबूतरा बना दिया गया। इस चबूतरे के मलबे में उत्खनन के दौरान पकी मिट्टी की कई गोफन-गोलियां मिलीं। गढ़ी के पश्चिमी क्षेत्र में भी एक बुर्ज मिला है जिसके उत्तर में एक द्वार था।

मोहेंजोदड़ो की सबसे महत्त्वपूर्ण इमारत स्नानागार (फ० I, 2) है। यह स्तूप-क्षेत्र में स्तूप से लगभग 57.9 मीटर की दूरी पर स्थित है। मोहेंजोदड़ो नगर में, मार्शल के अनुसार, मध्य प्रकाल में इसका निर्माण हुआ था। यह इमारत काफी बड़ी है। इसका विस्तार उत्तर से दक्षिण की ओर 54.86 मीटर और पूर्व से पश्चिम की ओर 32.91 मीटर है। बाहरी आधार से 2.13 से 2.43 मीटर तक चौड़ी है और बाहर की ओर छह डिग्री का ढाल लिए है। इस भवन के प्रांगण में एक तालाब है जो पूर्व में लगभग 11.89 मीटर लम्बा, 7.01 मीटर चौड़ा और 2.44 मीटर गहरा था। इसके चारों ओर कुछ ऊंचा प्लेटफार्म बना था। तालाब के अन्दर पहुँचने के लिए उत्तर और दक्षिण में लगभग 2.43 मीटर चौड़ी सीढ़ियां बनायी गयी थीं। उत्खनन के सयय सीढ़ियां क्षतिग्रस्त मिलीं। उत्तर की ओर बनी सीढ़ी के 9 पैड़ों के अवशेष मिले। दक्षिण में बनी सीढ़ी नमक के प्रभाव से बिल्कुल नष्ट हो चुकी थी। मूलतः इसमें

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

10 पैड़ी थी। पैड़ियों की ईंटों को ऐसा लगाया गया था कि उनका लम्बान वाला भाग बाहर की ओर दिखे। कुछ साक्ष्यों के आधार पर मैके ने सुझाया है कि इन ईंटों के ऊपर लकड़ी लगायी गयी थी। वे तो यह भी सुझाते हैं कि लकड़ी के ऊपर तांबे की परत भी शायद थी। अंतिम पैड़ी के साथ एक चबूतरा बना था जो बच्चों और उन लोगों के सुभीते के लिए था जिन्हें तैरना न आने के कारण पानी में डूबने का डर था। सीढ़ी की अंतिम पैड़ी के नीचे नाली थी जो 23.5 सेमी चौड़ी और 8.26 सेमी गहरी थी।

तालाब का फर्श समतल नहीं था, पर उसे काफी सतर्कता से बनाया गया था। तालाब के निर्माण में उसकी दीवारों को जलरोधी बनाने का और नीवों को धंसने से बचाने का पूरा यत्न किया गया था। इस हेतु उन लोगों ने इस तालाब के निर्माण में पहले अच्छी तरह तराशी गई ईंटों की लगभग एक मीटर मोटी दीवार का निर्माण किया था। इसमें प्रयुक्त ईंटें 25.78 × 12.95 × 5.59 सेमी या 27.94 × 13.1 × 5.65 सेमी आकार की हैं। जुड़ाई जिप्सम से की गयी है और यह इस ढंग की है कि दो ईंटों के बीच कोई अंतर दिखता ही नहीं है। इस दीवार के पीछे की ओर 2.54 सेमी मोटा बिटूमेन लगाया गया और उसे गिरने से बचाने के लिए उसके पीछे एक पक्की ईंटों की दीवार बनायी गयी थी। इसके बाद अपरिशोधित ईंटों की भराई की गई थी और फिर पक्की ईंटों की एक दीवार थी जिसे छोटी-छोटी आड़ी दीवारों के द्वारा बरामदे की दीवार से जोड़ दिया गया था, जिसका उद्देश्य संभवतः बाहर की ओर के दबाव को रोकना था। मार्शल का कहना है कि उस समय उपलब्ध निर्माण-सामग्री से इससे सुन्दर और मजबूत निर्माण की कल्पना करना कठिन है। इतने सालों भूमि के नीचे दबे होने पर भी उत्खनन के दौरान यह अच्छी दशा में मिला है।

इस विशाल स्नानागार भवन का दक्षिणी-पश्चिमी छोर थोड़ा ढलुआं बनाया गया था। यहीं पर स्नानागार की पश्चिमी दीवार के साथ लगी एक नाली थी जिसके द्वारा पानी के निकास की व्यवस्था थी। तालाब के तीन ओर बरामदे थे और उनके पीछे कई कमरे और गैलरियां थीं। पूर्व की ओर के एक कमरे में ईंटों की दोहरी पंक्ति से बना सुन्दर कुआं था। स्नानागार के लिए पानी की पूर्ति का यही मुख्य स्रोत था। यों अन्य कुओं से भी कुछ पानी भरा जा सकता था। दूसरे कमरे में ऊपर जाने के लिए जीना था जिसे अनुमान लगाया जा सकता है कि ऊपर दूसरी मंजिल थी। कमरे से भारी मात्रा में जला हुआ कोयला और राख पायी गयी है जो निर्माण में काष्ठ के प्रयोग किये जाने का प्रमाण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लगती है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस इमारत में बाद में बहुत से परिवर्तन और परिवर्धन किये गये होंगे।

स्नानागार के दक्षिण-पश्चिमी कोने में एक महत्त्वपूर्ण नाली थी। यह नाली स्नानागार के दक्षिणी प्लेटफार्म से 12.7 सेमी की दूरी पर थी। यह पश्चिमी दीवार में जिसकी चौड़ाई 1.4 मीटर है, में हो कर जाती है। उसके बाद मिट्टी के भराव से और तत्पश्चात् दूसरी दीवार से। इसके बाद यह नाली एक कमरे से होकर निकलती थी। आगे यह फर्श पर खुली बनी है। इसके किनारे पर लंबाई में ईंटें बड़े ढंग से जिप्सम तथा बालू की सीमेंट से चिनी हैं। यह नाली आगे 69 सेमी चौड़ी है और एक 71 सेमी चौड़ी कड़ीदार छत से गुजरती है। यह छत इतनी ऊंची है कि एक लम्बा आदमी इसके भीतर होकर गुजर सकता है। जहां से नाली के ऊपर मेहराब प्रारंभ होती है वह स्थान नाली की सतह से 1.7 मीटर ऊंचा है और मेहराब की छत तक पूरी ऊंचाई लगभग 2 मीटर है।

विशाल स्नानागार की इमारत को वेष्ठित करने वाली बाहरी दीवार बाहर की ओर छह अंश तिर्यक बनी थी। पूर्व तथा दक्षिण दिशा में इस दीवार की मोटाई 1.9 मीटर पश्चिम में 2.2 मीटर है और उत्तर में कुछ जगह पर 2.34 मीटर मोटी थी। इसकी तथा अंदर के कमरों की दीवारों की नींव में भोंडी ईंटों का प्रयोग हुआ था। इसमें 6 प्रवेश-स्थान थे—2 दक्षिण में, 3 पूर्व में तथा एक उत्तर दिशा में। पश्चिम दिशा में शायद ऐसा ही कम से कम एक प्रवेश-स्थान अवश्य रहा होगा जिसका अब दीवार के क्षतिग्रस्त हो जाने से मात्र अनुमान ही लगाया जा सकता है। दक्षिण की ओर वाली दीवार में 1.93 मीटर और 2.64 मीटर चौड़े प्रवेश-द्वार थे। उत्तर में 1.18 मीटर चौड़ा प्रवेश-द्वार था जिसे किसी कारण बंद कर दिया गया था। प्रवेश-द्वारों पर फर्श 1.93 मीटर मोटा था। इस विशाल स्नानागार की इमारत का मुख्य प्रवेश-द्वार किस तरह का रहा होगा इसका निर्धारण करना कठिन है, किंतु इसकी विशालता और विशिष्टता देखकर लगता है कि यह काफी प्रभावोत्पादक रहा होगा।[1]

इस विशाल स्नानागार की इमारत के उत्तर में दो पंक्तियों में छोटे-छोटे आठ स्नानकक्ष हैं। इन स्नानकक्षों की माप 2.9 × 1.8 मीटर है और उन्हें सावधानी से सुदृढ़ बनाया गया था। इनके दरवाजे आमने सामने नहीं खुलते थे। कदाचित् गोपनीयता के लिए ही ऐसा प्रबंध किया गया होगा। स्नानकक्षों के बीच की खाली जगह में नाली का भी प्रबन्ध था। इनमें ऊपर जाने के लिए

---

1. मैके ने मार्शल द्वारा संपादित **मोहेंजोदड़ो एण्ड दि इण्डस सिविलिजेशन** में विशाल स्नानागार का विस्तृत विवरण दिया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सीढ़ियों का होना और इनकी दीवारों की अत्यधिक मोटाई इस बात की द्योतक लगती है कि मकान दुमंजिले थे। मैके का सुझाव है कि इन मकानों में पुजारी रहते थे जो ऊपरी कक्ष में अनुष्ठान कराते और नीचे के कक्ष में स्नान कराते थे।

मोहेंजोदड़ो की विशाल स्नानागार की इमारत के पश्चिम में खोदाई में एक अन्य महत्त्वपूर्ण इमारत के अवशेष (फ० II, 1) मिले हैं। इसको 1.52 मीटर ऊंचे पक्की ईंटों से बनाये गये ठोस चबूतरों पर बनाया गया था। यह इमारत पूर्व से पश्चिम 45.72 मीटर लंबी और उत्तर से दक्षिण की ओर 22.86 मीटर चौड़ी है। इसका विस्तार दक्षिण की ओर होता रहा। संभवतः मूलतः इसमें 27 खंड (ब्लाक) थे। इन खंडों के बीच में सँकरी खाली जगह छोड़ी गई थी जिससे वायु का संचार होता रहे। मार्शल के समय यह भवन अंशतः उद्घाटित हो पाया था और उनका मत था कि इस भवन का इस विशिष्ट तरह का निर्माण इसके "धूप-स्नान" के लिए प्रयुक्त किये जाने के लिए किया गया होगा। किंतु ह्वीलर ने 1950 में इस पूरी इमारत के ऊपर से मलवा हटवाया और इसकी रूपरेखा का परीक्षण करके मत प्रकट किया कि यह भवन अन्नागार था, जो अधिक समीचीन लगता है। इस अन्नागार के विभिन्न खंडों में बीच आड़े-तिरछे मार्ग हैं जिनसे वायु का आवागमन होता था। इमारत के ऊपरी भाग के निर्माण में लकड़ी का प्रयोग हुआ था। इसकी दीवारें तिर्यक हैं। इमारत के उत्तर दिशा में बने चबूतरे की दीवारें भी तिर्यक बनायी गयी थीं। अन्न के भारी गट्ठर ऊपरी मंजिल में चढ़ाने में इस ढाल से सुविधा रहती थी। इसी स्थल की गढ़ी के दक्षिणी-पश्चिमी बुर्ज की तरह इस उत्तरी चबूतरे के निर्माण में भी कच्ची ईंटों से भवन-निर्माण की परंपरा के अनुसार चिनाई में पक्की ईंटों के साथ लकड़ी का प्रयोग किया गया है।

इस स्नानागार की इमारत मूल रूप में उसके समीप स्थित विशाल स्नानागार की इमारत से पुरानी थी क्योंकि बाद में स्नानागार की टोड़ी नाली बनाये जाने से अन्नागार की इमारत के चबूतरे का पूर्वी किनारा कट गया था जिसके सहारे कभी सामान चढ़ाया जाता था। लेकिन अन्नागार में दक्षिण की ओर जो कुछ और जोड़ा गया वह विशाल स्नानागार की इमारत का समकालीन था।

प्राचीन समय में अन्नागारों के महत्त्व की चर्चा अन्यत्र की गई है। अन्नागार की विशाल रूप-रेखा और उसमें वायु-संचरण की सुविधा तथा तथा दुर्ग के बाहर से सामान चढ़ाने की व्यवस्था का होना महत्त्वपूर्ण है। हड़प्पा में अन्नागार की इमारत दुर्ग के पास ही पायी गयी हैं। हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो दोनों नगरों के अन्नागारों का क्षेत्रफल लगभग बराबर है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मोहेंजोदड़ो के अन्नागार की इमारत के दक्षिण में विशाल सीढ़ी की मात्र रूप-रेखा पायी गयी है । जहां पर सीढ़ी आरंभ होती है वहां पर इसकी चौड़ाई 6.7 मीटर के लगभग है । सीढ़ी के तल पर एक कुआं है और आस-पास दो अन्य कुएं । अंतिम सीढ़ी के पास एक छोटा स्नानकक्ष था । इस स्थान पर इतनी बड़ी सीढ़ी का क्या महत्त्व था यह ठीक-ठीक अनुमान लगाना कठिन है, किंतु उसके समीप बनाये गये कुएं और स्नानकक्ष को ध्यान में रखते हुए यह अनुमान लगाया गया है कि उसका संबंध किसी ऐसे अनुष्ठान से था जिसमें स्नान करना आवश्यक था ।

विशाल स्नानागार भवन के उत्तर-पूर्व में एक अन्य महत्त्वपूर्ण तथा विशाल इमारत की रूप-रेखा मिली । इसका आकार 70.1 × 23.77 मीटर है । इसमें 10 मीटर वर्गाकार एक खुला हुआ आंगन था जिसके साथ ही तीन बरामदे और बैरक जैसे कुछ कमरे थे । कमरों का फर्श पक्की ईंटों से बनाया गया था । इसमें दो सीढ़ियां थीं । यह कोई महत्त्वपूर्ण इमारत लगती है । इसके साधारण निवास-गृह होने की कम संभावना है । मैके का अनुमान है कि यह इमारत पुरोहित जैसे विशिष्ट लोगों का आवास रही होगी ।

जिस स्थान पर कुषाणकालीन स्तूप है उसके नीचे किस तरह की इमारत के अवशेष हैं, अभी तक यह अज्ञात है क्योंकि वहां पर उत्खनन नहीं किया गया है । इस स्थान का अत्यधिक ऊंचा होना इसके महत्त्व का द्योतक लगता है । कुछ विद्वानों का ऐसा अनुमान है कि कुषाणकाल में इस स्थान को स्तूत-निर्माण के लिए शायद इसलिए चुना गया था कि उसके साथ धार्मिक स्थल होने की परंपरा चली आ रही थी । किंतु इस संदर्भ में यह नहीं भूलना चाहिए कि सिंधु सभ्यता के अंत और कुषाणकाल के मध्य तक लगभग डेढ़ हजार वर्षों का अन्तराल है, और इस अवधि में इस स्थल के धार्मिक होने के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती ।

इसी स्तूप की उत्तर दिशा में सिंधु सभ्यता-कालीन एक अन्य विशाल इमारत की पश्चिमी तथा दक्षिणी दीवार का खण्डित भाग है । प्राचीन उर में मन्दिर के पास स्थित इमारतों में मंदिर के कर के रूप में मिली वस्तुओं को संग्रहीत करके रखा जाता था । यदि स्तूप के नीचे मंदिर होने का अनुमान सही हो तो इस इमारत का भी कदाचित् इसी तरह का उपयोग किया जाता रहा होगा ।

मोहेंजोदड़ो की गढ़ी के दक्षिण में लगभग 27.43 मीटर वर्गाकार एक प्रशाल के अवशेष मिले हैं जो मूलतः 20 स्तंभों पर आधारित था । ये स्तंभ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चार कतारों में हैं; प्रत्येक कतार में पांच स्तंभ हैं। इमारत तक पहुंचने के लिए उत्तरी छोर के मध्य से रास्ता था। फर्श भली-भांति बिछाई गई ईंटों द्वारा कई गलियारों में बँटा था। इनका उपयोग संभवतः बैठने के लिए किया जाता था। मूलतः इन गलियारों में काठ की लंबी और कम ऊंचाई वाली बेंचें लगी थीं। मार्शल ने इस तरह के निर्माण की तुलना बौद्ध गुफा-मंदिरों से की है जिनमें बौद्ध भिक्षु लंबी कतारों में बैठते थे। मैके के अनुसार यह बाजार का 'हाल' हो सकता है जहां पर दूकानें लगाने के लिए स्थायी रूप से स्थान (स्टाल) बनाये गये थे। ह्वीलर ने इसके फारसी 'दरबारे आम' जैसी इमारत होने की ओर संकेत किया है। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि पाटलिपुत्र (पटना) में स्तंभों पर आधारित मौर्यकालीन भवनों के जो अवशेष मिले हैं उनके बारे में यह सुझाव दिया गया है कि वे स्तंभों पर आधारित ईरानी भवनों की नकल थे। यह सुझाव सही है अथवा नहीं, यह कहना कठिन है। किंतु सिंधु सभ्यता के संदर्भ में इस तरह स्तंभों पर आधारित भवन के मिलने से अब हम निश्चय-पूर्वक कह सकते हैं कि भारत में इस तरह के भवनों के निर्माण के उदाहरण ईरान में निर्मित ऐसे भवनों से भी काफी प्राचीन है। मोहेंजोदड़ो की इस इमारत के पश्चिम में एक छोटी-सी इमारत भी मूलतः स्तंभों पर ही आधारित थी। इस इमारत का ठीक तरह से उद्घाटन नहीं हो पाया है।

मोहेंजोदड़ो के गढ़ी वाले टीले के भवनों के बारे में विस्तृत जानकारी की प्राप्ति हेतु उसका वैज्ञानिक विधि से विस्तृत रूप से उत्खनन आवश्यक है, तथापि जो जानकारी अब तक हुए उत्खननों से वहां के भवनों—विशाल स्नानागार, विशाल अन्नागार, कालेज भवन, स्तंभों पर आधारित भवन, और बुर्ज आदि—के रूप में उपलब्ध है, वह गढ़ी की महत्ता प्रदर्शित करने के लिए पर्याप्त है।

मोहेंजोदड़ो का निचला नगर

मोहेंजोदड़ो नगर की गढ़ी के पूर्व में स्थित टीले की खोदाई से निचले नगर के विषय में जानकारी मिली है। डेल्स द्वारा 1964-65 में किये गये उत्खननों में इस तरह के साक्ष्य मिले हैं जिनसे लगता है कि नगर के इस भाग को भी दीवारों से घेरा गया था। यद्यपि यह कहना कठिन है कि यह सुरक्षा दीवार बाढ़ से सुरक्षा के लिए थी अथवा आक्रमण से बचाव के लिए। डेल्स के उत्खननों से यह भी पता लगा है कि यहां पर नीचे के स्तरों में निर्माण कार्य के लिए ईंटों के साथ साथ लकड़ी की चिनाई हुई थी। नगर का यह भाग पूर्व-नियोजित रूप-रेखा के अनुसार बसाया गया था और नगर समकोण पर काटती सड़कों द्वारा खंडों में विभक्त था। ये खण्ड लगभग समान आकार के हैं जो माप में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पूर्व-पश्चिम में 243.84 मीटर और उत्तर-दक्षिण में 365.76 मीटर के लगभग हैं। खोदाई से 6 या 7 ऐसे खंड उद्घाटित हुए हैं और दो मुख्य सड़कें, 'पूर्वी सड़क' और 'पहली सड़क'। पिगट ने उपलब्ध साक्ष्यों से अनुमान लगाया है कि शायद मूलतः बारह खंड रहे होंगे जो पूर्व-पश्चिम की दिशा में तीन कतारों में थे, प्रत्येक कतार में चार खंड रहे होंगे और नगर करीब करीब डेढ़ किलोमीटर लम्बे और डेढ़ किलोमीटर चौड़े वर्ग में बसा रहा होगा तथा इनमें से गढ़ी वाला टीला पश्चिम की ओर का मध्यवर्ती टीला रहा होगा। मुख्य सड़कें लगभग 9.14 मीटर और गलियां लगभग 3 मीटर चौड़ी थीं।

उत्खननों से कुछ महत्त्वपूर्ण इमारतों के अवशेष प्रकाश में आये हैं। एच आर क्षेत्र में उत्खनन से साधारण निवास-गृह की रूप-रेखा के विषय में पर्याप्त सूचना प्राप्त हुई है। प्रवेश के लिए गली में होकर एक छोटा-सा द्वार था जो प्रवेश कक्ष में खुलता था जहां कुम्हारों का वासा था। दीवारों पर मिट्टी के लेप के चिह्न मिलते हैं। दक्षिणी भाग में एक कुआं बना था। यहीं से एक रास्ता आंगन में पहुंचता था जो 10 मीटर वर्गाकार था। कुएं वाले कमरे से सटा हुआ एक स्नानकक्ष था। दूसरे कमरे में, जो पूर्व में स्थित था, मिट्टी के पाइप की नाली थी जो सड़क की नाली से जुड़ी थी। ऊपरी मंजिल से आयी एक नाली पूर्वी आंगन में मिलती थी। दीवारें काफी मोटी हैं और इससे इस बात की पर्याप्त संभावना है कि यह इमारत दो मंजिली थी और ऊपर की मंजिल तक सीढ़ियों द्वारा पहुंचा जाता था। अनुमानतः घर का अधिकांश काम-काज आंगन में ही होता रहा होगा। पश्चिम की ओर अंग्रेजी अक्षर 'एल' (L) की आकृति के गलियारे में एक कमरा है। यह भवन आंगन, कुआं, स्नानागार, ऊपरी मंजिल तथा नालियों के प्रबंध का एक अच्छा उदाहरण है।

निचले नगर के डी के क्षेत्र के दक्षिणी भाग में पूर्व-पश्चिम में बनी लगभग 76.2 मीटर लम्बी एक इमारत के भग्नावशेष प्रकाश में आये हैं। इसकी दीवारें अत्यंत मोटी (1 से 2.13 मीटर तक) और ढलानदार हैं। मैके, मुख्यतः इसकी दीवारों की मोटाई के आधार पर इसे राजप्रासाद मानते हैं। राव का यह सुझाव उपयुक्त लगता है कि राजप्रासाद के मिलने की संभावना गढ़ी टीले पर है न कि निचले नगर में, और इसलिए यह इमारत किसी धनी नागरिक की हो सकती थी। इसके दो आंगन हैं जिनके बीच 1.52 मीटर चौड़ा गलियारा है जिसमें प्रवेश के लिए 2.43 मीटर चौड़ा द्वार है। जिस समय इसका निर्माण हुआ था उस समय उसमें तीन या चार प्रवेश-द्वार बनाये गये थे। किंतु आगे चल कर किसी अज्ञात कारण से एक को छोड़ कर शेष सभी बन्द कर दिये गये। आंगन के पास वाले कमरे में दो कुएं हैं। इसके साथ ही फन्नीदार ईंटों से

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बनाये गये कुछ वृत्ताकार गढ़े हैं। ईंटों के अत्यधिक ताप से पकी होने से ज्ञात होता है कि इन गढ़ों में कोई वस्तु तेज आंच देकर पकायी गयी थी। दक्षिण-पूर्वी कोने में जहां पर एक छोटा-सा आंगन था, रोटी पकाने के लिए वृत्ताकार चूल्हे (तन्दूर) बने थे। इसमें ऊपरी मंजिल (या छत) में जाने के लिए सीढ़ियां थीं।

इस क्षेत्र के उत्तर में उस स्थान पर जहां 'केन्द्रीय सड़क' और 'निचली गली' मिलती थीं एक अन्य महत्त्वपूर्ण इमारत थी। मैके ने इसे यात्रियों के ठहरने के लिए होटल होने का संकेत किया है। वैसे यह धर्मशाला या सराय जैसी कोई इमारत हो सकती है। मोहेंजोदड़ो जैसे व्यावसायिक नगर में, जहां देश-विदेश से यात्रियों का आना जाना रहता था, इस तरह की इमारत का होना स्वाभाविक ही है। इस इमारत के मुख्य आवास भवन की रूप-रेखा अंग्रेजी के 'L' अक्षर की भांति बनायी गयी थी। इसमें कुआं, नालियां और शौचालय की व्यवस्था थी। कालांतर में पहले के प्रवेशद्वार को बंद करके दीवार काट कर दूसरा प्रवेशद्वार बनाया गया था।

'पहली सड़क' (फर्स्ट स्ट्रीट) के समीप ही लगभग 26.51 × 19.65 मीटर के क्षेत्र में एक अन्य इमारत के भग्नावशेष मिले हैं। इस इमारत के बीच में आंगन था जिसके चारों ओर कोष्ठावलियां बनी थीं। सड़क की ओर कुछ ऐसे कक्ष थे जो उस स्थल के व्यावसायिक क्षेत्र होने की दिशा में संकेत करते हैं। तीन कमरों का फर्श पक्की खड़ी ईंटों से बनाया गया था। इसमें पांच शंक्वाकार गढ़े मिले हैं जिन्हें फन्नीदार ईंटों से बनाया गया था। संभवतः इनमें नुकीले पेंदे वाले बर्तन रखे जाते थे। एक कमरे में कुआं और सीढ़ी पास-पास हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार यह भवन जलपानगृह था, कुछ के अनुसार इनमें रखे घड़ों का उपयोग वस्त्रों के रंगने के लिए किया जाता था।

एच आर क्षेत्र की 'दक्षिणी गली' और एक अन्य गली जिसे पुरातत्त्ववेत्ताओं ने 'मृतकों की गली', नाम दिया है, इनके मध्य 15.85 × 12.19 मीटर आकार की एक इमारत के अवशेष मिले हैं। इसकी दीवारों की मोटाई लगभग 1.21 मीटर है। दीवार की चिनाई में भराई के तौर पर कच्ची ईंटों का प्रयोग हुआ है। इस तक पहुंचने के लिए दक्षिणी किनारे पर दो सीढ़ियां एक-दूसरे के समानान्तर बनाई गई थीं। एक द्वार था। इसके अन्दर की ओर 1.21 मीटर व्यास वाला ईंटों का एक चबूतरा था जो संभवतः पवित्र वृक्षों का बाड़ा रहा होगा। सफेद चूना पत्थर का दाढ़ीयुक्त सिर जो आकार में 17.15 सेमी है, तथा एक अलाबास्टर पत्थर की सिर रहित 41.9 सेमी ऊंची मनुष्याकृति मिली हैं। इस सिर रहित मूर्ति के दो टुकड़े बाद में कुछ दूरी पर मिले। (देखिए 'कला-कौशल'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय) मूर्तियों की प्राप्ति, इमारत की सुदृढ़ता, उसमें दो सीढ़ियों की व्यवस्था और वृक्षों अथवा मूर्तियों के लिए ईंटों के बाड़े से ह्वीलर ने इसके देवालय होने का अनुमान लगाया है। वैसे इस भवन में न तो प्रार्थना-सभा का कक्ष और न वेदी होने का ही साक्ष्य मिला है। डी के क्षेत्र में मिली एक अधूरी इमारत के बारे में, जिसकी दीवारें काफी मोटी और दृढ़ थीं, मार्शल ने यह मत व्यक्त किया है कि कदाचित् वह भी देवालय रहा होगा। लेकिन मैके इसकी पहिचान 'खान' से करते हैं।

निचले नगर में लगभग 1.37 मीटर मोटी दीवार की एक और इमारत एच आर क्षेत्र में अनावृत्त की गई है। इसके आस-पास 2.43 मीटर से 3 मीटर तक ऊंची एक दीवार है जो कच्ची ईंटों के चबूतरों को घेरे है। इन दीवारों पर संभवतः ऊपरी मंजिल भी थी। इस इमारत के बीच में एक आंगन है जिसके उत्तर और दक्षिण की ओर स्कंध हैं। दक्षिणी स्कंध में एक कुआं है। इसके भी धार्मिक इमारत होने का अनुमान लगाया गया है।

उपर्युक्त इमारत के सामने एक तंग गली है जिसे पार करने पर बैरकों का खण्ड मिलता है। इसमें 16 बैरकें हैं जो दो पंक्तियों में बनी हैं। उनके पिछवाड़े आमने सामने हैं। प्रत्येक बैरक में एक बड़ा और एक छोटा कमरा है। अधिकांश बड़े कमरों के किनारे पर स्नान करने के लिए व्यवस्था थी। इन कमरों का पानी एक नाली से होकर बाहर रखे हुए मृद्भाण्ड में पहुंचता था। मृद्भाण्ड को टूटने से बचाने के लिए उसके चारों ओर ईंटों का एक घेरा बना दिया गया था। दक्षिणी किनारे के कमरे में एक कुआं भी था। एक कुआं तो बीच रास्ते में पड़ता था। मैके इन इमारतों को दुकानें मानते हैं, किंतु जैसा कि पिगट ने सुझाया है, ये श्रमिकों के आवास भी हो सकते हैं। हड़प्पा नगर में इस तरह के आवास मिले भी हैं। यदि इसके सामने की इमारत देवालय थी तो मिस्र के साक्ष्य के आधार पर (जहां मंदिरों से संबद्ध विभिन्न श्रम-कार्य के लिए दास अथवा अर्द्ध-दास होते थे), पिगट के सुझाव का समर्थन होता है। ह्वीलर यद्यपि पिगट के इस सुझाव को तर्कपूर्ण मानते हैं तथापि उन्होंने दो और संभावनाएं भी रक्खी हैं। उनके अनुसार ये पुलिस के बैरक अथवा किसी पौरोहित्य वर्ग के निवास भी हो सकते हैं।

चन्हुदड़ो

चन्हुदड़ो के उत्खननों से सबसे नीचे की सतह (जहां तक खोदा जा सका है) में ईंटों के बने तीन या चार घरों और एक कुएं के अवशेष मिले हैं। इसके ऊपर निर्जन स्तर होने से स्पष्ट है कि चन्हुदड़ो कुछ समय के लिए निर्जन

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रहा और फिर जब इसका पुर्ननिर्माण हुआ तो भवनों को कच्ची ईंट के चबूतरे पर बनाया गया। एक 7.62 मीटर चौड़ी सड़क थी, और मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा के समान यहां पर भी मकान सड़क के दोनों ओर थे। इस मुख्य सड़क को समकोण पर काटती हुई गलियां थी जिनमें निकास-नालियों का सुन्दर प्रबंध था। विशाल संख्या में तांबे तथा कांसे की अधबनी गुरियां और गुरियों के पकाने की भट्ठी मिली है, साथ ही शंख और हड्डी का काम तथा मुद्रा-निर्माण के साक्ष्य हैं। इससे यह स्पष्ट है कि इस स्थल पर मुख्य रूप से कुलिकों की बस्ती थी। सिंधु सभ्यता के अंतिम चरण में केवल कुछ ठूंठ सी दीवारें मिली हैं जो साधारण कोटि के घरों की परिचायक हैं। किंतु इस काल की एक दीवार लगभग 1.52 मीटर मोटी और 24.38 मीटर से अधिक लंबी है जिसे पूरा नहीं खोदा जा सका। ऐसा मत व्यक्त किया गया है कि ये दीवारें एक अन्नागार भवन का अंग रही होंगी, किंतु इसकी पुष्टि के लिए निश्चित साक्ष्य नहीं है। यहां पर सिंधु सभ्यता के बाद कुछ अंतर से झूकर नामक दूसरी संस्कृति के लोगों ने बस्ती बसाई।

लोथल

लोथल का नगर भी हड़प्पा तथा मोहेंजोदड़ो के समान ही सुनियोजित था। सड़कें और गलियां एक दूसरे को समकोण पर काटती थीं। यहां की नगर-निर्माण योजना और उपकरणों को देख कर ही इसे 'लघु हड़प्पा' या 'लघु मोहेंजोदड़ो' कहा गया है।

राव का कहना है कि प्रारंभ में नगर उत्तर-दक्षिण में 300 मीटर चौड़े और पूर्व-पश्चिम में 400 मीटर लम्बे क्षेत्र में बसा था। कच्ची ईंटों की 13 मीटर चौड़ी एक सुरक्षा दीवार भी थी जो उत्तर की ओर पक्की ईंटों से मजबूत बनायी गयी थी। लेकिन तृतीय चरण में नगर इसके बाहर भी फैला, यहां तक कि 2 किलोमीटर के दायरे में हो गया। सुरक्षा दीवार कदाचित् बाढ़ से रक्षा के लिए थी, क्योंकि उसमें कोई बुर्ज आदि नहीं थे। इस दीवार के भीतर कच्ची ईंटों के बने ऊंचे चबूतरों पर घर बनाये गये थे। चबूतरों के सात ब्लाक खोदाई में मिले। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि मूलतः पांच और ब्लाक थे। कब्रिस्तान आवासक्षेत्र से अलग कुछ दूरी पर था। मुख्य रूप से नगर के दो भाग थे—गढ़ी (ऐक्रापोलिस) और निचला नगर। भवन साधारणतया कच्ची ईंटों के बने हैं। केवल गोदी (?) और कुछ थोड़े से महत्वपूर्ण भवनों के निर्माण में ही पक्की ईंटों का प्रयोग होता था। हां, नालियां और स्नानागार के फर्शों के लिए पक्की ईंटों का ही प्रयोग होता था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लोथल में गढ़ी समलंबक है। यह 117 मीटर पूर्व और पश्चिम में तथा 136 मीटर उत्तर में और 111 मीटर दक्षिण की ओर है। इसके ब्लाक 'बी' में एक भवन 126 × 30 मीटर आकार का मिला है। यह भवन ऐसे स्थान पर स्थित था जहां से नौकाघाट, भाण्डागार तथा जहाजों के गमनागमन की निगरानी भली भांति की जा सकती थी। राव का मत है कि यह शासक का भवन था। यहां पर कुआं, अत्युत्तम नालियां एवं अन्य मकान थे। साधारण लोगों के घर ज्यादातर औसतन 9 × 5.5 मीटर के आकार के थे; कुछ बड़े आवास 13 × 6 मीटर के थे।

गढ़ी में ही एक इमारत (फ० VI, 1), जिसका वर्तमान क्षेत्रफल 42.67 × 18.28 मीटर है, 4 मीटर ऊंचे चबूतरे पर बनायी गयी थी। इस चबूतरे पर कच्ची ईंटों के बने 12 घनाकार खण्ड चार पंक्तियों में हैं। प्रत्येक पंक्ति में तीन खण्ड हैं। इन खण्डों के बीच लगभग 1.06 मीटर चौड़ी नालियां बनाई गई थीं। ये नालियां उत्तर दिशा में बनी पक्की नाली से मिल जाती थीं। नालियों और घनाकार खण्डों में इंटें आग के प्रभाव से लाल हो गयी हैं। इन नालियों में पक्की मिट्टी के खण्ड, त्रिभुजकार मृत्पिण्ड गोलियां, मिट्टी के चोंगे (सिलिंडर) और पर्याप्त मात्रा में राख पाई गई है। दक्षिण की ओर पूर्वी छोर वाली नाली के भीतर सिंधु सभ्यता की मुहरों की लगभग 70 छापें मिली हैं। पहले लोथल-उत्खनन के निदेशक शि० रंगनाथ राव ने सुझाया था कि उपर्युक्त निर्माण-कार्य सिंधु सभ्यता-कालीन भट्टे के द्योतक हैं। ह्वीलर ने उन्हें अन्नागार के भवन का अंग माना है। उनका कहना है कि अन्नागार भवन लकड़ी का बना था जो जल गया। अन्न के गट्ठरों में लगी मोहरें भी उनके जलने के कारण नीचे गिर गयीं। राव ने बाद में अपने मत में कुछ संशोधन किया और अब उनका विचार है कि यह मूलतः भाण्डागार की इमारत थी, किंतु परवर्ती काल में इसका भट्टे के रूप में उपयोग किया गया।[1] इस इमारत के अवशेषों के सामने ही एक चबूतरा था। इसके ऊपर निर्मित भवन अब नष्ट हो गये हैं, किंतु अनुमान है कि वे भी महत्त्वपूर्ण रहे होंगे।

लोथल की तीन इमारतों में पशुओं की हड्डियां, तांबा, कांचली मिट्टी के

---

1. राव ने अपनी हाल में छपी पुस्तक **'लोथल एण्ड द इंडस सिविलिजेशन'** में लिखा है कि मूलतः इस तरह के 64 ब्लाक थे जो 1930 वर्गमीटर के क्षेत्र में बने थे। उनके अनुसार यह मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा के अन्नागारों से भी बड़ी, यही नहीं सिंधु सभ्यता में अपने ढंग की सबसे बड़ी, इमारत थी, जिसका वहां के आर्थिक जीवन में महत्त्वपूर्ण योगदान था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मनके, मिट्टी की चूड़ियां और कुछ मृद्भाण्ड पाये गये हैं। एक में तो जली हुई हड्डी, सोने का एक आभूषण और कुछ मनके मिले हैं। हो सकता है इन इमारतों का कोई धार्मिक महत्त्व रहा हो। वहां के अनेक मकानों में वृत्ताकार या चतुर्भुजाकार 'अग्नि स्थान' पाये गये हैं जिनमें राख के साथ मृतिपड भी मिले हैं। शायद इसका उपयोग यज्ञ जैसे अनुष्ठान के लिए था।

निचला नगर

राव के अनुसार निम्न नगर विस्तार में गढ़ी से कम से कम तिगुना था। इसमें उत्तर की ओर बाजार, पश्चिम की ओर व्यावसायिक निर्माण और उत्तर-पश्चिम में मकानों के जो अवशेष मिले हैं उनके बारे में यह कहा जाता है कि वे निजी आवास-गृहों के अवशेष हैं। अभी इस निचले नगर में चार ब्लाकों का ही उत्खनन हुआ है, पर मूलतः कई और भी रहे होंगे। यह नगर कच्ची ईंटों के चबूतरे पर बना था। राव के अनुसार यह लगभग आयताकार रहा होगा। निचले नगर में चार खंड मिले हैं जो कि सड़कों द्वारा एक दूसरे से अलग थे। राव का मत है कि मूलतः कई और खंड भी थे। खोदाई से चार सड़कों का पता चला है जिनमें से दो उत्तर-दक्षिण को और दो पूर्व-पश्चिम को जाती थीं। एक सड़क के एक ओर 12 मकानों की रूपरेखा की जानकारी मिली है। दूसरी सड़क के दोनों ओर दो-तीन कमरे वाले छोटे-छोटे मकान मिले हैं। इनमें से प्रत्येक में दो या तीन कमरे हैं। शायद ये दूकानें थी। कुछ चार या पांच कमरे वाले मकानों की रूपरेखा भी मिली है। दीवारें आधा मीटर या उससे भी कुछ अधिक मोटी थीं। कुछ के आगे बरामदा है जबकि कुछ अन्य के बीच में आंगन और चारों ओर कमरे थे। यों लोथल में घर बनाने के लिए कच्ची और पक्की दोनों ही तरह की ईंटों का उपयोग हुआ था। टमटमों और मनके बनाने वालों के घर अपेक्षाकृत छोटे थे और वे कच्ची ईंटों के बने थे। कच्ची ईंटों की इमारत मिली है जिसके मध्य में आंगन और विभिन्न आकार के ग्यारह कमरे मिले हैं। साथ ही रक्षक का कमरा और भंडार (स्टोर) का कमरा भी था। दो मिट्टी के बर्तनों में छः सौ कीमती पत्थरों के बने अर्ध निर्मित मनके मिले और दो बर्तनों में कच्चा माल (पत्थर) भी। लगता है कि मनके बनाने वाले इन कमरों में रहते थे और आंगन में सामूहिक रूप से मनके बनाते थे। तांबे का काम करने वालों के कारखाने का स्थल भी मिला है। मकान कहीं सड़क के दोनों ओर और कहीं एक ही ओर बनाये गये थे। एक मकान जिसकी दीवार एक मीटर मोटी थी धार्मिक कार्य के लिए था क्योंकि उसमें अग्निपूजा के साक्ष्य मिलते हैं। एक मकान जो किसी धनी व्यापारी का लगता है, में मूलतः तीन कमरे थे और तीन कमरे बाद में जोड़े गये। इस घर में सोने के नौ बड़े

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मनके, चार सेलखड़ी की मुद्राएं और कई कीमती पत्थर से बने मनके मिले। इस घर में अक्षीय नली वाले सोने के मनके तथा 'रिजर्व्ड स्लिप' वाले वर्तनों के पाये जाने के आधार पर राव ने इसके मालिक के मेसोपोटामिया से व्यापार करने वाला होने की संभावना व्यक्त की है। लोथल का सबसे महत्त्वपूर्ण स्मारक गोदी (फ० VI, 2) है। इसका विस्तृत विवरण अन्यत्र दिया गया है।

नालियों का बहुत सुन्दर प्रबंध था (फ० VII, 1)। घरों से छोटी-छोटी नालियां निकल कर बड़ी-बड़ी नाली में मिलना, ढाल पर सीढ़ीदार होना, सफाई की दृष्टि से बीच में नरमोखों का होना, सार्वजनिक नाली में जालीदार किवाड़ की व्यवस्था जिससे पानी छन कर निकले और कचड़ा रुक जाय, लोथल की नालियों के अत्यंत विकसित होने के प्रमाण हैं। लोथल के कुछ स्नानागारों की ईंटों को डामर से आच्छादित किया गया था। शौचालय भी थे और उनके साथ शोष-गर्त भी बने थे।

मकानों का सीधी पंक्ति में होना, स्नानागार के जल के निकास के लिए सार्वजनिक नालियों की व्यवस्था, नालियों में बहने वाले कूड़े-करकट को एकत्र करने और हटाने के लिए नरमोखों (मेनहोलों) की तरह कुण्डों का होना वहां के निवासियों की योजना और सफाई के प्रति सजगता के प्रमाण हैं तथा सशक्त नागरिक संगठन के परिचायक हैं। इतने सुनियोजित भवन और इतनी सीधी दीवारें बनाना बिना दिशा-मापक यंत्र, साहुल और पैमाने के संभव न था। एक छोटा सा उपकरण मिला है जिसका संभवतः दिशा मापक की तरह उपयोग होता रहा होगा। पैमाने तथा मिट्टी के बने कई साहुल भी मिले हैं। अंतिम काल में भवन-निर्माण में ह्रास के चिह्न स्पष्ट दिखते हैं।

लोथल के प्रथम प्रकाल में नगर-निर्माण में काफी सतर्कता बरती गयी, किंतु द्वितीय प्रकाल में इस दिशा में ह्रास दिखलाई देता है। बाढ़ से सुरक्षा के यथासंभव प्रयास किये जाने के बावजूद बाढ़ों के प्रकोप से मुक्ति नहीं मिली और क्षतिग्रस्त भवनों का पुनर्निर्माण का सिलसिला चलता रहा। शि० रंगनाथ राव के अनुसार एक बाढ़ तो इतनी भयानक थी कि जनसंख्य का एक विशाल भाग लोथल छोड़कर रंगपुर में जाकर बस गया।

कालीबंगां

(आरेख 4)

कुछ पुराविदों के अनुसार कालीबंगां संभवतः सिंधु साम्राज्य (?) की तीसरी राजधानी थी जहां से सरस्वती की घाटी का समीपवर्ती क्षेत्र शासित होता था। यहां का पश्चिमी टीला जिसे 'कालीबंगां–1' नाम दिया गया है, लगभग 12 मीटर ऊंचा है और यह $\frac{1}{4}$ किलोमीटर लम्बे और किलोमीटर चौड़े

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्षेत्र में है। इसमें निचले स्तरों में प्रागसिंधु-सभ्यता-कालीन अवशेष पाये गये हैं। जब यहां पर अप्रयुक्त धरती पर औसतन 1.6 मीटर तक मोटी तह के ऊपर

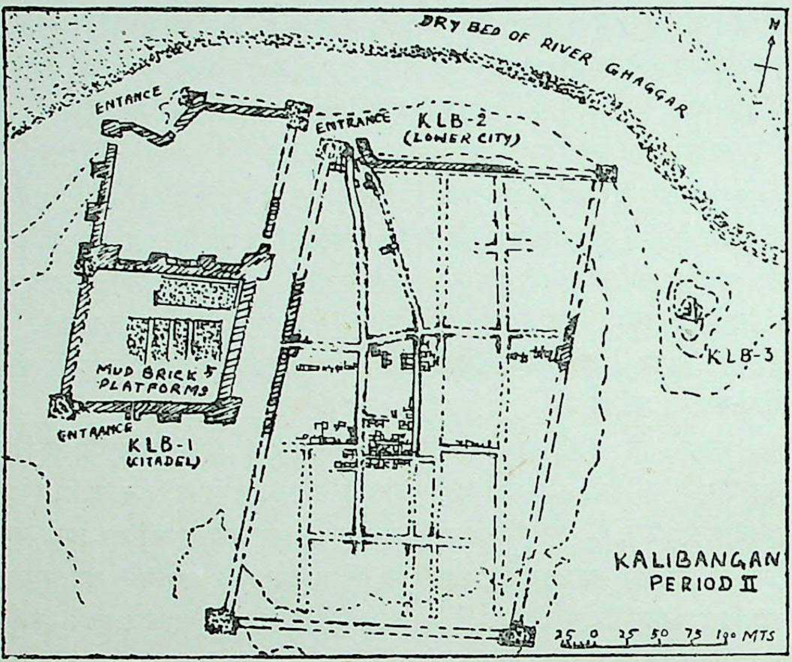

आरेख 4

इस बात के साक्ष्य हैं कि कुछ काल तक यह स्थान संभवतः किसी प्राकृतिक कारण से क्षति पहुंचने के कारण वीरान हो गया और ध्वंसावशेषों पर बालू की तह फैल कर जम गई जो संभवतः नदी की बाढ़ का परिणाम था। कालान्तर में यहां सिंधु सभ्यता के लोग बसे। उन्होंने मिट्टी तथा कच्ची ईंटों के चबूतरे बना कर उन पर इमारतों की नीवें रखीं। आवास-भूमि के क्षेत्रफल में भी विस्तार हुआ। स्पष्ट है कि नवागंतुकों के आने से जनसंख्या में वृद्धि हुई होगी।

सिंधु सभ्यता के लोगों के आगमन से आवास की योजना में परिवर्तन आया और 'गढ़ी' और 'निचला नगर' के रूप में नगर को बसाया गया जो हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो की नगर-योजना से मिलता-जुलता है। गढ़ी को उसी स्थान के ऊपर बसाया गया जहां पर कि प्राक्-हड़प्पा अवशेष पाये गये हैं, ऐसा संभवतः उन्होंने इसलिए किया कि वह स्थल आवासित होने के कारण कुछ ऊंचा हो गया था और गढ़ी का ऊंचाई पर होना उसकी उपयोगिता को बढ़ा देता है। इसके चारों ओर रक्षा-प्राचीर बना दी गई जो 3 से 7 मीटर तक चौड़ी थी। इसमें प्रवेश के लिए चारों दिशाओं में द्वार बनाये गये थे। दक्षिणी द्वार के दोनों तरफ आरक्षक-कक्ष बने थे। गढ़ी को मध्य से एक लम्बी दीवार द्वारा जो पूर्व-पश्चिम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाती थी, दो भागों में बांट दिया गया था। यह विभाजन किस उद्देश्य से किया गया था यह कह सकना कठिन है। गढ़ी का इस तरह विभाजन किये जाने का दृष्टान्त सिंधु सभ्यता के किसी अन्य स्थल पर नहीं मिला है। गढ़ी की रक्षा-प्राचीर मजबूत रहे इसका भी ध्यान रखा गया। इसीलिए उसमें स्थान-स्थान पर बुर्ज बनाये गये। दीवार के निर्माण में दो आकार की ईंटें इस्तेमाल की गईं हैं—$40 \times 20 \times 10$ सेमी की और $30 \times 15 \times 7.5$ सेमी की, जो दो निर्माण के चरणों की द्योतक हैं—पहले चरण में बड़ी ईंटों का और दूसरे में छोटी ईंटों का इस्तेमाल हुआ है। इसके चबूतरे कहीं भी दीवार के अभिन्न अंग नहीं थे। गढ़ी की दीवार तथा बुर्ज कच्ची ईंटों से निर्मित किये गये थे। इसके भीतरी भाग पर लिपाई की गयी थी। आगे चल कर सिंधु सभ्यता काल में ही इस रक्षा-प्राचीर का महत्त्व कम हो गया और शायद बुर्ज बाद में बनी इमारत के नीचे दब गया।

कालीबंगां के गढ़ी वाले टीले के दक्षिण अर्धभाग में पांच या छह मिट्टी और कच्ची ईंटों के चबूतरे थे जो एक दूसरे से अलग और कुछ भिन्न थे। उनके बीच के मार्ग में भी भिन्नता थी। ये चबूतरे कहीं भी रक्षा-दीवार का अभिन्न अंग नहीं थे। बाद के लोगों द्वारा ईंटें उखाड़ ली जाने के कारण इन चबूतरों के ऊपर निर्मित भवनों की रूपरेखा स्पष्ट नहीं है, तथापि जो भी साक्ष्य बचे हैं वे इस बात की ओर इंगित करते हैं कि इनमें से कुछ का धार्मिक प्रयोजन था। एक चबूतरे पर कुआं, अग्नि-स्थान के और पक्की ईंटों से निर्मित एक आयताकार गर्त था जिसमें पशुओं की हड्डियां थीं। दूसरे चबूतरे पर आयताकार सात अग्नि-वेदिकाएं एक कतार में थीं। गढ़ी के इस दक्षिणी अर्धभाग में जाने के लिए उत्तर और दक्षिण दिशा में सीढ़ियां थीं। उत्तरी दिशा का मार्ग विशिष्ट था और दुर्ग के दो बाहर निकलते हुए कोनों के मध्य से था। इन दोनों मार्गों की स्थिति और रूपरेखा से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि संभवतः दक्षिणी मार्ग निचले नगर के साधारण जनों के आवागमन के लिए था और उत्तरी मार्ग गढ़ी के उत्तरी भाग में रहने वाले संभ्रान्त व्यक्तियों के लिए। गढ़ी के उत्तरी अर्धभाग में संभ्रान्त जनों के आवास थे और उसकी सड़क निर्माण-योजना विशिष्ट ढंग की थी। इस भाग में प्रवेश करने के लिए तीन या चार मार्ग थे। कालीबंगां में गढ़ी पर धार्मिक अनुष्ठानों के साक्ष्य को देखते हुए सांकलिया का अनुमान है कि गढ़ी का धार्मिक महत्त्व था।

निचला नगर

हड़प्पा तथा मोहेंजोदड़ो के निचले नगरों के रक्षा-प्राचीर से घिरे होने का

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एकदम स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं, किंतु कालीबंगां के उत्खननों से प्राप्त साक्ष्यों से स्पष्ट है कि यहां का निचला नगर भी रक्षा-प्राचीर से घिरा था।[1] उत्खनन में इस प्राचीर को लगभग 150 मीटर तक अनावृत्त किया जा चुका है। इसकी चौड़ाई सर्वत्र समान नहीं थी। यह 3 से 3.9 मीटर तक मोटी है। इसकी ऊंचाई में ईंटों के 15 रद्दे लगे हैं। इस रक्षा दीवार में प्रयुक्त ईंटें 40 × 20 × 10 सेमी परिमाप की हैं। सुरक्षा-दीवार पूर्व से पश्चिम की ओर 230 मीटर क्षेत्र को घेरे है, उत्तर-दक्षिण की ओर सुरक्षा दीवार से घिरे हुए क्षेत्र के माप का ठीक अनुमान नहीं लगाया जा सका है। उत्तर-दक्षिण की ओर पांच और पूर्व-पश्चिम की ओर तीन मुख्य सड़कों का पता चला है। कई तंग गलियां भी मिलीं। सड़कों का निर्माण नियोजित ढंग से किया गया था (फ० VII, 2; VIII, 2) सड़कों की चौड़ाई लगभग 1.80 मीटर गुणक में थी। सड़कों के मोड़ पर बने घरों को यातायात से क्षतिग्रस्त होने से बचाने के लिए कहीं-कहीं सड़क के किनारे लकड़ी के खंभों की बाड़ लगायी गयी थी। सड़कों पर कहीं-कहीं घरों के सामने आयताकार चबूतरे भी बने थे। अंतिम चरण को छोड़ कर सड़कों को पक्की बनाने का प्रयास नहीं किया गया। सड़क को पक्की बनाने का प्रयास हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो में नहीं मिलता और इसीलिए कालीबंगां का यह साक्ष्य इस संदर्भ में विशिष्ट है। यहां पर सार्वजनिक नालियों के अवशेष नहीं मिले। घर की नालियों का पानी, चाहे वे नालियां लकड़ी की रही हों या पक्की ईंटों की, नावदानों में गिरता था। लकड़ी को कुरेद कर उसे नाली के रूप में प्रयोग करना कालीबंगां की अपनी विशेषता है जिसका साक्ष्य सिंधु सभ्यता के किसी अन्य स्थल पर नहीं मिलता।

इस टीले के एक भाग में इमारतों के नौ क्रमिक स्तर पाये गये हैं। मकानों के आगे और पीछे दोनों ओर सड़कें थीं। साधारणतः घरों में एक आंगन होता था जिसमें कभी एक कुआं होता था। आंगन के तीन ओर छह या सात कमरे थे। एक घर में ऊपर की मंजिल (?) में जाने के लिए सीढ़ी भी थी। एक मकान के अवशिष्ट भाग से ज्ञात होता है कि उसका दरवाजा गली में खुलता था। हड़प्पा तथा मोहेंजोदड़ो में भी दरवाजे गली की ओर ही मिले हैं। द्वार से प्रवेश कर बरामदे में होकर कमरों में पहुंचा जाता था। कमरे बड़े और छोटे दोनों ही आकार के थे जो परस्पर दरवाजों से जुड़े होते थे। द्वार की

---

1. ऑल्चिन (पृ० 235) के मतानुसार संभवतः हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो के निचले नगर भी रक्षा-प्राचीर से घिरे थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चौड़ाई 70 से 75 सेमी तक पायी गयी है। दरवाजे में कदाचित् एक ही किवाड़ लगाया जाता था क्योंकि किवाड़ के लिए एक ही छेद पाया गया है जो ऊपर की ओर है। इस तरह के एक-पल्लेवाले किवाड़ होने के प्रमाण सिंधु सभ्यता के किसी अन्य स्थान पर अब तक उपलब्ध नहीं हुए हैं। कालीबंगां के घर (हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो के पक्की ईंटों से निर्मित भवनों से भिन्न) सभी कच्ची ईंटों के बने हैं। पक्की ईंटों का प्रयोग केवल कुआं, नालियां और स्नानागार के निर्माण में ही हुआ है। फर्श मिट्टी को कूट कर बनाया जाता था और कभी उसके ऊपर कच्ची ईंट और पक्की ईंट के पिण्ड बिछा देते थे। यह विधि आज भी कालीबंगां के आस-पास के क्षेत्र में फर्श बनाने के लिए अपनाई जाती है। कुछ उदाहरणों में पक्की मिट्टी के 'पिण्ड' फर्श बनाने में प्रयुक्त हुए हैं। पर मृत्पिडों का एक मात्र यही उपयोग था यह कहना कठिन है। एक उदाहरण में फर्श की ईंटों पर वृत्त को काटते हुए वृत्त का सुन्दर अलंकरण है।[1] (फ० VIII, 1) कालीबंगां में मिट्टी के खंडों पर शहतीरों की छाप मिली हैं। शायद शहतीरों का प्रयोग ऊपरी छत को सहारा देने के लिए किया गया होगा जैसा कि आज भी इस क्षेत्र में किया जात है। अधिकांश घरों में तो मिट्टी की ईंटों के आयत रूप घेरे मिले हैं जिनमें मिट्टी के बर्तनों के टुकड़े पाये गये हैं। कुछ मिट्टी से पुते अण्डाकार गड्ढे भी मिले। इनके भीतर राख तथा कोयले के टुकड़े पाये गये हैं। इनके बीच में एक या अधिक ईंटें थीं। इनका संबंध किसी धार्मिक अनुष्ठान से लगता है[2] (देखिए अध्याय 'धार्मिक विश्वास एवं अनुष्ठान')।

कालीबंगां को इमारतों के खण्डहरों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि आंगन का क्षेत्रफल समय बीतने के साथ संकुचित होता गया। कई स्तर पर हरे रंग की तह देखी गयी है। शायद यह तह गोबर की थी जिसे आजकल के गांवों में प्रचलित प्रथा के अनुरूप मकान को लीपने में प्रयोग किया गया था।

कुछ अन्य स्थल

दक्षिणी सिंध के अनेक स्थलों पर भवनों की नीवें पत्थर की थीं जिसके ऊपर संभवत: कच्ची ईंटों या मिट्टी और गारे की दीवारें रही होंगी। बलू-

---

1. सांकलिया का कहना है कि यह अभिप्राय मात्र अलंकरण के लिए नहीं लगता बल्कि इसका धार्मिक महत्त्व हो सकता है।

2. सांकलिया द्वारा नेवासा में कराये गये उत्खननों में उथले गड्ढों में मिट्टी की आयतरूप संरचनाएं मिली हैं जिनके भीतर पत्थर पाये गये हैं।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चिस्तान के सुत्कगेन्डोर में घर की बाहरी दीवारें कम से कम 1.52 मीटर की ऊंचाई तक पत्थर की थीं और अंदर की विभाजक दीवारें एक मीटर तक पत्थर की थीं और उसके ऊपर कच्ची ईंटों की। सिंध के अलीमुराद में पत्थर की रक्षा-दीवार और उसके भीतर भवनों की दीवारों के अवशेष मिले। सिंध और बलूचिस्तान के स्थलों के नगर-निर्माण की रूपरेखा और भवनों के अवशेषों के बारे में जानकारी उन स्थलों के संक्षिप्त परिचय के संदर्भ में ऊपर दी जा चुकी है।

रोपड़ में, उत्खनन सीमित क्षेत्र में होने से, स्थापत्य संबंधी जानकारी उपलब्ध नहीं हो पायी है। यद्यपि यहां चार निर्माण चरणों के चिह्न मिले हैं। ऐसे प्रमाण मिले हैं कि प्रथम चरण से ही नदी के तट के रोड़े व मामूली तौर से तराशे कंकर-पत्थर का कच्ची और पक्की इटों के साथ चिनाई में प्रयोग किया गया था। जुड़ाई के लिए गारे के रूप में मिट्टी का प्रयोग किया गया था।

बणावली में प्रथम काल में सिंधु सभ्यता से पूर्व की संस्कृति (जो कालीबंगां प्रथम के बहुत कुछ समान है) के अवशेष मिलते हैं। द्वितीय काल सिंधु सभ्यता का काल है। सिंधु सभ्यता के काल में सड़कें एक-दूसरे को समकोण पर काटती थीं। मकानों के दोनो ओर सड़कें और नालियां थीं। दो विशाल चबूतरे मिले हैं जो एक दूसरे से 1.50 मीटर की दूरी पर हैं। इनके पश्चिम में मकानों के ब्लाक थे। उत्तर-पश्चिमी सड़क की चौड़ाई 5.50 मीटर पायी गयी है। सड़क पर बैलगाड़ी के पहियों के निशान मिले हैं, पहियों की दूरी आजकल के बैलगाड़ी के पहियों की दूरी के समान है। सिंधु सभ्यता के भवन कच्ची इंटों के बने हैं जो तीन आकारों की हैं। मकानों की दीवारों में मिट्टी का लेप लगाया गया था।

आलमगीरपुर में किसी भवन के अवशेष नहीं मिले। किंतु कुछ पक्की ईंटों का मिलना पक्के मकानों के होने का सूचक है। ईंटें मुख्यतया दो माप की हैं एक 28.57 सेमी से 29.84 सेमी लम्बी, 13.33 सेमी से 15.87 सेमी चौड़ी और 6.98 सेमी मोटी है और दूसरी प्रकार की (बड़ी) ईंटों की माप 35.56 × 20.32 × 10.16 है।

रंगपुर में सिंधु संस्कृति के प्रथभ चरण के भवन कच्ची ईंटों के चबूतरे पर निर्मित हैं। सिंधु सभ्यता के अन्य नगरों के भवनों की भांति उनमें स्नानागार और नालियों का प्रबंध था। एक भयानक बाढ़ एवं नदियों के मार्ग-परिवर्तन से यहां पर नागरिक सुख-सुविधाओं में अत्यधिक ह्रास हुआ। द्वितीय चरण में इस संस्कृति के भवन पहले की अपेक्षा छोटे और अनियोजित थे। घर कच्ची ईंटों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के बने थे। तृतीय तौर अंतिम चरण में, जैसा कि अनेक उपकरणों से स्पष्ट है, भौतिक उपकरणों में कुछ उन्नति हुई। लेकिन रंगपुर में हड़प्पा सभ्यता के किसी भी चरण में कोई महत्त्वपूर्ण इमारत नहीं मिली, यद्यपि इस बात को भी नजरंदाज नहीं किया जा सकता कि इस स्थल में अभी तक उत्खनन विस्तृत नहीं किये गये हैं।

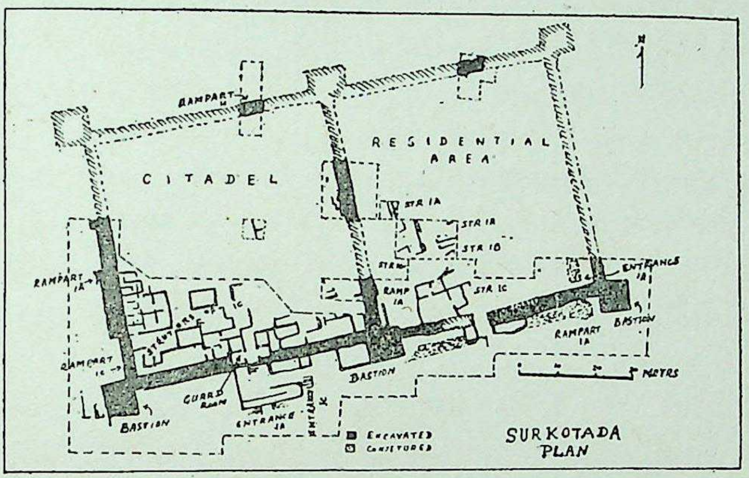

आरेख 5

सुरकोटडा (आरेख 5) में सिंधु सभ्यता के लोगों ने कच्ची ईंटों और मिट्टी के लोंदों से प्रथम काल के प्रथम चरण में किलेबंदी की और इसमें भीतर की ओर आधार पर पांच से आठ रद्दे तक पत्थर का आच्छादन है। आधार पर रक्षा-दीवार की चौड़ाई लगभग 7 मीटर थी और इस पर अंदर की ओर 5 सेमी मोटा लेप था। कच्ची ईंटों का आकर 10 × 20 × 40 सेमी है। दीवार की वर्तमान ऊंचाई 4.50 मीटर है। इसके निर्माण में चार चरण पाये गये। गढ़ी की दीवार में दो प्रवेशद्वार थे, एक दक्षिण की ओर और एक पूर्व की ओर। आवास-क्षेत्र भी सुरक्षा-दीवार से आवेष्टित था जो 3.25 मीटर चौड़ी थी। दक्षिण-पश्चिम की ओर यह 1.80 मीटर ऊंची थी।

वहां पत्थर की चिनाई वाले घरों के अवशेष भी मिले हैं। घरों में स्नानकक्ष और नालियों के प्रबंध के साक्ष्य मिले हैं। प्रथम काल के द्वितीय चरण में भी सुरक्षा-दीवार की रूपरेखा पूर्ववत रही। तृतीय चरण में भी पूर्वकालीन लोगों की परंपरा में ही गढ़ी और सुरक्षा-दीवार बनाई गई। गढ़ी का आकार 60 × 60 मीटर था और निम्न आवास-स्थल का 55 × 60 मीटर। सुरक्षा-

 Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दीवार साढ़े तीन से चार मीटर चौड़ी थी और उसके प्रत्येक ओर लगभग 10 मीटर का वर्गाकार बुर्ज था तथा दक्षिण की ओर एक द्वार भी थी जिसमें सुरक्षा के लिए रक्षक-कक्ष थे। इसके साथ ही साधारण आवास-स्थल से भी गढ़ी में प्रवेश हेतु एक दरवाजा था जिसे कालांतर में बंद कर दिया गया। सुरक्षा-दीवार और बुर्जों में मरम्मत के चिह्न मिले हैं। गढ़ी में एक नौ कमरे वाले मकान के अवशेष मिले। आवास-क्षेत्र में साधारणतया घरों में पांच कमरे और सड़क की ओर चबूतरे बने पाये गये।

●

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 4

पाषाण तथा धातु की मूर्तियां

सिंधु सभ्यता की मुहरें अपनी कलात्मकता के लिए विख्यात हैं, किंतु इस सभ्यता की पाषाण मूर्तियां और मृण्मूर्तियां दोनों ही कुछ अपवादों को छोड़ कर, कला की दृष्टि से साधारण कोटि की हैं। दूसरी ओर, अपवाद स्वरूव, हड़प्पा की दो पाषाण मूर्तियां और मोहेंजोदड़ो से प्राप्त मिट्टी की बैल की एक आकृति इतनी कलात्मक हैं कि यह निष्कर्ष निकालना समीचीन होगा कि हड़प्पा संस्कृति की उपलब्ध मूर्तियां उस काल की उन्नत कला का समुचित प्रतिनिधित्व नहीं करती और सिंधु सभ्यता की कला के बारे में हमारी जानकारी अधूरी है। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि इन लोगों ने शिल्पाकृतियां अधिकांशतः लकड़ी की बनाई थीं जो नष्ट हो गई हैं। परवर्तीकाल में भारत लकड़ी की कलाकृतियों के लिए विश्वविख्यात रहा है और आश्चर्य नहीं कि यही स्थिति सिंधु सभ्यता के समय भी रही हो। पाषाण मूर्तियों का इतनी अल्प संख्या में प्राप्त होना भी इसी निष्र्व की ओर इंगित करता है। वैसे पत्थर की मूर्तियों का कम संख्या में मिलने का एक कारण यह भी था कि हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो के समीपवर्ती क्षेत्र में पत्थर का अपेक्षाकृत अभाव था। उपलब्ध पाषाण मूर्तियां अलाबस्टर, चूना-पत्थर, सेलखड़ी, बलुआ पत्थर और स्लेटी पत्थर से निर्मित हैं। प्राप्त सभी मूर्तियां खंडित अवस्था में हैं, किसी का केवल सिर मिला है, किसी का केवल धड़ कोई भी मूर्ति ऐसी नहीं जिसका सिर और धड़ दोनों मिला हो।[1] कलात्मक मूर्तियां अल्प हैं किंतु इस बात के निश्चित प्रमाण हैं कि उस काल के कलाकारों में सौंदर्य सृष्टि की पर्याप्त दक्षता थी।

शिल्प कला

मोहेंजोदड़ो से प्राप्त सेलखड़ी पत्थर की एक खण्डित मानव-मूर्ति, जिसका सिर से वक्षस्थल तक का ही भाग बचा है (फ० IX, 1), उल्लेखनीय है। यह सतह से 1.37 मीटर की गहराई पर मिला है और इसलिए यह विदित

---

1. मैके का अनुमान है कि इन्हें जान-बूझ कर तोड़ा गया, किंतु उन्होंने इस बात को बताने में असमर्थता प्रकट की है कि किन लोगों ने और किन कारणों से इन्हें तोड़ा होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होता है कि यह सिंधु सभ्यता के अंतिम चरण के काल का है। इसकी ऊंचाई लगभग 19 सेमी है। नेत्र कुछ लम्बे तथा अधखुले हैं। दृष्टि नासाग्र पर केन्द्रित लगती है। होंठ मोटे हैं। नासिका मध्यम आकार की है। माथा छोटा तथा ढलुआ है। ग्रीवा साधारण से कुछ अधिक मोटी है। मेसोपोटामिया की प्राचीन शिल्प कृतियों में भी अक्सर मोटी गर्दन बनाने का चलन था। मार्शल का विचार है कि इन विशेषताओं से यह किसी व्यक्ति विशेष की रूपाकृति नहीं लगती है, और न ही बसे किसी जाति विशेष का द्योतक मान सकते हैं। किन्तु मैके इसमें कलाकार द्वारा किसी व्यक्ति के यथार्थ रूपांकन की चेष्टा का उदाहरण मानते हैं।

इस मूर्ति का केश विन्यास विशेष रोचक है। पीछे काढ़ी गयी केश राशि मस्तक पर एक फीते से बँधी है। पर कान कुछ विचित्र ढंग से बनाये गये हैं दाढ़ी भली प्रकार कटी है, किन्तु ऊपरी ओंठ पर मूछें मुंडी हैं। उल्लेखनीय है कि प्राचीन मेसोपोटामिया की कलाकृतियों में भी मुंडी मूंछों वाली आकृतियां ही अधिकांशतया बनी थीं। वह एक शाल ओढ़े है जो बाएं कंधे को ढके हुए है; दायाँ हाथ खुला है। परवर्ती काल की कला में भी इसी शैली में शाल ओढ़े मूर्तियां, विशेषतया बुद्ध और बोधिबत्व की, मिलती हैं। शाल पर उभरा हुआ तिपतिया अलंकरण है। इस अलंकरण के भीतर वाले भाग को लाल पेस्ट से भरा गया था। तिपतिया अलंकरण सिंधु संकृति के कुछ मनकों पर भी मिलता है। मिस्र, मेसोपोटामिया और क्रीट में प्राचीन संस्कृति के संदर्भ में इस तरह का अलंकरण देवताओं की आकृतियों पर विशेष रूप से मिलता है। कुछ विद्वानों के अनुसार यह अलंकरण सिंधु सभ्यता के लोगों ने वहीं सीखा। आंखे सीप की बना कर अलग से जड़ी गयी थीं, एक आंख पर सीप के स्पष्ट चिह्न बचे मिलते हैं। इस तरह आंख को जड़ कर बनाने का प्राचीन मिस्र और सुमेर में काफी प्रचलन था। आकृति की दाहिनी भुजा पर भुजबंध है।

उपर्युक्त मूति को सतर्कता तथा सावधानी से गढ़ा गया था। किंतु बनावट में हड़प्पा से प्राप्त लाल पत्थर के धड़ और मोहेंजोदड़ो की कांस्य नर्तकी जैसी स्वाभाविकता का अभाव है। नेत्रगह्वर संकरे बनाये गये हैं। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि मोहेंजोदड़ो से प्राप्त एक नरकंकाल की पहिचान जाति से की गयी है। वाशम तो इसे मंगोल जाति के व्यक्ति की आकृति का रूपांकन होने की संभावना मानते हैं। लेकिन मैके का कहना है कि आंखें मंगोलियन प्रकार की नहीं हैं। केशराशि और चेहरा बाकी भाग के अनुपात में बड़े दिखलाये गये हैं। मोटी ग्रीवा, ऊपरी होंठ मुंड़ा होना और नेत्र गह्वर, वस्त्र के तिपतिया अलंकरण, बाजूबंद और शायद कान भी खचित दिखाना प्राचीन मेसोपोटामिया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की कला में भी मिलता है किंतु मस्तक को ढलुआ दिखाना समकालीन मेसोपोटामिया की मूर्तियों से इसकी विभिन्नता स्पष्ट करता है। दोनों कानों के पीछे बालों के आधार पर धातु के कालर के लिए छेद हैं। इस मूर्ति पर लेप लगाया गया था जो कि उत्खनन के बाद मूर्ति की सफाई करने के लिए धोने से निकल गया। इस मूर्ति को सावधानी से गढ़ने के बावजूद कलाकार द्वारा शारीरिक गठन को स्वाभाविक ढंग से न दिखाने का कोई विशेष कारण हो सकता है। परवर्ती काल में विशेषतया भारत में 'देवी-देवताओं के अंकन में उनकी मानवाकृति के स्वाभाविक रूपांकन के स्थान पर पारंपरिक शैली का सहारा लिया गया और आश्चर्य नहीं कि धार्मिक महत्त्व के कारण सिंधु सभ्यता काल में भी इस मूर्ति को इसी तरह पारंपरिक शैली में वनाया गया हो। मार्शल का कहना है कि पारंपरिक शैली का उदाहरण होने के कारण इस मूर्ति को सिंधु सभ्यता की कला समझने का पैमाना नहीं माना जा सकता। वे इस मूर्ति में परवर्ती योगी रूप में देवी-देवताओं के अंकन का पूर्व रूप पाते हैं।

चूने के पत्थर से निर्मित लगभग 14 सेमी ऊंचाई का एक सिर अत्यधिक भग्न अवस्था में पाया गया है। इस मूर्ति के एक नेत्र में मूर्ति के पत्थर से भिन्न श्वेत पत्थर खचित किया गया था। नाक टूटी है, मुंह भी क्षत-विक्षत है। गर्दन के दोनों ओर हार के लिए छेद है। लगभग 17.8 सेमी लंबा एक अन्य सिर (फ० X, 2) मोहेंजोदड़ो से मिला है। इसमें लहरदार केशों को एक फीते से बांधे और ऊपरी होंठ के मूंछों को साफ कराये दिखाया गया है। इसका चेहरा और कपोल अपेक्षाकृत सुन्दर बनाये गये हैं। केश-सज्जा दिखलाने में विशेष कुशलता प्रदर्शित की गयी है। इस आकृति को कुछ विद्वान किसी व्यक्ति विशेष की रूपाकृति (पोर्ट्रेट) मानते हैं। केवल कान के अंकन में सावधानी नहीं बरती गयी, इन्हें स्वाभाविक न बनाकर शंखाकार दिखाया गया है। चूने पत्थर की एक मूर्ति 14.6 सेमी ऊंची है। यह पूरी तरह नहीं बन पायी है। केशों को इसमें भी पीछे एक चूढ़ (जूड़े) में संवारा गया है। उसकी ठुड्डी पर दाढ़ी के चिह्न नहीं हैं। यह आकृति पुरुष अथवा नारी किसी की भी हो सकती है। मुंह छोटा है होंठ मांसल हैं, आंखों में कुछ जड़ा गया था जो अब नष्ट हो गया है और गड्ढे मात्र शेष रह गये हैं। नाक छोटी है। चेहरे की अपेक्षा खोपड़ी छोटी है।

मोहेंजोदड़ो से अलाबास्टर पत्थर की बनी एक बैठे हुए आदमी को 29.5 सेमी ऊंची मूर्ति प्राप्त हुई है। यह आकृति कटि में पारदर्शी वस्त्र बांधे है। यह बायीं भुजा ढकता हुआ दाहिनी भुजा के नीचे से होता हुआ पारदर्शी पतला शाल ओढ़े है पुरुष का बायां घुटना उठा है और उस पर उसकी बायीं भुजा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

टिकी है। सिर खण्डित है। केशों को गांठ बांध कर दिखाने का प्रयास किया था किंतु किसी कारण से उसे अधूरा छोड़ दिया गया है। बनावट की दृष्टि से यह निम्न कोटि की है। उकड़ू बैठे हुए एक पुरुष की 42 सेमी ऊंची अलाबास्टर पत्थर की बनी मूर्ति प्राप्त हुई है। इसकी भुजाएं दाहिने घुटने पर टिकी हैं। वह स्कर्ट की भांति कोई वस्त्र पहने है। उसकी दाढ़ी दिखाई गई थी किंतु अधिकांश भाग खण्डित है। आंखों का जो कुछ भाग बचा है उससे लगता है कि वे लम्बी और पतली थीं। कान अन्य कुछ मूर्तियों की अपेक्षा ज्यादा अच्छी तरह दिखाये गये हैं। वह केशपाश बांधे हैं जिसके छोर पीछे लटकते दिखलाये गये हैं। इस आकृति के सिर के दो भाग खोदाई में इसके प्राप्ति स्थल से थोड़ी दूर पर पाये गये। यह मूर्ति अंतिम प्रकाल की है।

मोहेंजोदड़ो के उत्खननों से चूने पत्थर की कुछ मूर्तियां उपलब्ध हुई हैं जो अत्यधिक खण्डित अवस्था में हैं। एक 21 सेमी ऊंची घुटने पर हाथ रखे आदमी की खंडित मूर्ति मिली है। उकड़ू बैठे आदमी की एक 21.6 सेमी ऊंची मूर्ति में भुजा घुटनों पर टिकी है। यह मूर्ति दुर्ग के अंतिम स्तर से उस स्थान पर पायी गयी है जहां पर 'पुरोहितों का कॉलेज' भवन स्थित था। यह मूर्ति खण्डित है। इसका सिर केश-पाश से सज्जित था।

मोहेंजोदड़ो से प्राप्त उपर्युक्त मूर्तियां अधिकांशतः ऊपरी स्तरों से मिली हैं। अतः संस्कृति के अपेक्षाकृत बाद के चरणों की हैं। इनमें से तिपतिया डिजाइन का शाल ओढ़े आकृति और कुछ परंपरागत शैली में बैठी आकृतियां देवता की हो सकती हैं। इन ग्यारह मोहेंजोदड़ो की मूर्तियों में से पांच गढ़ी वाले टीले में मिली हैं। मैके का निश्चित मत है कि अधिकांश मूर्तियों पर मूलतः लाल अथवा अन्य किसी रंग का लेप था। मूर्तियों को रंगने की प्रथा अन्य प्राचीन संस्कृतियों में भी प्रचलित थी।

कान को यथार्थ रूप में दिखाने में कलाकार सफल नहीं हुए हैं। 'पुजारी' की मूर्ति में कान को इतना परंपरागत शैली में दिखाया गया है कि यदि इसे सिर के संदर्भ से अलग कर दें तो उसे कान पहचानना कठिन ही नहीं असंभव है। उपर्युक्त मूर्तियों में कोई न कोई अंग ऐसे हैं जिन्हें देख कर लगता है कि मानवाकृतियों के अंकन में इन मूर्तियों के निर्माताओं नें दक्षता नहीं प्राप्त की है। कलाकार ने कुछ मूर्तियों में दाढ़ी दिखायी है जो इस बात का द्योतक है कि उस काल के लोग दाढ़ी रखते थे। इन मूर्तियों से यह भी अनुमान लगता है कि पुरुष लम्वी अलकावली भी रखते थे और बाल की गांठ को सर पर बंधे फीते से संभाले रहते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मानवशास्त्रीय दृष्टिकोण से परीक्षण करने से कुछ आकृतियां दीर्घशिरस्क हैं और कुछ लघुशिरस्क लगते हैं। मैके ने यह भी उल्लेख किया है कि एक को छोड़ कर सभी उदाहरणों में गाल चपटापन लिए हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि आदिम अवस्था में मनुष्य के गाल की हड्डियां उभरी होती हैं और सभ्य होने पर चपटी।

वस्त्रों में शाल दिखाया गया है। दो मूर्तियों में शाल के नीचे भी वस्त्र दिखाये गये हैं। सिंधु सभ्यता के लोग पट्टी (fillet) का प्रयोग करते थे। सुमेर की मूर्तियों पर भी पट्टी दिखायी गयी हैं। केवल इन मूर्तियों से तत्कालीन लोगों की जातिगत विशेषताओं का निर्धारण करना समीचीन नहीं होगा, यद्यपि अन्य साक्ष्यों के समर्थन अथवा विपक्ष में इनके साक्ष्य का भी उल्लेख करना असंगत न होगा। जो सिर मिले हैं वे सभी एक ही तरह की आकृति दिखाने का प्रयास नहीं करते बल्कि वे इस बात की संभावना प्रस्तुत करते हैं कि कलाकार ने उन्हें अलग-अलग आकृतियों (वास्तविक लोगों की अथवा काल्पनिक देवी-देवताओं की) का अंकन करने की चेष्टा में बनाया है।

मोहेंजोदड़ो की मूर्तियों की तुलना समकालीन और लगभग समकालीन मेसोपोटामिया की मूर्तियों से करने पर कुछ समानता और कुछ भिन्नता दिखती है। मोहेंजोदड़ो की मूर्तियों में आंखों को संकुचित दिखाया गया है जिससे वे अधखुली-सी लगती हैं। मेसोपोटामिया में नेत्र गोल और पूरे खुले दिखाए जाते थे। मुख का शेष सिर से अनुपात न होना और ढलुआं मस्तक भी इन्हें मेसोपोटामिया की शिल्पाकृतियों से अलग करता है। दूसरी ओर, मोटी गर्दन और मूंछों का मुंडा होना, दोनों देशों की कला में मिलते हैं। मोहेंजोदड़ो के तीन सिरों में आंखों को उत्खचित दिखाने का स्पष्ट साक्ष्य है। एक में उत्खचन पत्थर का है, दूसरे में सीप का। प्राचीन बेबोलोनिया और मिस्र की कलाकृतियों में आंखों को स्वाभाविक रूप से दिखाने के लिए उत्खचन का प्रयोग सामान्य था। यद्यपि अधिकांश पाषाण-मूर्तियों में नाक क्षतिग्रस्त है तथापि जो भाग बचा है उससे इतना आभास होता है कि नाक विशेष प्रखर नहीं दिखाई गई है। केवल देवता या पुजारी की मूर्ति में ही नाक सुपुष्ट है। सुमेरी कलाकृतियों में अधिकांशतः नाक को सुपुष्ट दिखाया गया है।

हड़प्पा के उत्खननों से पत्थर की दो मूर्तियां उपलब्ध हुई हैं कला के क्षेत्र में शैली और भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से ये काफी हद तक यूनानी कलाकृतियों के समकक्ष रखी जा सकती हैं। दोनों ही मूर्तियां खण्डित हैं। इनमें से एक लाल बलुआ पत्थर का धड़ है जो वत्स द्वारा किये उत्खनन में मिला था (फ० IX, 3)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह एक युवा पुरुष का धड़ है और इसकी रचना में कलाकार ने मानव शरीर के विभिन्न अंगों का सूक्ष्म अध्ययन का प्रमाण दिया है, मूर्ति के शरीर के अंग अत्यंत सजीव तथा स्वाभाविक रूप से गठित हैं और इसी स्वाभाविकता के कारण यूनानी कलाकृतियों के समीप हैं, किंतु इसकी किंचित् तुन्दिलता यूनानी नहीं बल्कि भारतीय शैली के अनुरूप है। यह मूर्ति पूर्णतया नग्न है। कुछ विद्वान् इसमें जैन तीर्थंकरों की कायोत्सर्ग मुद्रा के प्राग् रूप की कल्पना करते हैं। मूर्ति के कंधों और ग्रीवा में छेद हैं जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि सिर और भुजाएं अलग-अलग बना कर यथा-स्थान जोड़ी गयी थीं जो अब उपलब्ध नहीं।

दूसरी स्लेटी चूने-पत्थर की नृत्य-मुद्रा में बनाई गई आकृति का धड़ है (फ० IX, 2) जो दयाराम साहनी द्वारा किये उत्खनन में मिला। इसमें शरीर के विभिन्न अंगों का विन्यास आकर्षक है। इसमें सिर, और भुजा अलग-अलग बना कर उन्हें जोड़ा गया होगा किन्तु अब उनके स्थान के द्योतक केवल छेद ही बचे हैं। यह आकृति दायें पैर (जो काफी हद तक बचा हुआ है) पर खड़ी है और वायां पैर (जो घुटने से ऊपर से ही खंडित है) आगे की ओर कुछ ऊपर उठा हुआ है। ऐसा लगता है मानों ताल के साथ यह गति कर रही हो। पैर के उठने से शरीर के पृष्ठ भाग में जो उतार चढ़ाव आता है वह भी कलाकार की पैनी दृष्टि से छूटा नहीं है। पूरी आकृति में जीवन और गतिशीलता है। मार्शल, मैके, ह्वीलर प्रभृति विद्वानों ने इसे पुरुष आकृति माना है। मार्शल ने तो उस आकृति के शिव नटराज के पूर्वरूप होने की संभावना व्यक्त की थी। उनके द्वारा इस तरह की पहिचान का कारण उनकी यह धारणा थी कि आकृति को मूलतः ऊर्ध्वलिंग दिखाया गया था। उनका यह भी अनुमान है कि गर्दन स्वाभाविक से अधिक मोटी लगती हैं और यह हो सकता है कि आकृति पर सिर (जो अब उपलब्ध नहीं है) एक न होकर तीन रहे हों, यदि ऐसा था तो इसकी पहचान शिव से की जा सकती है। किन्तु क्षीण कटि, भारी नितम्ब तथा अन्य नारी सुलभ अंगों को ध्यान में रख कर डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने इसे नवयौवना नारी की आकृति माना है, जो अधिक समीचीन लगता है। यह उल्लेखनीय है कि मार्शल ने भी इसके अङ्गों में कोमलता दिखाये जाने का

---

1. मैके ने खुदाई में भाग लेने वाले स्थानीय मजदूरों की आंखों का निरीक्षण कर यह पाया कि वे इन शिल्पाकृतियों में दिखाई आंखों की तरह अधखुली थीं। उनके अनुसार भारत के अन्य क्षेत्रों में यह बात नहीं मिलती। उन्होंने यह मत व्यक्त किया कि संभवतः ये लोग इस प्रदेश में सिंधु सभ्यता के किसी जाति के लोगों के वंशज हों।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उल्लेख किया है। तत्कालीन मेसोपोटामिया की संस्कृतियों में मंदिरों में नर्तकियां रहती थीं। ऐसी ही परम्परा देवदासी के रूप में हाल ही तक दक्षिणी भारत के कुछ मंदिरों में प्रचलित थी। हो सकता है कि हड़प्पा संस्कृति में भी ऐसी ही कोई प्रथा रही हो।

निश्चय ही ये दोनों मूर्तियां सिंधु सभ्यता की अन्य मूर्तियों से, जो कला की दृष्टि से अपेक्षाकृत निम्नकोटि की हैं। अत्यंत भिन्न है। जब ये दोनों मूर्तियां उद्घाटित हुई तो कलाविदों में सनसनी फैल गयी। अब तक यही धारणा थी कि यूनानी कला को ही सर्वप्रथम यथार्थ रुपांकन का श्रेय है भारत में ऐतिहासिक काल में जो मूर्तियां मिली हैं उनमें परंपरा का ही निर्वाह अधिक मिलता है, यथार्थता की ओर कलाकारों का ध्यान कम गया। और यह आशा नहीं की जाती थी कि भारत के पुरैतिहासिक कलाकारों ने कला के ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किये होंगे जैसे कि ग्रीक कलाकारों ने परवर्ती काल में किये। आज भी कुछ लोग इनके सिंधु सभ्यता-कालीन होने पर संदेह व्यक्त करते हैं, किन्तु मार्शल ने अकाट्य तर्कों से इनके सिंधु सभ्यता का होना सिद्ध कर दिया है। मार्शल के मुख्य तर्क इस प्रकार हैं :—(1) लाल बालुए पत्थर की मूर्ति सतह से 1.470 मीटर की गहराई पर तीसरे स्तर पर मिला है और दूसरी स्लेटी चूना-पत्थर की मूर्ति अन्य क्षेत्र में चौथे या पांचवें स्तर से। ये दोनों ही सतह से काफी नीचे मिली हैं। यह तर्क दिया जा सकता है कि ये दोनों सिंधु सभ्यता के बाद के काल की हैं और सतह की भूमि में कुछ परिवर्तन किये जाने के कारण किसी तरह इतनी गहराई तक चली गईं। किंतु ऐसी दशा में यह सोचना स्वाभाविक है कि केवल यही दो नहीं परवर्ती काल की कुछ अन्य वस्तुएं उसी तरह भूमि के अन्दर चली गयी होंगी। किंतु वास्तव में ऐसा नहीं है। दोनों मूर्तियां तथा उनके साथ मिले सभी उपकरण सिंधु सभ्यता के काल के हैं, एक भी वस्तु परवर्ती काल की नहीं। यही नहीं, वत्स का कहना है कि जिस टीले में यह मिली हैं, उसकी सतह से भी कोई पुरैतिहासिक काल के बाद का उपकरण नहीं मिला है। (2) यह सही है कि हड़प्पा के पास न तो स्लेटी चूना पत्थर है और न लाल बलुआ पत्थर; किंतु पुरैतिहासिक काल में वहीं के लोग अन्यत्र से मँगा कर विभिन्न प्रकार के पत्थरों का प्रयोग करते रहे, जबकि इण्डोग्रीक, सीथियन और पार्थियन राजाओं के काल में इस तरह के पत्थर के प्रयोग का एक भी उदाहरण नहीं मिलता; (3) हाथ और सिर को अलग से बना कर मूर्ति में छेद करके जोड़ने की शैली और पत्थर में कंधे के समीप खचित करने के उद्देश्य से किये गये नालीदार बर्मे से छेद और स्लेटी चूने पत्थर में वक्ष के चूचुक भी खचित किये जाने की परंपरा ऐतिहासिक काल की कला में नहीं मिलते; (4) यह सही है कि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शरीर के विभिन्न अंगों के यथार्थ अंकन यूनानी कलाकृतियों की ही मुख्य विशेता है और भारतीय संदर्भ में गंधार कलाकृतियों में यूनानी प्रभाव निश्चित रूप से परिलक्षित होता है फिर भी गंधार कलाकृतियां मूल यूनानी कलाकृतियों से कुछ भिन्न हैं। इनमें एक भी उदाहरण ऐसा नहीं है जिसकी सजीवता की दृष्टि से मूल यूनानी कलाकृतियों से तुलना की जा सके। अतः इन दो कलाकृतियों को गंधार कला की कृति मानना समीचीन नहीं लगता। दूसरी ओर मुद्राओं पर अंकित पशु आकृतियां विशेषतः बैल (और इस संदर्भ में मार्शल की मुद्रा 337 विशेष उल्लेखनीय है) की आकृतियों को देखने से बरबस यह धारणा बनती है कि जो लोग पशु का इतना सुंदर, सजीव और गतिशील रूपांकन कर सकते थे वे मानवाकृति का भी उसी शैली में रूपांकन कर करने में सक्षम रहे होंगे। फिर इन दो कलाकृतियों की निर्माण-शैली में कुछ भारतीय तत्व भी हैं। सरसी कुमार सरस्वती का कहना है कि शैली की दृष्टि से लाल बलुए पत्थर के धड़ की कुषाणकालीन शिल्पाकृतियों से भी कुछ समानता है। आकृति में गड्ढे छोड़ कर फिर उस स्थान पर किसी वस्तु को खचित करने का उदाहरण सिंधु सभ्यता में हमें मोहेंजोदड़ो से प्राप्त पुरोहित की मूर्ति, जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है, में भी मिलता है, और अब तक किसी भी विद्वान् ने इस मूर्ति के सिंधु सभ्यता के होने पर लेशमात्र भी संदेह नहीं किया है।

पाषाण पशु-मूर्तियां

पाषाण निर्मित पशुओं की मूर्तियां अत्यल्प संख्या में मिली हैं। मोहेंजोदड़ो से एक 25.4 सेमी ऊंची ऐसी पत्थर की मूर्ति पाई गई है, जिसमें मेंढ़े के सींग और शरीर दिखाया गया हैं और हाथी जैसी सूँड भी। सिर भली-भांति बना है और इस बात की संभावना है कि मानव सिर दिखाया रहा हो। मुद्राओं पर इस तरह के विभिन्न जानवरों के अवयव लेकर आकृति बनाने के अनेक उदाहरण हैं। एक मेंढ़े की, और एक अन्य आकृति (वह भी संभवतः मेंढ़े की है) साधारण कोटि की हैं। मोहेंजोदड़ो से एक सेलखड़ी का एक कुत्ता बहुत सुंदर बना है और आजकल के मैस्टिफ (mastiff) नस्ल के कुत्ते से बिल्कुल मिलता-जुलता है।

कांस्य मूर्तियां

हड़प्पा संस्कृतिकालीन कांस्य मूर्तियों में सर्वाधिक कलात्मक नर्तकी की मूर्ति है (फ० X, 1) मोहेंजोदड़ो के एच आर क्षेत्र से उपलब्ध यह मूर्ति 14 सेमी ऊंची है। यह टखनों से नीचे खण्डित है। आकृति नग्न है। बायीं भुजा,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जो कंधे से लेकर कलाई तक चूड़ियों से भरी है, में एक पात्र है। वह सहज भाव से नृत्य करती प्रतीत होती है। उसकी दाहिनी भुजा कटि पर अवलंबित है और इसमें केवल थोड़ी-सी चूड़ियां हैं। इस हाथ के हाव-भाव दिखाने के लिए अपेक्षाकृत अधिक प्रयुक्त होने के कारण ही इसमें दूसरे हाथ की अपेक्षा काफी कम चूड़ियां हैं। सिर थोड़ा-सा एक ओर झुका हुआ है। केशराशि पीछे की ओर एक वेणी में सँवार कर दाहिने कंधे पर लटकती छोड़ दी गई है। कण्ठ कण्ठाभरण से शोभित है।

इस मूर्ति में नारी अंगों का न्यास सुन्दर रूप से हुआ है। दुपली-पतली गात यष्टि और क्षीण-कटि एवं अभ्यानत जंघाएं परवर्ती भारतीय साहित्य में वर्णित और कला में अंकित आदर्श नारी सौन्दर्य का परिचायक है। आकृति को उद्दीपक ढंग से दिखाया गया है। मुखाकृति विशेष आकर्षक नहीं है। नेत्र बड़े हैं और उन्हें गहरे निशान से अभिव्यक्त किया गया है। नासिका का चपटापन, ओंठ का भारीपन तथा बायीं भुजा का अनेक चूड़ियों के भार से बोझिल होना भी सौंदर्य-सृष्टि में बाधक माना जा सकता है। एक पूरी बांह को चूड़ियों से भरना किसी धार्मिक परंपरा का सूचक हो सकता है। मार्शल के अनुसार इस कांस्य-मूर्ति के अंग-सौष्ठव को देखने से लगता है कि इसमें किसी आदिवासी युवती के रूपांकन की चेष्टा की गई है। इसकी शारीरिक गठन की विशेषताओं के आधार पर कुछ ने इसको दक्षिण-भारतीय नारी से प्रेरित कलाकृति माना है। पिगट ने इस आकृति की तुलना कुल्ली (बलूचिस्तान) में प्राप्त मिट्टी की नारी आकृतियों से की है और इसे बलूची नारी पर आधारित माना है। उनका कहना है कि शायद सिंधु सभ्यता के व्यापारी व्यापार के संदर्भ में बलूचिस्तान के मार्ग से लौटते समय मनोरंजन के लिए बलूचिस्तान में नृत्य-नाटिका देखते रहे होंगे और शायद किसी नर्तकी को अपने साथ ही ले आये होंगे। उनके मत में ऐसी ही कोई नर्तकी मोहेंजोदड़ो की इस कांस्य मूर्ति का माडल रही होगी।

इस मूर्ति का निर्माण द्रवी मोम विधि से हुआ है। इसका निर्माण एक ही प्रयास में होने से इसमें पर्याप्त स्वाभाविकता आ गयी है। और इसीलिए पत्थर की मूर्तियों की अपेक्षा (हड़प्पा के दो कलात्मक धड़ों को छोड़ कर) यह कांस्य-मूर्ति कुछ अधिक प्रभावशाली बन पड़ी है। कार्लटन ने सजीवता एवं गतिशीलता के लिए इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। यद्यपि शरीर को उतनी यथार्थता के साथ नहीं दिखाया गया जितना कि हड़प्पा के उपर्युक्त दो पत्थर के धड़ों में दिखाया गया है, तथापि इसके निर्माण में उनकी ही जैसी कला-भावना की प्रेरणा लगती है। और इसका निश्चित रूप से हड़प्पा संस्कृति की मूर्ति होना हड़प्पा के उन दो शिल्पाकृतियों को भी हड़प्पा संस्कृति की ही सिद्ध करने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में एक और साक्ष्य प्रस्तुत करता है। मोहेंजोदड़ो से ही एक और नर्तकी की कांस्य-मूर्ति मिली है। यह उपर्युक्त कांस्य नर्तकी की मूर्ति से कला की दृष्टि

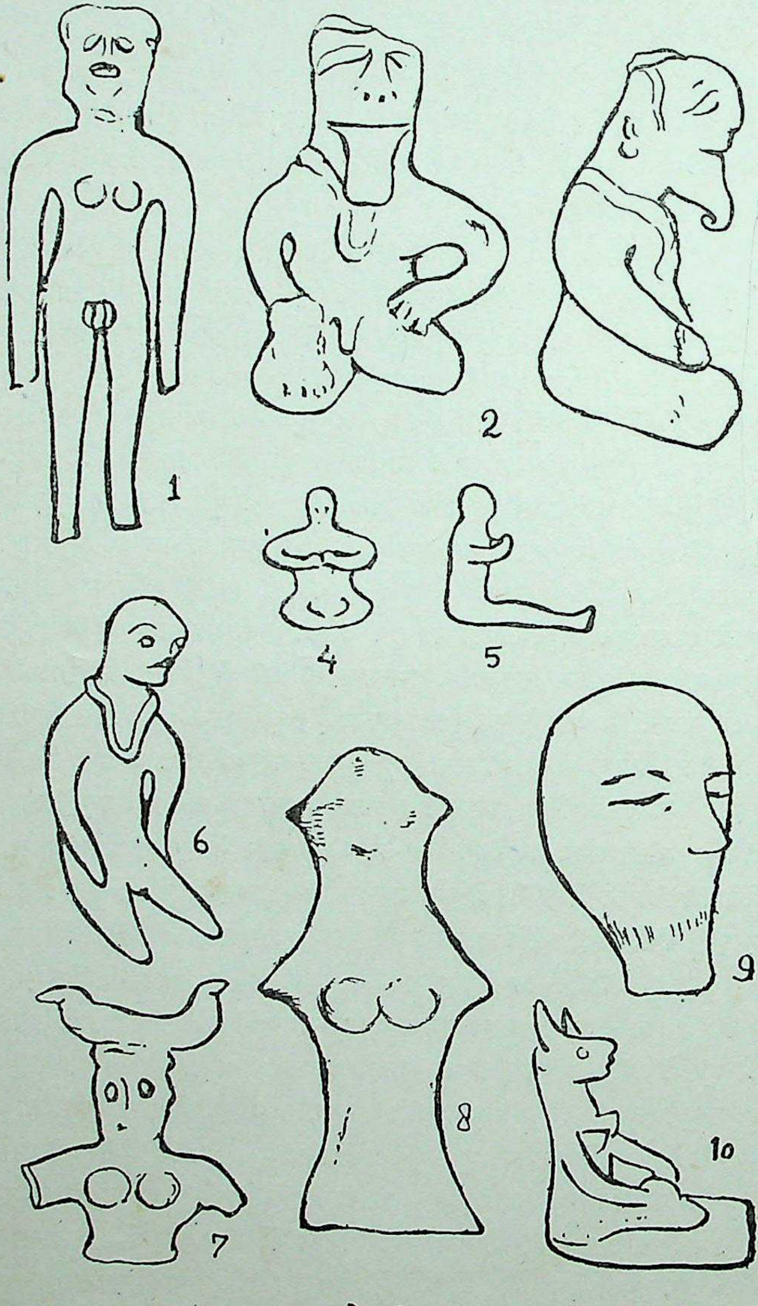

आरेख 6

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से निम्न कोटि की है। कांस्य की किसी मूर्ति वा केवल पैर ही मिला है जो भली-भांति बनाया गया है। यदि पूरी आकृति प्राप्त होती तो अनुमानतः वह बहुत सुन्दर होती।

मोहेंजोदड़ो से कांसे की कुछ पशुओं की भी आकृतियां मिली हैं। इनमें भैंसा (फ० XV, 2) और मेढ़ा (अथवा बकरा) की आकृतियां विशेष उल्लेखनीय हैं। क्रोध में तिरछे देखते हुए भैंसे की आकृति कला का उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करती है। लोथल में भी तांबे के पक्षी, बैल, खरगोश और कुत्ते की आकृतियां मिली हैं (आरेख 6)। लेकिन इनमें तांबे का एक कुत्ता कला की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है। हड़प्पा से एक 5.08 सेमी ऊंची तांबे की इक्का-गाड़ी मिली है; और चन्हुदड़ो से तांबे से बने गाड़ियों के दो माडल उपलब्ध हुए हैं।

जैसा कि पिगट ने कहा है, सिंधु सभ्यता के लेखों के समान ही उस सभ्यता की शिल्पाकृतियों में विशालता या सार्वजनिक प्रयोग किये जाने का अभाव है। यह लघु हैं और इनका प्रयोग व्यक्तिगत देव स्थानों में ही हुआ होगा, सार्वजनिक मंदिरों में नहीं। पिगट के मतानुसार अन्य कई साक्ष्यों की भांति इनसे भी हड़प्पा सभ्यता के लोगों का निजीयता या कहना चाहिए गोपनीयता के प्रति विशेष लगाव होने का ही अनुमोदन होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 5

मृण्मूर्तियां

मिट्टी की सर्वत्र-सुलभता, आकृतियों के निर्माण में धातु एवं पत्थर से अधिक आसानी और कम खर्च के कारण प्रायः सभी प्राचीन संस्कृतियों में मृण्मूर्ति-कला लोकप्रिय रही। हड़प्पा संस्कृति में उपलब्ध शिल्प आकृतियों में सर्वाधिक संख्या मृण्मूर्तियों की ही है। ये मूर्तियां मानव और पशुओं की हैं। जहां तक मानव आकृतियों का प्रश्न है, मोहेंजोदड़ो में नारी मृण्मूर्तियों की तुलना में पुरुष मूर्तियां बहुत कम मिली हैं। हड़प्पा में भी नारी आकृतियां ही अधिक हैं, किन्तु पुरुष आकृतियां मोहेंजोदड़ो की तुलना में कहीं अधिक हैं, (लगभग नारी आकृतियों की आधी) मानव आकृतियां उसी तरह की नदी द्वारा लाई मिट्टी से बनी हैं जिस तरह की मृद्भांडों के बनाने में प्रयुक्त की गई है। सिंधु सभ्यता की प्रायः सभी मृण्मूर्तियां हाथ से बनाई गई हैं। अपवाद स्वरूप कुछ मुखौटे हैं जिन्हें सांचे से बनाया गया था।

मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा में जो नारी आकृतियां मिली हैं (फ० XI; XII) वे करधनी से नीचे और घुटने से ऊपर स्कर्ट की तरह के वस्त्र पहने हुए दिखाई गई हैं, शेष शरीर बिल्कुल नग्न है। समकालीन मेसोपोटामिया और अन्य देशों की संस्कृतियों में अधिकांशतः इस तरह की मृण्मयी नारी आकृतियों का नग्न अंकन मिलता है। सिर पर पंखाकार शिरोभूषा है जिसके दोनों ओर प्यालेनुमा आकार बनाये गये हैं। प्यालेनुमा वेशभूषा वाली आकृतियां नीचे के स्तरों में कम और ऊपर के स्तरों में अधिक मिली हैं। मैके का कहना है कि शायद उस काल में नारियां इससे मिलती जुलती शिरोभूषा पहनती थीं और एशिया माइनर के अदालिया (Adalia) से कुछ प्राचीन मूर्तियों की शिरोभूषा भी बहुत कुछ पंखाकार है। कुछ में इन्हें सर से बांधा हुआ दिखाया गया है। इनके चेहरे पर दोनों ओर एक एक शंकु बने हैं जो वास्तविक रूप में शिरोभूषा के अंग हैं न कि चेहरे के। इस शंक्वाकार सोने का आभूषण उत्खनन में मिला हैं जिससे यह अनुमान लगाया ज़ा सकता है कि आकृतियों में सोने का आभूषण दिखाने का ही अभिप्राय था। इन मिट्टी की मूर्तियों में नारी आकृतियों को खूब लम्बी-लम्बी कई लड़ी वाले हार पहने दिखाया गया हैं। हारों में अलग-अलग मनके दिखाने का प्रयास किया गया है। करधनी भी मनकों की ही बनी लगती है। गले पर अत्यंत अलंकृत हँसली है। अधिकांश मूर्तियों के हाथ और पैर टूट

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गये हैं लेकिन जिनमें बच गये हैं उनमें उन्हें हाथों में भुजबंद और पावों में कड़े पहने दिखाये गये हैं। इन मूर्तियों का एक ही परंपरा के अनुसार निर्मित होना और उनके अत्यधिक अलंकृत शिरोभूषा और आभूषण इस बात के द्योतक लगते हैं कि वे धार्मिक महत्त्व की थीं। विद्वानों का मत है कि ये मातृदेवी की मूर्तियां हैं, जिसकी पूजा अन्य प्राचीन सभ्यताओं में भी प्रचलित थीं। इस संदर्भ में यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि इस तरह के वेशभूषा और आभूषणों से अलंकृत मातृदेवी की मूर्तियां मुख्यतः हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो में ही पायी गयी हैं, सिंधु सभ्यता के कुछ स्थलों पर तो नारी आकृतियां मिली ही नहीं हैं। लोथल जैसे महत्त्वपूर्ण नगर से भी नारी मृण्मूर्तियां अत्यंत अल्प संख्या में मिली हैं, उनका आकार प्रकार भी हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो में प्राप्त नारी मृण्मूर्तियों से भिन्न है। लोथल की एक नारी मृण्मूर्ति का धड़ मिला है जिसमें मोहेंजोदड़ो की नारी मूर्तियों की अपेक्षा कहीं अधिक सजीवता दिखती है। लोथल से ही प्राप्त एक नारी मृण्मूर्ति को कुल्ली की मृण्मूर्तियों की तरह सिर से कमर के पास तक ही बनाया गया था। मोहेंजोदड़ो की मूर्तियों की तरह अलंकरण का इनमें अभाव है। कुछ मृण्मूर्तियों में नारी को आटा सानते दिखाया गया है। हड़प्पा से एक नारी आकृति को, जो खंडित अवस्था में है, तीन पाये वाली कुर्सी पर बैठा दिया गया है। कभी-कभी नारी के पेट को काफी बड़ा दिखाया गया है जो निश्चय ही उसे गर्भवती दिखाने के उद्देश्य से किया गया है। कुछ में नारी को शिशु के साथ दिखाया गया है। शिशु या तो कूल्हे पर दिखाया गया है या वक्षस्थल पर दुग्धपान करता हुआ। कुछ में नारी पक्षी पकड़े दिखायी गयी है, इस तरह का अभिप्राय ऐतिहासिक काल में काफी प्रचलित था। कभी-कभी नारी आकृतियों के सिर पर कुछ दिखाया गया है, यथा सींग जैसी वस्तु अथवा चपाती जैसी वस्तु। कुछ उदाहरणों में नारी को तख्ते पर लेटा दिखाया गया है। जिन मूर्तियों में उत्पादिका शक्ति को स्पष्ट करने का प्रयास है वे तो निश्चय ही मातृदेवी की मूर्तियां लगती हैं। लेकिन जो साधारण प्रकार की नारी आकृतियां हैं वे बच्चों के खिलौने भी हो सकती थीं।

उपर्युक्त मातृदेवी की मूर्तियां कला की दृष्टि से आदिम प्रकार की हैं। मातृदेवी के चेहरे कुरूप हैं, यद्यपि उनमें भयानकता अथवा रौद्र रूप दिखाने का प्रयास नहीं लगता। आकृतियों के शरीर के कुछ अवयवों, यथा आंख, कुच को अलग-अलग बना कर उन्हें शरीर में यथास्थान पर जोड़ दिया गया था। इनके आभूषण भी अलग से चिपका कर लगाये गये थे। प्रायः सभी मानव मृण्मूर्तियों में आंखों के स्थान पर गोल टिकली चिपका दी गयी हैं। अत्यंत अल्प उदाहरण ही ऐसे हैं जिनमें इन टिकलियों में आंखें स्पष्ट करने के लिए लकीरें डाली गई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं। लेकिन इस बात की संभावना है कि मूलतः ये मूर्तियां रंगी गई थीं, और आंख की पुतली को अलग रंग से स्पष्ट रूप से दिखाया गया हो। आंखों की पुतलियों को इस तरह लकीरों द्वारा दिखाने की प्रथा प्राचीन मेसोपोटामिया में विशेष रूप से प्रचलित थी। पुरुष आकृतियों में तो आंखें, बिना अपवाद के, विभिन्न भागों को स्पष्ट किये बिना ही छोड़ दी गयी हैं। गीली मिट्टी की टिकली चिपका कर उसमें बीच में लगीर लगा कर मुंह और होंठ दिखाये गये हैं। प्राचीन किश की मूर्तियों में मुंह दिखाने का प्रयास बहुत कम उदाहरणों में मिलता है, और जहां मुंह दिखाने का प्रयास किया भी है वहां होंठ न दिखा कर केवल लकीर उत्कीर्ण कर मुंह होने का आभास दिया गया है। सिंधु मृण्मूर्तियों में नासिका अलग से गीली मिट्टी चिपका कर नहीं बल्कि मुंह के ऊपर के भाग में मिट्टी को चुटकी से दबा कर बीच में उभार दे कर बनायी गयी है जो चोंच जैसी लगती है। कुछ मृण्मूर्तियों पर लाल रंग के चिह्न मिलते हैं। यह अनुमान लगाया जाना स्वाभाविक है कि इनमें से अनेक मूर्तियां मूलतः लाल रंग से रंगी रही होंगी।

पुरुष आकृतियां

पुरुष मृण्मूर्तियां, बहुत थोड़े अपवादों को छोड़ कर, प्रायः सभी नग्न हैं। कुछ मूर्तियां खड़ी दिखायी गयी हैं, कुछ बैठी। बैठी आकृतियां घुटनों को भुजाओं से घेरे दिखाई गई हैं या फिर उन्हें हाथ जोड़े दिखाया गया है। कुछ पुरुष आकृतियां तंग-सी टोपी पहने हुए हैं, लेकिन यह भी संभव है कि ये टोपी न होकर बाल दिखाने के प्रयास हों। वत्स को हड़प्पा के उत्खनन में एक विशिष्ट पुरुषाकृति मिली जिसका दाहिना भाग खंडित होने के कारण अनुपलब्ध है। यह मूलतः कुर्सी पर बैठी दिखाई गई थी। इसकी आंखें कुछ लम्बी हैं, मस्तक ढलुआं है, नाक काफी उभरी है। बाल चार लटों में दिखाए गए हैं। यह नर आकृति अन्य नग्न आकृतियों के विपरीत तहमद (kilt) पहने है जिस पर कुछ उभरे हुए डिजाइन हैं। वह चार लड़ी का हार भी पहने है। वत्स का कहना है कि उभार लिए दाने वास्तविक जीवन में धातु से अलंकृत वस्त्र पहने जाने के परिचायक हैं। पुरुषाकृतियों को सींगयुक्त दिखाया गया है।

सिंधु सभ्यता के मूर्तिकारों द्वारा कुछ ऐसी आकृतियों का भी निर्माण हुआ है जिनकी शक्लें विदेशी लगती हैं। (फ० XIII, 1) इस दृष्टि से मोहेंजोदड़ो में अन्नागार के समीप 1950 के उत्खननों में पायी गयी पुरुष मृण्मूर्ति महत्त्वपूर्ण है। इसका शरीर कुछ चपटा है। नासिका लम्बी और उत्तरोत्तर ढालू है। ठुड्डी मांसल है, किंतु उस पर केश नहीं हैं। इस मूर्ति में सेमेटिक जाति के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुरुष के से शारीरिक लक्षण विद्यमान हैं। यह धार्मिक आकृति नहीं लगती। लेकिन डी के क्षेत्र से प्राप्त एक सींग वाली आकृति शायद देवता की है। मोहेंजोदड़ो के एच आर क्षेत्र से प्राप्त पुरुष मृण्मूर्ति को आभूषण पहने दिखाया गया है जिससे ज्ञात होता है कि पुरुष भी नारियों की तरह के आभूषण पहनते थे। कालीबंगां से प्राप्त एक मिट्टी का मानव-सिर इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय है। इसमें माथा पीछे की ओर ढलुआं, गालों की हड्डियां उभरी हुई तथा ठुड्डी कुछ आगे निकली हुई है। नाक सीधी और नुकुली है, नीचे का होंठ साधारण से थोड़ा अधिक मोटा है। आंखें बादाम के आकार की हैं। मोहेंजोदड़ो तथा हड़प्पा की कुछ मृण्मूर्तियों की दाढ़ी के बाल भी दिखाये गये हैं। इस तरह की एक पुरुष की प्रसन्न-मुद्रा प्रभावशाली है। एक मृण्मूर्ति की छोटी दाढ़ी बहुत कुछ मिस्र देश की कलाकृतियों में दिखाई दाढ़ी से मिलती है। मैके का कहना है कि केवल दाढ़ी की समानता के आधार पर ही इस आकृति को मिस्र देश के किसी व्यक्ति की आकृति मानना ठीक नहीं होगा। लोथल की खुदाइयों से दो महत्त्वपूर्ण मृण्मूर्तियां प्रकाश में आयी हैं। एक में दाढ़ी लगभग वर्गाकार कटी है, और नाक तीखी है। शि० रंगनाथ राव के अनुसार यह सुमेरी पाषाणमूर्तियों, (विशेषतः मारी से प्राप्त मूर्तियों) से बहुत मिलती-जुलती है। असीरिया में इस तरह दाढ़ी के केश रखने की प्रथा लोकप्रिय थी। दूसरा उदाहरण एक मृण्मय 'ममी' का है। मिस्र में शवों को इसी तरह के खोल में रख कर दफनाया जाता था। ये दोनों मूर्तियां विदेशी संपर्क की द्योतक लगती हैं। इस संदर्भ में मोहेंजोदड़ो की दो सिर वाली मृण्मूर्ति का भी उल्लेख करना समीचीन होगा। इसके दोनों चेहरे समान हैं और एक ही सांचे से बने हैं। यह मूर्ति कण्ठ से नीचे खण्डित है। वैसे मेसोपोटामिया और मिस्र में क्रमशः मर्दुक और आमून की मूर्तियों में उन्हें दो चेहरे वाला दिखलाया गया है। ग्रीक रोमन देव-शास्त्र में जेनस की दो सिरों वाली आकृति के रूप में कल्पना की गयी है। संभवतः दो सिर दिखाये जाने का अभिप्राय देवता द्वारा भूत और भविष्य पर दृष्टि रखने की क्षमता को दिखाता था। चूंकि मिस्री सभ्यता की अपेक्षा मेसो-पोटामिया की संस्कृति से सिंधु संस्कृति के बीच सीधा संपर्क होने के पुष्ट प्रमाण उपलब्ध हैं, अतः इस मूर्ति की मेसोपोटामिया के देवता मर्दुक अथवा उससे मिलते-जुलते हड़प्पा संस्कृति के किसी देवता के होने की पर्याप्त संभावना है। यों एक तरह के सिर दिखाने से यह भी असंभव नहीं कि एक ही देवता के दो स्वरूप दिखाने का अथवा उसके ही पुरुष और स्त्री रूप दिखाने का प्रयास किया गया है।

मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा से सांचे द्वारा बने मिट्टी के शृंगयुक्त चेहरे पाये गये हैं (फ० XIII, 2) ये मुखौटे पीछे की ओर से खोखले हैं और इनके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किनारे पर छेद थे। निश्चित रूप से पीछे का हिस्सा दिखाने के लिए अभिप्रेत नहीं था। उर में शवों पर धातु से बने मुखौटे लगाए जाते थे। यह कहना कठिन है कि इनका उपयोग नाटक के मुखौटों के रूप में होता था। मैके की धारणा है कि इनका धार्मिक महत्त्व था। मोहेंजोदड़ो के डी के क्षेत्र से प्राप्त एक श्रृंगी पुरुष की आकृति को देवता पहचाना गया है। वहीं से प्राप्त एक बैठी हुई मृण्मूर्ति इसी तरह की बैठी पाषाण शिल्प-मूर्तियों की याद दिलाती है।

मोहेंजोदड़ो में पुरुष और नारी आकृतियां, दोनों ही अत्यधिक खण्डित अवस्था में पायी गयी हैं। इन भली-भांति पकाई गई मूर्तियों का खण्डित अवस्था में पाया जाना, जब कि मेसोपोटामिया में अधिकांश मूर्तियां बहुत कुछ सुरक्षित रूप में मिली हैं, मैके के अनुसार इस बात का द्योतक है कि इन्हें जान-बूझ कर तोड़ा गया है। इस संबंध में मैके ने दो सुझाव दिये हैं—या तो किन्हीं बाहरी आक्रमणकारियों ने, जो इनसे भिन्न प्रकार के धर्म का पालन करने वाले अथवा मूर्ति पूजा के प्रवल विरोधी थे, इन्हें तुड़वाया, या यहीं के लोगों ने धार्मिक विश्वासों में परिवर्तन होने के कारण, स्वयं ही इन्हें तुड़वा दिया। दोनों ही सुझावों को मानने में कठिनाइयां हैं। मिस्र के अख्नातन नामक राजा ने, जो अपने दार्शनिक विचारों के लिए सुप्रसिद्ध है, अपने राज्य में अनेक मूर्तियों को तुड़वाया था। तो क्या कोई ऐसा ही दार्शनिक शासक सिंधु सभ्यता में भी हुआ? लेकिन धार्मिक क्षेत्र में कितना भी राजनियंत्रण रक्खा जाय, ये छोटी-छोटी मिट्टी की मूर्तियां इस तरह की निषेधाज्ञा से ही लोगों ने तोड़ दी हों ऐसा मानने में हिचक होना स्वाभाविक है। अधिक संभावना यह है कि इन्हें घरों के पूजा ठौर में रखा जाता था और कुछ अवसरों पर बाहर भी निकाला जाता था। जब ये टूट जाती थीं तो इन्हें कूड़े की तरह फेंक दिया जाता था।

मोहेंजोदड़ो से घुटने के बल चलते हुए दो बच्चों की मूर्तियां मिली हैं। इन्हें आभूषण पहने दिखाया गया है। मैके का कहना है कि इनका भी धार्मिक महत्त्व था। कुछ मानव-मृण्मूर्तियों के आकार-प्रकार से ऐसा लगता है कि उनका उपयोग खेल की गोटी की तरह भी हो सकता था।

पशु-मूर्तियां

(आरेख 7-8)

सिंधु सभ्यता की पशु-मूर्तियां मानव-मूर्तियों से कहीं अधिक संख्या में पाई गई हैं। ऐसा अनुमान है कि मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा में पशुमूर्तियों की संख्या पूरी मूर्तियों की संख्या के तीन चौथाई हैं। अधिकांश पशु-मूर्तियां मिट्टी की ही बनी हैं। इनके लिए प्रयुक्त मिट्टी मानव मूर्तियों के लिए प्रयुक्त मिट्टी की तरह की ही है। कांचली मिट्टी की बनी पशु-मूर्तियों की संख्या भी कम नहीं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अल्प संख्या में पशु-मूर्तियां सेलखड़ी, सीप और हड्डी की भी बनी हैं। हड़प्पा की पशु-मूर्तियों में मोहेंजोदड़ो की पशु मृण्मूर्तियों से अधिक विविधता मिलती है।

कुछ मूर्तियां तो बहुत साधारण कोटि की हैं और इनमें अधिकांश बच्चों के खिलौने हो सकते हैं। कुछ तो स्वयं बच्चों के ही बनाये लगते हैं। कभी-कभी पशु के विभिन्न अंगों को अनुपात में नहीं बनाया गया है। खरगोश की पूंछ को काफी लम्बा दिखाया गया है जब कि बैल की पूंछ को बहुत छोटा। लेकिन कुछ मूर्तियां ऐसी हैं जिनके निर्माता काफी कुशल कलाकार थे और उन्होंने यत्न-पूर्वक इन्हें बनाया है।

मोहेंजोदड़ो में छोटे सींग और बिना कूबड़ के बैल की मूर्तियां सर्वाधिक संख्या में हैं, और उसके बाद कूबड़ वाले बैल की। दूसरी ओर हड़प्पा में संख्या की दृष्टि से कूबड़ वाले बैल की मूर्तियों के बाद बिना कूबड़ वाले बैल का नंबर है। वृषभ के बाद मोहेंजोदड़ो में मेढ़े की आकृत्तियां सर्वाधिक मिली हैं और फिर गेंडे की, लेकिन हड़प्पा में गेंडे की आकृत्तियां मेढ़े की अपेक्षा अधिक मिली हैं। अन्य पशुओं में महिष, हाथी, बाघ, बकरा, कुत्ता, सुअर, खरगोश, गिलहरी, सांप आदि हैं। एक उदाहरण में कुत्ता खरगोश को पकड़े हुए है। जलचरों में घड़ियाल, कछुआ और मछली की आकृतियां हड़प्पा से मिली हैं। हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो में गाय की आकृतियां नहीं मिलतीं। राव ने लोथल से दो गाय की मृण्मूर्तियों के मिलने का उल्लेख किया है।

हड़प्पा से एक काल्पनिक पशु के एक ही गर्दन से दो सिर निकलते दिखाए गए हैं। इस मृण्मूर्ति का धार्मिक महत्त्व लगता है। लोथल से प्राप्त एक मृण्मूर्ति में मानव शरीर और पशु का सिर दिखाया गया है। इसी स्थल से प्राप्त एक गोरिल्ला की आकृति के रूपांकन में पर्याप्त यथार्थता दिखती है।

कई प्राचीन सभ्यताओं में बैल शक्ति का प्रतीक माना गया है और शायद सिंधु सभ्यता में भी उसका यही महत्त्व था। छोटे सींग वाला बैल कभी तो गर्दन में मालाओं से लदा है और कभी सिर कुछ नीचे झुकाए है, जैसा कि उसे मुद्राओं पर भी दिखाया गया है। मोहेंजोदड़ो से प्राप्त एक छोटे सींग वाले बैल की आकृति (फ० XIV, 1) कला की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उसका मांसल शरीर और भावभंगिमा विशेष आकर्षक है और कलाकार की दक्षता का परिचायक है। कला की दृष्टि से इसकी तुलना किसी भी काल की कला के उत्तम उदाहरणों से की जा सकती है। मार्शल का कहना है कि इसके निर्माता में महान् कलाकार होने की पूरी संभावना थी। इसी स्थल से बैल की एक और कलात्मक मृण्मूर्ति मिली है (मैके, फ० LXXIX, 30) जो मैके ने मार्शल द्वारा वर्णित उपर्युक्त बैल (फ० XCVII, 23) से भी श्रेष्ठ बतलाई है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

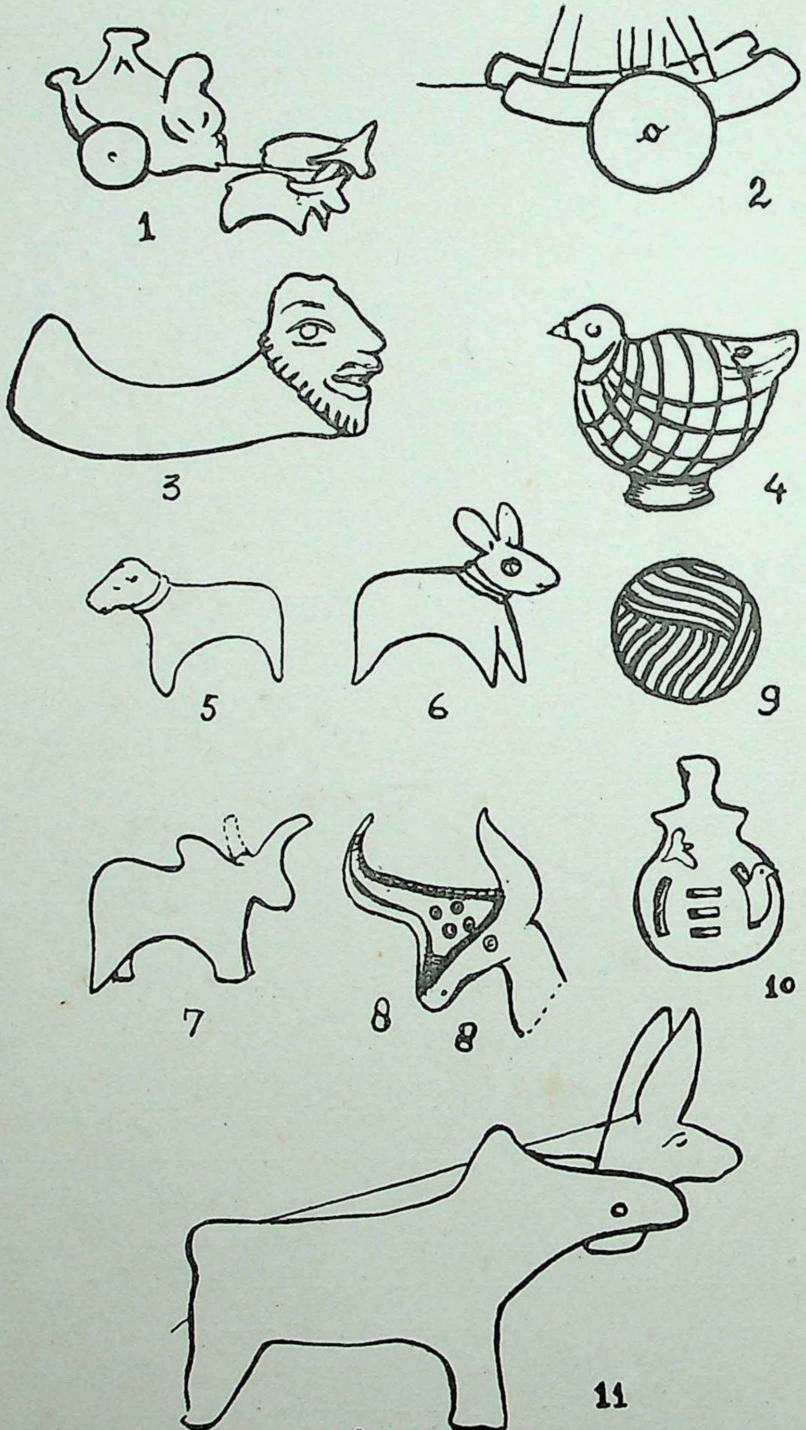

आरेख 7

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लोथल से प्राप्त एक बैल की मृण्मूर्ति (फ० XV, 3) भी कला की दृष्टि से मोहेंजोदड़ो के उपर्युक्त उदाहरणों के निकट है। कालीबंगां से प्राप्त एक बैल की आकृति को कलात्मक ढंग से आक्रमण की भंगिमा में दिखाया है। सुरकोटडा में पहियेदार मिट्टी का वृषभ मिला है। सांकलिया ने भावनात्मक दृष्टि से इसकी साम्यता ईरान-ईराक सीमा पर स्थित नुज़ि नामक स्थल और नेवासा तथा चाण्डोली की इस तरह की मूर्तियों से की है। मोहेंजोदड़ो में मिट्टी के अतिरिक्त पत्थर, तांबे और कांसे से भी बैल की आकृतियां बनी थीं। मेढ़े की आकृतियां मिट्टी से अधिक कांचली मिट्टी की हैं। कांचली मिट्टी की आकृतियां काफी सावधानी और सफाई से बनी हैं। प्राचीन मिस्र में मेढ़ा पवित्र पशुओं में से एक था। वैदिक साहित्य में उसकी अग्नि के वाहन के रूप में कल्पना की गई है। साधारणतः गेंडे की आकृतियां असावधानी से बनी हैं और भोंडी हैं। ये बालकों द्वारा निर्मित लगती हैं। लोथल से प्राप्त गेंडे का मिट्टी का बना सिर प्रभावपूर्ण है (फ० XIV, 3) मिट्टी के महिष की आकृति (फ० XIV, 2) भी मिली है। कुछ उदाहरणों में जानवरों की खाल को यथार्थ रूप से दिखाया है। अधिकांश कुत्ते की आकृतियां भी बच्चों की ही कृतियां लगती हैं। लेकिन कुछ काफी स्वाभाविक बन पड़ी हैं जिससे कुत्ते की नस्ल तक पहचानी जा सकती है। मैके ने तीन नस्लों को पहचाना है। कुछ उदाहरणों में कुत्ते के गले में पट्टी बंधा दिखाया गया है जो उसके पालतू होने का परिचायक है। तांबे की कुत्ते की आकृतियां मोहेंजोदड़ो से मिली हैं। मोहेंजोदड़ो की मुद्राओं पर तो हाथी का अंकन अनेकशः हुआ है किंतु मिट्टी की हाथी की मूर्तियां अत्यल्प हैं। सुअर की आकृतियां भी कम ही हैं। गिलहरी की आकृति कांचली मिट्टी में मिली है। (फ० XIII, 3) ये कला की दृष्टि से काफी अच्छी हैं। कुछ खरगोश की मूर्तियां भी मिली हैं। बन्दर की कुछ आकृतियां मिट्टी की और कुछ कांचली मिट्टी (फ० XIII, 4) की हैं। कुछ विभिन्न पशुओं के अवयवों के मेल से बनी आकृतियां भी हैं। आलमगीरपुर से प्राप्त मृण्मूर्तियों में एक रीछ और एक सांप की आकृति उल्लेखनीय है। एक जानवर के धड़ की आकृति मोहेंजोदड़ो के अन्तिम प्रकाल से पायी गयी है जो घोड़े की लगती है। रंगपुर और लोथल (फ० XV, 1) की मूर्तियों में भी घोड़े की पहचान की गई है। यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि हड़प्पा की खोदाई में घोड़े की हड्डियां नहीं मिली हैं। मोहेंजोदड़ो में जो सबसे ऊपरी सतह पर घोड़े की हड्डियां मिली हैं उन्हें कुछ विद्वानों ने सिंधु सभ्यता के बाद का आंका है। लोथल के अपेक्षाकृत बाद के चरण में कुछ हड्डियों को घोड़े की हड्डी पहचाना गया है। बलूचिस्तान के रानाघुंडई नामक स्थल से घोड़े की हड्डियां सिंधु सभ्यता से कहीं पहले के काल के स्तरों में मिली हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

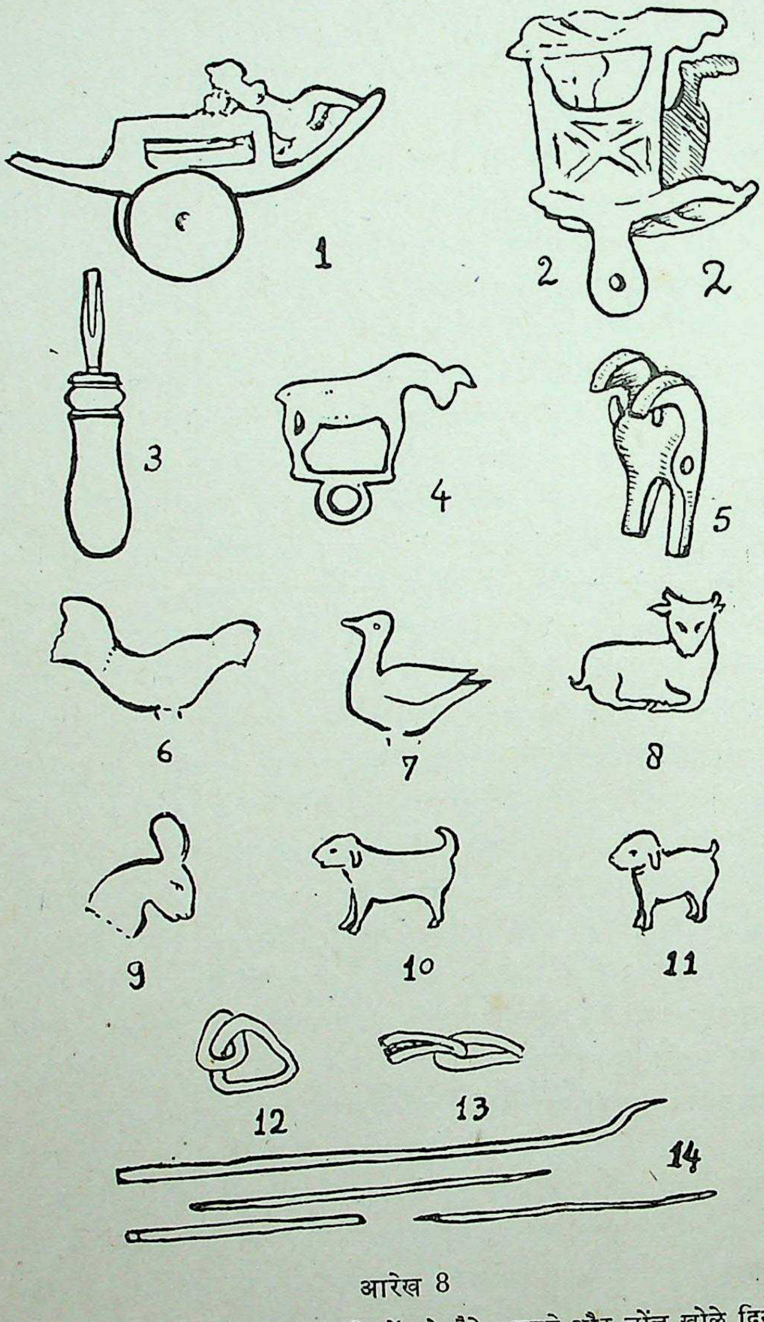

आरेख 8

सिंधु सभ्यता की कला में पक्षियों को बैठे, उड़ते और चोंच खोले दिखाया गया है। मोहेंजोदड़ो की मृण्मूर्तियों में पक्षियों की ठीक प्रकार पहिचान करना कठिन है। पक्षियों की कुछ मूर्तियां अन्दर खोखली हैं तथा उनमें एक छेद है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इनका व्यवहार संभवतः सीटी के रूप में किया जाता था। यदि मुंह को छेद पर रख कर फूंक मारी जाय तो सीटी की सी आवाज पैदा होती है। ये घुग्घू (फाख्ता) की आकृतियां लगती हैं। हड़प्पा के उत्खननों में प्राप्त मृण्मूर्तियों में वत्स ने फाख्ता के अतिरिक्त बतख, मोर, मुर्गी, चील, कबूतर, गौरैया, तोता, उल्लू आदि पक्षियों की पहिचान की है। हड़प्पा की कुछ मृण्मूर्तियों में पक्षियों के शरीर में जहां से टांग शुरू होती है वहां छेद बने हैं। स्पष्ट है कि इन छेदों में अलग से टांग बना कर जोड़ी गई होगी। हड़प्पा के कुछ उदाहरणों में इस बात के साक्ष्य मिलते हैं कि पंख भी अलग से बना कर जोड़े गए होंगे। कांचली मिट्टी के सर्प की आकृति में सिर और विषदन्त भी अलग से जोड़े गए हैं। कांचली मिट्टी और सीप के बने बैल के सिर में आंख और कान के लिए छेद बने हैं। कुछ चिड़ियों के पंख को उभरा दिखाया गया है। इन चिड़ियों को अधिकांशतः आधार पर स्थित दिखाया गया है। इस बात के साक्ष्य हैं कि चिड़ियों को स्वाभाविक दिखाने के लिए उन्हें अनुरूप रंगों में रंगा गया था। बच्चों के खिलौनों में सीटियों के अतिरिक्त पहियेदार मिट्टी की गाड़ियां भी सम्मिलित हैं। इनके आकार-प्रकार में दर्शनीय विभिन्नता है। कुछ गाड़ियां इक्के जैसे भी हैं। इन गाड़ियों को खींचने वाले बैलों की आकृतियां विशेष आकर्षक नहीं। पशु आकृतियों के शरीर की सूक्ष्मताएं कीलों से दिखायी गयी हैं। अंगों के उभार बड़ी कुशलता से प्रदर्शित हैं। पहिया-गाड़ियों के लिए जो बैल की आकृतियां बनायी गयी हैं, उनमें सींग, कूबड़ तथा पैर बहुत भोंडे बने हैं।

मैके ने मोहेंजोदड़ो की पशु-मृण्मूर्तियों की निर्माण-शैली के बारे में अध्ययन किया ह। उनके अनुसार मानव मृण्मूर्तियों के त्रिपरीत पशुमृण्मूर्तियां खोखली हैं जिससे स्पष्ट है कि पहले वे किसी ऐसो वस्तु के आधार पर बनाई गई हैं जो पकाने पर नष्ट हो गया और इसलिए अंदर खोखली हैं। जो आकृतियां पूरी मिली हैं उनमें एक छेद मिलता है जो अन्दर की आधार वस्तु के जलने से उत्पन्न गैस को निकालने के लिए अभिप्रेत था। सांचे से बनी पशु-मृण्मूर्तियों के एक-दो ही उदाहरण मोहेंजोदड़ो में प्राप्त हुए हैं।

मोहेंजोदड़ो की कुछ पशु मृण्मूर्तियों में आंख को यथार्थ की भांति दिखाया गया है। मिट्टी में पहले कुछ गहराई तक गड्ढा-सा बना देते थे और फिर उसके भीतर गीली मिट्टी की टिक्की भर कर पुतली दिखाई गई है। झुर्रियों को रेखाओं द्वारा और खाल की परत को मिट्टी की पट्टियां चिपका कर दिखाया गया है। इन मिट्टी की पशु-आकृतियों पर लेप लगाया गया था और कुछ को चित्रित भी किया गया था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 6

मुद्राएं तथा ताम्र पट्ट

सिंधु सभ्यता की मुद्राएं (फ० XVI, XVII, XVIII, 1, आ० 9; 10) विशिष्ट प्रकार की हैं। इनमें से अधिकांश पर चित्रलिपि में लेख, जो साधारणतया 3 से लेकर 8 अक्षर वाले हैं, और पशु-आकृतियां बनी हैं (फ० XVI, 1, 5, 6)। कुछ पर केवल लेख (XVI, 3) हैं और कुछ पर केवल अभिप्राय (फ० XVI, 4)। प्रारंभ में विद्वान इस बात से एकमत नहीं थे कि इनका उपयोग मुद्रा के लिए था अथवा तावीज के रूप में। इसका कारण यह था कि मोहेंजोदड़ो, हड़प्पा और चन्हुदड़ो के उत्खननों से मुद्राओं की उपलब्धि तो सैकड़ों की संख्या में हुई थी किंतु उनकी छाप नहीं के बराबर प्राप्त हुई थी। मुद्राओं के पीछे घुण्डियां होने के कारण कुछ विद्वानों ने एक ओर उनके तावीज की तरह प्रयुक्त होने में संदेह व्यक्त किया था और दूसरी ओर मुद्रा के संदर्भ में घुण्डी की उपयोगिता भी दर्शाई थी। किंतु इससे तावीज वाले मत का पूरा खण्डन नहीं हो सका। कुछ ही वर्ष पूर्व लोथल में किये उत्खननों से न केवल मुद्राएं, अपितु सैकड़ों मुद्राओं की छापें भी उपलब्ध हुई हैं। उसके बाद कालीबंगां से भी कुछ इस तरह के उदाहरण मिले हैं। इन छापों से स्पष्ट हो गया है कि वे मुद्राएं ही थीं जिनकी छापें वस्तुओं—पत्र, पार्सल आदि को मुहरबंद करने में प्रयुक्त की जाती थीं। यों इन खोदाइयों से पूर्व भी बेबीलोनिया के एक स्थल से सिंधु सभ्यता की किसी मुद्रा की मिट्टी पर छाप मिली जिसके पीछे कपड़ा चिपके होने के निशान थे। विद्वानों ने इससे यह निष्कर्ष निकाला था कि इसे सिंधु सभ्यता के किसी स्थल से भेजे गये कपड़े में बंद सामान के गट्ठर पर लगाया गया था। लोथल की एक मुद्रा छाप पर भी कपड़े के निशान मिले (फ० XVIII, 1)। अधिकांश सिंधु सभ्यता की मुद्रायें, ऐतिहासिक काल की मुद्राओं की भांति पत्र अथवा पार्सल पर छाप लगाने के लिये प्रयुक्त होती रही होंगी। किंतु ऐतिहासिक काल की भांति ही कुछ छापें मन्नत-चढ़ावा, स्मृति चिह्न अथवा पारपत्र के रूप में भी प्रयुक्त होती रही होंगी; ऐसी मुद्राओं के पीछे की ओर रस्सी आदि के निशान नहीं होते।

मार्शल, मैके आदि के उत्खननों से यह ज्ञात नहीं होता कि मुद्राओं का कोई प्रकार विशेष नगर के प्राथमिक, माध्यमिक अथवा अंतिम काल की विशेषता है

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

केवल वत्स (पृ०324-25) ने हड़प्पा के एक टीले के उत्खनन के साक्ष्य के आधार पर बताया है कि प्रारंभिक (निम्न) स्तरों में अधिकांश मुद्रायें छोटे आकार की मिलीं, इनकी माप 1.77 से 0.91 सेमी लम्बी, 1.52 से 0.51 सेमी चौड़ी और 1.27 सेमी मोटी थी। सबसे नीचे वाले स्तर में केवल छोटे आकार की ही मुद्राएं मिलीं। इन छोटी मुद्राओं पर एक शृंगी पशु या अन्य महत्त्वपूर्ण पशु अंकित नहीं, न उनके पीछे घुंडी या छेद ही हैं। इनमें अधिकांश पर एक ओर कुछ अक्षर-चिह्न और दूसरी ओर एक अभिप्राय मिलता है, यह या तो ज्यामितीय है अथवा घड़ियाल या मछली, या कभी-कभी बकरी या खरगोश; चार में उसी तरह का 'ध्वज' है जिस तरह का एक-शृंगी पशु के साथ दिखाया जाता है। लेख लापरवाही से खुरचे हैं, खोदे नहीं गये हैं। वत्स का कहना है कि इस तरह के लेख छाप में तो कुछ भी नहीं दिखेंगे, अतः ये छाप लगाने के लिए नहीं थीं और इन पर अंकित अक्षर सीधे ही पढ़ने चाहिएं, छाप लगाकर नहीं। इन मुद्राओं में एक ही लेख अनेक पर मिला है (उदाहरणार्थ एक लेख तेईस पर मिला है)। वे इन्हें इन कारणों से और इनके अत्यंत छोटे आकार के कारण निश्चित रूप से तावीज के लिए प्रयुक्त मानते हैं। वत्स द्वारा इन लघु मुद्राओं के लिए प्रस्तुत काल-क्रम संबंधी साक्ष्य हड़प्पा के संदर्भ में भले ही सही हो, लोथल में छोटे आकार की मुद्राएं साधारण मुद्राओं के साथ प्रारंभ से लेकर अंत तक के चरण में मिली हैं।

यह उल्लेख्य है कि हड़प्पा संस्कृति-युक्त आलमगीरपुर तथा अन्य कई 'ग्राम' स्थलों के उत्खननों में एक भी मुद्रा अथवा उसकी छाप नहीं उपलब्ध हुई है। आलमगीरपुर सिंधु सभ्यता की साधारण लघु ग्रामीण बस्ती थी और हड़प्पा संस्कृति के जिस रूप के यहां दर्शन होते हैं उससे प्रतीत होता है कि लोग पूर्वजों द्वारा निर्मित वस्तुओं के निर्माण के प्रति शनैः शनैः उदासीन होते जा रहे थे। रोपड़ में एक (और वह भी निम्न कोटि की) मुद्रा मिली है सुरकोटडा से एक, और कालीबंगां से कुल आठ मुद्राएं मिली हैं। लगता है यहां व्यापारिक जटिलताओं, विशेषतः विदेशी व्यापार का अभाव था। दूसरी ओर हड़प्पा मोहेंजोदड़ो और लोथल जैसे व्यापारिक केंद्रों में विशाल संख्या में मुद्राएं मिली हैं।

इन मुद्राओं के निर्माण में एक ही जैसी सावधानी और कलात्मकता नहीं दिखती। कुछ अपेक्षाकृत असावधानी से बनी हैं तो कुछ में कलाकार ने उन्हें कलात्मक बनाने में कोई कसर नहीं रखी। मुद्राओं के कुछ सुन्दर उदाहरण विश्व की महान् कलाकृतियों में अपना स्थान रखते हैं। सिंधु सभ्यता में मुद्राएं विभिन्न पदार्थों से निर्मित की जाती थीं। किंतु अब तक उपलब्ध मुद्राओं में सबसे अधिक सेलखड़ी की हैं। कांचली मिट्टी की मुद्राएं भी पर्याप्त संख्या में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिली हैं। थोड़ी-सी मुद्राएं गोमेद, चर्ट और मिट्टी की भी है। लोथल और देसाल पुर से तांबे की मुद्राएं मिली हैं जो पीछे छेद होने के कारण ताम्र फलकों से भिन्न हैं। आकार-प्राकार की दृष्टि से मुद्राओं में विविधता है। ये बेलनाकार, वर्गाकार, चतुर्भुजाकार, बटन-जैसी, घनाकार और गोल हैं। मोहेंजोदड़ो से कुल पांच बेलनाकार मुद्राओं के उदाहरण उपलब्ध हैं। कालीबंगां से भी इस प्रकार की एक मुद्रा मिली है (फ० XVI, 2), ये हड़प्पा संस्कृति की अन्य मुद्राओं से पूर्णतः भिन्न हैं। यद्यपि इस प्रकार की मुद्राएं कुछ अन्य देशों, विशेषतया प्राचीन मेसोपोटामिया में लोकप्रिय थीं। सिंधु सभ्यता में ऐसी मुद्राएं बहुत कम मिलने से स्पष्ट है कि सुमेरी सभ्यता से संपर्क होने के बावजूद मुद्रा के निर्माण में सिंधु-सभ्यता ने अपनी विशिष्टता बनाए रखी है। बेलनाकार मुद्राओं को गीली मिट्टी, मोम या लाख पर इस तरह लुढका कर लगाया जाता था जिससे दृश्य-चित्र बन जाता था। लोथल से एक बटन की तरह गोल मुद्रा मिली है जिसके पीछे छिद्रित घुंडी है। छाप लगाने वाली तरफ एक दुमुहें राक्षस के दोनों ओर एक-एक कूद भरते हिरन दिखाये गए हैं। इस तरह की मुद्राएं फारस की खाड़ी के समीप के भू-भागों से मिली हैं और इनकी तिथि सारगन से कुछ बाद की है। ठप्पे लगा कर प्रयोग की जाने वाली मुद्राएं सीरिया में हलाफ काल से मिलती हैं पर उन पर जो अभिप्राय हैं वे ज्यामितीय हैं, जब कि सिंधु सभ्यता की अधिकांश मुद्राओं पर पशु की आकृति है। ईरान में भी सिंधु सभ्यता से पूर्व ठप्पे लगाने वाली मुद्राओं का प्रचलन था। लेकिन बलूचिस्तान में प्राग्-सिंधु सभ्यता के संदर्भ में मुद्रा नहीं मिलती जिससे ईरान का भी सीधा प्रभाव इस संदर्भ में होने की अधिक संभावना नहीं लगती। बलूचिस्तान में जो थोड़ी बहुत मुद्राएं उपलब्ध हुई हैं वे सभी सिंधु सभ्यता में निर्मित हुई लगती हैं।

वर्गाकार मुद्राएं प्रायः सभी सेलखड़ी की हैं और सिंधु सभ्यता के नगरों में ये बहुत लोकप्रिय थीं। ये दो प्रकार की हैं—छिद्रयुक्त घुण्डीदार और बिना घुण्डीवाली। घुण्डीदार मुद्राओं का आकार 1.27 × 1.27 सेमी और 6.86 × 6.86 सेमी तक है। मुद्रा का सबसे अधिक प्रचलित आकार 2.8 × 2.8 सेमी है। इस प्रकार की मुद्राओं पर पशु की आकृति के साथ अभिलेख हैं जो एक अथवा दो पंक्तियों में लिखा मिलता है। जिन वर्गाकार मुद्राओं के पृष्ठ भाग में घुण्डी नहीं है उनका आकार साधारणतया 2.8 × 1.27 सेमी तक है और इन पर अभिलेख प्रायः दोनों ओर है। इस तरह कुछ मुद्राओं के पृष्ठ भाग में छेद भी मिलता है। इनकी संख्या अधिक नहीं है। घुण्डी-विहीन आयताकार मुद्राओं की संख्या बहुत कम है। ये भी अधिकांशतया सेलखड़ी की हैं, केवल थोड़ी-सी ही मिट्टी की हैं। इनमें कई ऐसी हैं जिनके दोनों ओर लेख हैं। ये 1.33 सेमी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

× 2.8 सेमी आकार की हैं । बिना घुण्डी की आयताकार मुद्राएं भी कम ही हैं । बटन जैसी मुद्राओं पर, जो सेलखड़ी और कांचली मिट्टी की हैं, अधिकांशतया स्वस्तिक बना है । ऐसी मुद्राओं पर स्वस्तिक का डिजाइन क्रीट, कैपेडोसिया व ट्राय में भी लोकप्रिय था । बटन जैसी मुद्राओं पर मिले स्वस्तिक का अलंकरण सूसा और मुसयान के मृद्भाण्डों पर भी मिलता है । छेददार घुंडीयुक्त आयताकार और वृत्ताकार और बिना घुंडी वाली वृत्ताकार मुद्राएं स्टेटाइट और मिट्टी की हैं । इनकी संख्या भी अधिक नहीं है । घनाकार मुद्राओं की संख्या भी कम है । इनके प्रत्येक ओर की माप 1.44 सेमी तक है । यह बलुए पीले रंग के पेस्ट की बनी हैं, जिस पर कुछ चमक भी है । इनमें से कुछ पर दो तरफ एक दूसरे को काटती रेखाएं हैं और एक ओर मुद्रा छाप है जिसमें एक-श्रृंगी पशु दिखाया गया है ।

अधिकांश मुद्राओं पर लेख और पशु आकृति है । कुछ अपवादों को छोड़कर पशु बायें ओर मुंह किये दिखलाया गया है । लेकिन छाप लगाने पर पशु दांया मुख किये दिखेगा । चूंकि मुद्राओं से छाप ही लगाई जाती थी, अतः छाप पर जैसा पशु दिखेगा वही मुद्रा निर्माता को दिखाना अभिप्रेत था । अतः हम पशुओं को दायीं ओर मुख किया हुआ ही उल्लेख करेंगे । सिंधु सभ्यता संबंधी जो भी महत्त्वपूर्ण प्रकाशन है उनमें मुद्राओं का चित्र नहीं उनसे छापें लेकर छापों का चित्र छपा है ताकि अभिप्रेत रूप का ही अवलोकन हो । एक श्रृंगी पशु (फ० XVII, 1) की आकृति का कुछ भाग बैल और कुछ हिरन जैसा है । इसके एक ही श्रृंग है । या तो कलाकार का उद्देश्य एक ही सींग दिखाना था (यद्यपि इसकी संभावना कम है) या दूसरा श्रृंग पशु का पार्श्व चित्रण होने के कारण दिखाये गये सींग से छिपा समझना चाहिए, जिस कारण कलाकार ने उसे अभिव्यक्त नहीं किया । किंतु इस संबंध में यह उल्लेखनीय है कि पार्श्व में अंकित अनेक बैल की आकृतियों के दोनों सींग दिखाये गये हैं । इस पशु के सम्मुख एक वस्तु का अंकन मिलता है जो एक डण्डे पर आधारित एक के ऊपर एक बर्तन की तरह लगता है (फ० XVII, 1) । इस अभिप्राय की पहिचान कुछ ने पिंजड़े से की है लेकिन कुछ विद्वानों का कहना है कि यदि इसका अभिप्राय पिंजड़े से होता तो कलाकार ने उसमें चिड़िया अवश्य दिखाई होती । दोनों ही बर्तनों (?) को पार करता हुआ डण्डा बर्तनों के बीचो-बीच दिखलाया गया है । नीचे वाला बर्तन (?) मुख्यतः कटोरे की तरह का है । इसका प्रयोजन पशु के लिए भेंट की गई वस्तु को दिखलाना हो सकता है । एक मुद्रा से ली गई दो छापों में चार व्यक्तियों को एक कतार में दिखाया गया है और प्रत्येक ध्वज लिए हुए है । इनमें से एक ध्वज पर एक-श्रृंगी पशु और एक पर उसी तरह का दो बर्तनों वाला अभिप्राय है जैसा कि एक-श्रृंगी पशु के सामने रखा दिखाया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाता है। उर से प्राप्त एक बेलनाकार मुद्रा पर एक-शृंगी पशु दिखाया गया है लेकिन उपर्युक्त अभिप्राय के स्थान पर मछली दिखाई गई है। यह मुद्रा किसी भारतीय द्वारा बनायी अथवा भारतीय प्रभाव से बनी हुई लगती है। सिंधु सभ्यता का यह ध्वज या धूपदानी प्रकार इस सभ्यता तक ही सीमित लगता है वैसे कुल्ली के एक बर्तन पर बैल को इसी तरह के दो बर्तनों से बने अभिप्राय से बंधा दिखाया गया है। मिस्र की प्राचीन सभ्यता में ध्वज के साथ जन समूह दिखाने के अनेक उदाहरण मिलते हैं। यह एक धार्मिक परंपरा थी। हो सकता है कि हड़प्पा संस्कृति की मुद्राओं पर अंकित ध्वजों का भी कुछ धार्मिक महत्त्व रहा हो।

मुद्राओं पर छोटे सींगों वाले बैल का अंकन भी लोकप्रिय था। मुद्राओं पर इनके पर्याप्त उदाहरण हैं। इन पशुओं को प्रायः सिर नीचा किये और थोड़ा एक ओर घुमाए चित्रित किया गया है, मानों यह क्रुद्ध हो आक्रमण करने के लिए तैयार हों। बैल की मिट्टी में बनी आकृतियों में भी उसे क्रोध की मुद्रा में दिखाया गया है। कुछ मुद्राओं पर बैल के कन्धे और गलकंबल को बड़ी कुशलता से व्यक्त किया है। आकृति के अंकन में अतीव सजीवता है। इस बैल के आगे एक नांद दिखाया गया है। इस तरह के नांद के अभिप्राय वाली एक बेलनाकार मुद्रा सूसा में मिली है। मैके का मत है कि शायद इस मुद्रा का निर्माण किसी प्रवासी भारतीय के लिए किसी एलम के कारीगर ने किया हो। उर के उत्खननों में एक मुद्रा पुराविद् वूली को अक्कद के सारगन के काल के स्तर में मिली थी जिसमें इसी तरह का बैल और नांद बना है, किंतु इस पर लेख कीलाकार लिपि में हैं। जो भी इस मुद्रा का स्वामी रहा होगा वह भारतीय कला-अभिप्राय से परिचित था। ब्रिटिश संग्रहालय में बेबीलोनिया के किसी प्राचीन स्थल से प्राप्त मुद्रा पर भी यह अभिप्राय है।

मुद्राओं पर कूबड़ वाले बैल की आकृतियां (फ० XVII, 2) विशेष कुशलता से बनायी गयी हैं। वास्तव में ये सिंधु सभ्यता की कला के चरम विकास की झांकी प्रस्तुत करते हैं। मोहेंजोदड़ो से उपलब्ध एक मुद्रा (मार्शल की सं० 337) पर अंकित बैल की आकृति की कलात्मकता की मार्शल ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। अंगों के उभार और शरीर के अनुपात में जो विशिष्टता दिखाई गई है वह अपूर्व है। कलाकार ने यथार्थ और कल्पना के सुंदर सम्मिश्रण से इस मुद्रा को बहुत तन्मयता और कुशलता से बनाया है। इस छोटी सी मुद्रा के सीमित क्षेत्र में अपेक्षाकृत विशालकाय बैल का इस तरह अंकन किया गया है कि उसकी विशालकायता का पूरा आभास मिल जाता है। खड़े दिखाये जाने पर भी उसमें अत्यधिक गतिशीलता लगती है। पशु को पार्श्व में दिखाते हुए भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसके दोनों सींग कलाकार ने दिखाए हैं। यद्यपि यह यथार्थता की दृष्टि से ठीक नहीं, तथापि कला की दृष्टि से दोनों सींगों के दिखाने से आकृति की सुन्दरता बढ़ जाती है, और एकबारगी ध्यान इस त्रुटि की ओर नहीं जाता। प्राचीन सुमेर अथवा एलम की कला में इस बैल की आकृतियां नहीं मिलतीं। अपवाद स्वरूप इसका एक उदाहरण बेबीलोन में गुडिआ (Gudea) के समय के एक चूना पत्थर पर निम्न उद्भृत (basrelief) सर्वप्रथम प्राप्त होता है। नाल संस्कृति के एक मृद्भाण्ड पर भी इस प्रकार के बैल की आकृति चित्रित है।

पालतू और जंगली भैंसे की आकृतियां अपेक्षाकृत यथार्थवादी ढंग से अंकित हैं। भैंसे को रँभाते हुए सिर नीचा किए दिखाया है मानों कि वह लड़ने के लिए उतारू हो। अन्य पशुओं में व्याघ्र, हाथी और गैंडे का चित्रण हुआ है। व्याघ्र का चित्रण सिंधु सभ्यता के संदर्भ में सिंधु घाटी के ही स्थलों में मिलता है। इस घाटी से बाहर केवल एक उदाहरण कालीबंगां की मुद्रा पर किया गया अंकन है। व्याघ्र अब सिंधु में नहीं पाया जाता है, किंतु एक शताब्दी पूर्व तक उसके यहां पर पाये जाने के साक्ष्य हैं। एक मुद्रा में चित्रित एक मनुष्य वृक्ष की शाखा पर बैठा है, शाखा के नीचे खड़ा व्याघ्र बड़े ध्यान से उसे देख रहा है। यह चित्रण नव-बेबीलोन-कालीन मुद्रा के चित्रण से साम्य रखता है। किश से उपलब्ध इस युग की एक मुद्रा पर भी एक ऐसे ही दृश्य का अंकन है, किंतु व्याघ्र के स्थान पर इसमें लकड़बग्घा दिखलाया गया है। मुद्राओं पर हाथी की आकृति का अंकन (फ० XVIII, 1) भी पर्याप्त लोकप्रिय था। इनका चित्रण वास्तविक के अनुरूप हुआ है। कुछ विद्वानों के मतानुसार भारतीय और अफ्रीकी दोनों प्रकार के हाथियों का अंकन हुआ है। अब सिंध में हाथी नहीं पाये जाते। गैंडे (फ० XVII, 4) के पृष्ठ भाग और पैर अनुपात से बनाये गये हैं और चर्म की सिकुड़न और तहें स्वाभाविक रूप से अंकित हैं। खुरदरे अधि-मांस दिखाने के लिए छोटे गोल चिह्न अंकित हैं। टेल अस्मर से फ्रैंक फोर्ट को जो वर्तुलाकार मुद्रा मिली थी उस पर गैंडे, घड़ियाल के साथ हाथी भी चित्रित है। अनुमानतः इसका निर्माण भारत में ही हुआ था, किंतु सुमेर में स्थित किसी भारतीय व्यापारी द्वारा प्रयोग में लायी गयी थी। गैंडे और बाघ को तो प्रायः किंतु हाथी को थोड़े ही मुद्राओं पर नांद के साथ दिखाया गया है। घड़ियाल भी थोड़ी सी मुद्राओं पर दिखाया गया है। चन्हुदड़ो की एक मिट्टी की मुद्रा पर तीन घड़ियालों तथा दो मछलियों का अंकन है। इसके दूसरी ओर अभिलेख हैं। हड़प्पा की एक मुद्रा पर एक गरुड़ दिखाया गया है। गरुड़ के फैले पैरों के ऊपर दो सांप दिखाए गए हैं। मेसोपोटामिया और एलम में गरुड़ एक लोकप्रिय अभिप्राय था। हड़प्पा की एक मुद्रा पर खरगोश भी दिखाया गया है। हिरनों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का अंकन बहुत कम हुआ है जबकि सुमेरी मुद्राओं पर इस पशु का अंकन काफी मिलता है ।

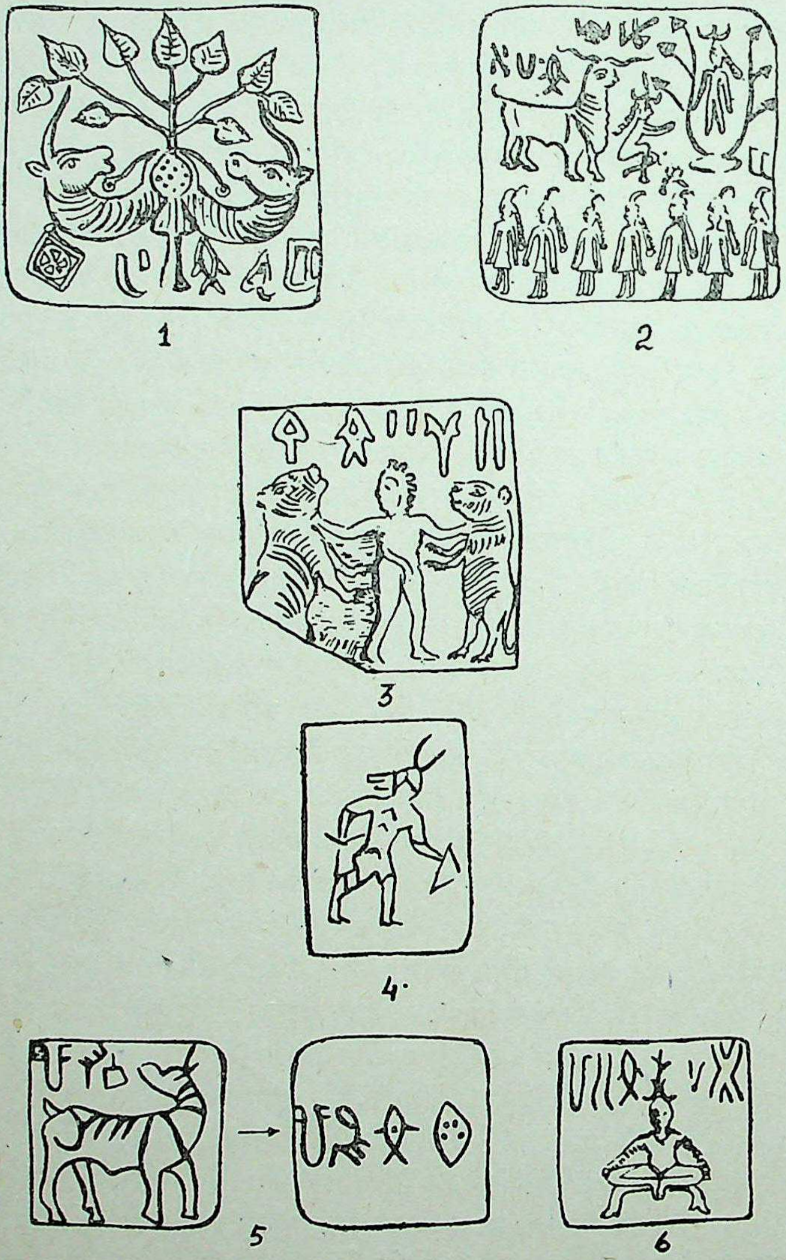

आरेख 9

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुछ मुद्राएं विशेष रूप से धर्म से संबंधित लगती हैं। मोहेंजोदड़ो की एक मुद्रा (फ० XVI, 1) पर देवता (शिव-पशुपति) की आकृति के साथ हाथी बाघ, गैंडा, भैंसा (बैल ?) और हिरण (?) दिखाए गए हैं (विस्तार के लिये देखिए अध्याय 'धार्मिक जीवन')। इसमें प्रथम चार पशु एक अन्य मुद्रा पर भी अंकित हैं, जिनमें केन्द्र में एक बिच्छू भी दिखाया गया है, बिच्छू का अंकन इने गिने उदाहरणों में से है। हां, उर से प्राप्त एक सिंधु सभ्यता की मुद्रा पर भी बिच्छू दिखाया मिलता है। एक अन्य मुद्रा में वृक्ष की दो शाखाओं के मध्य एक शृंगयुक्त आकृति है, उसके समीप ही एक दूसरी इसी तरह की आकृति उससे प्रार्थना कर रही है, दूसरी आकृति के पीछे एक बकरा और नीचे सात मानव आकृतियां, एक मुद्रा (आ० 9, 3) में एक अर्धमानव और पशु आकृति दो बाघों को अलग-अलग अपने हाथों से गले से पकड़े दिखलाई गई है जो मेसोपोटामिया के गिल्गमेश अभिप्राय का द्योतक लगता है। एक अन्य मुद्रा में इसी तरह की आकृति सींगयुक्त बाघ से युद्ध कर रही है। बेबीलोनी कला में इंकिडू को इसी तरह सिंह से लड़ता दिखलाया गया है और गिल्गमेश को सांड़ से। मेसोपोटामिया की मुद्राओं पर सिंह का अंकन काफी लोकप्रिय रहा, किंतु सिंधु सभ्यता की एक भी मुद्रा पर सिंह की आकृति नहीं मिलती। यह कहना कठिन है कि कहां तक बेबीलोनी कला या आख्यानों का प्रभाव मानव-पशु युद्ध के अंकनों में है। धनुष-बाण लिए मानव आकृतियों का अंकन भी मिलता है। मानव आकृतियों का आलेखन पशु आकृतियों की भांति सजीव नहीं है। देवता, पशु और सात नारी आकृतियों का अभिप्राय मोहेंजोदड़ो की एक मुद्रा पर मिलता है (फ० XVII, 3; आ० 9,2)। चन्हुदड़ो की एक मुद्रा छाप विशेष महत्त्व की है। इस पर वर्गाकार मुद्रा की छाप है जिसमें दो नग्न नारियां अंकित हैं जो एक एक हाथ में ध्वज पकड़े खड़ी हैं। ध्वजों से पीपल की पत्तियां निकलती दिखायी गयी हैं। उनका खाली हाथ कटिविन्यस्त है। कला की दृष्टि से नारी आकृति की तुलना कांसे की नर्तकी से की जा सकती है।

कुछ मुद्राओं पर मानव एवं विभिन्न पशुओं के अंगों से मिश्रित आकृतियां हैं। मुद्राओं पर ऐसी भी आकृतियां बनी हैं जिनमें बैल के जैसे सींग, मनुष्य के चेहरे और गज के शुण्ड तथा दंत हैं व अग्र भाग मेष का, पृष्ठ भाग बाघ जैसा लगता है (फ० XVI, 5) एक उदाहरण में एक-शृंगी पशु बकरा तथा छोटे सींग वाले बैल का संयुक्त अंकन है (फ० XVI, 4)। इनमें से यदि हम किन्हीं दो सिरों को ढक दें तो एक पशु की पूरी आकृति बन जाती है। शायद ऐसे अभिप्राय का आशय एक साथ तीन भिन्न देवताओं की कृपा प्राप्त करना रहा हो। कुछ मुद्राओं पर विचित्र मानवी चेहरे तथा पशु आकृति का संयुक्तीकरण

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। संयुक्त पशु का अंकन अन्य संस्कृतियों में भी किया गया है। मैके की धारणा है कि शायद इस तरह की आकृतियों के निर्माण का प्रारंभ भारत में सबसे पहले हुआ जो स्थल मार्ग से पश्चिम देशों में पहुंचा। एक अन्य मुद्रा (आ० 10, 5) पर बीच में बिच्छू है दाहिनी ओर एक मनुष्य और बायीं ओर एक गैंडा। ऊपर और नीचे दो-दो पशु अंकित हैं। बिच्छू का अगला भाग ऊपर के पशुओं के सींग और उसकी पूंछ, नीचे (बायें ओर के) हाथी की सूंड और दाहिनी ओर के पशु की पूंछ बनाती है।

कभी-कभी एक ही पशु के अनेक सिर एक ही धड़ से संयुक्त भी दिखाये गये हैं। मोहेंजोदड़ो की एक मुद्रा पर तीन बाघों के सिर दिखाए गये हैं जिनके शरीर का मध्य एक दूसरे से गुंथा हुआ बनाया गया है (फ० XVI, 7)। ऐसी एक मुद्रा का खण्डित भाग चन्हुदड़ो से भी प्राप्त हुआ है। मोहेंजोदड़ो की एक मुद्रा पर छः पशुओं की गर्दन और सिर एक छल्लेदार अभिप्राय से बाहर निकलते दिखते हैं। चार सिर जिनकी पहिचान निश्चित है—एक-शृंगी पशु, छोटे सींग वाला बैल, हिरन और बाघ हैं। शेष दो सिरों में एक गैंडा और एक हाथी का सा लगता है। लोथल की एक मुद्रा पर बीज बोने का यंत्र (seed drill) जैसा अभिप्राय है।

सिंधु सभ्यता की मुद्राओं पर कुछ वृक्षों के चित्रण भी मिलते हैं। एक उदाहरण में पीपल की शाखा के निचले भाग से एक-शृंगी पशु के दो सिर निकलते दिखाये गये हैं। पीपल के अतिरिक्त अन्य वृक्षों की पहिचान कठिन है। मैके ने कुछ मुद्राओं पर बबूल और झण्डी के पेड़ की पहचान की है। कुछ मुद्राओं पर एक एक प्रतीक-यथा स्वास्तिक, छोररहित गांठ, बहुरेखीय क्रूस का चिह्न इत्यादि हैं। मोहेंजोदड़ो की एक मुद्रा पर नाव की आकृति उकेर कर बनायी गयी है जिससे मिलता-जुलता अंकन वहीं के एक मृद्भाण्ड खण्ड (आ० 10, 2) पर भी उपलब्ध है। इसमें मस्तूल का अभाव है तथा पोत वाहक की खण्डित आकृति बनी है। ऐसी नावों का उपयोग नदियों में साधारण कार्यों के लिए किया जाता था। प्राचीनकाल में ऐसी नावें अन्य स्थानों पर भी प्रयुक्त होती रही हैं। प्रारंभिक मिनोअन की मुद्रा, प्राग् राजवंश काल में किश तथा सुमेर की वर्तुलाकार मुद्रा पर इससे मिलती-जुलती नाव का अंकन हुआ है।

सेलखड़ी की मुद्राएं किस प्रकार निर्मित की जाती थीं उस विधि के बारे में उनके अध्ययन से कुछ जानकारी मिलती है। सर्वप्रथम आरी से सेलखड़ी की एक लम्बी पट्टी काटी जाती थी। तत्पश्चात् जिस माप की मुद्रा अभिहित होती थी उसी आकार में उसे काट दिया जाता था। यदि मुद्रा के पृष्ठ भाग पर घुंडी बनानी होती तो उस ओर बीच में केवल उतना स्थान छोड़ कर, जिसमें घुण्डी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बनती थी, बाकी हिस्से में जितनी मुद्रा की मोटाई रखनी थी वहां तक कटाई की जाती थी। घुण्डी वाले छेद में तागा या तार डाल दिया जाता रहा होगा, इसमें उंगली डाल कर मुहर लगाने में और लगाने के बाद मिट्टी या लाख से मुहर को हटाने में सहूलियत होती थी। सेलखड़ी पत्थर मुलायम होता ही है। बार-बार प्रयोग से रस्सी से घिसने के कारण छेद बड़े हो जाते थे और कभी कभी घुंडिया टूट भी जाती थीं। अतः मुद्राओं के छेद को बीच में कुछ गहरा कर दिया जाता था ताकि घुंडी जल्दी न टूटे।

मुद्राओं पर अभिलेख और अन्य चित्रण की रूप-रेखा बनायी जाती थी, इस विषय में निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। वैसे इलम और सुमेर में मुद्रा के अभिप्राय की रूप-रेखा पहले अंकित की जाती थी, तत्पश्चात् उसे उत्कीर्ण किया जाता था। इस कार्य के लिए नुकीले तथा गोलाई लिए, दोनों तरह के उपकरण (बर्मा) का व्यवहार होता था।

कुछ मुद्राएं अधूरी छूट गई हैं जिनसे निर्माण-विधि के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। इस संदर्भ में एक अधूरी मुद्रा का विशेष उल्लेख करना असंगत न होगा। मुद्रा को निश्चित आकार देकर इसे तराश भी लिया गया और उसके पृष्ठ भाग की घुण्डी पूरी बनी है, जिसमें छिद्र भी किया गया है। मुद्रा-निर्माता ने पहले पशु की पूरी आकृति का रेखांकन नहीं किया, अपितु पहले उसके शरीर के मध्य भाग से बनाना प्रारम्भ किया और वहाँ उसे जितने भी अलंकरण दिखाने थे वे सब अंकित कर दिये। फिर शरीर के अन्य भागों की रेखाकृति बनाना शुरू किया। पशु के कंधे की हड्डियों का बनाना अपूर्ण रह गया। इस मुद्रा के साक्ष्य से प्रकट होता है कि हड़प्पा संस्कृति के कुछ मुद्रा-निर्माता कला में इतने सिद्धहस्त थे कि वे बिना पूरी रूप-रेखा अंकित किये ही पशु की आकृति का उसके किसी भी अंग से बनाना प्रारंभ कर, सजीव और आनुपातिक चित्रण कर सकते थे, यद्यपि यह असंभव नहीं कि रेखांकन स्याही से किया गया रहा हो जो अब नष्ट हो गया है। अक्षरों में अक्सर अनुपात का अभाव है और इससे ऐसा लगता है कि मुद्रा-निर्माता ने पशु आकृतियों का अंकन पहले ही करके मुद्राएं रख लीं और बाद में ग्राहक के किसी मुद्रा को पसंद करने पर उससे संबंधित नाम-पद-वाची लेख बाद में खोदे। बड़े नाम होने पर जगह की कमी के कारण अक्षरों को आखिर में छोटा कर दिया और उन्हें ठीक आनुपातिक ढंग से नहीं लिख पाये। मुद्राएं बन जाने के पश्चात् उस पर किसी पदार्थ (शायद क्षार) का लेप चढ़ाया जाता था। तत्पश्चात् मुद्रा को भट्ठी में पकाया जाता था जिससे उसमें सफेद चमक आ जाती थी और वह कुछ मजबूत भी हो जाती थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुद्रा छापे

मुद्रा-छापें वर्गाकार, आयताकार, तिकोन, वृत्ताकार इत्यादि प्रकार के हैं। छापें मिट्टी, कांचली मिट्टी और पेस्ट की बनी हैं और उन पर मानव, पशु या लेख अंकित हैं। मुद्राओं की कुछ छापें मृद्भाण्डों पर मिली हैं। मोहेंजोदड़ो से प्राप्त एक आयताकार मुद्रा-छाप, जो पेस्ट से बनी है, अग्रभाग में एक कतार में 6 मानव आकृतियां हैं। इनके बारे में निश्चित करना कठिन है कि ये पुरुष हैं या नारियां। नीचे के हिस्से में झुकी हुई आकृति है जो अपने हाथ में एक चौड़े फलवाली वस्तु पकड़े है। उसके आगे एक बकरा है जिसके सामने पीपल का पेड़ है। मुद्रा के दूसरी ओर भी यह चित्रण था, किंतु यह अब धूमिल हो गया है। मैके के अनुसार इस दृश्य से पुरोहित बकरी को वृक्ष की आत्मा के लिए बलिदान दे रहा है।

एक अन्य आयताकार मुद्रा-छाप, जो कांचली मिट्टी की है, पर मध्य में एक योगी की मूर्ति है, जिसके दोनों ओर एक-एक भक्त हैं, जिनके पीछे एक-एक नाग हैं। मोहेंजोदड़ो से प्राप्त एक मुद्रा-छाप लगभग 2.9 सेमी लम्बी है और इसके किनारे (sides) लगभग .9 सेमी चौड़े हैं। दो तरफ कुछ लेख हैं, तीसरी तरफ चार लोग एक कतार में, प्रत्येक एक ध्वज लिए, हैं। यहां से प्राप्त एक और मिट्टी की तिकोनी मुद्रा-छाप के एक तरफ एक कतार में एक हाथी, एक गैंडा, एक बाघ और एक बिल्ली की आकृति सदृश जानवर हैं, ऊपर की ओर एक मछली और मुंह में मछली लिए एक घड़ियाल है। दूसरी तरफ एक-एक श्रृंगी पशु, एक पशु (गाय ?), छोटे सींगों वाला बैल और गैंडा हैं। इनके ऊपर कुछ जंगली चिड़ियां और घड़ियाल हैं। तीसरी तरफ दो बकरे, एक जंगली चिड़िया, एक आदमी एक पशु (बकरा ?) को खींचते हुए और एक हिरन जैसा पशु है। एक और मिट्टी की छाप में एक ओर बाघ और तीन अक्षर, दूसरी ओर एक-श्रृंगी पशु और तीन अक्षर, और तीसरी ओर छोटे सींग वाला बैल और दो अक्षर हैं। चूंकि इन मुद्रा-छापों के पीछे रस्सी के निशान नहीं हैं अतः उनका प्रयोग मुहरबंद करने के लिए नहीं किया गया था। मैके का कहना है कि इनका या तो ताबीज की तरह से उपयोग हुआ था या इन्हें पुरोहित लोग भक्तों को प्रसाद के रूप में बांटते रहे होंगे और उन्हें संभाल कर रखते रहे होंगे। लोथल और कालीबंगां से प्राप्त मुद्रा-छापें सेलखड़ी की बनी वर्गाकार या आयताकार मुद्राओं से ली गई हैं और उनमें से कुछ पर रस्सी के निशान भी हैं, उनका उपयोग सामान मुहरबंद करने के लिए किया गया होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

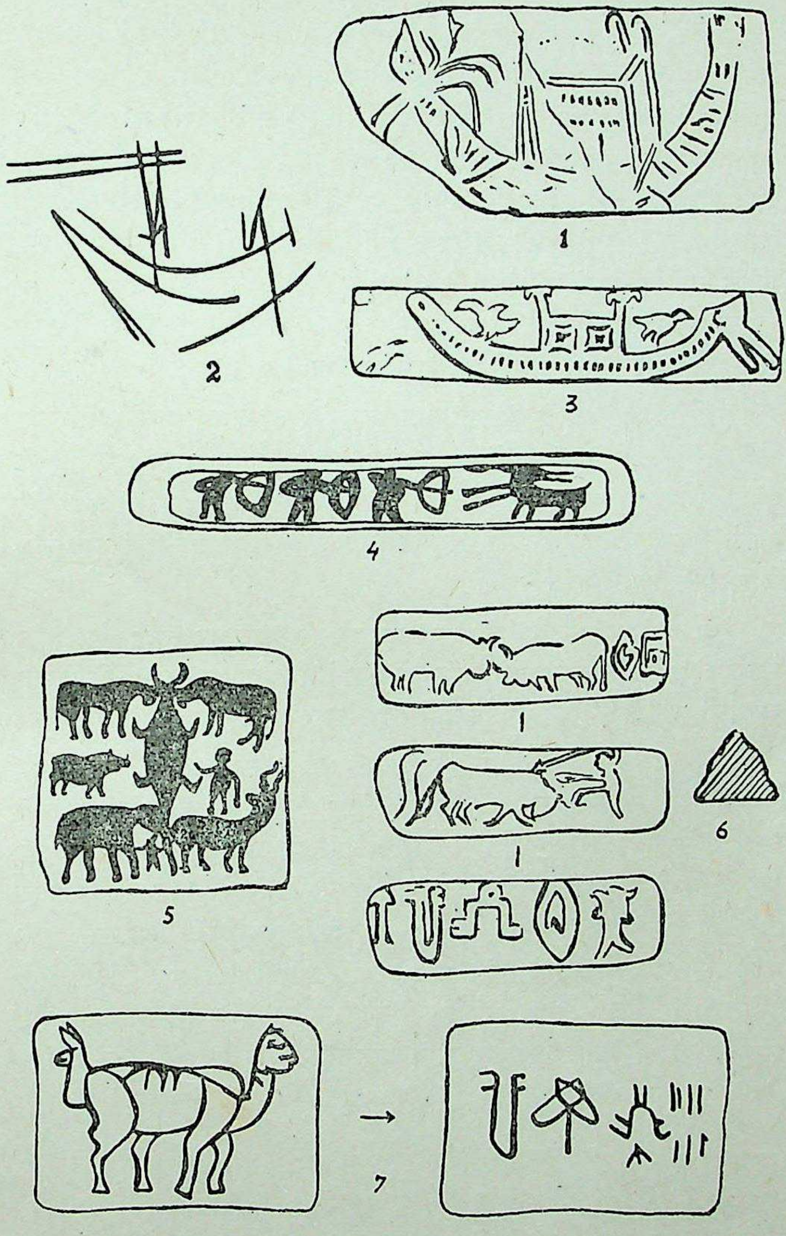

आरेख 10

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ताम्र-पट्ट

मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा से कई ताम्र-पट्ट (copper tablets) (आ० 9, 4-5; 10, 7) मिले हैं जिनका, मैके का कहना है, प्रयोग ताबीज की तरह किया जाता था। ये आकार में तीन प्रकार के हैं—(1) लम्बे और कम चौड़े, (2) वर्गाकार या लगभग वर्गाकार और (3) आयताकार। शायद लोग उन्हें शरीर पर ताबीज की तरह बांधते थे। जहां मुद्राओं के अभिलेख मुद्रा-स्वामियों के नाम; पद आदि के द्योतक हैं वहां ताम्र-पट्टों के लेख पशुओं से संबंधित लगते हैं क्योंकि कई ताम्र-पट्टों पर एक तरह के पशु के साथ एक ही तरह के लेख मिलने के उदाहरण मिले हैं। कई ताम्र-पट्टों पर छोर रहित गांठ के डिजाइन हैं। यह डिजाइन मिस्र में पवित्र चिह्न समझा जाता था।

मुद्राओं (Dies) के विपरीत ताम्र फलकों में सभी पशु दाहिनी ओर मुंह किये हैं। चूंकि ये ताम्र फलकों पर खुदे हुए अक्षर और अभिप्राय इतने उथले खुदे हैं कि इनसे छाप लिये जाने की कोई संभावना नहीं लगती, अतः यही मानना ठीक होगा कि इन पर पशु जिस दिशा में दिखाया गया है उसे उसी दिशा में दिखाना अभिप्रेत था।

ऐसा लगता है कि दूकानदार ताम्र-पट्टों को काट कर रखता था और ग्राहक की इच्छानुसार उस पर अभिप्राय और लेख खोद देता था। मैके ने कुछ पर आरी से काटने और कुछ पर सीधे पैने औजार से काटने के निशान पाये।

इन ताम्र-पट्टों को तांबे के सिक्के नहीं माना जा सकता, यद्यपि कुछ विद्वानों ने इस तरह का सुझाव दिया है। सिंधु सभ्यता के बांट अपनी तौल में सही होने के लिए विख्यात हैं और आशा यही की जाती है कि यदि वे लोग सिक्कों का निर्माण किये होते तो उनके सिक्के भी निर्धारित नाप-तौल के ही होते। एक ही आकार-प्रकार के ताम्र फलकों को तौलने पर पाया गया है कि वे किसी खास तौल प्रणाली पर अथवा तौल प्रणालियों पर आधारित नहीं हैं। इन्हें तांबे की सिल (ingots) भी नहीं माना जा सकता क्योंकि इनमें से कोई भी ऐसा नहीं जिसे हम सिंधु सभ्यता में प्राप्त किसी और वस्तु के बनाने के लिए उपयुक्त आकार वाला मान सकें।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 7

मनके

सिंधु सभ्यता में मृद्भाण्ड-निर्माण और मुद्रा-निर्माण के समान ही मनकों का निर्माण भी एक विकसित उद्योग था। सिंधु सभ्यता के सभी स्थलों से मनके मिले हैं किंतु हड़प्पा, मोहेंजोदड़ो, चन्हुदड़ो और लोथल से तो ये सहस्रों की संख्या में पाये गये हैं (आ० 11)। लोग इन मनकों को लड़ियों में गूंथ कर कई लड़ियों वाला हार बनाते थे। मृण्मूर्तियों का साक्ष्य इस बात का द्योतक है कि नारियां मनकों की माला की बनी मेखला भी पहनती थीं। सिंधु सभ्यता के मनकों के निर्माण के लिए सेलखड़ी, गोमेद, कार्नीलियन, जैस्पर इत्यादि पत्थरों का प्रयोग हुआ। धातुओं में सोना, चांदी और तांबे का प्रयोग मनके निर्माण के लिए विशेष रूप से हुआ। कांचली मिट्टी, मिट्टी शंख, हाथीदांत आदि के भी मनके बने। सिंधु सभ्यता के मनकों के आकार-प्रकार में पर्याप्त विविधता है। आकार-प्रकार की दृष्टि से मनकों का निम्नलिखित वर्गीकरण किया गया है—

बेलनाकार मनके—इस तरह के मनके अत्यंत लोकप्रिय थे। ये कांचली मिट्टी, सेलखड़ी, शंख, मिट्टी और कैल्साइट पत्थर के हैं। सेलखड़ी के कुछ वर्तुलाकार मनकों पर सोने की टोपी लगी है।

दंतचक्र प्रकार के मनके—इस तरह के मनके पेस्ट के बने हैं और इन पर ओप (glazing) भी है। इस तरह के मनके सांचे से बने हैं। मेसो-पोटामिया में ऐसे मनकों का अभाव है।

छोटे ढोलाकार मनके—ये मनके कांसा, तांबा, सोना, चांदी, स्फटिक, शंख, जेड, सेलखड़ी और चूना-पत्थर के हैं। स्फटिक और हरिताश्म के मनके बहुत कम हैं।

लम्बे ढोलाकार मनके—यद्यपि यह अनेक पदार्थों के बने हैं किंतु कांचली मिट्टी, मुलायम पत्थर और चूना-पत्थर के बने मनके सबसे अधिक हैं। मोहें-जोदड़ो से इस प्रकार का एक गोमेद का भी मनका मिला है। इन मनकों की काट अण्डाकार है। ऐसे आकार के मनके सोने और चांदी के भी मिले हैं। एक शंख का ऐसा मनका एक ओर चपटा है और दूसरी ओर अर्ध-गोलाकार। इस प्रकार के मनके जेम्देत नस्र के उत्खनन में पाये गये हैं। दक्षिणी नाल (बलूचिस्तान) के प्रारंभिक मृद्भाण्डों के साथ भी इस तरह के मनके उपलब्ध हैं। हड़प्पा से कार्नी-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लियन के ऐसे मनके मिले हैं जिनकी तुलना उर, किश और तेल अज्मर के मनकों से की जा सकती है।

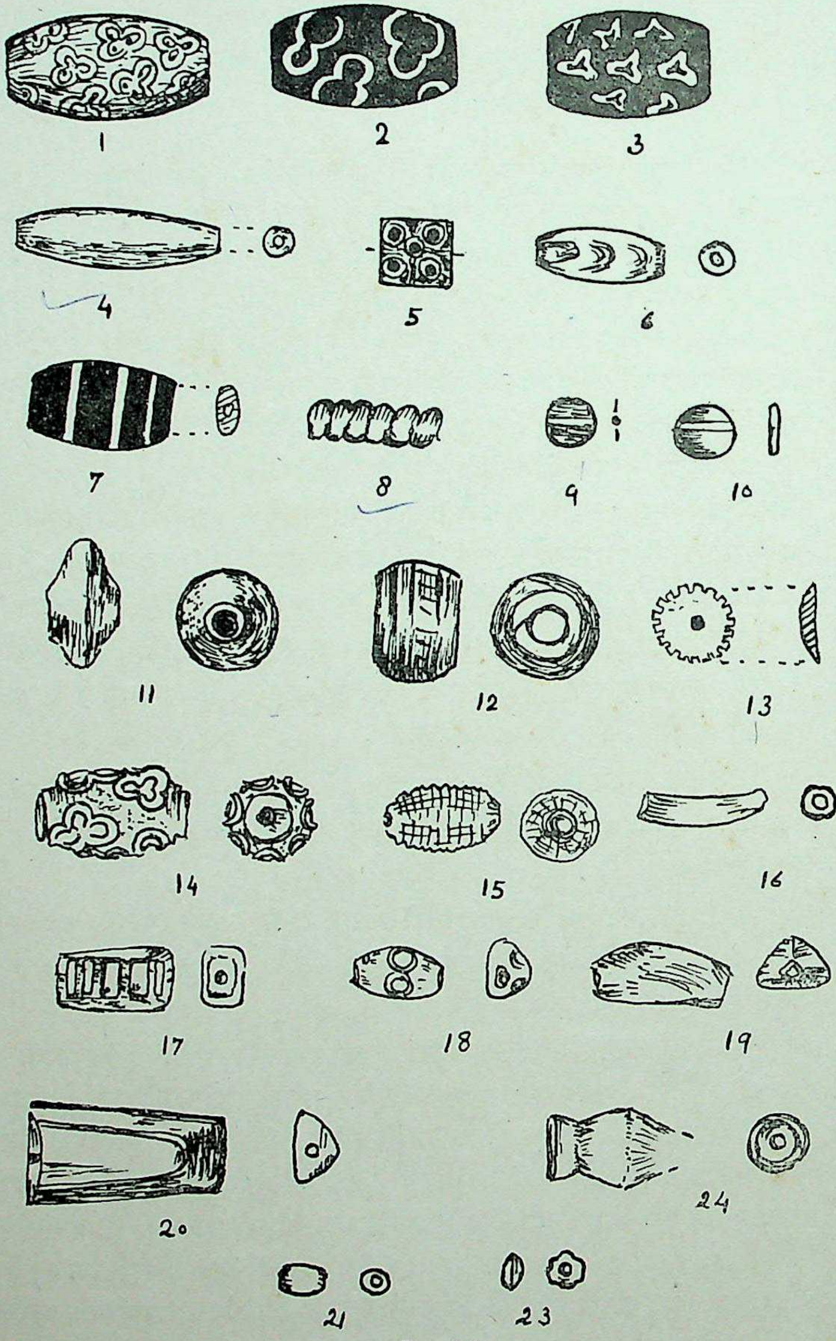

आरेख 11

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अण्डाकार या अर्धवृत्त काट वाले आयताकार मनके—कुछ आयताकार मनके अण्डाकार या अर्धवृत्ताकार काट वाले बनाये गये हैं । इनमें अण्डाकार काट वाले मनके विशेष लोकप्रिय रहे । यह सेलखड़ी, गोमेद, और हरी कांचली मिट्टी के बने हैं ।

खाड़ेदार तिर्यक (fluted tapered) मनके—ये पेस्ट के हैं और सांचे से बने हैं । संभवत: ऐसे मनके लटकन की तरह प्रयुक्त होते रहे होंगे ।

लम्बे ढोलाकार जैसे मनके (long barrel cylinder)—ये मनके बड़े आकर्षक हैं और या तो लाल का कर्नीलियन या मिट्टी के हैं । मिट्टी के मनके आकार में कर्नीलियन मनकों की प्रतिलिपि हैं और इन्हें समाज के आर्थिक दृष्टि से निम्न वर्ग के लोग पहनते रहे होंगे । इस प्रकार के मनके मेसोपोटामिया में मिले हैं पर वहां उनकी संख्या अधिक नहीं, जबकि हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो में ये भारी संख्या में उपलब्ध हुए हैं । कुछ विद्वानों के विचार से इनका निर्माण सिंधु सभ्यता में हुआ और वहां से ये मेसोपोटामिया पहुंचे ।

बिम्ब (disc) मनके (आ० 11, 1, 10) इस तरह के मनके कांचली मिट्टी, मिट्टी और शंख के हैं और इनकी संख्या अपेक्षाकृत कम है ।

गोल (globular) मनके—ऐसे मनके छोटे तथा बड़े दोनों आकार के मिले हैं । छोटे मनके कई पदार्थों से निर्मित हैं । कुछ ऐसे छोटे-छोटे सोने के मनके मोहेंजोदड़ो के दो आभूषण निधानों में भी पाये गये । बड़े मनके विभिन्न धातुओं के बने हैं । इन्हें सांचे से या पीट कर बनाया गया है । ऐसे एक ओपदार मनके का विश्लेषण भी डा० हामिद ने किया है । उनके अनुसार इस तरह के मनकों में उन्हें चमकाने के लिए किसी पदार्थ को अलग से मिलाया नहीं गया । ओप के लिए पालिश ही काफी थी ।

रेखांकित मनके (आ० 11, 1-3) ऐसे मनके उर, किश और तेल अज्मर से मिले हैं । लेकिन चन्हुदड़ो तथा मोहेंजोदड़ो के जो उदाहरण हैं वे अधिक सुधरे लगते हैं । हड़प्पा से एक हृदयाकार मनका मिला है । मोहेंजोदड़ो के रेखांकित मनके तीन तरह के हैं । कुछ में लाल भूमि पर सफेद, कुछ में सफेद भूमि पर काली और कुछ पर लाल भूमि पर काली डिजाइन है । चन्हुदड़ो से पहले दो प्रकार के मनके मिले हैं ।

खण्डश: विभक्त (segmented) मनके (आ० 11, 8) इस तरह के मनकों का निर्माण केवल कांचली मिट्टी से हुआ है । इन पर किसी तरह ओप के चिह्न नहीं हैं । मेसोपोटामिया में प्राग् सारगन काल तथा मिस्र में बाद के काल में ऐसे मनके बहुत लोकप्रिय थे । वहां के इस तरह के मनकों पर तरह-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तरह के रंगों की परत चढ़ाकर चमकाया गया था। प्रारंभिक मिनिओन II में पत्थर के इस तरह के मनके बनते थे। मार्शल के अनुसार मोहेंजोदड़ो में इस तरह के कांचली मिट्टी के बने मनके अन्तिम प्रकाल में पाये गये हैं।

कांचली मिट्टी के खंडशः विभक्त मनके टेलब्राक (उत्तरी सीरिया) में जमदेत नस्र काल (लगभग 3000 ई. पू.) में मिले हैं। क्रीट में ये मध्य मिनिओन तृतीय और मिस्र के अठारहवीं राजवंश के काल तक पाये गये हैं। पी. डी. रिशी (Ritchie) ने एक हड़प्पा और एक वनौसौस के मनके का वर्णक्रमलेखी (spectrographic) विश्लेषण से पता किया कि इन दोनों के निर्माण-पदार्थ में पूर्ण समानता है। कुछ विद्वानों का कहना है कि ये लगभग 1600 ई. पू. में एक ही स्थल में निर्मित हुए किंतु यह तिथि सिंधु सभ्यता की हड़प्पा स्थल की तिथि से मेल नहीं खाती। यह भी निश्चय करना कठिन है कि निर्माण स्थल कौन था।

उपर्युक्त प्रकारों के अतिरिक्त कुछ और आकार-प्रकार के मनके भी मिले हैं। उदाहरणार्थ हड़प्पा में सेलखड़ी के दांत की शक्ल के, कुछ सीढ़ीनुमा, कुछ सलीबनुमा मनके भी मिले हैं।

चन्हुदड़ो और लोथल में मनका बनाने वालों के कार्यस्थल (फैक्ट्री) उद्घाटित हुए हैं। इन स्थानों पर कई अधूरे बने मनके मिले। इनका अध्ययन कर साधारण पत्थर के टुकड़े से लेकर पूरी तरह बने मनके तक के विभिन्न चरणों का ज्ञान हुआ। लम्बे कार्नीलियन के मनके के बनाने की विधि निम्नलिखित थी—पहले पत्थर की लगभग 7.62 सेमी लंबी वर्गाकार तीलियां बनाते थे। इस तरह की आकृति देने के लिए पत्थर को काटने में तांबे की आरी और क्वार्ट्ज़ पत्थर के चूरे का प्रयोग किया गया होगा। फिर इन टुकड़ों को तराश कर इच्छित आकार दिया जाता था और उसे पत्थर पर घिस कर सपाट कर दिया जाता था और उसे चमका भी दिया जाता था। इन मनकों पर तागे डालने के लिए छेद दोनों ओर से किया जाता था। कुछ मनकों में यह छेद सीधा नहीं हो पाया और इसलिए दोनों ओर से मध्य की ओर उकेर कर दोनों तरफ से किये छेदों को मिला दिया जाता था। छेद करने के बाद छेद वाले भाग को पालिश भी कर दिया जाता था। छेद करने के लिए पत्थर या तांबे की वेधनी का प्रयोग किया गया। पत्थर की वेधनी की नोंक पर छोटा प्यालानुमा बना था जिसमें अपघर्षक और पानी अटक सके। निश्चय ही अपघर्षक की सहायता से छेद करने में आसानी रही होगी। चन्हुदड़ो में इस तरह के पत्थर की वेधनियां मिली हैं। पिगट के अनुसार परीक्षणों से ज्ञात होता है कि कार्नीलियन के एक 7.65 सेमी के मनके पर छेद करने में मनके बनाने वाले को लगभग 24 घंटे लग जाते रहे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होंगे और स्वाभाविक है कि ऐसे मनके काफी कीमती होंगे। लोथल के समीप ही स्थित कैम्बे में आज भी मनके बनाने का कार्य बड़े पैमाने पर होता है। शि. रंगनाथ राव का मत है कि वहां पर मनके बनाने की परंपरा सिंधु काल से अक्षुण्ण चली आ रही है और उस समय के लोगों की मनका बनाने की तकनीक आजकल की तकनीक से अधिक भिन्न नहीं रही होगी।

सेलखड़ी के मनके सिंधु सभ्यता में जितने मिले हैं उतने विश्व की किसी भी संस्कृति में नहीं मिले। मनकों के निर्माण के लिए सेलखड़ी का प्रयोग दो तरह से किया गया है—या तो सेलखड़ी पत्थर से सीधे ही मनके बनाये गये हैं या फिर उसके चूरे से पेस्ट बना कर। सेलखड़ी के पेस्ट से बने अत्यंत छोटे मनकों को तो कांसे की नली से उस पर दबाव डाल कर बनाया गया है। सेलखड़ी के पेस्ट से बने मनकों में से कुछ ढोलाकार या उत्तल द्विकोण (कन्वेक्स वाइकोन) मनकों पर तिपतिया अलंकरण है। पहले यह अलंकरण काट कर बनाया गया, फिर बाकी पृष्ठभूमि को भी काट दिया गया और इस तरह गहरे किये गये स्थान में लाल या काला रंग भर दिया गया। इस तरह तिपतिया डिजाइन लाल या सफेद रंग की पृष्ठभूमि में उभर आता है और रेखांकित कार्नीलियन के मनकों पर अंकित डिजाइन की तरह दिखता है। कुछ मनकों पर लाल रंग बिना पृष्ठभूमि को काटे भी लगाया गया है।

कार्नीलियन के रेखांकित मनके तीन तरह के हैं—लाल पृष्ठभूमि पर सफेद रंग के डिजाइन वाले और सफेद पृष्ठभूमि पर काले रंग के डिजाइन वाले और लाल पृष्ठभूमि पर काले डिजाइन वाले। प्रथम प्रकार के मनकों पर डिजाइन तेजाब (एच. सी. बेक के अनुसार सोडा कार्बोनेट) से अंकित किया जाता था और फिर मनके को काफी ताप पर गरम किया जाता था जिससे तेजाब ठीक तरह कार्नीलियन के भीतर पैठ जाता था और स्थायी रूप से सफेद रेखाएं अंकित हो जाती थीं। इस प्रकार आंख की डिजाइन वाले मनके, अंग्रेजी के '8' अंक के समान डिजाइन वाले मनके और ऋजुरेखीय हीराकार मनके उर, किश, टेल अज्मर (सारगान काल) में प्राप्त मनकों के समान हैं और एक ही स्रोत से इन स्थलों में लाये गये लगते हैं। दूसरे प्रकार के मनकों में पहले सारे मनके पर तेजाब लगाया जाता था जिससे सफेद सतह बन जाती थी। इस सफेद सतह पर काले रंग से डिजाइन बनाया जाता था। इस तरह के मनके मेसोपोटामिया में भी मिले हैं। रेखांकित कार्नीलियन के मनके मोहेंजोदड़ो में कम प्राप्त हुए। हड़प्पा में मोहेंजोदड़ो की अपेक्षा अधिक संख्या में मिले हैं। राव के अनुसार लोथल की खोदाइयों में ऐसे मनके काफी संख्या में मिले हैं। एच. सी. बेक के मतानुसार ऐसे मनके बनाने की तकनीक इतनी क्लिष्ट है कि दोनों संस्कृतियों में इनके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्वतंत्र रूप से बनाये जाने की संभावना नहीं दिखती । राव तो ऐसे मनकों का स्रोत लोथल मानते हैं । राव का मत कि रेखांकित मनके सबसे पहले लोथल में बने और अन्यत्र लोगों ने इस तरह के मनके बनाने का ज्ञान लोथल से ही प्राप्त किया सही नहीं लगता, मोहेंजोदड़ो में प्रारंभिक चरण से ही इस तरह के मनके मिलते हैं और इनकी तिथि लोथल से बाद की नहीं मानी जा सकती ।

रेखांकित मनके, लम्बे ढोलाकार कार्नीलियन के मनके, सेलखड़ी के पकाए गए छोटे मनके, सीढ़ीदार मनके, और मनकों पर तिपतिया डिजाइन सिंधु सभ्यता और मेसोपोटामिया की संस्कृतियों के बीच संपर्क के द्योतक लगते हैं । यह भी ध्यान देने योग्य है कि (1) सेलखड़ी के मनके सिंधु सभ्यता में तो पर्याप्त संख्या में मिलते हैं किंतु मेसोपोटामियां में अत्यल्प संख्या में; (2) सेलखड़ी के मनकों पर चित्रण सिंधु सभ्यता में मिलता है पर मेसोपटामिया के मनकों पर नहीं; (3) कुछ आकार-प्रकार सिंधु सभ्यता में मिलते हैं, मेसोपोटामिया में नहीं और कुछ मेसोपोटामिया के प्रकार सिंधु सभ्यता में नहीं मिलते ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 8

मृद्भाण्ड

सिंधु सभ्यता के मृद्भाण्ड अपनी विशिष्टता लिए हैं और इसके भाण्डों के कई मुख्य प्रकार अन्यत्र संस्कृतियों में अनुपलब्ध हैं। ये व्यावसायिक पैमाने पर उपयोगितावाद के दृष्टिकोण से निर्मित किये गये थे। उस सभ्यता के बर्तन अधिकतर चाक पर ही बने हैं। चाक लकड़ी के रहे होंगे जो नष्ट-से हो गये हैं। हाथ से बनाये बर्तन भी मिले हैं, किंतु चाक पर निर्मित बर्तनों की अपेक्षा इनकी संख्या बहुत कम हैं और ये मुख्य रूप-से निम्न स्तरों से उपलब्ध हुए हैं। बर्तनों के निर्माण में अंतिम चरण में ह्रास के लक्षण दिखते हैं। आजकल की प्रथा को ध्यान में रखते हुए ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि बर्तन पुरुषों ने बनाये होंगे और उन पर चित्रण आदि स्त्रियों ने किया होगा। मृद्भाण्डों के निर्माण के लिए मिट्टी नदी से लायी गयी थी। उसमें अभ्रक और बालू भी मिली है। भाण्डों को भट्ठों में भलीभांति पकाया गया था।

मोहेंजोदड़ो के अन्तिम चरण में, जब सभ्यता ह्रासोन्मुखी थी, नगर में भट्ठे भी पाये गये हैं। विकसित युग में भट्ठे नगर से बाहर रहे होंगे। ये उपलब्ध भट्ठे वृत्ताकार हैं और इनका व्यास 1.8 मीटर से 2.74 मीटर है। इनमें नीचे कोयला रखने के लिए गड्ढा था और उसके ऊपर बर्तन रखने के लिए गुम्बद की तरह आकार बना था। इस तरह के भट्ठे पश्चिमी एशिया की प्राचीन संस्कृतियों में भी मिले हैं। बर्तनों का ठीक तरह पका होना इस बात का द्योतक है कि आंच भली-भांति नियंत्रित थी। लेकिन आजकल की भांति बिना भट्ठे के भी खुले में भाण्ड पकाए जाते रहे होंगे।

कुल्हड़ के पेंदें गोल और कुछ नुकीले हैं और उनके नीचे का भाग ऊपरी भाग की अपेक्षा कम सावधानी से बना है। बड़े घड़े दो तीन भागों में बनाये गए थे और गीले में ही उन्हें काफी सफाई से जोड़ दिया गया था और साधारण जोड़ नहीं दिखते हैं। सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि सिंधु सभ्यता के बर्तनों में गोलाई अधिक है और सीधे कोने कम।

साधारणतः सिंधु सभ्यता के मृद्भाण्ड भली-भांति तैयार की गई मिट्टी से बने हैं। अधिकांश मृद्भाण्ड बिना चित्रण वाले हैं। उन पर हलका दूधिया रंग का लेप मिलता है, कुछ उदाहरणों में, लेप का रंग पीलापन लिए या सफेदी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिए है, और अत्यल्प उदाहरण गुलाबी लेप के भी हैं। चित्रित बर्तनों (फ० XIX, 1, 2, 4, 5; XX, 1, 3) की संख्या अपेक्षाकृत कम है और ईनमें से अधिकांश खंडित मिले हैं। चित्रित बर्तनों की संख्या निचले स्तरों में ऊपरी स्तरों की अपेक्षा अधिक है। चित्रित तथा सादे दोनों ही मृद्भाण्ड एक ही तरह की मिट्‌टी से बने हैं। यह रोचक तथ्य है कि सर लियोनार्ड वूली ने मोहेंजोदड़ो में पुनरुत्खनन न किये जाने की सलाह मुख्यतः इस आधार पर दी कि यहां पर मेसोपोटामिया की तरह विशाल संख्या में चित्रित मृद्भाण्ड नहीं मिलते। साधारणतया चित्रित बर्तनों पर लाल लेप लगा है। लेप लगाने का उद्देश्य सुन्दरता के अतिरिक्त बर्तन को जलाभेद्य बनाना भी था। कहीं पर तो लेप से बर्तन इतना चिकना बना दिया गया कि एक विद्वान् का सुझाव है कि इसमें चूहों से भी सुरक्षा हो सकती थी, क्योंकि चूहे ऐसे भाण्डों पर फिसल जाते रहे होंगे और उसके मुंह तक नहीं पहुंच पाते रहे होंगे।

दुधिया, गुलाबी और लाल सभी, रंगों के लेप के लिए रंगीन प्राकृतिक मिट्‌टी ही प्रयुक्त लगती है। लेप को, विशेषतः गाढ़े लाल रंग को, पालिश कर चमकाया गया है। अक्सर गाढ़ा लेप पूरे बर्तन पर नहीं लगाया गया और लेप वाले भाग पर ही चित्रकारी की गई है, बाकी भाग सादा छोड़ दिया गया है।

चित्रण साधारणतया काले रंग से किया जाता था जो मेग्निफेरस हाइमेटाइट से तैयार किया जाता था। लाल लेप पर काले रंग से चित्रण की विद्या की दृष्टि से उत्तरी बलूचिस्तान के रानाघुंडई-तृतीय चरण से प्रेरित लगते हैं किंतु जहां तक अभिप्रायों और डिजाइनों का प्रश्न है इनमें उत्तरी बलूचिस्तान का प्रभाव नगण्य है। कुछ अर्थों में दक्षिणी बलूचिस्तान की कुल्ली शैली का भी कुछ प्रभाव दिखता है। आकार प्रकार के समान चित्रण विद्या में भी सिंधु सभ्यता भाण्डों की अपनी अलग विशिष्टता है।

चित्रित बर्तनों के ऐसे बहुत कम उदाहरण (फ० XIX, 1) हैं जिनका सम्पूर्ण वाह्य भाग चित्रित किया गया हो। साधारणतया चित्रित मृद्भाण्ड के लगभग तीन चौथाई या उससे भी कम हिस्सों पर चित्रकारी की गई है। छोटे आकार के मृद्भाण्डों के मध्य में काले रंग से केवल धारी या धारियां बना दी गई है। अधिकांश मृद्भाण्डों में चित्रण काले रंग से किया गया है। चित्रित अभिप्रायों में विविधता है और अधिकांश डिजाइन परंपरागत शैली में हैं। काले रंग की आड़ी धारियां सबसे अधिक मिलती हैं (आ० 12, 17) कुछ धारियां मोटी और कुछ पतली हैं। साधारणतया चित्रण के लिए बर्तन को कुछ खण्डों में बांट लेते थे और फिर उन्हें खड़े और पड़े खण्डों में विभाजित करते थे। अभिप्रायों में प्रतिच्छेदी वृत्त विशेष उल्लेखनीय हैं। यह अभिप्राय एलम ओर सुमेर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के मृद्भाण्डों पर तो नहीं मिलता, लेकिन सिंधु और बलूचिस्तान के प्राग् हड़प्पा संस्कृतियों में ऐसे चित्रण के अत्यल्प उदाहरण मिलते हैं। तिकोन (आ० 14, 3) शंकु, चेक डिजाइन (आ० 14, 6), जाली (आ० 15, 1), मनकों का बार्डर (आ० 14, 13), अर्धचन्द्र, अंदर की ओर मुड़े तिकोन, सीढ़ीदार तिकोन, वृक्क के आकार का डिजाइन (आ० 13, 10), लहरदार रेखाएं (आ० 14, 5), लटकन (आ० 13, 8), मत्स्य शल्क (आ० 13, 1, 2) आदि उल्लेखनीय हैं। कितने ही अभिप्रायों पर छाया की गई है।

कई बर्तनों पर बनस्पति (फ० XIX, 4, 5; XX, 1, 3, आ० 14, 7, 8, 9) चित्रित हैं। अधिकांशतया वनस्पति का चित्रण पारम्परिक शैली में है और उनकी पहिचान करना कठिन है किंतु पीपल (आ० 14, 9), ताड़, नीम, केला, और बाजरा पहचाने जा सकते हैं। फूल का सा अलंकरण कुछ मृत्पात्रों पर हैं और कुछ पर सूरज की तरह का अभिप्राय है।

मछली का चित्रण भी कुछ भाण्ड खण्डों पर है (आ० 15, 6) पक्षियों में मोर की आकृति कुछ बर्तनों पर मिलती है (आ० 15, 5)। अंग्रेजी अक्षर 'वी' (V) की आकृति का डिजाइन पक्षी का द्योतक लगता है। पशुओं की आकृतियों का अंकन अधिक नहीं है, जो हैं भी वे स्वाभाविक नहीं हैं। कुछ मृद्भाण्ड खण्डों पर बड़े सींग वाला बकरा और हिरण हैं (आ० 13, 7, 8) पशुओं के साथ वनस्पति का भी चित्रण है। मोहेंजोदड़ो के एक उदाहरण में कनखजूरे का-सा चित्रण मिलता है। कुछ उदाहरणों में पक्षी वृक्ष की शाखा पर बैठे और कुछ पर उसके समीप दिखलाये गये हैं (फ० XX, 1) कुछ थोड़े से उदाहरणों में सर्प का अंकन है। सिंधु सभ्यता के मृद्भाडों पर पशु-पक्षियों के चित्रण में कुल्ली शैली से निकटता पाते हैं जिसमें शरीर की रूप-रेखा मोटी रेखाओं से दिखाकर भीतर भाग में आड़े-तिरछे छाया की गयी है। यद्यपि बाकी बातों में दोनों में पर्याप्त भेद भी हैं। केवल एक मृद्भाण्ड पर पशुओं को एक पंक्ति में दिखाया गया है। इस तरह से अलंकरण करने की विद्या एलम और सुमेर में विशेष रूप से लोकप्रिय थी। वैसे इस बर्तन का आकार और निर्माण में प्रयुक्त मिट्टी अन्य भाण्डों से भिन्न लगते हैं। मृद्भाण्डों के खण्डों पर मानव आकृतियों के भी चित्रण हैं, किंतु इनकी संख्या अत्यल्प है ओर जो हैं भी वे अपेक्षाकृत भोंड़े हैं। जाने क्यों मुद्राओं पर भी, जिनमें जानवरों का स्वाभाविक चित्रण मिलता है, मानव आकृतियां सुन्दर नहीं बन पड़ी हैं। हड़प्पा से प्राप्त एक ही भाण्ड के तीन टुकड़ों पर अलग-अलग तीन दृश्यों का अंकन है। एक फलक (आ० 15, 2) में वृक्ष की शाखा दिखायी गयी है। दूसरे में एक हिरनी बच्चे को दूध पिला रही है। हिरनी से ऊपर वाले भाग में दो पक्षी और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक मछली है । इस दृश्य के बाद एक चेकर डिजाइन है । उसके बाद एक और दृश्य जिसमें एक हाथ उठाये और दूसरे हाथ से सिर को छूता हुआ एक मनुष्य, दोनों हाथ उठाये एक बालक, दो मछली और एक मुर्गा दिखाया गया है । तीसरे में एक तरफ पेड़, मानव हाथ सिर और शायद नागफण, और दूसरी ओर एक पेड़ की शाखाएं दिखायी गयी हैं । हड़प्पा से ही प्राप्त एक मृद्भाण्ड खण्ड पर एक मछुआ (आ० 15, 1) अंकित है जो अपने कंधे पर रखी बहंगी में दो जाल लिये हुए है । उसके पैरों की सीध में एक मछली और एक कछुआ भी दिखाया गया है । कुछ बर्तनों पर लेप को कंघी जैसी किसी वस्तु से हटाकर उसके नीचे के गहरे रंग के धरातल को दिखाया गया है । उर और टेलअज्मर में प्रारम्भिक राजवंश काल में इस तरह की विद्या प्रचलित थी ।

सिंधु सभ्यता के कुछ बर्तनों पर ठप्पे भी मिलते हैं, मोहेंजोदड़ो में तो ठप्पे लगे बर्तन बहुत कम संख्या में मिले हैं किंतु हड़प्पा में इस तरह के बर्तन काफी संख्या में मिले हैं ।[1] अधिकांश ठप्पों पर सिंधु लिपि के चिह्न मिलते हैं जो शायद कुम्हारों के अथवा उनके फर्मों के नाम हैं । कुछ पर ग्रैफिटी के चिह्न भी हैं । उत्कीर्ण अलंकरण वाले बर्तन बहुत कम हैं और इस तरह का अलंकरण गहरे बर्तन और साधारण तश्तरी पर ही मिलते हैं । कुछ पर प्रतिच्छेदी वृत्त का का अभिप्राय अंकित है जो कभी नाखून से और कभी सरकंडे से बनाया गया है । मोहेंजोदड़ो के एक बर्तन पर नाव का चित्र खुदा है । कालीबंगां के कुछ बर्तनों पर सिंधु लिपि के अक्षर खुदे हैं ।

यह एक विचित्र सी बात है कि ये लोग लाल रंग का प्रयोग लेप के लिये तो खूब करते थे किंतु चित्रकारी के लिए उन्होंने इसका प्रयोग बहुत कम किया है । सिंधु सभ्यता में बहुरंगी चित्रण वाले भाण्ड बहुत कम मिले हैं और जो हैं वे आकार में अपेक्षाकृत छोटे हैं । मोहेंजोदड़ों में जो थोड़े से बहुरंगी भाण्ड हैं उन पर लाल और हरे रंग से पाण्डु सतह पर चित्र बनाये गये हैं । पीले रंग का प्रयोग बहुत कम हुआ है । चन्हुदड़ो से प्राप्त कुछ भाण्डों पर काला सफेद और लाल रंग से पीले (?) सतह पर चित्रण हुआ है, और पशु पक्षी चित्रित किये गए हैं । बहुरंगी बर्तनों पर रंग कुछ धुंधले हैं और लगता है कि इन पर रंग पकाने के बाद ही किया गया होगा । चित्रण के लिये काले और लाल रंग का प्रयोग तो कई प्राचीन संस्कृतियों में मिलता है किंतु बहुरंगी चित्रण वाले बर्तन

---

1. चंडीगढ़ से मिले एक सिंधु सभ्यता के पात्र पर भी ठप्पा मिला है । इस पर भी सिंधु सभ्यता के लिपि के चिह्न हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बहुत कम मिलते हैं; केवल नाल (बलूचिस्तान) के कब्रिस्तान में ही बहुरंगी चित्रण वाले बर्तन काफी संख्या में मिले हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि सिंधु सभ्यता के बहुरंगी चित्रण वाले बर्तन नाल संस्कृति के सम्पर्क का फल है। यह कहना कठिन है कि इनका निर्माण नाल की भांति शवों के साथ गाड़ने के लिए किया गया था, क्योंकि इस तरह का कोई साक्ष्य सिंधु संस्कृति में नहीं मिला है।

सिंधु सभ्यता के मृद्भाण्डों में आकार प्राकार की दृष्टि से पर्याप्त विविधता है (आ० 12)। इस सभ्यता के प्रायः सभी स्थलों से साधार तश्तरियां पायी गयी हैं (फ० XIX, 4, (2); आ० 12, 1)। इस तरह के बर्तन का ऊपरी भाग एक तश्तरी या प्याले जैसा तथा निचला भाग उलटी तुरही के समान है। कुछ का आधार लम्बा है और कुछ का छोटा। ये हड़प्पा तथा मोहेंजोदड़ो में सभी स्तरों में मिलती हैं। साधार तश्तरियां तत्कालीन कुछ अन्य संस्कृतियों एलम, सुमेर क्रीट और मिस्र में भी प्रचलित थीं। मेसोपोटामिया में तो कब्र में यह विशेषरूप से अन्य सामग्री के साथ मिलता है और भारत में ही सिंधु सभ्यता से इतर ताम्राश्म संस्कृतियों में भी इस तरह के पात्रों से मिलती जुलती आकृति वाले बर्तनों के उदाहरण पाये गये हैं। सुमेर के कुम्हारों की भांति ही सिंधु सभ्यता के कुम्हार पहले इस बर्तन के दोनों भागों (तश्तरी) और उसका आधार) को अलग अलग बनाते थे और फिर उन्हें जोड़कर एक बर्तन का रूप दे देते थे। किंतु सिंधु सभ्यता के भाण्ड का यह प्रकार उसकी मिट्टी, आकृति और पकाने की विधि कुछ इस तरह की है कि उपर्युक्त इतर संस्कृतियों के बर्तनों से इन्हें अलग ही पहचाना जा सकता है। कुछ विद्वानों के अनुसार झोब घाटी के रानाघुंडई द्वितीय काल से प्राप्त आधार युक्त कटोरे ही मूलतः सिंधु सभ्यता के इस प्रकार के भाण्डों के प्रेरणास्रोत रहे होंगे। सम्भवतः लोग इस पर भोज्य सामग्री रखकर स्वयं चौकी पर बैठकर भोजन करते रहे होंगे, ताकि भोजन करते समय झुकना न पड़े। निश्चय ही यह उच्च वर्ग के लोगों की रुचि का द्योतक है। कब्रों में भी शव के साथ इस तरह का बर्तन मिलता है और यह यह भी सम्भव है कि इसका प्रयोग धार्मिक अनुष्ठान के संदर्भ में किया जाता रहा हो।

मटकों के हत्थेदार प्याले जैसे ढक्कन मिले हैं, लगभग उसी तरह के जैसे कि जम्देत नस्र में भी पाये गये हैं जो कालक्रम की दृष्टि से सुमेर के प्रारम्भिक राजवंश युग के ठहरते हैं। हत्थेदार मृद्भाण्डों के उदाहरण हड़प्पा तथा मोहें-जोदड़ों, दोनों से कम ही प्राप्त हुए हैं। केवल बच्चों को दूध और अन्य तरल पदार्थ पिलाने के लिए प्रयुक्त प्यालों में ही हत्थे मिले हैं। हत्थेदार मृद्भाण्ड मेसोपोटामिया में काफी पहले से लोकप्रिय थे। सिंधु सभ्यता में टोंटीदार बर्तन

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी बहुत कम उपलब्ध हैं । बड़े घड़े भी मिले हैं जिनमें अन्न या जल संग्रहीत

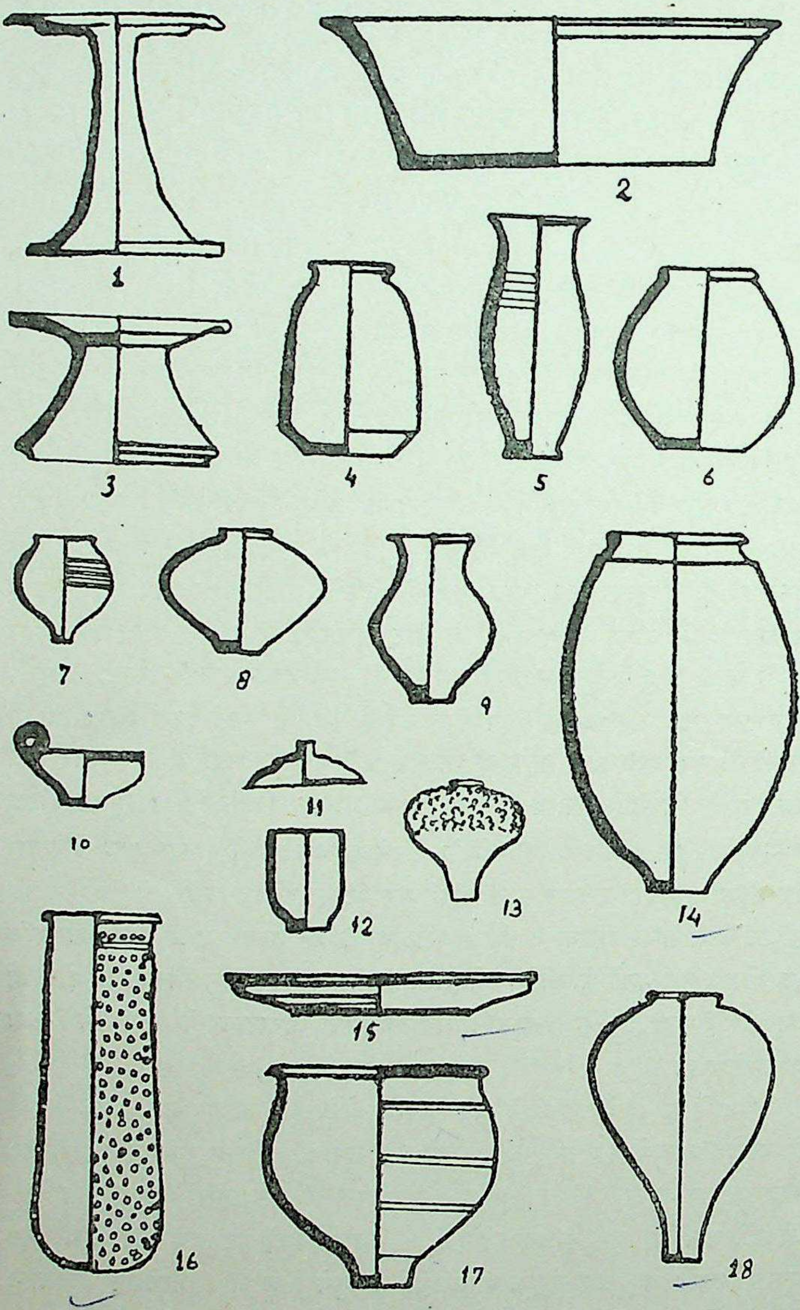

आरेख 12

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किया जाता रहा होगा। कुछ घड़ों का प्रयोग शव की अस्थियों के विर्सजन के लिए भी होता था। कुछ छोटे मुख वाले काले रंग के मर्तबान भी हैं। कुछ वर्तनों के सिरे पर छिद्र हैं जिसमें रस्सी डालकर शायद बर्तनों को लटकाया जाता रहा होगा। शायद ढक्कन को भी इन छेदों में रस्सी डालकर ठीक तरह कसा जाता रहा होगा। थालियों में मुख्य रूप से खाना परोसा जाता रहा होगा। नांद की तरह बर्तनों में पर्याप्त विविधता है। घड़ों और अन्य बर्तनों के ढक्कन भी पर्याप्त संख्या में पाये गये हैं (आ० 12, 14, 17)।

कुछ मृत्पात्रों के बाहर उस तरह के छोटे-छोटे दानों के उभार हैं जैसे कटहल के फल पर होते हैं (आ० 12, 13), तेल अस्मार की खोदाई से प्राप्त इसी तरह के अलंकरण वाले बर्तन सिंधु सभ्यता के समकालीन हैं, और भारत से आयातित लगते हैं। लम्बे और बेलनाकार आकृति के कुछ बर्तन ऐसे भी पाये गये हैं जिन पर अनेक छेद हैं (फ० XX, 2; आ० 12, 16) छेदों का आकार बर्तनों के आकार के अनुपात में भिन्नता लिये हैं जो गीले बर्तन पर ही लकड़ी से बनाये गये हैं। ये आकार में लगभग पौने चार सेमी से लगभग 50.800 सेमी तक बड़े हैं। कुछ छिद्रित बर्तनों पर दूधिया लेप है। आरेल स्टाइन को बलूचिस्तान से भी एक ऐसा ही मृद्भाण्ड उपलब्ध हुआ जिसके अन्दर राख थी। हो सकता है कि इनका उपयोग सिगड़ी के रूप में किया जाता रहा हो। लेकिन साधारणत: ऐसे वर्तनों पर आग जलाने के निशान नहीं हैं। बेबीलोनिया में भी छिद्रित बर्तन अति प्राचीन काल से मिलते हैं, यद्यपि वे आकार में सिंधु सभ्यता के छिद्रित बर्तनों से भिन्न हैं। बेबीलोनिया के इन भाण्डों का दूध छानने के लिए प्रयुक्त होना सुझाया गया है। कुछ विद्वान् इन बर्तनों की पहिचान ऋग्वेद में उल्लिखित शतधार कलश[1] के रूप में करते हैं।

कुछ चंचुक (बीकर) की आकृति के बर्तन मिले हैं। ये अपेक्षाकृत पतले हैं। इन्हें भली-भांति तैयार की गई मिट्टी से बनाया गया है और अधिकांशतया बिना लेप के हैं; जिन पर लेप है भी वह सावधानी से नहीं लगाया गया है। ये ज्यादातर मध्य एवं बाद के काल में ही मिले हैं, मुख्यतया मध्यकाल में।

हड़प्पा संस्कृति के छोटे मृद्भाण्ड सुन्दर बन पड़े हैं। कुछ भाण्डों की ऊंचाई तो केवल आधा इंच ही है। यह मिट्टी अथवा कांचली मिट्टी के बने हैं।

---

1. शतधारं उत्सं, ऋग्वेद 9-206-9. शतधारकलश का उल्लेख वैदिक साहित्य में सोमरस के निर्माण के संदर्भ में आया है इससे छन-छन कर सोमरस निकाला जाता था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इनमें सम्भवत: इत्र तथा प्रसाधन की अन्य कोई बहुमूल्य सामग्री रखी जाती थी। एक प्रकार के कटोरे मिले हैं जिनके पेदें में अन्दर की ओर घुंडी है। इस तरह

आरेख 13

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के कटोरे मेसोपोटामिया में जमदेत नस्र काल में तथा अन्य संस्कृतियों में भी पाये गये हैं।

ऐसे बर्तन भी मिले हैं जिन पर विभिन्न सामग्री रखने के लिए अलग-अलग खाने हैं। आज भी इस तरह अलग-अलग खाने वाली थालियों का प्रचलन है। कुछ कुल्हड़ के तरह के पानपात्र मिले हैं। इनका पेंदा नुकीला है और ये सम्भवतः उलटे रखे जाते थे। इनका प्रयोग कुल्हड़ की तरह पानी पीने के लिए होता रहा होगा। यह भी संभावना व्यक्त की गई है कि इनका उपयोग रहट की भांति कुओं से पानी निकालने के लिए होता रहा होगा। किंतु इनका अपेक्षाकृत छोटा आकार इस कार्य के लिए उपयुक्त नहीं लगता और साथ ही उत्खनन में जिस संदर्भ में ये अधिकांशतः मिले हैं उससे कहीं-कहीं तो प्याऊ जैसे स्थलों में पानी पिलाने के लिए इनका उपयोग होना लगता है। इनमें कुछ पर ठप्पे भी मिलते हैं जो सम्भवतः कुंभकारों के अथवा उनकी फर्म के नाम हो सकते हैं। वास्तव में यह एक मात्र बर्तनों का प्रकार है जिस पर ठप्पे हैं। हड़प्पा के दस ऐसे बर्तनों पर एक ही तरह के लेख वाले ठप्पे मिले हैं। हड़प्पा और मोहेंजोदड़ों में ऐसे बर्तन ऊपरी स्तरों में मिलते हैं। सौराष्ट्र के कुछ स्थलों से हड़प्पा संस्कृति के संदर्भ में इस तरह का बर्तन नहीं मिलता। थालीनुमा बर्तन भी मिले हैं (आ० 12, 15)। सम्भवतः इनका प्रयोग भोजन परोसने के लिये किया जाता रहा होगा। ये थालियां काफी मोटी, उथली और एकदम सादी हैं। गीली मिट्टी से पशु अथवा मानवाकृति बनाकर गीली अवस्था में ही बर्तनों पर जोड़ने का चलन नहीं था। केवल एक ही उदाहरण अपवाद स्वरूप उपलब्ध है जिस पर एक बैठे भेष की आकृति है। यह भाण्ड मसिपात्र-सा लगता है। समकालीन मेसोपोटामिया के बर्तनों पर विभिन्न पशुओं की आकृति बनाने का काफी चलन था।

धूसर रंग की मिट्टी से बने बर्तनों की संख्या बहुत थोड़ी है। इन पर काला लेप है और इनमें से कई पर पालिश किये जाने से चमक है। मेसोपोटामिया की प्राचीन संस्कृति के संदर्भ में भी इस तरह के बर्तन मिले हैं, पर वे तिथि की दृष्टि से सिंधु सभ्यता से पहले के हैं। गुलाबी रंग के पतले मृद्भाण्ड बहुत थोड़े से हैं। ये हड़प्पा संस्कृति के बर्तनों से भिन्न आकृति के हैं और शायद बाहर से लाये गये थे।

यहां पर सिंधु सभ्यता के कुछ स्थलों के मृद्भाण्डों की विशेषताओं का उल्लेख समीचीन होगा। रोपड़ की खोदाई से हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो के बर्तनों के समान ही साधार तश्तरियां, चंचुक (बीकर), चपटी थाली, उथले नांद और छिद्रित बर्तन उपलब्ध हुए हैं। पानपात्र बहुत कम संख्या में मिले हैं और ऊपरी सतहों में तो यह बिल्कुल ही नहीं मिले।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आलमगीरपुर के बर्तनों में कोई विशेष बात नहीं दिखती। कुछ मिट्टी की बड़ी थालियां मिली हैं जिनके पेंदे छल्लेदार हैं। डा० यज्ञदत्त शर्मा के अनुसार,

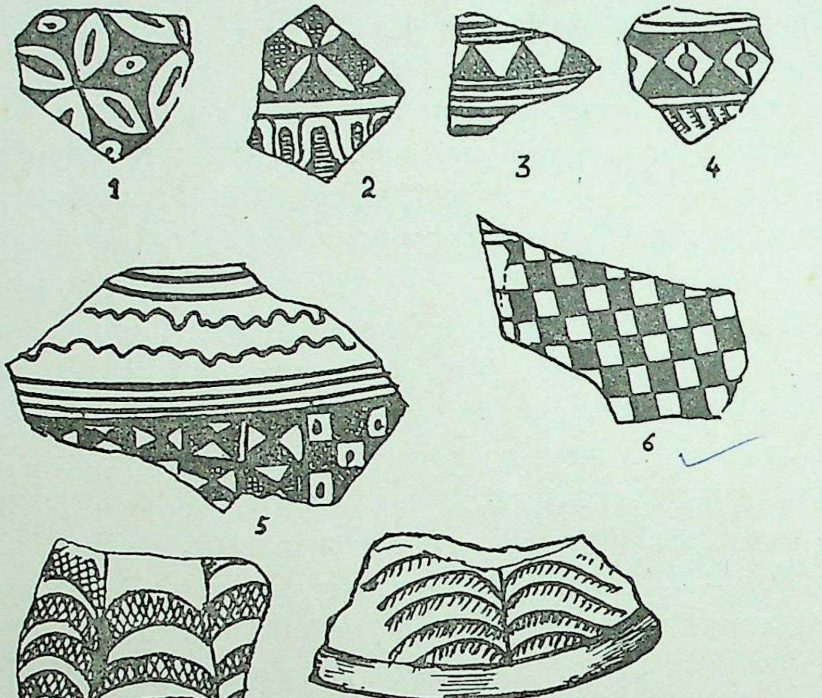

आरेख 14

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिनके निर्देशन में यहां पर उत्खनन हुआ, इनका प्रयोग आटा सानने के लिए होता था। यहां चंचुक (बीकर) तथा छिद्रित बर्तन भी अत्यल्प संख्या में हैं

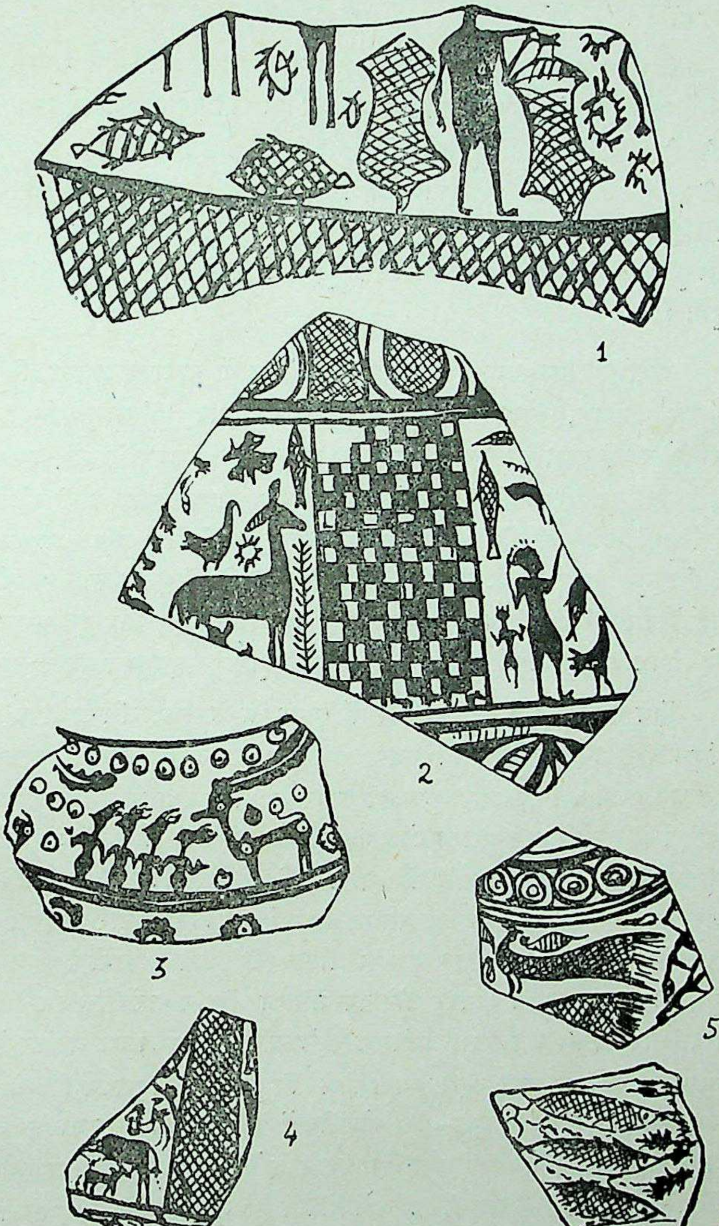

आरेख 15

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और अंग्रेजी 'एस' ('S') अक्षर की आकृति के बर्तन, जो हड़प्पा मोहेंजोदड़ो में पर्याप्त संख्या में मिलते हैं और जिन पर चित्रण भी मिलता है, नहीं मिलते हैं।

सिंधु सभ्यता के मृद्भाण्डों के संदर्भ में लोथल और गुजरात के अन्य स्थलों से प्राप्त मृद्भाण्डों का साक्ष्य विशेष महत्त्वपूर्ण है। यहां पर एक ओर हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो की तरह के मृद्भाण्ड मिले ही हैं, कुछ परिवर्तित और परिवर्धित और कुछ नये प्रकार के मृद्भाण्ड भी उपलब्ध हुए जो इस बात के द्योतक हैं कि संस्कृति का अंत अचानक नहीं हुआ बल्कि समय के साथ और शायद अन्य संस्कृतियों से संपर्क के फलस्वरूप उसके मृद्भाण्डों के आकार-प्रकार में परिवर्तन हुआ।

प्रारंभिक सिंधु सभ्यता के चरण में लोथल में साधारण तश्तरी, छिद्रित कलश, पानपात्र, चंचुक, छोटे गर्दन वाला कलश, नांद, 'S' आकृति के भाण्ड, बड़े गोल घड़े इत्यादि सिंधु सभ्यता के प्रकार के हैं। अलंकरण के अभिप्राय यथा प्रतिच्छेदी वृत्त पीपल की पत्ती, मोर इत्यादि भी हड़प्पा प्रकार के ही रहे किंतु कहीं-कहीं चित्रण की शैली में भेद भी दिखता है। अधिकांश वर्तन लाल रंग के हैं किंतु कुछ पाण्डु रंग के भी हैं। राव का मत है कि सिंधु सभ्यता के लोगों ने उन्नतोदर कटोरे, जिनमें कुछ पर हत्थे हैं (फ० XIX, 3) और कुछ पर नहीं, को लोथल के मूलवासियों से लिया, जो सिंधु संस्कृति से पहले वहां पर रहते थे।

सिंधु सभ्यता के द्वितीय चरण में सिंधु सभ्यता के कुछ विशिष्ट भाण्ड यथा चंचुक और पानपात्र का चलन समाप्त हो गया तथा बेलनाकार छिद्रित कलश का अब चलन कम हो गया। कुछ नये प्रकार के भाण्ड यथा नौतली स्कंध वाला कटोरा और ऊंची गर्दन वाला गोल भाण्ड प्रचलन में आये जो क्रमशः उन्नतोदर कटोरा और छोटी गर्दन वाले गोल भाण्ड से विकसित हुए। साधारण तश्तरियां अब नौतली नहीं रहीं और उनका आकार छोटा हो गया। स्टड कटोरे का हत्था कुछ लंबा बनाया जाने लगा और दीपक का आकार भी बदला। बर्तनों के चित्रण में कुछ सादगी आ गयी। जानवर और वनस्पति का चित्रण पारंपरिक ढंग से होने लगा और लटकन जैसे सरल अलंकरण पहले के अपेक्षाकृत क्लिष्ट अलंकरणों के स्थान पर अधिक प्रयुक्त हुए। छाया किये त्रिभुज और अपुष्पपर्ण (frond) का भी प्रयोग रहा। हड़प्पा और मोहेंजोदड़ों से प्राप्त सिंधु सभ्यता के अन्य अलंकरणों का प्रयोग कम मिलता है। पशु पक्षियों का अपेक्षाकृत विशाल पैमाने पर चित्रण द्वितीय काल की अन्य विशेषता है जो लोथल के मृद्भाण्डों को विशिष्टता प्रदान करता है। इस यर्थाथवादी चित्रण का सर्वोत्तम उदाहरण एक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बहुत ही कलात्मक रूप से अंकित बारहसिंगे की आकृति है जिसे एक वृक्ष के नीचे दिखाया गया है (फ० XX, 3)। बारहसिंगे की गर्दन बहुत सुंदर ढंग से बनी है और पेड़ की झुकी शाखा और पत्तियाँ उसके साथ बहुत सुंदर सामंजस्य स्थापित करती हैं। इसकी पाण्डु सतह पर चाकलेटी रंग से चित्रित किया गया है। लोथल के बर्तनों से स्पष्ट है कि सिंधु सभ्यता के बर्तन निर्माण तथा उनके अलंकरण में जो परिवर्तन और परिवर्धन हुए वे इस बात के प्रमाण हैं कि सिंधु सभ्यता के उपकरणों की एक रूपता वाली धारणा आंशिक रूप से ही सही है।

रंगपुर का द्वितीय काल सिंधु सभ्यता का काल था। इस काल के प्रथम चरण में लाल भाण्ड में तश्तरी, व मर्तबान मिले हैं। चंचुक (बीकर) बहुत थोड़ी संख्या में हैं, और चित्रित बर्तन भी कम ही मिले हैं। रंगनाथ राव के अनुसार ये इस बात के द्योतक हैं कि सिंधु सभ्यता के लोग रंगपुर में उस समय आकर बसे जब कि उनकी संपन्नता ह्रासोन्मुखी थी। द्वितीय चरण में जो बर्तन मिले वे भलीभांति नहीं पकाए गये और छिद्रित बेलनाकार बर्तन का प्रयोग शनैः शनैः समाप्त हो गया। हड़प्पा काल के तृतीय चरण में उन्नतोदर कटोरे से नौतली कटोरा और बल्व की आकृति के छोटी गर्दन वाले जार से ऊँची गर्दन वाले जार का विकास हुआ। हड़प्पा सभ्यता के आधारयुक्त प्याले से चषक पानपात्र (wine cup) का विकास हुआ। इसी चरण में चमकीले लाल भाण्ड का अविर्भाव हुआ। मोर की आकृति को पारंपरिक ढंग से चित्रित किया गया तथा बकरे और वृषभ जिनका चित्रण हड़प्पा सभ्यता तथा मध्य-भारतीय सभ्यता में भी मिलता है, का चित्रण किया गया। अन्य अलंकरणों में विकल्पतः छाया किये वर्ग, आमुख त्रिभुज, छाया किये ईंट के पत्ते की आकृति, लटकन, लहरी रेखाएं और अपुष्प पर्ण हैं। इस काल में श्वेत रंग से अलंकृत काले और लाल भाण्ड और अधिक प्रयुक्त हुए और स्टड हत्थे वाले अभ्रकी बर्तन का हत्था पहले के काल की अपेक्षा कुछ लंबा हो गया। इस स्थल के अंतिम काल (तृतीय काल) में चमकीले लाल भाण्ड, तथा काले और लाल भाण्ड अधिक संख्या में बनने लगे।

सुरकोटडा (कच्छ) के प्रथम काल के प्रथम चरण में लाल भांडो पर काले रंग से चित्रण की विधा का प्रचलन रहा। पीपल पत्ती, मत्स्य शल्क, हिरन, सारस, बतख का चित्रण सुंदर बन पड़ा है। पानपात्र (अल्प संख्या में), साधारण तश्तरियां, छिद्रित भाण्ड, 'चंचुक' आदि सिंधु प्रकार के भाण्ड प्राप्त हुए हैं। लेकिन सिंधु प्रकार से भिन्न बर्तन यथा बहुरंगी (बैंजनी, सफेद और काले) चित्रण वाले, दुधिया लेप वाले, सोथी प्रकार के, रिर्जव्ड लेप वाले भाण्ड मिले हैं। अंतिम प्रकार लोथल, मोहेंजोदड़ो और भारत से बाहर टेलब्राक में मिले हैं। लोथल के प्रथम काल से प्राप्त सफेद रंग के चित्रण वाले काले और लाल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाण्ड की तरह के भाण्ड इस चरण में नहीं मिलते । प्रथम काल के द्वितीय चरण में भी भाण्डों में कोई विशेष अंतर नहीं दिखता लेकिन तृतीय चरण में सिंधु सभ्यता के चित्रित भाण्ड, छिद्रित भाण्ड और पानपात्र के साथ ही आहाड़ प्रकार के श्वेत रंग से चित्रित काले और लाल भाण्ड मिले हैं जिनमें कटोरे तश्तरियां और हत्थेदार कटोरे उल्लेखनीय हैं । किंतु सौराष्ट्र के सिंधु सभ्यता के स्थलों में प्राप्त चमकीले लाल भाण्डों का अभाव है ।

मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा में मार्शल के निर्देशन में हुए उत्खनन में परतों का अध्ययन नहीं किया गया था लेकिन ह्वीलर द्वारा 1950 में मोहेंजोदड़ो में किये उत्खनन में मृदभाण्डों में क्रमिक परिवर्तन के कुछ साक्ष्य मिले हैं और यह देखा गया कि परवर्ती चरण में तकनीकी मानक में ह्रास हुआ । एक विकसित सभ्यता के अनुरूप ही सिंधु सभ्यता के मृद्भाण्डों में आकार प्रकार की दृष्टि से पर्याप्त विविधता और विशिष्टता पाई जाती है और उनकी निर्माण-तकनीक भी काफी उन्नत है । इनके निर्माण में उपयोगिता का दृष्टिकोण अधिक और कल्पनाशीलता कम है । एक बार एक विशिष्ट आकार प्रकार का निर्धारण हो गया तो फिर लोग उसी तरह के बर्तन विशाल संख्या में बनाने लगे और बर्तन बनाना कला के स्थान पर व्यवसाय बन गया । लेकिन कुछ भाण्ड सिंधु सभ्यता के कुंभकारों की कलाकारिता के सुंदर उदाहरण हैं । मृद्भाण्डों की विशिष्टता के कारण ही, गार्डन चाइल्ड ने यह व्यक्त किया कि सिंधु सभ्यता के बर्तन उसे अन्य सभ्यताओं से जोड़ने के बजाय उसके अलग व्यक्तित्व को दर्शाने में अधिक सहायक हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 9

युद्ध संबंधी उपकरण

सिंधु सभ्यता का मूल आधार कृषि तथा व्यापार था। इस तरह का कोई निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं है जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि इस सभ्यता के लोगों ने आक्रमण के बल पर धन-सम्पत्ति एकत्र की थी और राज्य-विस्तार किया था। मार्शल, मैके आदि पुराविदों का मत है कि ये लोग युद्ध-विमुख शांतिप्रिय लोग थे। इस तथ्य में कुछ सचाई हो सकती है, किंतु कालांतर में ह्वीलर द्वारा की गई खोदाइयों से यह स्पष्ट हो गया है कि वे लोग आक्रामक भले ही न रहे हों किंतु अपनी सुरक्षा के प्रति बड़े सजग थे। उन्होंने मोहेंजोदड़ो, हड़प्पा, कालीबंगां इत्यादि कई नगरों की गढ़ियों को विशाल रक्षा-प्राचीरों से सुरक्षित किया था जिसके वास्तुविन्यास के संबंध में विस्तार से अन्यत्र उल्लेख किया गया है। इस सुरक्षा दीवार के साथ बुर्ज भी संबद्ध थे। द्वारों की सुरक्षा का विशेष प्रबंध था। सुरक्षा दीवार का मुख्य प्रयोजन आक्रमण से सुरक्षा ही रहा होगा। यों यह बाढ़ से भी बचाव कर सकती थी। कौन जाने शासक वर्ग ने इसका निर्माण निचले नगर के लोगों पर अपनी श्रेष्ठता जताने के उद्देश्य से अथवा किसी संभाव्य आंतरिक विद्रोह से सुरक्षा के उपाय के रूप में भी किया हो। खोदाइयों में प्राप्त अधिकांश सामग्री इस तरह की है जिसका युद्ध, शिकार या बढ़ईगीरी में से किसी भी कार्य के लिए प्रयोग किया जा सकता था। ऐसी सामग्री बहुत कम प्राप्त हुई है जिसे निश्चयपूर्वक अस्त्र-शस्त्र की श्रेणी में रखा जा सके।

सिंधु सभ्यता के अवशेषों में कोई भी वस्तु ऐसी नहीं मिली जिसकी पहिचान किसी रक्षात्मक अस्त्र, यथा कवच, ढाल अथवा शिरस्त्राण से की जा सकती हो। वैसे बटन जैसी आकृति के कुछ तांबे के टुकड़े उपलब्ध हुए हैं जिनके बारे में कतिपय विद्वानों का विचार है कि इन्हें शत्रुओं के प्रहार से शरीर की सुरक्षा के लिए सैनिक भूषा में सिल दिया गया होगा।

अस्त्र-शस्त्रों (आ० 16) में तांबे और कांसे के बने भाले, चाकू, बाणाग्र तथा कुल्हाड़ियां पायी गयी हैं। कुछ पत्थर के और तांबे के गदा सिर तथा मिट्टी की कुछ गोलियां मिली हैं। पत्थर के कुछ फलकों (ब्लेड) का उपयोग उनके दैनिक कार्यों के लिए होता रहा होगा, सैनिक उपकरण के तौर पर नहीं। कुछ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ताम्र उपकरणों पर लेख भी मिले हैं। मोहेंजोदड़ो से ताम्र आयुधों की एक निधि प्रारंभिक स्तरों से मिली थी। उसमें से एक उपकरण पर चित्रलिपि में लेख अंकित है। लेखयुक्त उपकरण मोहेंजोदड़ो की अपेक्षा हड़प्पा से अधिक पाये गये हैं।

मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा से भाले के जो फल प्राप्त हुए हैं वे लंबे, पतले, चपटे तथा कुछ आदिम प्रकार के हैं। उनके हत्थे लकड़ी के रहे होंगे जो अब नष्ट हो गए हैं। इनकी मध्यशिरा मजबूत नहीं हैं। मैके ने सुझाया है कि नोकों को लकड़ी का सहारा दिया गया होगा जो कि मध्यशिरा का काम देती रही होगी। जो लोग काफी भारी कुल्हाड़ियां बनाते थ उन्होंने भालों की नोक इतनी पतली क्यों बनाई यह समझ में नहीं आता। समकालीन ब्लिक उससे कुछ पहले मेसोपोटामिया और मिस्र में प्रयुक्त भाले कहीं अधिक विकसित प्रकार के थे। सिंधु सभ्यता के भाले चूलदार हैं और इनके उस भाग में जो दस्ते में जड़ा गया था, छेद हैं। मूंठ काठ की रही होगी। मोहेंजोदड़ो से बहुत थोड़े से ही भाले के ऐसे फल मिले हैं जिनमें मध्यशिरा है। इनकी तुलना विद्वानों ने सीरिया तथा फिलस्तीन के लगभग 2200–1750 ई. पू. के भालों के फलों से की है। पत्ती की आकृति से मिलते-जुलते भालों का प्रयोग कई संस्कृतियों द्वारा किया गया था। मोहेंजोदड़ो की एक मुद्रा पर एक कटीला भाले का अंकन है। ऐसा भाला ताम्र-निधि संस्कृति के साथ विशेष रूप से पाया जाता है।

कुल्हाड़ियों के फाल

कुल्हाड़ियों के फाल तांबे और कांसे के मिले हैं। कांसे की अपेक्षा तांबे की कुल्हाड़ियों की संख्या अधिक है। लगता है कि पहले कुल्हाड़ियों को सांचे में ढाल फिर ठोक पीट कर आवश्यक आकार दिया जाता था। तत्पश्चात् उन्हें रगड़-रगड़ कर समतल किया जाता था जिससे हथौड़े के निशान भी मिट गये। स्वाभाविक रूप से कांसे की कुल्हाड़ियों में तांबे की कुल्हाड़ियों से अधिक सफाई है। बनावट की दृष्टि से इनके दो प्रकार हैं—(1) लंबी तथा संकरी, (2) छोटी तथा चौड़ी। मध्यपूर्व और निकटपूर्व के देशों की प्राचीन संस्कृतियों में भी दोनों प्रकार मिलते हैं।

पहले प्रकार की कुल्हाड़ियों के फाल एक ओर धार वाले हैं। इनमें किनारों की ओर ढलान है। अधिकतर फाल दोहरे ढलान वाले हैं जिसकी किनारे की आकृति अर्धचंद्राकार जैसी है। कुछ के किनारे फैलाव लिए हैं। किंतु अधिकांश फालों के दो किनारे समानांतर हैं। इनका ऊपरी छोर गोलाई लिए है। जिन फालों की धार कुछ कुंठित या टूट-फूट से खराब हो जाती थी उन्हें आवश्यकता-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नुसार ठीक कर लिया जाता था। दूसरे प्रकार के फाल के अर्धचंद्राकार किनारे अधिक फैलाव लिए हैं। इस वर्ग की कुछ कुल्हाड़ियां नतोदर (concave) हैं तथा हत्थे की ओर अधिक संकरी हैं। उन्हें शायद लकड़ी के हत्थे में दरार बना, उसमें कुंद भाग को फंसा उसे रस्सी से बांध कर प्रयोग किया जाता था। तांबे के छल्ले नहीं मिले अतः इस बात की संभावना नहीं लगती कि इन्हें छल्लों से स्थिर किया गया था। इनका उपयोग शिकार, युद्ध या लकड़ी काटने में, अथवा इन सभी कार्यों में हो सकता था।

कुछ छेददार कुल्हाड़ियों की प्रतिकृतियां मिट्टी में पायी गयी हैं। हो सकता है इनका उद्गम स्रोत पश्चिमी एशिया रहा हो। कुल्हाड़ी की मिट्टी में प्रतिकृतियां मेसोपोटामिया में अल-उबैद काल से मिलने लगती हैं। चंहुदड़ो से एक तांबे की छिद्रदार कुल्हाड़ी हड़प्पा संस्कृति के अंतिम स्तर अथवा झूकर संस्कृति के संदर्भ में उपलब्ध हुई है। सिंधु सभ्यता के स्थलों से हत्थे के लिए छेद वाले औजार बहुत कम पाये गये हैं। मोहेंजोदड़ो से हत्थे के लिए छेद वाला एक कुल्हाड़ा-बसूला मिला (आ० 16, 14) जो सिंधु सभ्यता में अपने ढंग का एक मात्र उदाहरण है जो लगभग 2 मी० गहराई में पाया गया।[1] इस तरह के कुल्हाड़ा-बसूला उत्तरी ईरान में हिस्सार III C (जिसकी तिथि विद्वान 2000 से 1000 ई. पू. के बीच मानते हैं) में और इसका लघु रूप असीरी राजा सालमनेसर III (859–324 ई. पू.) द्वारा असुर में बनाये अनुअदद मंदिर के नींव के नीचे, और क्रीट में 2000-1900 ई. पू. के स्तर में और यूक्रेन में लगभग 1500 ई. पू. के संदर्भ में मिलते हैं। ह्वीलर मोहेंजोदड़ो के कुल्हाड़े-बसूले की तिथि द्वितीय सहस्राब्दी ई. पू. मानते हैं। वे हाइने गेल्डर्न के मत से सहमत हैं कि यह कुल्हाड़ा-बसूला मोहेंजोदड़ो में व्यापारिक कारणों से नहीं आया बल्कि नये लोगों के आगमन का द्योतक है।

चाकू

सिंधु सभ्यता काल के चाकुओं और कटारों की आकृति बहुत कुछ समान है। अतः इनमें प्रभेद करना कठिन है। किसी भी उदाहरण में मूंठ नहीं प्राप्त

1. मैके इसे सिंधु सभ्यता से बाद के काल का उपकरण मानते हैं। उन्होंने यह भी संभावना व्यक्त की है कि बौद्ध स्तूप के निर्माण के लिए जो परवर्ती काल में सिंधु सभ्यता की ईंटें खोदी गईं उसी सिलसिले में किसी के हाथ से यह उपकरण यहां छूट गया, कुछ अन्य विद्वान भी इसे सिंधु सभ्यता की कृति नहीं मानते किंतु वे इसे इस सभ्यता के अंतिम चरण में बाहर से आने वाले लोगों द्वारा मोहेंजोदड़ो में लय मानते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुई है, लकड़ी की होने के कारण वे नष्ट हो गयी हैं । मोहेंजोदड़ो की खोदाई में मैके को एक चाकू प्राप्त हुआ था जिसकी मूंठ चमड़े या किसी अन्य पदार्थ की

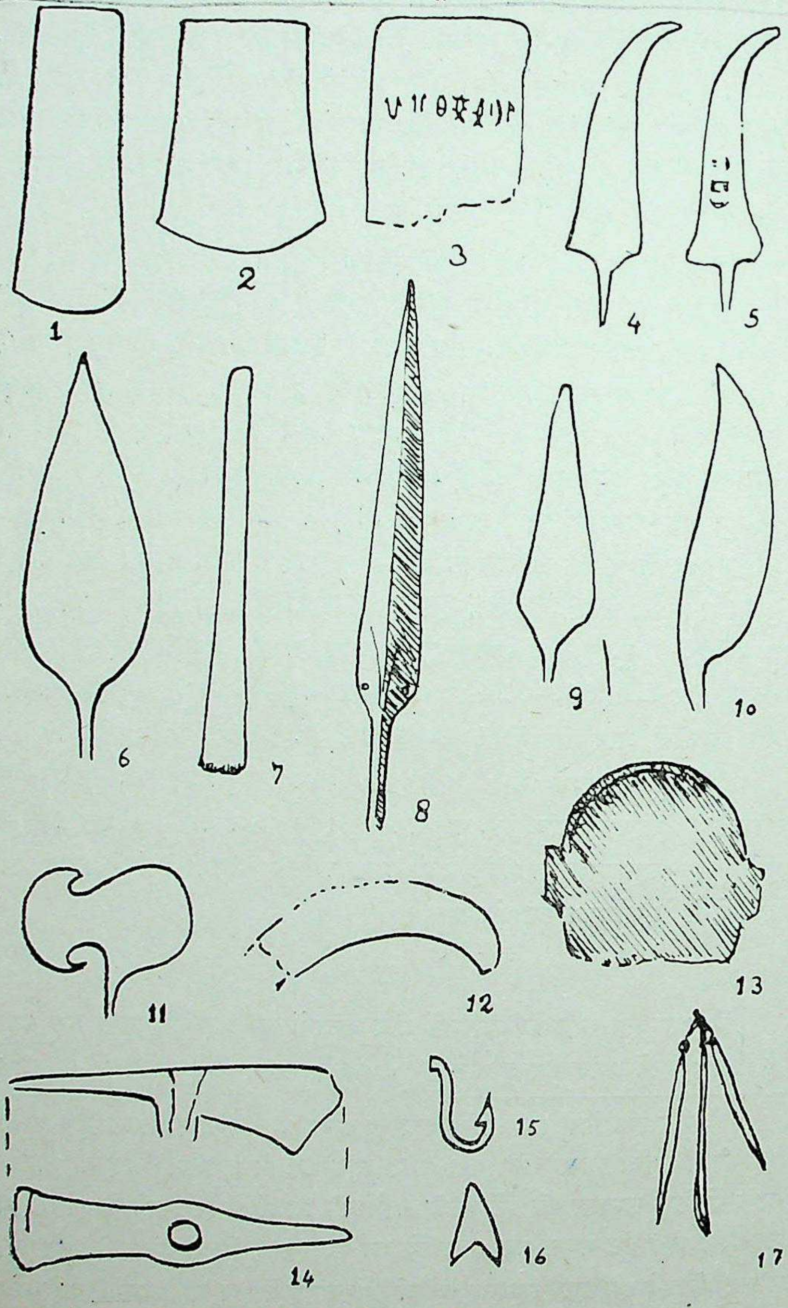

आरेख 16

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बनी थी। इसे जिस पदार्थ से जोड़ा गया था उसकी पहचान नहीं हो पायी है। मैके द्वारा किया मोहेंजोदड़ो में प्राप्त चाकुओं का वर्गीकरण इस प्रकार है— (1) चौड़े, पत्ती जैसी फाल और लंबी चूल वाले (आ० 16, 6), जो मोहेंजोदड़ो में काफी संख्या में मिले हैं; (2) पत्ती सदृश फाल वाले जिनकी नोक मुड़ी है; (3) संकरे तथा सीधी फाल वाले; (4) ऊपर उठे नुकीले अग्रभाग वाले त्रिभुजाकार, जो मिस्र के छठे राजवंश कालीन चाकुओं से मिलते जुलते हैं और संभवतः चमड़ा काटने के काम आते थे; (5) संकरे वक्र धार वाले, जिनके सदृश कुछ चाकू भी मिस्र के छठे राजवंश के संदर्भ में मिले हैं; (6) चौड़े वक्रधार वाले; (7) चूल के पिछला भाग खोखले वाले; (8) कांसे के दोहरे वक्रधार वाले; (9) बड़े, जो कटार की तरह हैं।

तलवार या किर्च

मोहेंजोदड़ो से कुछ दोहरे धार वाले उपकरणों की पहिचान तलवार (किर्च) से की गयी है। ये आकार में अच्छे बने हैं और वजन में भारी हैं। दो उपकरण काफी अच्छी दशा में एक मकान से पाये गये। एक सुंदर उदाहरण तांबे-कांसे के आयुधों तथा बर्तनों के निधान के साथ मकान के फर्श के नीचे से मिला था। इसकी लंबाई फाल तथा चूल सहित 480 सेमी है। इसमें मूठ के स्थान पर दो छेद बने हैं जिनसे मूंठ जड़ी गई होगी। तलवार का एक अधूरा उदाहरण भी प्राप्त हुआ है जिसके किनारे कुंद हैं। मैके का विचार है कि तलवार का विकास कटार में स्वाभाविक रूप में हुआ था। सबसे पहले किस देश ने इसका निर्माण प्रारंभ किया यह कहना कठिन है। शायद विभिन्न देशों में इस उपकरण का विकास स्वतंत्र रूप से और अलग-अलग समय में हुआ। कुछ छोटे आकार की तलवारें हैं जिन्हें कटार की संज्ञा दी जा सकती है।

बाणाग्र (आ० 16, 16)

सिंधु सभ्यता के स्थलों के उत्खननों से बाणाग्र बहुत अल्प संख्या में पाये गये हैं।[1] ये तांबे के हैं जो पतले और चपटे हैं। थोड़े से लंबे और संकरे कांटेदार बाणाग्र भी मिले हैं। इनमें चूल नहीं हैं। ये बाणाग्र चकमक पत्थर के बने ऐसे बाणाग्रों से मिलते जुलते हैं जो मिस्र, उत्तरी फारस तथा मिनोअन काल के क्रीट में पाये गये हैं। सिंधु सभ्यता में साधारणतया पत्थर के बने बाणाग्रों का अभाव है। केवल कोटदीजी और पेरियानोघुंडई (उत्तरी बलूचिस्तान) में

1. मार्शल के निर्देशन के मोहेंजोदड़ो में किये गये उत्खननों में केवल एक ही तांबे का बाणाग्र मिला था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिले कुछ बाणाग्र इसके अपवाद हैं। लेकिन विद्वानों का अनुमान है कि सिंधु सभ्यता के जो तांबे के बाणाग्र हैं उनके पूर्व रूप पाषाण के बाणाग्र ही रहे होंगे। सिंधु सभ्यता के इन बाणाग्रों का कुछ भाग उनसे संबद्ध डंडे पर दबा दिया गया होगा और यह लकड़ी का भाग मध्य शिरा का काम दिया होगा।

गदा

गदासिर विभिन्न प्रकार के पत्थरों के बने हैं, जैसे अलावास्टर, बलुआ पत्थर, चूना पत्थर और स्लेट से मिलता जुलता पत्थर इत्यादि। तांबे के गदासिर नगण्य हैं। गदा का उपयोग युद्ध में तो होता ही होगा, जंगल में व्यक्तिगत सुरक्षा के लिए भी इसके उपयोग की संभावना अस्वीकार नहीं की जा सकती। इनमें दोनों ओर से छेद किया गया था और जिससे काट (सेक्शन) में वह डमरू की तरह दिखता है। ऐसा अनुमान है कि इन्हें चमड़े की रस्सी या डोरी से हत्थे पर कसकर बांधा जाता था। हत्था शायद लकड़ी का रहा होगा अथवा (जैसे पीट्री ने मिस्र के गदासिरों के संदर्भ में सुझाया है) खाल का। खाल के हत्थे में थोड़ा लोच होने से इसके प्रयोग को कुछ और अधिक प्रभावपूर्ण बना देता रहा होगा। गदाएं वीक्षाकार, नाशपाती की आकृति की, गोल या गोल छल्ले की तरह की हैं। नाशपाती की आकृति के गदासिर एलम, मेसोपोटामिया, मिस्र आदि अनेक प्राचीन संस्कृतियों के संदर्भ में मिलते हैं। क्रीट, काकेशस, थिसैली और डेन्यूब क्षेत्र से भी इस तरह की आकृति वाले गदासिरों के उदाहरण मिले हैं। वीक्षाकार प्रकार के गदासिर का काल और क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है और वे अल्प संख्या में सूसा, मिस्र और काकेशस के क्षेत्रों में की गई खोदाइयों में मिले हैं। मेसोपोटामिया में इस तरह के गदासिर नहीं मिलते। तीसरे प्रकार के गदा सिर का मोहेंजोदड़ो से एक ही उदाहरण है। हड़प्पा से एक तांबे के बर्तन के भीतर मिला गदासिर इसी प्रकार का है। इसकी ऊँचाई और व्यास 4.57 सेमी है। आकार में छोटा होते हुए भी यह पर्याप्त वजनी था और इसलिए आयुध के रूप में प्रयुक्त किये जाने के लिए पूर्णतया उपयुक्त था। चन्हुदड़ो से एक कांसे या तांबे का गदा-सिर मिला है जो या तो हड़प्पा सभ्यता के अंतिम चरण का है या झूकर संस्कृति के काल का। इनकी तुलना ईरान में प्राप्त द्वितीय सहस्राब्दी ई० पू० के इसी तरह के गदासिरों से की जा सकती है।

गोफन-गोलियां

पक्की मिट्टी की गोलियां और गोले मिले हैं जिन्हें अस्त्र के रूप में प्रयोग किये जाने की पूरी संभावना लगती है। इन्हें कदाचित् गोफन में रख कर फेंका जाता था। व्हीलर ने इन्हें दो वर्गों में बांटा है :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पहले वर्ग में भी दो आकार की गोलियां हैं (1) गोल, जिनका व्यास लगभग 2.54 सेमी है, और (2) अंडाकार जिनकी लंबाई 6.34 सेमी तक है। इस वर्ग की गोलियां अस्त्र की तरह प्रयुक्त हो सकती थीं, यह संदिग्ध है। सिंधु सभ्यता के अतिरिक्त प्राचीन सुमेर और तुर्किस्तान में गोल और अण्डाकार दोनों ही प्रकार की मिट्टी की गोलियां मिलती हैं। फिलिस्तीन और सीरिया में भी इनका प्रयोग हुआ, पर सुमेर से कुछ बाद में मिस्र में इस तरह के गोलों का प्रयोग अपेक्षाकृत और बाद में हुआ। विद्वानों का अनुमान है कि इस तरह के गोले पहले पत्थर के बनाए गए होंगे और स्वाभाविक है कि उसके उद्गम का ऐसा क्षेत्र रहा होगा जहां पत्थर बहुत मात्रा में मिलता था। बाद में ऐसे क्षेत्रों में जहां पत्थर नहीं था, लोगों ने मिट्टी के गोले बनाने प्रारंभ किये।

दूसरे वर्ग में ऐसे मिट्टी के गोले हैं जिन्हें पहले हाथ से दबा कर आकार दिया गया है और फिर थोड़ा बहुत आग में पकाया भी गया है। इस तरह के गोलों के अस्त्र की तरह प्रयुक्त होने के बारे में संदेह की गुंजाइश नहीं लगती। ये दो तरह के वजन वाले हैं—एक प्रकार वह जिसका वजन लगभग 6 आउंस और दूसरा प्रकार वह जिसका वजन लगभग 12 आउंस है। व्हीलर द्वार मोहें-जोदड़ो के 1950 में किये उत्खनन में गढ़ी वाले टीले में विशाल अन्नागार के पास कई गोले मिले और अट्ठानवे 6 आउंस वाले गढ़ी वाले टीले में ही दक्षिण-पूर्वी दो बुर्जों को जोड़ने वाले मार्ग में पाये गये। उससे पहले मार्शल के निर्देशन में किये उत्खनन में एक बड़े मिट्टी के बर्तन में इस तरह के पचास के लगभग गोले रखे मिले थे। यह बर्तन गढ़ी वाले टीले के दक्षिणी अर्द्ध के एक हाल में रखा था। और दक्षिण में इसी क्षेत्र में कुछ बड़े आकार के मिट्टी के गोले मोटे घेरे वाली दीवाल के बाहर बिखरे पड़े थे। इनका आकार, निर्माण-वस्तु तथा प्राप्ति-स्थल इनके अस्त्र होने का समर्थन करते हैं। इन्हें या तो ये लोग हाथ से ही फेंकते रहे होंगे या ढेलबांस से।

निश्चय ही उपर्युक्त विवरण से सिंधु सभ्यता के अस्त्र-शस्त्रों के बारे में जो जानकारी मिलती है उससे यह स्पष्ट होता है कि सैंधव सभ्यता के लोगों ने आर्थिक समृद्धि की ओर विशेष ध्यान दिया और उन्होंने अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण की ओर अपेक्षाकृत कुछ उदासीनता सी बरती।

●

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 10

धातु, पाषाण, हाथीदांत इत्यादि के कुछ उपकरण तथा वस्तुएं

उपकरणों के निर्माण के लिए धातु-प्रयोग का ज्ञान मानव की महान् प्रगति का परिचायक है ।[1] धातु के प्रयोग के ज्ञान ने संस्कृतियों के नागरीकरण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है । धातु के बने उपकरण मजबूत तो होते ही हैं, वे काफी तेज धार वाले बनाये जा सकते हैं और धार के कुंद होने पर उपकरणों को फेंकना नहीं पड़ता, बल्कि उन्हें ठोक पीट कर पुनः पैना बनाया जा सकता है । अथवा उसे गला कर नया उपकरण भी बनाया जा सकता है । पुरातात्विक साक्ष्यों के अनुसार ईरान और मध्यपूर्व में धातु का प्रयोग सिंधु सभ्यता से कुछ शताब्दी पहले प्रारंभ हो गया था । कुछ विशेषज्ञों का अनुमान है कि धातु को प्रयोग का प्रचलन ईरान से अफगानिस्तान में और तत्पश्चात् बलूचिस्तान और सिंध में हुआ । बलूचिस्तान, सिंध और राजस्थान में प्राग् सिंधु सभ्यता की संस्कृतियों में धातु का प्रयोग ज्ञात था किंतु सिंधु सभ्यता में धातु के उपकरण उनसे कहीं अधिक संख्या में मिले हैं और उनमें पर्याप्त विविधता भी है ।

सिंधु सभ्यता के लोग मोम द्रवी विधि, धातु पर पानी चढ़ाने की विधि और धातु-मिश्रण से भलीभांति परिचित थे । उनके उपकरण तकनीकी दृष्टि से वहां के धातु कर्मकारों की दक्षता के परिचायक हैं । इस सिलसिले में नालीदार बर्मा और दांतेदार आरी का विशेष उल्लेख किया जा सकता है । निश्चय ही धातुकर्म में दक्षता तभी आ सकती थी जबकि लोग पेशेवर धातु का काम करने वाले रहे होंगे और उन्हें पर्याप्त मात्रा में खनिज प्राप्त होता रहा होगा । और कुछ लोगों का पेशेवर धातुकर्मी होना तभी संभव हो सकता था जबकि वहां के कृषक अपनी आवश्यकतानुसार भरण-पोषण के लिए पर्याप्त अनाज से कहीं अधिक अन्न उपजाने लगे हों ।

ऐसा लगता है कि सिंधु सभ्यता के लोग अपने नगरों में तांबे को अयस्क के रूप में नहीं लाते थे । इस सभ्यता के नगरों में न तो अयस्क ही मिले हैं और न

---

1. धातु की तकनीक के बारे में देखिये धर्मपाल अग्रवाल की कृति Copper Bronge Aze in India.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उनको गलाने के लिए प्रयुक्त भट्ठे ही। संक्षेप में तांबा इन रूपों में पाया गया है—(1) अपरिष्कृत तांबा, (2) परिष्कृत तांबा, (3) आर्सेनिक मिश्रित तांबा और टिन मिश्रित तांबा।

टिन, आर्सेनिक आदि धातुएं अतिन्यून मात्रा में तो खान से ही तांबे के साथ मिली रही होंगी, किंतु कुछ उपकरणों में इन धातुओं का मिश्रण पर्याप्त मात्रा में मिलता है, जो निश्चय ही जानबूझ कर मिलाया गया था। तांबा एक अपेक्षाकृत कोमल धातु है और टिन आदि के मिश्रण से उसमें मजबूती आ जाती है। उपलब्ध साक्ष्य से पता लगता है कि सिंधु सभ्यता में टिन मिला कर कांसा बनाने की विधि सभ्यता के प्रथम चरण से ही ज्ञात थी, लेकिन यह देखा गया है कि टिन का मिश्रण नीचे के स्तरों की अपेक्षा ऊपरी स्तरों में अधिक है। यों अपवादस्वरूप काफी गहरे निक्षेप से प्राप्त एक कांसे के उपकरण में 22% टिन पाया गया। मेसोपोटामिया और मिस्र में भी कांसे का प्रयोग काफी प्राचीन समय से प्रचलित था।

अग्रवाल धातु मिश्रण का विश्लेषण कर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि काँसे के जो उपकरण मिले हैं उनमें लगभग 14% ही ऐसे हैं जिनमें टिन की मात्रा 8% से 12% तक है। उनकी दृष्टि में यों लगभग ग्यारह प्रतिशत टिन मिलाना ही अधिक उपयोगी है। मैके के अनुसार तांबे में तीन प्रतिशत टिन के मिश्रण से भी उसके शुद्ध रूप की अपेक्षा बहुत कुछ मजबूती आ जाती है। अग्रवाल ने विभिन्न उपकरणों के रासायानिक विश्लेषण के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि या तो सिंधु सभ्यता के लोगों को इस बात का ठीक ज्ञान न था कि अच्छे उपकरण बनाने के लिए तांबे में कितना प्रतिशत टिन मिलाना ठीक रहेगा, या वे ठीक मात्रा में टिन के मिश्रण को नियंत्रित नहीं कर सके। उन्होंने यह भी मत व्यक्त किया कि सिंधु सभ्यता के लगभग 70% उपकरण लगभग शुद्ध तांबे के ही हैं। संभवतः इसका कारण यह था कि टिन उन्हें पर्याप्त मात्रा में सुलभ नहीं था, अन्यथा टिन मिला कर कांसा बनाने की तकनीक सीखने के बाद भी वे लोग टिन मिलाये बिना तांबे का इतना अधिक उपयोग उपकरणों के निर्माण के लिए नहीं करते। उन्होंने कांसे का प्रयोग मुख्यतः ऐसे ही उपकरणों में किया जिनमें मजबूत धार अपेक्षित थी।

जहां तक तांबे के साथ अन्य धातुओं के मिश्रण करने का प्रश्न है अग्रवाल के अनुसार केवल लगभग आठ प्रतिशत उपकरणों में आर्सेनिक, चार प्रतिशत में निकल और छह प्रतिशत में सीसे का प्रयोग हुआ है। तांबे और आर्सेनिक के मिश्रण से बने उपकरण तांबे की अपेक्षा तो अधिक किंतु कांसे की अपेक्षा कम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मजबूत होते हैं। मैके का कहना है कि शायद सिंधु सभ्यता वालों ने तांबे में आर्सेनिक अलग से नहीं मिलाया, वह खान से ही तांबे के साथ मिला हुआ था। अधिकांशतया धातु के उपकरण जीर्ण-शीर्ण अथवा खंडित अवस्था में मिले हैं।

तांबे अथवा कांसे की कुल्हाड़ियों, कुल्हाड़ा-बसूला, बरछे, भालों की नोंक, बाणाग्र, चाकू और कटार का विवरण हमने युद्ध संबंधी उपकरण वाले अध्याय में, सोने-चांदी, तांबे आदि के आभूषणों, मनके, वलय, अंगूठी और दर्पण इत्यादि प्रसाधनोपकरण का विवरण 'परिधान तथा आभूषण' अध्याय में, तांबे और कांसे की मानव तथा पशु आकृतियों का विवरण 'पाषाण तथा धातु की मूर्तियां' वाले अध्याय में दिया है, और उनकी पुनरावृत्ति यहां आवश्यक नहीं। कुछ अन्य प्रकार की वस्तुओं का विवरण नीचे दिया गया है।

बर्तन

तांबे के कई छोटे-बड़े बर्तन मिले हैं। तांबे के बर्तन बनाने की एक सरल विधि है धातु की चादर को काट कर उसे ठोक पीट कर इच्छित रूप देना। यों कांसे के बर्तनों को भी इस तरह बनाया जा सकता है पर तांबे की अपेक्षा कांसे के बर्तनों को इस तरह बनाना अधिक श्रमसाध्य है। दूसरी विधि है धातु को गला कर सांचे से बनाना। तांबा अपेक्षाकृत मुलायम धातु होने के कारण उसके बर्तनों पर दबाव पड़ने पर आसानी से गड्ढे पड़ जाते हैं। कांसे के बर्तनों को बनाने में श्रम भले ही अधिक पड़े, वे तांबे के बर्तनों से कहीं अधिक मजबूत होते हैं। अधिकांश धातु के बर्तनों का आकार-प्रकार मिट्टी के बर्तनों के आकार-प्रकार के अनुरूप है। किंतु मिट्टी और धातु के बर्तनों के निर्माण में तकनीक का अंतर होने के कारण धातु में मिट्टी के जैसे बर्तन बनाने में भाण्ड-निर्माता को कुछ कठिनाई महसूस होना स्वाभाविक था। अपेक्षाकृत बड़े बर्तनों के निर्माण में सारे बर्तन को एक साथ न बना कर पेंदे को अलग से बनाया गया। कुछ बर्तनों पर मजबूती के लिए मोटा बनाने की इच्छा से बर्तन के पेंदे पर अलग से चादर का टुकड़ा जोड़ दिया गया। कुछ बर्तन ऐसे हैं जिनके अनुरूप मिट्टी के बर्तन नहीं मिले हैं। मैके का मत है कि उनकी तरह के मृद्भाण्ड अवश्य रहे होंगे लेकिन वे अभी तक उपलब्ध नहीं हो सके हैं। कुछ तांबे और कांसे के बर्तनों के कोर (रिम) ज्यादा पतले हैं, उपयोगिता की दृष्टि से इन्हें इतना पतला बनाना ठीक नहीं कहा जा सकता।

साधारण बर्तनों के अतिरिक्त तांबे की तश्तरियों के ढक्कन, घड़े के ढक्कन, तवा और कुछ बहुत छोटे बर्तन (जिनका प्रयोग अनुमानतः काजल रखने के लिए होता था) इत्यादि भी मिले हैं। एक तांबे के भीतर कार्नीलियन के मनकों की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लड़ी और सोने तथा चांदी के आभूषण मिले। कांसे के भी बर्तन, कटोरे तथा ढक्कन मिले हैं, लेकिन तांबे के बर्तनों की अपेक्षा इनकी संख्या अत्यंत कम है। बहुत थोड़े से चांदी के भी बर्तन और उनके ढक्कन मिले हैं जिनके भीतर सोने और चांदी के आभूषण मिले। लेकिन जब हम संख्या की दृष्टि से धातु के बर्तनों की तुलना मृद्भाण्डों से करते हैं तो स्पष्ट हो जाता है कि धातु के बर्तन अपेक्षाकृत बहुत कम हैं। मैके का मत है कि इस विकसित सभ्यता में धातु के बर्तन काफी रहे होंगे; उनके कम संख्या में प्राप्त होने का एक कारण यह भी हो सकता है कि जब मोहेंजोदड़ो निर्जन हुआ तो लोग शहर छोड़ते समय अपने साथ धातु के बर्तन भी ले गये होंगे।

आरी

मैके के उत्खनन में मोहेंजोदड़ो से दो आरियां मिलीं। एक तांबे की है जो लगभग 42 सेमी लम्बी है। इसके दांत नियमित फासले पर नहीं हैं। दूसरी आरी कांसे की है, यह लगभग 32 सेमी लम्बी है। तकनीकी दृष्टि से ये दोनों आरियां पर्याप्त विकसित हैं और विश्व में झुकाव लिये तथा तिरछे दांत वाली आरियों के प्राचीनतम उदाहरण लगते हैं। मैके की धारणा है कि इस तरह की विकसित आरियां रोमनकाल से पहले कहीं और नहीं मिलतीं। मोहेंजोदड़ो से एक अन्य कांसे की आरी मिली है जिसकी लम्बाई 46·5 सेमी और अधिकतम चौड़ाई 16 सेमी है तथा मोटाई ·125 सेमी है। इसके चूल में दो छेद हैं जिनसे उसे हत्थों से जोड़ा गया था। इसी स्थल से एक और खंडित आरी मिली है। लोथल से भी एक आरी मिली है जो वक्राकार है और तकनीकी दृष्टि से पर्याप्त विकसित होने के कारण महत्त्वपूर्ण है।

छेनियां

सिंधु सभ्यता में, विशेषतः मोहेंजोदड़ो में, छेनियां काफी संख्या में मिली हैं। इनमें से कुछ सांचे से बनी हैं और कुछ को ठोक-पीट कर ही छेनी का आकार दिया गया है। इनके आकार प्रकार में पर्याप्त विविधता है। मैके ने इनका वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया है:—

(1) आयताकार या वर्गाकार काट वाली छेनियां; ऐसी छेनियों की मोटाई पूरी लम्बाई में एक सी है,

(2) आयताकार या वर्गाकार काट की छेनियां जिनके चूल चपटे हैं,

(3) गोल काट वाली छेनियां, इन्हें साधारण छड़ से काट कर बनाय गया है,

(4) छोटी मजबूत छेनियां जिनकी काट गोल, आयताकार या वर्गाकार है,

(5) छोटी नुकीली छेनियां।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पहले प्रकार की छेनियां पर्याप्त संख्या में मिली हैं और यह प्रकार कई अन्य प्राचीन संस्कृतियों में भी पाया गया है। इन्हें आयताकार ढाली हुई छड़ों को पीट कर बनाया गया था। कुछ उदाहरणों में उनका सिरा भी पतला है जो हथौड़े से पीट-पीट कर बनाया गया था। शीर्ष और धार को अधिक मजबूत बनाना आवश्यक था क्योंकि छेनी को ठोकते समय इन्हीं दो हिस्सों पर विशेष जोर पड़ता था। दूसरे प्रकार की छेनियां सिंधु सभ्यता की अपनी विशिष्टता हैं और अन्यत्र नहीं पाई गई। मैके का अनुमान है कि संभवतः इसके शीर्ष पर हत्था लगा था और हथौड़े की चोट सीधे छेनी के शीर्ष पर न पड़कर इस हत्थे पर पड़ती थी। किंतु कुछ इस प्रकार की छेनियों के हत्थों पर छेनी के निशान हैं जो इस बात के द्योतक हैं कि हथौड़े की चोट सीधे उनके सिर पर की गई थी। मैके का यह भो मत है क्रि पहले तीन प्रकार की छेनियों का प्रयोग बहुत सख्त वस्तुओं पर नहीं होता था। या तो लकड़ी के काम में या सेलखड़ी जैसे मुलायम पत्थर की वस्तुओं के निर्माण के संदर्भ में ही इनका प्रयोग होता था। शेष दो प्रकार की छेनियां अपेक्षाकृत अधिक मजबूत थीं।

अन्य वस्तुएं

तांबे के बने 'सर्जरी सेट', (आ० 16,17) अंजन लगाने की सलाइयां, नहन्नी, उस्तरा (आ० 16,11) सूजा आदि मिले हैं। इस संदर्भ में लोथल से प्राप्त उस सुई का विशेष उल्लेख करना समीचीन होगा जिसमें नोंक की ओर छेद है। तकनीकी दृष्टि से यह एक अत्यंत विकसित उपकरण है। इन उस्तरों के लंबे चूल हैं जिन्हें हत्थे में लगाया गया रहा होगा। तांबे का एक हंसिया का फाल मोहेंजोदड़ो में मिला है। मछली पकड़ने के कांटों को (आ० 16,15) तांबे की चादर से काट कर फिर ठोक-पीट कर आकार दिया गया था। लोथल में प्राप्त खांचे वाला बर्मा विशेष उल्लेखनीय है। इसी स्थल से एक अन्य महत्त्वपूर्ण तक्षणी यंत्र का भाग भी मिला है।

मैके का कहना है कि मोहेंजोदड़ो के ऊपरी सतह में जो ताम्र उपकरणों की निधियां उपलब्ध हुई हैं वे इस बात की द्योतक हैं कि लोगों को इस बात की सूचना थी कि शीघ्र ही बाह्य आक्रमण होने वाला है। लगता है कि उपकरणों को तो उन्होंने गाड़ दिया लेकिन वे अपना जीवन नहीं बचा सके और ये उपकरण गड़े ही रह गये। यह भी हो सकता है कि लोग किसी संक्रामक रोग के फैलने पर उससे बचत के लिए नगर छोड़ कर अन्यत्र चले गये, किंतु जीवित न लौट सके।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पत्थर के उपकरण तथा वस्तुएं

पाषाण की मूर्तियों, मुद्राओं, मनकों, सिल-बट्टों, बाट-बटखरों, हल के फालों (?), छल्लों इत्यादि का कुछ विस्तार से उल्लेख हम इसी कृति में अन्यत्र किये हैं ।[1] कुछ अन्य पाषाण उपकरणों का विवरण नीचे दिया जा रहा है ।

उत्खननों से चकमक पत्थर के शल्क और क्रोड मिले हैं (फ० XXI, 1) ये दोनों ही प्रकार कई घरों के भीतर से भी मिले हैं । मैके ने इससे अनुमान लगाया है कि लोग घरों में क्रोड रखते थे और जैसे ही औजार की जरूरत हुई घर पर ही नौकर या घर का कोई सदस्य क्रोड से शल्क निकाल लेता था । जिन क्रोड से ये शल्क निकले हैं उन्हें शल्क निकालने के लिए भलीभांति तराश कर तैयार किया गया है । इन क्रोडों से शल्क निकालना कठिन कार्य न था । परीक्षण से देखा गया है कि लकड़ी का हथौड़ा ही फलक निकालने के लिए पर्याप्त था । मोहेंजोदड़ो में चक्रमक पत्थर लगभग 56 मील दूर स्थित सक्कर से लाया गया था । पत्थर के पालिश करने के उपकरण भी मिले हैं । सख्त पत्थर के चमकाने वाले उपकरण मिले हैं जिनसे धातु की वस्तुओं को चमकाया जाता रहा होगा । सान के लिए प्रयुक्त पत्थर बहुत कम प्राप्त हुए । इनकी कम संख्या से अनुमान लगाया गया है कि लोग घरों में इस तरह के पत्थर नहीं रखते थे और औजार तेज करने के लिए धातुकर्मियों के पास ले जाते थे ।

पत्थर के बने बर्तन मोहेंजोदड़ो में बहुत कम हैं और इनमें से अधिकांशतः मुलायम श्वेत अलाबास्टर पत्थर के हैं । इस तरह का अलाबास्टर पत्थर मोहें-जोदड़ो के समीप ही उपलब्ध था । ये बर्तन अधिकांशतः खंडित अवस्था में मिले हैं । इनमें केवल सूखी वस्तुएं या बहुत गाढ़े तेल ही रखे जा सकते थे । कुछ तो निश्चय ही प्रसाधन-पेटिका की तरह प्रयुक्त होते थे । मैके का अनुमान है कि शायद इन्हें सान पर बनाया जाता था । मोहेंजोदड़ो में हरिताभ धूसर सेलखड़ी के बर्तन का टुकड़ा निम्न स्तर से मिला है । मैके का अनुमान है कि मूलतः बर्तन में दो खाने रहे होंगे । इसकी बाहरी सतह पर चटाई का सा डिजाइन है । यह टुकड़ा 5 सेमी × 3.81 सेमी × .75 सेमी है । इस टुकड़े पर प्राप्त डिजाइन सूसा की प्राचीन संस्कृति के संदर्भ में प्राप्त टुकड़े से मिलता जुलता है । किश में भी

---

1. पाषाण-मूर्तियों के लिए 'पाषाण तथा धातु की मूर्तियां' मुद्राओं के विव-रण के लिए 'मुद्राएं', सिल-बट्टों, बाट-बटखरों और हल के फाल के लिए 'आर्थिक जीवन', तथा छल्लों के लिए 'धार्मिक विश्वास और अनुष्ठान' अध्याय देखिए ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस तरह के बर्तनों के टुकड़े मिले हैं। दो छोटे बर्तन ऐसे पत्थर के बने हैं जो आरोगैनाइट (Aroganite) पत्थर से मिलता जुलता है। आरोगैनाइट पत्थर प्राचीन मिस्र और सुमेर में काफी प्रयोग में लाया जाता था। मोहेंजोदड़ो से प्राप्त एक बर्तन तो मिस्र में प्राप्त बर्तनों से मिलता जुलता है। एक फुक्साइट पत्थर का बर्तन मिला है। इस तरह का पत्थर मैसूर में मिलता है और शायद यह वहीं से लाया गया होगा।

कांचली मिट्टी के उपकरण

कांचली मिट्टी का प्रयोग सिंधु सभ्यता में विभिन्न निर्माण कार्यों के लिए होता था। यद्यपि यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि कांचली मिट्टी बनाने की विधि सबसे पहले किस देश ने ज्ञात की, तथापि उपलब्ध साक्ष्य इसके पक्ष में हैं कि मिस्र में ही इस विधि का आविष्कार हुआ होगा। मिस्र में राजवंश से पहले के काल में और सुमेर में चतुर्थ सहस्राब्दी ई० पू० में, लगभग तीन हजार ई० पू० में पश्चिमी एशिया के एक बड़े क्षेत्र में, और तृतीय सहस्राब्दी के मध्य क्रीट में इसका प्रयोग होता था। इसमें पत्थर के चूरे को आटे की तरह सान कर वस्तुएं बनाई जाती थीं और फिर उन पर ग्लेज़ कर उन्हें पकाया जाता था। सिंधु सभ्यता की कांचली मिट्टी की वस्तुएं साधारणतः सफेद या भूरे पेस्ट की बनी हैं जो शायद भूमिगत लवण या नमी से हल्के नीले या हरी हो गयी हैं। मिस्र में कांचली मिट्टी कैसे तैयार की जाती थी यह ठीक तरह से ज्ञात नहीं। कुछ का कहना है कि यह स्फटिक (क्वार्ट्ज़) पत्थर का चूरा है। सिंधु सभ्यता के लोगों ने इसके लिए सेलखड़ी का चूरा प्रयोग किया। मिस्र और सिंधु दोनों सभ्यताओं में ही पत्थर से आकृति बना कर उस पर ग्लेज़ करने की प्रथा थी। सेलखड़ी से आकृति बना कर ग्लेज़ करने की अपेक्षा सेलखड़ी के चूरे से वस्तुएं बनाना अधिक उन्नत तकनीकी ज्ञान का द्योतक है। एक उदाहरण में ग्लेज़ के ऊपर चित्रण भी किया गया था।

सिंधु सभ्यता में कांचली मिट्टी से बने विभिन्न जानवरों, यथा भेड़, बन्दर, कुत्ता, गिलहरी की आकृतियां बहुत सुंदर बन पड़ी हैं। कांचली मिट्टी के बने मनके विशाल संख्या में प्राप्त हुए हैं। कुछ छोटे आकार के बर्तन भी मिले हैं। ये या तो देवताओं को चढ़ाए जाते थे या फिर इनमें प्रसाधन के लिए कीमती तैल, इत्र इत्यादि रखे जाते थे। ये बहुत सावधानी से बने हैं और आसानी से टूटने वाले हैं, अतः इन्हें बच्चों के खिलौने मानना ठीक नहीं होगा। क्रीट को छोड़ कर अन्य प्राचीन सभ्यताओं में कांचली मिट्टी के बर्तन उपलब्ध नहीं। कांचली मिट्टी के थोड़े से उत्खचन भी मिले हैं। कुछ उत्खचन पेस्ट के भी मिले

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं। इनमें से कुछ बर्तनों को अलग टुकड़ों में बना कर उसे पेस्ट से जोड़ा गया है।

हाथी दांत और हड्डी के उपकरण

यद्यपि अनेक मुद्राओं पर हाथी का चित्रण है, जिससे सिंधु सभ्यता के लोगों का भलीभांति परिचित होने और उनके काफी संख्या में होने की संभावना लगती है, फिर भी सिंधु सभ्यता में हाथीदांत की बनी वस्तुएं अपेक्षाकृत कम हैं। मोहें-जोदड़ो की अपेक्षा हड़प्पा में ये अधिक मिली हैं। इनके कम मिलने के कारण के बारे में मैंके ने यह अनुमान लगाया है कि शायद हाथी पवित्र माना जाता था और इसलिए केवल इसके मरने के बाद ही जो हाथी दांत पड़े रहते थे उन्हीं का उप-योग होता था; पर ऐसी संभावना कम है। हाथीदांत-निर्मित कुछ वस्तुएं तो काफी अच्छी दशा में मिली हैं लेकिन कुछ क्षतिग्रस्त हैं। मोहेंजोदड़ो के एल (L) क्षेत्र में एक खंडित हाथीदांत के फलक (Plaque), जो लगभग 4.86 सेमी लंबा, 2.55 सेमी चौड़ा और 1 सेमी मोटा है, के मुख-भाग में एक पुरुष आकृति बायीं ओर मुख किये है, उसके हाथ कमर पर हैं। यह पुरुष बहुत कुछ मुद्राओं में अंकित मानवाकृति वाले लिपिचिह्न के समान है। यह एक टोपी पहने है और एक छोटा लंगोटा। उसकी पीठ पर धनुष जैसी वस्तु है। हाथीदांत की कुछ ऐसी वस्तुएं मिली हैं जो संभवतः किसी धार्मिक अनुष्ठानों में प्रयुक्त होती थीं। हाथीदांत की कंघी भी मिली है। कुछ बेलनदार लेखयुक्त हाथीदांत की कृतियां शायद मुद्राएं थीं। बालों पर लगाने की पिनें और सुइयां भी बहुत अल्प संख्या में मिली हैं। हाथीदांत के कुछ हत्थे भी हैं। हाथी दांत की पैनी नोक वाली मोटी सुई की तरह के उपकरणों का प्रयोग भोजपत्र जैसी वस्तु पर लिखने के लिए भी हो सकता था। मोहेंजोदड़ो से हड्डी की बनी सुइयों जैसे उपकरण प्राप्त हुए हैं। हिरन के सींग मिले हैं। शायद इनका प्रयोग औषधि के लिए होता था, हिरन के सींग के ही अत्यल्प संख्या में हत्थे भी उपलब्ध हैं।

शंख

सिंधु सभ्यता के लोगों को शंख अपार मात्रा में उपलब्ध था और यद्यपि इसकी भंगुरता के कारण इसकी वस्तुएं बनाना हाथीदांत की अपेक्षा कुछ कठिन होता है, पर कुछ मानों में यह उपकरणों के निर्माण के लिए हाथीदांत से भी बढ़िया वस्तु है। सिंधु सभ्यता के कारीगर शंख से वस्तुएं बनाने में अत्यंत दक्ष थे। मोहेंजोदड़ो के एल क्षेत्र में अनेक स्थलों पर थोड़ी संख्या में पूरे और आधा काम किये शंख पाये गये जिससे स्पष्ट है कि वहां पर शंख का काम होता था। शंख की मुख्यतः चूड़ियां व मनके बने हैं। उत्खचन के लिए भी शंख का प्रयोग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होता था। उत्खचन में पंखुड़ियां (जो फूल के डिजाइन का अंग रही होंगी); सीढ़ीनुमा डिजाइन, क्रास डिजाइन, फुल्लिका, हृदय की आकृति का डिजाइन, पत्ती आदि डिजाइन मिलते हैं। शंख के बड़े चमचे काफी संख्या में प्राप्त हुए। मेसोपोटामिया में भी इस तरह के चमचे मिले हैं। शंख के तश्तरी की जैसी आकृति के बहुत थोड़े बर्तन भी हैं। सुमेर में इस तरह के बर्तन अपेक्षाकृत अधिक मिले हैं। लोथल से शंख का बना एक दिशामापक यंत्र मिला है। यह बेलनाकार और अंदर से खोखला है। उसके छोरों पर चार दरारें हैं। इस उपकरण की सहायता नगर-निर्माण में भवनों तथा नालियों की सीध बांधने में और भूमि की पैमाइश में ली जाती रही होगी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 11

धार्मिक विश्वास और अनुष्ठान

सिंधु सभ्यता काल के धार्मिक जीवन से संबंधित कोई साहित्यिक सामग्री उपलब्ध नहीं है। जानकारी के सभी स्रोत पुरातत्व संबंधी हैं। मुद्राओं, मृद्-भाण्डों आदि पर जो लेख मिले हैं, वे पढ़े नहीं जा सके हैं। धार्मिक जीवन के संबंध में ज्ञान प्राप्ति के पुरातात्विक स्रोतों में मूर्तियां, मुद्राएं, मृद्भाण्ड, पत्थर अन्य पदार्थों की बनी लिंग और चक्र की आकृतियां, ताम्र फलक, कुछ विशिष्ट भवन तथा कब्रिस्तान मुख्य हैं। सिंधु सभ्यता जैसी विकसित सभ्यता में धार्मिक कर्मकाण्डों के साथ-साथ दार्शनिक विचारधारा भी रही होगी। किंतु पुरातात्विक स्रोतों से धर्म के गूढ़ तथा दार्शनिक पक्ष का उद्घाटन नहीं हो सकता, केवल तत्कालीन लोकप्रिय धार्मिक विश्वासों तथा मान्यताओं पर ही कुछ प्रकाश पड़ता है और इस संबंध में भी जो मत विद्वानों ने व्यक्त किये हैं वे सब अनुमान पर आधारित हैं और विवादास्पद हैं। तत्कालीन धर्म के स्वरूप का अनुमान लगाने के लिए दो मुख्य आधार हैं—एक तो समकालीन अथवा लगभग समकालीन मेसोपोटामिया का साक्ष्य और दूसरा ऐतिहासिक कालीन भारतीय साक्ष्य। सिंधु सभ्यता के लोगों और सुमेरी तथा तत्कालीन अन्य संस्कृतियों के लोगों में परस्पर व्यापारिक संबंध थे और उन्होंने एक दूसरे की संस्कृति तथा धर्म को भी प्रभावित किया होगा। चूँकि प्राचीन मेसोपोटामिया के लेखों की लिपि पढ़ लिए जाने के कारण वहां पर उस समय प्रचलित धर्म के विषय में बहुत कुछ निश्चित जानकारी प्राप्त है, अतः लिखित साक्ष्यों के अभाव में सिंधु सभ्यता के अवशेषों का, मेसोपोटामिया के अवशेषों के संबंध में प्राप्त हुई जानकारी से तुलनात्मक अध्ययन सिंधु सभ्यता के लोगों के धार्मिक जीवन पर प्रकाश डालने में सहायक सिद्ध हो सकता है। परंपरा की कड़ियां मजबूत होती हैं, वे कठिनाई से मिटती हैं। अतः जब हम पुरैतिहासिक काल के अवशेषों में ऐतिहासिक कालीन मूर्तियों के जैसे कुछ लक्षण पाते हैं अथवा धार्मिक आख्यानों का कुछ प्रतिरूप देखते हैं हो उनके एक ही धार्मिक परंपरा पर आधारित होने की संभावना मानना स्वाभाविक-सा है। दूसरे शब्दों में ज्ञान (ऐतिहासिक काल के) साक्ष्य से हम अज्ञात (पुरैतिहासिक काल) के बारे अनुमान लगा सकते हैं। किंतु इस तरह के साक्ष्यों पर आधारित निष्कर्ष

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निश्चित नहीं कहे जा सकते अतः उन पर मतभेद होना स्वाभाविक है। सिंधु सभ्यता के उद्घाटन से पूर्व अधिकांश विद्वानों की यह धारणा रही है कि भारतीय धर्म और संस्कृति के अन्य क्षेत्रों में जो भी अच्छी और महत्त्वपूर्ण बातें हैं वे सब आर्यों की देन हैं और अनार्यों का संस्कृति के निर्माण में अत्यल्प और महत्त्व-हीन योगदान रहा है और उनके इस योगदान में बर्बर तथा निम्नकोटि के तत्त्व ही अधिक हैं। यद्यपि कुछ विद्वानों ने इसका खण्डन भी किया था और उन्होंने हिन्दू-धर्म के कुछ महत्त्वपूर्ण धार्मिक एवं दार्शनिक विश्वासों को अनार्यों की देन माना, तथापि निश्चित साक्ष्यों के अभाव में उनके मत की पुष्टि न होने के कारण यह मत अधिकांश लोगों को ग्राह्य नहीं हो सका। अतः सिंधु सभ्यता के विभिन्न उपकरणों से उस काल के धर्म का स्वरूप निर्धारण करना इस संदर्भ में और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

हड़प्पा संस्कृति में ऐसा कोई भवन नहीं मिला है जिसे सर्वमान्य-रूप से मंदिर की संज्ञा दी जा सके, जबकि समकालीन मेसोपोटामिया के उत्खननों से मंदिरों के अनेक निश्चित और महत्त्वपूर्ण अवशेष मिले हैं। व्हीलर का कहना है कि मोहेंजोदड़ो के उत्खात क्षेत्र में दो या तीन ऐसे भवन हैं जो मंदिर हो सकते थे:—एच आर क्षेत्र में एक आयातकार घर, जो एक छोटा किन्तु सुदृढ़ और महत्त्वपूर्ण है, में प्रवेश के लिए वाहरी द्वार और दो सीढ़ियाँ हैं। इस भवन में दो पत्थर की मूर्तियाँ मिली थीं। उन्होंने उसी क्षेत्र में अन्यत्र स्थित अलग-अलग वास्तुखंडों में निर्मित भवन को पुरोहितों का 'कालेज' और उसके समीप स्थित भवन को मंदिर अथवा पुलिस स्टेशन माना है। मोहेंजोदड़ो के गढ़ी में जिस स्थान पर परवर्ती (कुषाण) काल में एक स्तूप का निर्माण किया गया वह संभवतः सिंधु सभ्यता के समय में भी पवित्र स्थल रहा हो, और इस धारणा के आधार पर उसके नीचे प्राचीन धार्मिक भवन के अवशेष मिलने की संभावनाएँ व्यक्त की गई हैं। किन्तु जबतक इस स्थल पर उत्खनन द्वारा नीचे की परतों को उद्घाटित नहीं किया जाता तब तक इस विषय में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। यह भी सुझाव दिया गया है कि मंदिर लकड़ी के बने थे, जो अब नष्ट हो गये हैं। लेकिन यह तर्क वहुत प्रभावशाली नहीं है। यह उल्लेखनीय है कि हड़प्पा सभ्यता के लगभग सभी क्षेत्रों में परम्परा और रूढ़िवादिता का प्रभाव दिखता है। कुछ विद्वानों की यह धारणा है कि सिंधु सभ्यता का शासन तंत्र भी प्राचीन मेसोपोटामिया (जहाँ के बारे में निश्चित अभिलेखीय साक्ष्य उपलब्ध हैं) के समान ऐसे शासक द्वारा चलाया जाता था जो धर्म का भी सर्वोच्च अधिकारी था और शासन के क्षेत्र में भी। यदि यह धारणा सही है तो धार्मिक क्रिया-कलापों और अनुष्ठानों का इस सभ्यता में अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होना स्वाभाविक था । उत्खननों से कोई मूर्ति ऐसी नहीं मिली है जिसे निश्चय-पूर्वक देवता की मूर्ति निर्धारित किया जा सके । वैसे कुछ ऐसी मूर्तियां हैं जिन्हें धार्मिक उद्घोषित किया गया है । उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर सिंधु सभ्यता के लोगों के धर्म के बारे में जो भी अनुमान लगाये गये हैं, उनका विवरण निम्न-लिखित पृष्ठों में दिया गया है ।

भारत में पुराकल से ही जल की पवित्रता का विशेष महत्त्व रहा है । शुभ तिथियों और पुनीत अवसरों पर तीर्थ-स्थान पुण्य-कर्म माना जाता रहा है। केवल दैनिक स्नान ही नहीं अपितु दिन में दो तीन वार स्नान करने का विधान शास्त्रों में मिलता है । साधारणतया प्रत्येक महत्त्वपूर्ण मंदिर के साथ एक तालाब भी जुड़ा रहता है । मोहेंजोदड़ो के उत्खननों से मोटी दीवालों से बनी विशाल तथा सुदृढ़ इमारत मिली जिसे 'विशाल स्नानागार' नाम दिया गया है । इसके आँगन में जो कुण्ड है उसका प्रयोग कदाचित् धार्मिक पर्व में विशिष्ट व्यक्तियों के स्नान-कार्य के लिए होता था । इस भवन के चारों ओर कुछ अन्य इमारतें और स्नानागार थे । स्नानागारों के ऊपर भी एक मंजिल थी । कुछ पुराविदों का अनुमान है कि यहां पुजारी लोग निवास करते थे और विशेष अवसरों पर ही स्नान के लिए नीचे उतरते थे । जैसा कि मार्शल ने लिखा है 'स्नान का जितना प्रबंध सिंधु सभ्यता में किया गया था उतना शायद ही विश्व की किसी प्राचीन सभ्यता में रहा हो ।' यह सही है कि अधिकांश मेसोपोटामिया के मंदिरों के पास भी एक एक कुंआ पाया गया है जो इस बात का द्योतक है कि मंदिर में लोग हाथ-पांव धोकर ।प्रवेश करते थे लेकिन सिंधु सभ्यता में तो स्नानकक्ष हर घर का आवश्यक अंग था । विद्वानों का मत है प्रत्येक घर में स्नानकक्ष का निर्माण केवल स्वच्छता के कारण ही नहीं किया गया था वल्कि इसके पीछे धार्मिक भावना भी अंतर्विष्ट रही होगी ।[1]

हड़प्पा, मोहेंजोदड़ो, चंहुदड़ो इत्यादि स्थलों की खोदाई में मिट्टी की अनेक नारी आकृतियां उपलब्ध हुई हैं (फ० XI, XII) वे प्रायः पंखाकार शिरो-भूषा, कई कई लड़ी वाले हार, चूंड़ियां, मेखला तथा कर्णाभरण पहने हैं । पंखाकार शिरोभूषा के दोनों ओर दांये वायें दीपक जैसी आकृतियां बनी हैं जिनमें कालिख लगी मिली हैं । कालिख इस बात का द्योतक लगती है कि इनमें दीप-बाती या

---

1. ऋग्वेदिक युग में नदियों का लोगों के जीवन में पर्याप्त महत्त्व रहा । वे इन्हें 'विश्वस्य मातराः' मानते थे । परवर्ती काल में भी सिंधु क्षेत्र में जल-पूजा का विशेष प्रचलन रहा है; यहाँ पर एक संप्रदाय 'दरियापंथी' था जो 'नदी पूजक' थे ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धूप जलायी गयी होगी। मैके का मत है कि संभवतः इनमें तेल बाती डालकर इनका प्रयोग दिये की तरह किया गया होगा। यद्यपि वे यह स्वीकार करते हैं कि आधुनिक काल में मूर्ति को ही दिया की तरह जलाने की प्रथा नहीं मिलती। यह धारणा कि ये धब्बे मूर्ति पर घी जैसी किसी चीज के लगाने से पड़े हैं इसलिए ठीक नहीं मालूम देती कि ऐसे धब्बों का भूमि में लंबे समय तक मूर्ति के दबे रहने के कारण बने रहना कठिन था। किसी किसी मूर्ति में नारी आकृति के साथ शिशु भी दिखलाया गया है। मैके का कहना है कि ये मूर्तियां दीवारों के आलों में रखकर पूजी जाती थीं। उनका पृष्ठ भाग सफाई के साथ न बना होना इस बात का द्योतक है कि वह भाग दिखलायी नहीं देता था, और यह भी मैके के उपर्युक्त मत की पुष्टि करता है। जैसे मैके ने व्यक्त किया है, जन साधारण के लिए मातृदेवी की पूजा पुरुष देवताओं की अपेक्षा अधिक सहज है क्यों कि मां के रूप में वह अन्य देवताओं की अपेक्षा, भक्त के अधिक निकट हो सकती है। प्रायः सभी विद्वान सिंधु सभ्यता काल की अधिकांश नारी मृण्मूर्तियों को मातृ-देवी की मूर्तियां मानते हैं।

जिन मृणमूर्तियों में गर्भिणी नारी का रूपांकन है उन्हें पुत्र-प्राप्ति हेतु-चढ़ाई गई उद्देशिक भेंट माना जा सकता है। चंहुदड़ो से प्राप्त इस वर्ग की मूर्तियां विशेष आकर्षक हैं। इनमें से कुछ मृण्मूर्तियां मात्र खिलौने के लिए भी अभिप्रेत हो सकती थीं।

बलूचिस्तान स्थित कुल्ली नामक स्थान में पायी गयी नारी मृण्मूर्तियों में सौम्य रूप मिलता है लेकिन बलूचिस्तान की ही झोब संस्कृति की नारी मृण्मूर्तियों में रौद्र रूप व्यक्त हुआ है। ये मृण्मूर्तियां मातृ-देवी के सौम्य तथा रौद्र रूप की परिचायक लगती हैं। अफगानिस्तान के मुण्डीगाक की मूर्तियों तथा हड़प्पा संस्कृति की मृण्मूर्तियों में पर्याप्त साम्य है। ये विशेष सुंदर नहीं हैं और सौम्य रूप की परिचायक लगती हैं। भारत के बाहर प्राचीन एलम, मेसोपोटामिया, ट्रान्स-काकेशिया, एशिया-माइनर, सीरिया, फिलस्तीन, क्रीट, बल्कान और मिस्र में विशाल संख्या में प्राप्त हुई नारी आकृतियाँ इस बात के प्रमाण हैं कि पुराकाल में पश्चिमी एशिया मिस्र आदि देशों में मातृदेवी की उपासना प्रचलित थी। कुछ विद्वानों की धारणा है कि एशिया-माइनर के अनातोलिया क्षेत्र से ही मातृ-देवी की पूजा का प्रारंभ हुआ है।

जैसा कि पुराविद् मार्शल का मत है भारत में मातृदेवी मान्यता की जड़ें बहुत गहरी हैं। आज भी ग्राम देवता के रूप में अधिकांशतः मातृदेवी ही प्रतिष्ठित मिलती है आदिम भारतीय जातियों और अधिकांश ग्रामीणों के धर्म में मातृ-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देवी की उपासना सर्वोपरि है और उनमें उसकी पूजा के लिए पुजारी का काम ज्यादातर नीची जाति के लोग करते हैं, ब्राह्मण नहीं। उसे प्रकृति, सृष्टि की अनादि शक्ति और पुरुष की सहचारिणी के रूप में मान्यता प्राप्त है। वैदिक काल में 'पृथ्वी' 'अदिति' आदि देवियों का उल्लेख है लेकिन वैदिक काल में मातृदेवियों की संख्या और उनका महत्त्व इतना नहीं था जितना कि इन्द्र, वरुण, अग्नि आदि पुरुष देवताओं का। बाद में शाक्त धर्म में देवी को सृष्टि-कर्त्री तथा विनाशकर्त्री कहा गया है और यह धारणा दृढ़ होती गयी कि वही पुरुष के साहचर्य से विश्व की सृष्टि करती है। वह अत्यन्त अतीत युग से 'शक्ति' के रूप में पूजनीय है। दुर्गा, गौरी, पार्वती, काली तथा चामुण्डा उसी के विभिन्न रूप हैं। शाक्तों के अनुसार वह प्राण-शक्ति है, जिसके बिना जीवन संभव नहीं। शिव भी विना देवी की शक्ति के शव मात्र हैं। सिंधु सभ्यता में भी इस तरह की कोई धारणा थी, यह कहना अत्यन्त कठिन है। लेकिन यह उल्लेखनीथ है कि मिस्र, फिनीशिया, एशिया-माइनर और अन्य देशों की प्राचीन संस्कृतियों में देवी के सहचर की कल्पना की गयी है जिसकी सृष्टि भी देवी स्वयं करती है। क्या पता समकालीन सिंधु सभ्यता में भी ऐसे ही देवी के सहचर की धारणा रही हो।

यह कहना कठिन है कि उस काल में मातृदेवी की पूजा स्वतंत्र रूप से होती थी अथवा किसी देवता की शक्ति के रूप में। वैसे इन आकृतियों के अविकसित वक्ष-स्थल के निरूपण के आधार पर अनुमान लगाया गया है कि अधिकांशतः कुमारी के रूप में ही उसकी पूजा की जाती थी। अन्य समकालीन सभ्यताओं में देवी की पूजा पुरुष देवता की सह-धर्मिणी या माता के रूप में प्रचलित थी। अधिकांश पुराविदों का विचार है कि आर्यों ने भी (जिनके देव शास्त्र में देवियों का स्थान पुरुष देवताओं की अपेक्षा गौण है) प्राग् आर्य लोगों से सांस्कृतिक आदान-प्रदान के फलस्वरूप मातृदेवो को एक महान देवता के रूप में अपना लिया।

मृण्यमूर्तियों के अतिरिक्त कुछ मुद्राओं के अध्ययन से भी पृथ्वी या मातृ देवी की उपासना पर प्रकाश पड़ता है। हड़प्पा से प्राप्त एक अभिलेख वाली मुद्रा पर दाहिनी ओर स्त्री सिर के बल खड़ी है। उसकी योनि से एक पौधा प्रस्फुटित होता दिखलाया गया है। बांये ओर दो बाघ हैं। इस चित्रण में संभवतः मातृदेवी की प्रजनन शक्ति वाले स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। यह आकृति पृथ्वी देवी की हो सकती है जो कि संपूर्ण वनस्पति जगत की उत्पत्ति का आधार है। इस तरह के मातृदेवी के उदाहरण मेसोपाटा-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिया से भी उपलब्ध है। भीटा के एक कुषाणकालीन गोल चपटे फलक पर जिसमें नारी के शरीर से पुष्प निकलता दिखलाया गया है, इसी भाव की अभिव्यक्ति हुई लगती है। इसी (मोहेंजोदड़ो से प्राप्त) मुद्रा के दूसरी ओर एक नारी और पुरुष दिखाए गये हैं। पुरुष के हाथ में हंसिया जैसी कोई वस्तु है। स्त्री बैठी है और उसके हाथ ऊपर को उठे हैं तथा बाल बिखरे हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि पुरुष बैठी हुई स्त्री का वध करने वाला है। मार्शल का सुझाव है कि कदाचित् यह मुद्रा के दूसरी ओर दिखाई गई पृथिवी देवी को बलि दिये जाने का अंकन है।

मोहेंजोदड़ो तथा हड़प्पा से विभिन्न पदार्थों से बने चक्र (फ०XXV, 1) विशाल संख्या में पाये गये हैं। इनका व्यास 1.27 सेमी से 1.21 मीटर तक है। बड़े चक्र पत्थर के हैं तथा छोटे पत्थर, कांचली मिट्टी, शंख तथा कार्नीलियन के हैं। कुछ चक्रों का निचला हिस्सा चपटा है, ऊपर चतुर्पन्नी है, और कुछ के ऊपर और नीचे की सतह नतोन्नत है। हेनरी कज़िन्स के अनुसार इनका उपयोग संभवतः स्तंभों के शीर्ष भाग को अलंकृत करने में किया जाता था। बड़े चक्रों के लिए तो ऐसा सोचा जा सकता है किन्तु कुछ चक्र तो इतने छोटे हैं कि उनका स्तम्भ के शीर्ष के रूप में उपयोग का प्रश्न ही नहीं उठता। कुछ विद्वान् इस तरह के चक्रों को पाषाण-मुद्रा होने का सुझाव देते हैं। पाषाण-मुद्रा के प्रचलन के साक्ष्य कुछ आदिम सभ्यताओं में अवश्य मिलते हैं, किन्तु सिंधु जैसी विकसित नगर सभ्यता में, जिसका व्यापारिक तथा सांस्कृतिक संबंध सुदूर देशों के साथ था और जिसके निवासी सोना, चाँदी, ताँबा आदि अनेक धातुओं का विभिन्न वस्तुओं के निर्माण के लिए प्रयोग करते थे, विनियम के लिए पाषाण-मुद्रा अपनाये जाने की संभावना कम लगती है।

पाषाण एवं अन्य पदार्थों से निर्मित बीच में छेद वाले चक्र भारत में अति प्राचीन काल से दैवी शक्ति से संपन्न माने जाते हैं। मौर्य और शुङ्ग काल के पाषाण-चक्र तक्षशिला, रोपड़, अहिच्छत्र, मथुरा और पाटलिपुत्र आदि अनेक ऐतिहासिक स्थानों से पाये गये हैं। इनमें से कुछ चक्रों पर वृक्षों तथा पशुओं के साथ-साथ नग्न नारी आकृतियां दिखाई गई हैं। संभवतः इनका संबंध भी मातृदेवी की उपासना से था। यह चक्र योनि के प्रतीक भी हो सकते हैं। यहां यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि आरेल स्टाइन को बलूचिस्तान के पेरियानों घुंडई नामक स्थल में योनि का यथार्थ अंकन मिला है जो इस बात का द्योतक है कि पुरैतिहासिक काल में योनि का यथार्थ तथा प्रतीक दोनों रूप में ही अंकन होता था। हो सकता है कि सिंधु सभ्यता के कुछ चक्र स्तम्भ-शीर्ष की तरह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रयुक्त होते रहे हों किंतु जिन चक्रों का इस तरह का कोई उपयोग नहीं सुझाया जा सकता उनका धार्मिक महत्त्व स्वीकार करना ही समीचीन लगता है और इन्हें प्रजनन शक्ति का प्रतीक मानना गलत न होगा। आज शैव मन्दिरों में लिंग-योनि की संयुक्त आकृतियां स्थापित की जाती हैं, किन्तु यह उल्लेख करना उपयुक्त होगा कि हड़प्पा सभ्यता में लिंग और योनि संबद्ध नहीं मिलते।

मोहेंजोदड़ो के उत्खननों से एक महत्त्वपूर्ण मुद्रा (मार्शल, सं० 420) की उपलब्धि हुई (फ० XVI, 1) जिससे हड़प्पा संस्कृति के लोगों के धार्मिक विश्वास पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ा है। इस मुद्रा पर एक पुरुष आकृति अंकित है जो त्रिमुखी लगती है। वह योगासन में एक चौकी पर बैठी है। उसके सिर पर सींग की सी आकृति बनी है। कलाई से कंधे तक उसकी भुजाएं चूड़ियों से लदी हैं। मार्शल के अनुसार उसका वक्ष कवच से आवृत्त है। आकृति की दायीं ओर हाथी और बाघ तथा बायीं ओर गैंडा और महिष हैं। आसन के नीचे दो हरिण दिखलाये गये थे जिनमें से एक की आकृति खंडित है। मुद्रा पर लेख भी है जो पढ़ा नहीं जा सका है। मार्शल इस अंकन को शिव पशुपति का प्राग् रूप मानते हैं।

साहित्य में शिव को 'त्रिवक्त्र', 'त्रिशीर्ष' कहा गया है। ऐतिहासिक काल में शिव की मूर्तियां तीन,-चार अथवा पांच मुख वाली बनायी जाती थीं, उनको त्रिनेत्र भी दिखाया जाता है। वे 'त्रयम्बक' भी कहलाते हैं। 'त्रिक्' की कल्पना मेसोपोटामिया और भारत में प्राचीन काल से प्रचलित थी। मेसोपोटामिया में सिन, शमेश और इश्तर तथा अनु, इनिल और इअ की तिकड़ियां थीं।

आकृति को योगासन में दिखलाया जाना महत्त्वपूर्ण है। ऐतिहासिक काल में देवताओं में, योगी के रूप में, मुख्यतया शिव ही विख्यात हैं। वह 'महातप', 'महायोगी', 'योगीश्वर', 'योगाध्यक्ष' कहे गये हैं। भारत में दैवी शक्ति प्राप्त करने के अनेक माध्यम माने गये हैं जिसमें मानसिक अनुशासन तथा ध्यान-समाधि का विशेष महत्त्व होता है। शैव धर्म के मुख्य तत्व तथा योग दोनों ही प्राग् आर्य-कालीन विशेषतायें प्रतीत होती हैं, जो आगे चलकर भारतीय धर्म एवं दर्शन के महत्वपूर्ण अंग हो गये।

शिव योगीश्वर होने के साथ-साथ पशुपति भी कहे जाते हैं। वैदिक काल में रुद्र, शिव, वन्य तथा पालतू पशुओं के देवता थे। मिनिआन-क्रीट की कलाकृति में एक देवी और एक देवता को जिसकी पहिचान ठीक से नहीं हो सकी है, सिंह अथवा चीते के साथ अनेकशः दिखलाया गया है। अनातोलिया में सिबेल (Cybele) देवी को भी सिंहों के साथ दिखाया गया है। कुछ के अनुसार मोहें-जोदड़ो की मुद्रा पर प्राप्त चार पशु चार दिशाओं के द्योतक हो सकते हैं और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रतीकात्मक रूप से देवता को चारों दिशाओं का स्वामी दिखाना हो सकता है। इस संदर्भ में पशुओं की अशोक के सारनाथ स्तंभ के शीर्ष की चौकी पर अंकित पशुओं के प्रतीकवाद से तुलना की गई है और यह भी संभावना व्यक्त की गई है कि संभवतः शिव को भी चार मुख वाला दिखाने की चेष्टा की गई है और चतुर्थ मुख के पीछे की ओर होने की कल्पना करनी पड़ेगी। बाघ को आक्रामक मुद्रा में शिव की ओर झपटते हुए अंकित किया गया है। हरिणों को छोड़कर बाकी पशुओं के अंकन में भी यही हिंसा भावना दिखाना अभिप्रेत लगता है। महायोगी समाधिस्थ आसीन हैं। इस पुस्तक के प्रथम लेखक ने कुछ वर्ष पूर्व सुझाया था कि क्या पता इस काल में, बाद के काल की भांति शिव से संबंधित कोई ऐसा आख्यान रहा हो जिसमें शिव की आक्रामक पशुओं पर विजय की बात हो जिसके उपलक्ष में उन्हें 'पशुपति' नाम से विभूषित किया गया हो, और बाद में शिव भक्तों ने पशुपति का दार्शनिक अर्थ किया हो जिसके अनुसार सभी मानव पशु हैं और शिव उनके स्वामी हैं।

शृंग का भी शिव के साथ संबंध है। महाभारत में शिव को 'त्रिशृंग शीर्ष' कहा गया है। बंगाल में शिव की कुछ मूर्तियों में शिव के हाथ में सींग का एक वाद्य यंत्र दिखाया जाता है। मोहेंजोदड़ो की कुछ मृण्मूर्तियों में भी शृंग दिखलाया गया है। हड़प्पा की मुद्राओं पर शृंगयुक्त आकृति का अंकन है। सुमेर तथा बेबीलोन में शृंग देवत्व का सूचक माना जाता था। मानव रूप में जन्म लेने के पहले देवता पशु रूप में होते हैं, ऐसी धारणा पुराकाल में कुछ देशों में प्रचलित थी। इसी परंपरा की अभिव्यक्ति उनकी मूर्तियों में भी हुई है। मार्शल का अनुमान है कि संभवतः इसी दो सींग के अभिप्राय को परवर्ती काल में शिव के त्रिशूल का रूप दे दिया गया। (अगर दोनों सींगों के बीच में एक नोक और हो तो त्रिशूल की आकृति बन जाती है)। ऐसा भी मत है कि कालांतर में बौद्धों ने त्रिक् के भाव को त्रिरत्न के रूप में व्यक्त किया।

इस मुद्रा पर आसन के नीचे हरिण युग्म का होना कम महत्त्व का नहीं है। शिव की मध्यकालीन योगदक्षिणा मूर्तियों में शिव हरिण पकड़े दिखलाये गये हैं। हरिण युग्म को बुद्ध की धर्मचक्रप्रवर्तन मूर्तियों में भी दिखलाया गया है।

इस प्रकार मोहेंजोदड़ो की इस मुद्रा पर शिव की ऐतिहासिक कालीन कुछ विशेषताओं का अंकन हुआ लगता है, और इसीलिए मार्शल ने इसे ऐतिहासिक शिव-पशुपति का प्राग् रूप की संज्ञा दी। उस युग में यह देवता किस नाम से जाना जाता था, यह ज्ञात नहीं।

यद्यपि अधिकांश विद्वानों ने मार्शल की धारणाओं से सहमति प्रकट की है

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथापि कुछ ने इससे भिन्न मत भी प्रकट किये हैं। सैलेतोरे ने इस आकृति को अग्नि पहचाना है। रायचौधुरी का कहना है कि पशुओं में शिव के वाहन वृषभ की अनुपस्थिति के कारण इस आकृति की पहिचान शिव (पशुपति) से करना समुचित नहीं है। उनके अनुसार शिव-पशुपति का प्राग् रूप हिताइत देव-मंडलों में प्राप्त है हिताइत लोगों के प्रमुख देवता तेशुव वैदिक रूद्र की भांति ही है; वह आंधी से संबंधित हैं, वृषभारूढ और त्रिशूल-धारी हैं। उनकी पत्नी हेयत, शिव-पत्नी दुर्गा की भांति त्रिशूलधारिणी और सिंहवाहिनी हैं।

इस आकृति की पहचान के संबंध में केदार नाथ शास्त्री का मत सर्वथा भिन्न है। उनके अनुसार मुद्रा पर जो आकृति उभारी गई है वह तीन-मुखी तो है ही नहीं, मानवमुखी भी नहीं है। उनके अनुसार यह महिष-सिर वाला देवता है। इसके अंग अलग-अलग पशुओं के हैं। इसकी भुजाएं कनखजूरे और पैर सर्प से बने हैं। इसका धड़ बाघ का और सिर महिष का है। उनके अनुसार इस देवता को विभिन्न पशुओं के अंगों से बनाने की कल्पना का आधार यह था कि भक्त लोग देवता को इन सभी पशुओं की विशेषताओं से युक्त देखना चाहते थे और उससे उन गुणों की प्राप्ति हेतु प्रार्थना करते थे। वे इस संदर्भ में यह भी उल्लेख करते हैं कि ऐतरेय ब्राह्मण में रुद्र को अत्यन्त भयानक तत्त्वों से बना हुआ बताया गया है। टी० एन० रामचन्द्रन, ऋग्वेद के एक मंत्र के आधार पर इसे सोम की आकृति के रूप में पहचानते हैं। ऋग्वेद में सोम के विषय में लिखा है कि वह देवताओं में ब्रह्मा है, कवियों में श्रेष्ठ, ऋषियों में ऋषि, पशुओं में महिष और पक्षियों में बाज है। रामचन्द्रन के अनुसार इस मोहेंजोदड़ो की मुद्रा पर अंकित देवता को ऋग्वेद में पशुपति, अधिक मुख वाले होने के कारण ब्रह्मा और भैंस के सींग के कारण महिष कहा है। हर्बर्ट सुल्लिवान का कहना है कि संभवतः आकृति पुरुष की नहीं नारी की है। उनके अनुसार इस मुद्रा पर नारी आकृति को पशुओं से घिरे दिखाने का उद्देश्य संभवतः मातृदेवी को पशु-जगत की स्वामिनी दिखाना था। लेकिन यदि उनका यह तर्क मान लिया जाय कि इसमें आकृति ऊर्ध्वलिंग नहीं दिखायी गयी है; तो यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि नारी के विशिष्ट अंग भी इसमें स्पष्ट रूप से नहीं दिखलाये गये हैं। कुछ विद्वानों ने इसकी पहिचान विश्वरूप त्वाष्ट्र से की है जिसका विवरण ऋग्वेद (10.99.6) में है और जिसमें उसे तीन शिर और छह आंख वाला बताया गया है। दीनबन्धु पाण्डेय ने इस आकृति को ऋग्वेद में संदर्भित शृंग-शिरोभूषण धारण करने वाले विषाणिनों का देवता मानने का सुझाव दिया है।

मोहेंजोदड़ो से प्राप्त दो अन्य मुद्राओं पर भी इससे मिलती-जुलती आकृतियां हैं। इनमें से एक (आरेख 9.6) में देवता चौकीपर योगासन मुद्रा में बैठा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है, हाथ दोनों ओर फैलाये है और दोनों हाथों में कई चूंड़ियां पहने है । आकृति शृंगयुक्त है । मैके के अनुसार ये सींग (?) सिर से जुड़े नहीं है शिरोभूषा के रूप में एक टहनी है जिससे पीपल के जैसी पत्तियां निकलती दिखाई गई हैं । आकृति त्रिमुखी है, एक मध्यवर्ती और दो पार्श्ववर्ती मुख हैं । दूसरी (मैके नं० 235) मुद्रा पर की आकृति भी शृंगयुक्त है तथा उसके सिर से वनस्पति निकलती दिखायी गयी है लेकिन वह एक मुखी है और भूमि पर बैठी है । इन आकृतियों की वनस्पति के देवता होने की संभावना है और शिव का भी वनस्पति जगत से बहुत कुछ संबंध रहा है जिसका उल्लेख वैदिक साहित्य में आया है । यों उपर्युक्त इन दोनों आकृतियों और 'शिव पशुपति' की आकृति में पर्याप्त समानता है, यथा तीनों लंगोट जैसे वस्त्र को छोड़कर नग्न है, तीनों हाथों में कई कंकण पहने हैं, तीनों शृंगयुक्त हैं । किंतु केवल दो के सिर से ही वनस्पति निकलती दिखाई गई है; दो त्रिमुखी हैं एक एकांक मुखी। कालीबंगां के एक मृत्पिड पर एक ओर सींग वाले देवता का अंकन है दूसरी ओर मानव द्वारा बलि के लिए लाई बकरी को दिखाया है । यह भी शिव जैसे किसी देवता का अंकन लगता है[1] । हड़प्पा से प्राप्त एक मुद्रा (वत्स नं० 307) में एक देवता जैसी आकृति के शिरोभूषा में तीन पंख जैसे दिखाई गई है । यह भी कई भुजबंध पहने है । एक यहीं से प्राप्त अन्य मुद्रा (नं० 318) में भी देवता की इसी तरह की शिरोभूषा है । मोहेंजोदड़ो की एक मुद्रा (मैके नं० 347) में एक आकृति है जो आधा मानव आधा बाघ है इसके सींग हैं जिनके बीच से फल-पत्ती निकल रही है । चोटी भी है । अगर आकृति पुरुष है तो यह भी 'शिव' का प्राग्रूप हो सकता है, अन्यथा यह शिव की सहचरी सिंहवाहिनी दुर्गा के समान देवी का अंकन है ।

हड़प्पा की एक मुद्रा पर मध्य में कोई आकृति बैठी हुई अंकित है जो किसी देवता की लगती है । कुछ जानवर भी दिखाये गये हैं जिनकी पहचान करना कठिन है । एक पेड़ भी दिखाया गया है जिस पर बने मचान पर एक आदमी बैठा है । पेड़ के नीचे बाघ है । इस मुद्रा की दूसरी ओर एक बैल त्रिशूल के सम्मुख खड़ा है । फिर एक खड़ी आकृति एक काठ (?) की इमारत के सामने दिखाई गई है । बैठी आकृति की पहचान शिव से की गई है । बैल उसका वाहन है, त्रिशूल उसका आयुध तथा इमारत उसका पूजा गृह है । खड़ी आकृति भी शायद उसी देवता का अंकन है ।

---

1. सांकलिया इस सिलसिले में यह संभावना व्यक्त करते हैं कि हिसार (ईरान) में सोने के शृंगयुक्त सिर और कोटदीजी, गुमला और बुर्जाहोम के वर्तनों पर वृषभ के सिर का अंकन कालीबंगां के इस शृंगयुक्त शीर्ष वाली आकृति के पूर्व रूप हो सकते हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मोहेंजोदडो से प्राप्त मिट्टी की एक मुद्रा पर योगासीन मानवाकृति के दोनों ओर एक एक पुरुष खड़े अंकित हैं। पुरुष हाथ जोड़े है, उनके शरीर के पीछे सर्प फन दिखाए गये हैं। ये पुरुष नाग देवता हो सकते हैं। ऐतिहासिक काल में शिव का संबंध सर्पों के साथ अनिवार्य रूप में मिलता है। नागोपासना भी संभवतः प्रागार्य कालीन भारत में प्रचलित थी जिसे कालान्तर में सांस्कृतिक आदान-प्रदान के फलस्वरूप शैव धर्म में भी स्थान मिल गया।

एक ताम्र फलक पर एक पत्तों के बने वस्त्र पहने पुरुष हाथ में धनुष-वाण लिए अंकित है (आ० 9,4) यह वनस्पति या उत्पादिका शक्ति से संबंधित देवता हो सकता है। ऐतिहासिक काल में शिव के किरात रूप की भी कल्पना की गई है जिसमें उन्हें शिकारी के रूप में दिखाया गया। हो सकता है कि ऐतिहासिक काल की इस धारणा के पीछे प्रागैतिहासिक काल की कोई परंपरा रही हो। वैसे मार्शल ने इस आकृति के बारे में कहा है कि यह मेसोपाटामिया के आख्यानों के गिल्गामेश का भी अंकन हो सकता है। लेकिन वे इसके बारे में निश्चित नहीं हैं। एक मुद्रा पर एक व्यक्ति बर्छे से भैंसे पर वार कर रहा है। मैके के अनुसार यह बाद की शिव द्वारा दुंदुभी राक्षस को मानने के आख्यान से मिलते-जुलते आख्यान का द्योतक हो सकता है। जितेन्द्र नाथ बनर्जी ने तुलना के लिए इस संदर्भ में मारकण्डेय पुराण में वर्णित दुर्गा द्वारा महिषासुर वध का वर्णन उद्धृत किया है।

आज शिव के विभिन्न प्रकार की मानवाकृतियां निर्मित होती हैं लेकिन मंदिरों में पूजा के लिए शिव की मूर्ति नहीं अपितु शिवलिंग की स्थापना की जाती है। मार्शल का कहना है कि यह निर्धारित करना कठिन है कि शिव की मानव रूप में पूजा की जाती थी अथवा पूजा के लिए उनके प्रतीक का ही प्रयोग होता था।

सिंधु सभ्यता की सींगवाली पुरुष मृण्मूर्तियां देवता की परिचायक लगती हैं। कुछ विद्वानों की धारणा है कि एक समय ऐसा था जब देवता को पशु के रूप में पूजा जाता था। कालान्तर में जब उन्हें मानव रूप में दिखाया जाने लगा तो पशु के सीगों को देवता के परिचायक के रूप में बनाये रखा गया और मानव आकृति के साथ उन्हें संबद्ध कर दिया गया। लिंग के समान आकृतियाँ बलूचिस्तान और हड़प्पा संस्कृति के मोहेंजोदड़ो, हड़प्पा तथा लेथल इत्यादि स्थानों से पर्याप्त संख्या में उपलब्ध हुई हैं (फ० XXV, 2, 3)। ये पत्थर, सीप, कांचली मिट्टी और पेस्ट की बनी हैं। ये विभिन्न आकार की हैं जिनकी ऊँचाई लगभग 1.27 सेमी से लेकर लगभग 1 मीटर तक है। बड़े आकार के लिंग भी पत्थर के बने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं। कुछ तो लिंग का यथार्थवादी मूर्त रूप हैं और इस बात के निश्चित प्रमाण हैं कि भारत में प्रागैतिहासिक काल में लिंग पूजा प्रचलित थी। बहुत से तो परंपरागत ढंग से बने लिंग लगते हैं। आज अधिकांश लिंग परंपरागत शैली में ही बनते हैं जिन्हें आसानी से लिंग नहीं पहिचाना जा सकता। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि ऑरल स्टाइन को बलूचिस्तान के मोगल घुंडई नामक पुरैतिहासिक स्थल से लिंग का यथार्थ रूपाङ्कन मिला है। सिंधु सभ्यता के कुछ लिंगों के नीचे हिस्से में छेद दिखता है और मार्शल का सुझाव है कि शायद नीचे की ओर के इस छिद्र की सहायता से लिंग को योनि से जोड़ा रहा होगा। आजकल तो लिंग को योनि के ऊपर ही बनाने की प्रथा है। विद्वानों का यह भी मत है कि कुछ छोटे आकार के लिंगों को ताबीज की तरह शरीर पर बाँधा जाता रहा होगा। लेकिन पारंपरिक लिंग की तरह के छोटे-छोटे उपकरणों में से कुछ शतरंज की तरह के किसी खेल की गोटियाँ भी हो सकती हैं।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है यह निर्धारित करना कठिन है कि लिंग की पूजा शिव पूजा का ही अंग थी या स्वतंत्र रुप से प्रचलित थी। वैसे पाषाण-पूजा की परंपरा भारत तथा इतर देशों में अति प्राचीन है। कुछ पाषाणों को उनके विशिष्ट आकार प्रकार के कारण आदि काल से ही लोगों द्वारा धार्मिक महत्त्व दिया जाने लगा था। बाद में उन पर देवी-देवताओं और मृतकों की आत्माओं का निवास मान लिया गया और उन्हें जीवन्त भी समझा गया। यह धारणा प्रचलित रही है कि मानव द्वारा पूजे जाने पर ये उनके खेतों में फसल की रखवाली करते हैं और मानव तथा पशुओं के स्वास्थ्य की रक्षा करते हैं। आज भी पत्थर शालिग्राम के रूप में विष्णु, लिंग के रूप में शिव और योनि के रूप में देवी के प्रतीक माने जाते हैं। ऐतिहासिक काल में लिंगों का वर्गीकरण अनेक धार्मिक ग्रंथों में मिलता है और प्राकृतिक रूप में प्राप्त लिंग की सी आकृति वाला पत्थर स्वयंभू लिंग कहा गया है।

सफेद सेलखडी का एक धड़ जिसका विस्तृत विवरण 'पाषाण तथा धातु की मूर्तियां' अध्याय में दिया गया है, धार्मिक महत्त्व की लगती है। उसके नेत्रों का अधखुला होना और दृष्टि नासिका पर केन्द्रित होना उसके योगी होने का परिचायक है (मैके इसे निश्चित रूप से ऐसा नहीं मानते) और शाल पर तिपतिया अलंकरण भी जो धार्मिक अभिप्राय लगता है, उसे धर्म से संबद्ध करता है। कुछ विद्वान इसे योगी की मूर्ति मानते हैं। कुछ देवता की और कुछ पुजारी की।[1]

1. टी०एन० रामचन्द्रन की पहचान इन सबसे भिन्न है। उनके अनुसार यह वैदिक यज्ञ करने वाले राजा की आकृति है जिसमें वह यज्ञ के अवसर के उपयुक्त सुन्दर वस्त्र एवं आभूषण पहने हुये हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वृक्ष-पूजा

ऐतिहासिक काल की भाँति सिंधु सभ्यता युग में भी वृक्ष पूजा प्रचलित थी। मार्शल ने विभिन्न मुद्राओं पर चित्रित वृक्षों से अनुमान लगाया है कि ऐतिहासिक कालीन लोगों के समान सिंधु सभ्यता के लोग वृक्षों को दो तरह से पूजते थे—एक तो उसकी जीवन्त रूप में कल्पना कर और दूसरे प्राकृतिक रूप में। भरहुत और साँची की कला में भी इन दोनों ही रूपों में वृक्षों को दिखाया गया है। सिंधु सभ्यता के अवशेष ऐसे प्रमाण प्रस्तुत करते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि इस सभ्यता में भी वृक्ष पूजा प्रचलित थी। एक मुद्रा (फ० XVII, 3) पर एक देवता को एक वृक्ष की शाखाओं के मध्य खड़ी अंकित किया गया है। देवता नग्न है, उसके बाल लंबे हैं उसके सींग त्रिशूल की आकृति के हैं और वह भुज-बंध पहने है। उसके सामने एक व्यक्ति (उपासक या लघु-देवता) हाथ जोड़े बैठा है। उसके भी बाल लम्बे और सिर पर सींग हैं। इसके पीछे एक मिश्र पशु है जिसकी मुखाकृति पुरुष की, शरीर का कुछ भाग बकरी का तथा बाकी भाग बैल का है। इसके बाद सात नारी आकृतियों की एक कतार है। नारी आकृतियाँ घुटनों तक वस्त्र पहने हैं। उनके केश लंबे हैं और सिर के पीछे लटक रहे हैं। सिर पर वृक्ष की टहनियां हैं, जो पीपल की लगती हैं। पीपल अति प्राचीन काल से पवित्र वृक्ष माना जाता है। ये सात नारी आकृतियां ऐतिहासिक काल की 'सप्तमातृका' की याद दिलाती हैं। यों मैके ने इस सन्दर्भ में शीतला देवी और उनकी छह बहनों का उल्लेख किया है। मानवी सिर वाली पशु आकृति देवता और भक्त के मध्यस्थ के रूप में हो सकती है। लेकिन टी० एन० रामचन्द्रन इसे अग्नि देवता की पूजा से संबद्ध मानते हैं, मैके के मोहेंजोदड़ो से प्राप्त एक अन्य मुद्रा का विवरण इस प्रकार है—दाये एक श्रृंगयुक्त आकृति है जो हाथ में कंगन पहने हैं। यह आकृति दो पीपल के वृक्षों के मध्य है बायीं ओर मालाओं से अलंकृत बकरा है। इसके पीछे एक दूसरी श्रृंगयुक्त देवता (देवी ?) की आकृति है। शायद इस अंकन में वृक्ष देवता का ही निरूपण है। मेसोपोटामिया की संस्कृति में पशुओं के देवता और उपासक के बीच मध्यस्थ होने की धारणा प्रच-लित थी। कुछ का यह भी मत है कि उसे पशु की बलि दिए जाने के संदर्भ में पहचानना चाहिए लेकिन जैसा वत्स ने कहा है, यदि पशु का बलि के निमित दिखाना होता तो मुद्रा पर उसे बंधा दिखाया गया होता। एक अन्य मुद्रा (आ० 9, 1) पर पीपल वृक्ष के दो तनों के संगम स्थान से एक श्रृंगी पशु का सिर निकलते दिखाया गया है। ऊपर सात नारी आकृतियों के संदर्भ में पीपल वृक्ष का उल्लेख आ चुका है। अन्य मुद्राओं तथा मृद्भाण्डों पर भी पीपल वृक्ष दिखाया गया है। एक मृण्मुद्रा पर एक वृक्ष है जो पूजा पदार्थ के साथ संबद्ध है,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिसके सिरे पर पशु का सिर है और सींगों के बीच से वनस्पति निकलती दिखायी गयी है। वृक्ष ऊँचे चबूतरे पर दिखाया गया है। यहाँ पर एक भैंसे द्वारा एक मनुष्य उछाला जाता दिखाया गया है। शायद यह भैंसा इस वृक्ष का रक्षक था। एक दूसरी मुद्रा पर भी उसी तरह का पूजा पदार्थ है जो वृक्ष और नुकीले स्तंभ से संबद्ध है। इसके साथ ही दो बकरे हैं और दो व्यक्ति भी दिखाये गये हैं। हड़प्पा से प्राप्त एक मुद्रा छाप पर पीपल की टहनी को मेहराव की आकृति में झुका दिखाया गया है और इस मेहराव के भीतर देवता दिखाया गया है जो जांघिया-सा पहने है और सिर से मोर की कलगी की तरह तीन नुकीली-सी वस्तुएं निकली दिखाई गई हैं।

एक अन्य मुद्रा पर दो व्यक्ति अंकित हैं जिनमें से प्रत्येक के हाथ में एक-एक पेड़ हैं। ऐसी संभावना व्यक्त की गई है कि संभवतः इस अंकन के पीछे महाभारत में उल्लिखित कृष्ण द्वारा यमलार्जुन वृक्ष को उखाड़ कर उनकी आत्मा मुक्त करने जैसी कोई कहानी रही हो। यह भी हो सकता है कि वृक्षों को देवता की पूजा में रोपा जा रहा हो। इस मुद्रा के दूसरी ओर एक झुका व्यक्ति एक पेड़ (जो नीम-सा लगता है) की पूजा कर रहा है। वृक्षों की पूजा प्राकृतिक रूप में भी की जाती थी। कुछ वृक्षों (जैसे पीपल) को वेदिका से वेष्ठित दिखलाया गया है। ऐतिहासिक काल में सिक्कों पर वेष्ठित वृक्ष का अंकन अत्यंत लोकप्रिय रहा है। पीपल की पवित्रता आज तक वर्तमान है। इसकी परिक्रमा की जाती है। बहरीन द्वीप की खोदाई में प्राचीन संस्कृतियों के संदर्भ में प्राप्त पत्थर के वृत्ताकार अवशेषों को कुछ विद्वानों ने खजूर वृक्ष के लिए बनाया घेरा माना है। उनका मत है कि मध्य पूर्व और कुछ अन्य क्षेत्रों में भी खजूर के वृक्ष का पर्याप्त धार्मिक महत्त्व था। मोहेंजोदड़ो के एच आर क्षेत्र के एक भवन के पास 1·22 मीटर व्यास का घेरा मिला। अन्यत्र भी इस सभ्यता में इस तरह के घेरे मिले हैं जो वृक्षों की पवित्रा के साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। पुत्र-प्राप्ति हेतु इसकी पूजा आज भी की जाती है। पितरों के तर्पण के लिए इन पर मिट्टी के बर्तनों में पानी रखा जाता है। पीपल के नीचे बुद्ध भगवान को ज्ञाउ प्राप्त हुआ था। प्राचीन मेसोपोटामिया में ज्ञान तरु और जीवन-तरु की धारणा विद्यमान थी। आज वृक्षों को जीवन्त मानने का सबसे बड़ा साक्ष्य यह है कि लोग प्रतीक रूप में उनका विवाह भी करते हैं, और कभी तो प्रतीक रूप में कुछ जातियां कन्या का विवाह किसी पुरुष से पहले उसका वृक्ष से विवाह करते हैं। यह कहना कठिन है कि यही धारणा सिंधु सभ्यता के काल में भी थी। जिस पारंपरिक शैली में पीपल का चित्रण सिंधु सभ्यता के काल हुआहै वह वह बेबीलोन में प्राप्त 'जीवन तरु' के चित्रण की शैली से मिलती

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जुलती है। इस संदर्भ में एक मुद्रा (मार्शल संख्या 387) में किये गये अंकन का उल्लेख समीचीन होगा जिसमें कि पीपल का वृक्ष की टहनी दो एक श्रृंगी पशुओं के संयुक्त सिर से निकलता हुआ दिखलाया गया है। मार्शल ने सुझाव दिया है कि शायद एक श्रृंगी पशु उस समय पीपल देवता का वाहन माना जाता था। मृद्भाण्डों पर पीपल की पत्तियों का चित्रण मिला है तथा जिन अन्य वृक्षों के चित्रण बर्तनों और मुद्राओं पर मिले हैं उनमें नीम और बबूल (acacia) उल्लेखनीय हैं।

पशु-पूजा

वृक्ष-पूजा की अपेक्षा सिंधु सभ्यता में पशु-पूजा के अधिक साक्ष्य उपलब्ध हैं। यह साक्ष्य मुद्राओं और उनकी छापों, मिट्टी, कांचली मिट्टी और पत्थर के उपकरणों के माध्यम से हम तक पहुँचे हैं। पशु दो तरह के दिखाये गये हैं— वास्तविक और काल्पनिक। केवल एक श्रृंगी पशु का चित्रण ही ऐसा है जिसके बारे में विद्वानों में मतभेद है कि यह चित्रण वास्तविक है या काल्पनिक।

मेसोपोटामिया की प्राचीन संस्कृति में मानव-मुखी सिंहों को देवता का रूप माना जाता था। कीलाकार अभिलेखों में इन्हें देवता कहा गया है। सिंधु सभ्यता की कुछ मुद्राओं पर मिश्र जीवों का अंकन है (फ० XVI,4,5,6) जिन पशुओं के अंगों के समाकलन से मिश्र पशु आकृतियां बनायी गयी हैं उनमें मेढ़ा, बकरा, बैल, बाघ और हाथी हैं। इनमें से कुछ मिश्र-जीवों की मुखाकृति मानवीय लगती है।[1] हो सकता है कि इनमें दो या अधिक शक्तियों का समन्वित रूप दिखाने का आशय रहा हो।[2] यह भी संभव है कि जिन मुद्राओं पर इस तरह के जानवर रूपांकित हैं वे तावीज की तरह भी प्रयोग में लाये जाते रहे हों। शायद मिश्र पशुओं की मूर्तियां को पूजा-ठौर में रख कर उनकी पूजा की जाती रही होगी। संभवतः मिश्र पशु आकृतियों पहले अलग-अलग रूप में पूजे

1. इस संदर्भ में ऐतिहासिक काल के साहित्य एवं कला में शिव के प्रमथों और गणों का उल्लेख करना समीचीन होगा जिन्हें कभी मानवमुखी और पशु शरीर वाला दिखाया जाता है। इस तरह से गरुड़, गंधर्व, किन्नर कुम्भाण्ड आदि को भी मानव और पशु के समाकलित रूप में साहित्य में वर्णित और कला में अंकित किया गया है।

2. ऊपर उस मुद्रा के संबंध में, जिसे मार्शल ने 'शिव-पशुपति' की संज्ञा दी है, केदारनाथ शास्त्री की इस धारणा का उल्लेख किया जा चुका है कि इस मुद्रा पर अंकित आकृति एक ऐसी मिश्र आकृति है जिसके अवयवों को भिन्न-भिन्न पशुओं अथवा उनके अवयवों जैसा बनाया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाने वाले पशुओं का धार्मिक सहिष्णुता एवं धार्मिक एकता के फलस्वरूप बाद में सम्मिलित रूप से पूजे जाने का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। मुखाकृति मानवीय दिखाना इस बात को इंगित करता है कि देवताओं को पशु रूप में दिखाने की परंपरा से उन्हें मानव रूप में दिखाने की परंपरा का विकास होने लगा था।

एक मुद्रा (मार्शल सं० 382) में एक श्रृंगी पशु के तीन सिर दिखाये गये हैं। इसमें सबसे नीचे के सींग भैंसे के और बीच और ऊपर के सिर के सींग बकरे के हैं। एक दूसरे उदाहरण में एक श्रृंगी पशु के सरीर से निकले तीन सिरों में सबसे नीचे वाला भैंसे का, उसके ऊपर वाला एक श्रृंगी पशु का और उसके ऊपर बकरे का। एक अन्य मुद्रा में तीन बाघों के शरीर एक दूसरे में गुंथे हुए दिखाए गए हैं। (फ० XVI,7)

मोहेंजोदड़ो से मैके को एक ऐसी मुद्रा मिली है जिस पर एक श्रृंगी पशु और गैंडे के शरीर के अवयवों का समाकलित रूप है। इसका शरीर तो एक श्रृंगी पशु का है किंतु कान, सींग और पैर गैंडे के हैं। इसके आगे भी उसी तरह का अभिप्राय है जैसे एक श्रृंगी पशु के आगे मिलता है।

मोहेंजोदड़ो की कुछ मुद्राओं पर अर्ध-मानव अर्ध-पशु आकृति को श्रृंगयुक्त बाघ पर आक्रमण करते अंकित किया गया है। (फ० XVI,6) सुमेरी धर्मगाथा में एक ऐसा आख्यान मिलता है जिसके अनुसार गिल्गामेश को पराजित करने के लिए देवता ने आधा-मानव आधा-दैत्य शरीर धारी इंकिडू उत्पन्न किया, किंतु उसने गिल्गामेश को पराजित करने के बजाय उससे मित्रता करली और वह उसके साथ मिल कर जंगली पशुओं के साथ लड़ा। मेसोपोटामिया में गिल्गामश और इंकिडू को जंगली जानवरों से लड़ते जाने की परंपरा सिंधु सभ्यता से काफी पहले से प्रचलित थी। कुछ विद्वान इसे मेसोपोटामिया की संस्कृति का धर्म के क्षेत्र में सिंधु संस्कृति पर प्रभाव का सूचक मानते हैं। कुछ इसे स्वतंत्र रूप से विकसित धार्मिक परंपरा का द्योतक मानते हैं जो संयोगवश ही मेसोपोटामिया परंपरा से मेल रखता है।

एकश्रृंगी पशु की आकृति (फ० XVII, 1) सिंधु सभ्यता की सबसे अधिक मुद्राओं पर मिली है। इसके बारे में यह निश्चय करना कठिन है कि वे वास्तविक हैं या काल्पनिक। इसकी पीठ पर काठी दिखायी गयी है, और गले में छल्ले। यों तो ऐसा सोचा जा सकता है कि चूंकि कलाकार ने पशु का पार्श्व-चित्र बनाया है अतः पशु के दूसरे सींग को उसके पहले सींग से ढका हुआ मान कर उसे एक ही सींगवाला दिखाया हो। किंतु इसकी संभावना कम है क्योंकि मुद्राओं पर सांड़ बैल की आकृति पार्श्ववर्ती दिखाये जाने पर भी उसके दोनों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्रृंग स्पष्टतया प्रदर्शित हैं। अधिक संभावना यही है कि कलाकार ने जानबूझ कर एक श्रृंगी पशु का ही चित्रण किया है। यह असंभव तो नहीं कि हड़प्पा काल में इस तरह का कोई पशु रहा हो जिसकी नस्ल पूर्णतया विनष्ट हो गयी हो, तथापि इस संबंध में कोई पुष्ट साक्ष्यों के अभाव में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। इस पशु के सामने जैसा कि अक्सर इस जानवर के साथ दिखाया जाता है, एक विशिष्ट पात्र रखा मिलता है जो एक छोटे से डंडे पर बनाया गया है। यह पात्रों एक के ऊपर एक दो पात्र का समन्वित रूप सा है। मार्शल का कहना है कि यह धूपदानी का अंकन लगता है और इससे इस पशु की पूजा में धूप का उपयोग किये जाने के बारे में जानकारी मिलती है। सहूलियत के लिए हमने भी इसे धूपदानी ही लिखा है। तीसरा व्यक्ति उसके पीछे ध्वज लिए है। ऐसा प्रतीत होता है कि पशु रूपी देवता को प्रसन्न करने के लिए खाद्य-सामग्री भेंट की जा रही है। इसके अतिरिक्त उसकी पीठ पर काठी कसी होना और गले पर मालाओं का होना भी उसके धार्मिक महत्त्व का सूचक प्रतीत होता है। राव का कहना है कि बाद के साहित्य में विष्णु को 'एक-श्रृंग' कहना शायद एकश्रृंगी पशु से देवता का संबंध जोड़ता है। दो मुद्राओं पर एकश्रृंगी पशु को आकृति को चौकी पर रख कर ले जाते दिखाया गया है। मिस्र में भी धार्मिक उत्सवों में पशु आकृतियों को उत्सव में ध्वज के रूप में ले जाने की परंपरा थी। इस बात के साक्ष्य हैं कि ऊपर वर्णित धूपदानी की अलग से पूजा होती थी और शायद बाद में इसे एकश्रृंगी पशु के साथ जोड़ दिया गया।

सिंधु सभ्यता की मुद्राओं पर कुछ जानवरों का देव (genii) की तरह चित्रण हुआ है। सिंह भी देव माने जाते हैं। इनकी पूजा मेसोपोटामिया, भारत और यूनान में प्रचलित थी। इनका उद्भव पूर्व अथवा पश्चिम में हुआ, यह विवादास्पद विषय है। जल-भैंस (waterbuffalo), कूबड़वाला बैल (फ० XVII, 2), गैंडा (फ० XVII, 4), छोटे सींग वाला बैल, बाघ, हाथी (फ० XVIII, 1), और घड़ियाल शायद महान शक्ति संपन्न होने के कारण पूजे जाते थे। रामचंद्रन ने गैंडे को वैदिक वराह या यज्ञवराह माना है। मुद्राओं के अंकन में इनके सामने प्रायः एक पात्र रखा हुआ मिलता है। चूंकि यह पात्र जंगली और पालतू दोनों ही प्रकार के जानवरों के सामने रखा अंकित है अतः इसे उनका पालतू होना जताने के लिए नहीं दिखाया गया बल्कि यह उनके धार्मिक महत्त्व के कारण उन्हें भोग लगाने का प्रतीक लगता है।

ऐतिहासिक काल में वास्तविक पशुओं में बैल सर्वाधिक धार्मिक महत्त्व का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पशु रहा है। मध्य तथा मध्य-पूर्व की संस्कृतियों में इसे सौम्य और रौद्र रूप में पूजनीय माना जाता था। उसे रक्षक और आंधी का दैत्य माना जाता था। हड़प्पा संस्कृति में बैल 'शिव-पशुपति' के प्राग् रूप वाले देवता से संबंधित था, यह निश्चयतः ज्ञात नहीं है। रामचंद्रन बैल को वैदिक परंपरा में धर्म-विजय की घोषणा करने वाला कहते हैं। वैसे परवर्ती काल में बैल का शैव धर्म के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। कभी-कभी तो शिव को ही वृषभ के रूप में कल्पना की गयी। एक मुद्रा पर एक भैंसा व्यक्ति को उछाले हुए दिखाया गया है दूसरी मुद्रा पर एक भैंसा कुछ लोगों के समूह पर आक्रमण करने के पश्चात् विजेता की तरह खड़ा दिख रहा है। मैके का अनुमान है कि यह किसी देवता द्वारा शत्रुओं पर विजय प्राप्ति का प्रतीक है। बकरा आज बलि के लिए विशेष रूप से चढ़ाया जाता है। कुछ प्राचीन सभ्यताओं में बकरा प्रजनन शक्ति के प्रतीक के रूप में देवी के साथ संबद्ध मिलता है।

आज के हिंदू धर्म में कुछ पशु-पक्षी देव-वाहन के रूप में ख्यात हैं, जैसे भैंसा यम का, बैल शिव का, गरुड़ विष्णु का, हाथी इन्द्र का और मकर गंगा का, इत्यादि। हो सकता है कि उस युग में भी ऐसी ही कोई कल्पना रही हो और मुद्राओं पर चित्रित कुछ पशु तत्कालीन देवताओं के वाहन के रूप में जाने जाते रहे हों।

छोटे सींग वाले बैल को क्रुद्ध मुद्रा में दिखाने का कारण यह हो सकता है कि उसकी कल्पना एक संहारकारी देवता के वाहन अथवा किसी अन्य रूप में की गई हो। प्राचीन सुमेर में कभी-कभी जल देवता इअ (Ea) और एंकि (Enki) को कछुए की आकृति द्वारा दिखाया जाता था। यह कहना कठिन है कि सिंधु सभ्यता में भी किसी देवता का रूपांकन कछुए की आकृति द्वारा किया जाता था। यों ऐतिहासिक काल में कछुए की यमुना नदी वाहन के रूप में कल्पना की गई है और विष्णु का एक अवतार भी कच्छप (कछुआ) है। चूना-पत्थर से बनी कुछ जानवरों, तथा मेढ़ा, बैल इत्यादि की आकृतियां आयताकार पीठिका पर स्थित हैं। मैके के अनुसार ये पशुओं के रूप में देवताओं को दर्शाते हैं और इन मूर्तियों को मंदिरों में स्थापित किया गया होगा। ये पशु-आकृतियां तथा मानवाकृतियां भी क्षतिग्रस्त हैं और इस बात की संभावना व्यक्त की गयी है कि किसी आक्रांता ने धार्मिक भेद-भाव के कारण जानबूझ कर इन्हें क्षतिग्रस्त किया हो।

हड़प्पा में बैल, भेंड़ आदि पशुओं की हड्डियों का ढेर मिला जो सामूहिक पशुबलि दिये जाने का द्योतक लगता है। कालीबंगां में भी पशुबलि के साक्ष्य मिले हैं। मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा की मुद्राओं की कुछ आकृतियां सुमेरी कथा-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नक से पर्याप्त साम्य रखती हैं । इनमें तीन पर मनुष्यों को दो बाघों से लड़ता दिखाया गया है (आ० 9, 3) । मनुष्य की आकृति सुमेरी गिल्गामेश (जो सुमेरिया के आख्यानों के अनुसार इंकिडू का मित्र था) की आकृति से कुछ मिलती है । इतना अंतर अवश्य है कि सुमेरी अंकनों में गिल्गामेश को दो सिंहों के साथ दिखाया गया है ।[1] चूंकि इस तरह के कथानक मेसोपोटामिया में बहुत पहले से मिलते हैं और यदि हम इसे सुमेरी प्रभाव स्वीकार कर लें तो इस अभिप्राय का उद्भव स्थान होने का श्रेय मेसोपोटामिया को ही दिया जा सकता है । ये अभिप्राय परस्पर संबंधों के फलस्वरूप हड़प्पा संस्कृति तक पहुँचे होंगे और सिंधु सभ्यता के लोगों ने सिंहों से विशेष परिचय न होने के कारण ही सिंहों के स्थान पर बाघों को अंकित किया होगा ।

नाग-पूजा अति प्राचीन काल से भारत में चली आ रही है । सिंधु सभ्यता में इसके अधिक उदाहरण नहीं मिले । सिंधु सभ्यता के मिट्टी के बर्तनों पर सांप के कुछ चित्रण हैं । लोथल के तीन मृद्भाण्ड के टुकड़ों पर प्रत्येक पर दो सर्प बने हैं । मोहेंजोदड़ो की एक मुद्रा पर देवता के दोनों ओर एक-एक सर्प दिखाया गया है जो परवर्ती काल में बौद्ध धर्म से संबंधित शिल्प में नागों के बुद्ध को पूजने के अंकन की याद दिलाता है ।[2] वैदिक काल में भी नाग-पूजा का प्रचलन था ।

फाख्तों की मिट्टी की बनी बहुत-सी आकृतियाँ मिली हैं । मेसोपेटामिया में प्राप्त इस तरह की आकृतियों से ये मिलती-जुलती हैं । मेसोपोटामिया में इस पक्षी को धार्मिक महत्त्व का माना जाता था, शायद सिंधु सभ्यता में भी ऐसी ही कोई धारणा रही हो । अनुमानतः कुछ पशु-देवता कुछ विशिष्ट गुणों से युक्त, कुछ देवताओं के वाहन, और कुछ देवताओं के दूत या माध्यम माने जाते रहे हों ।

पुराविदों का विचार है कि सिंधु संस्कृति के काल में प्रचलित धर्म में भी मेसोपोटामिया की ही भांति यदि मंदिर होने की कल्पना कर ली जाय तो यह सोचना गलत न होगा कि नृत्य भी धार्मिक अनुष्ठानों का एक अंग रहा होगा । मोहेंजोदड़ो की कांस्य नर्तकी और स्लेटी पत्थर की नृत्य मुद्रा में निर्मित मूर्ति इस संबंध में उल्लेखनीय हैं । भारत में परवर्ती काल में देवता को नृत्य द्वारा

---

1. वत्स के अनुसार तो हड़प्पा की एक तिकोन मुद्राछाप पर पशु का शरीर तो खंडित हो गया है लेकिन पंजों से पशु के सिंह होने की संभावना लगती है ।

2. इस मुद्रा में अंकन स्पष्ट नहीं है । मार्शल ने इस बात की संभावना व्यक्त की है कि नाग का पुच्छ संभवतः भक्त के पैरों से जुड़ा था ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रसन्न करने के उद्देश्य से मंदिरों में देवदासियां रखी ज़ाती थीं। एक कांचली मिट्टी पर एक व्यक्ति को ढोल बजाते हुए दिखाया गया है और कुछ को नाचते हुए। दूसरी मुद्रा पर एक व्यक्ति बाघ के सामने ढोल बजा रहा है। मनोरंजन के अतिरिक्त धार्मिक क्रिया-कलाप से भी इसका संबंध हो सकता है। संभवतः सिंधु सभ्यता में आज की ही भांति मानव और पशुओं की मूर्तियों का देवता के लिए चढ़ावे के रूप में भी प्रयोग होता था। गर्भवती स्त्रियों और गोद में बच्चा लिये स्त्रियों की मूर्तियां संभवतः उस काल की नारियों द्वारा क्रमशः पुत्रवती बनाये जाने के लिए और पुत्रवती बनने के पश्चात् धन्यवाद के रूप में मंदिरों अथवा धार्मिक स्थानों में चढ़ाई जाती थीं।

बलि हेतु प्रयुक्त गर्त और अग्निवेदियां

हड़प्पा तथा मोहेंजोदड़ो से अग्निकुण्डों या वेदी के निश्चित् प्रमाण नहीं प्राप्त हुए हैं। वैसे मार्शल ने मोहेंजोदड़ो के एच आर क्षेत्र में एक गड्ढा पाये जाने का उल्लेख किया है, किंतु उन्होंने इस साक्ष्य को संदिग्ध प्रमाण माना है। लेकिन कालीबंगां और लोथल के उत्खनन इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण और साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं, जो सिंधु सभ्यता के युग में यज्ञ-बलि प्रथा होने का संकेत करते हैं।

कालीबंगां में गढ़ी वाले टीले में एक चबूतरे पर एक कुआं, अग्निवेदी (Fire altar) और एक आयताकार गर्त मिला है जिसके भीतर चारों ओर पालतू पशु की हड्डी और हिरन के सींग मिले हैं (फ० XXVI, 2) अनुमानतः इनका धार्मिक अनुष्ठान में पशुबलि से संबंध था। कुछ विद्वानों ने जो सिंधु सभ्यता को आर्य सभ्यता मानते हैं इस साक्ष्य को वैदिक बलि-प्रथा से जोड़ने का प्रयास किया है।

कालीबंगां में ही एक चबूतरे के ऊपर कुएं के पास सात आयताकार अग्नि-वेदियां एक कतार में मिलीं।[1] निचले नगर के अनेक घरों में भी अग्नि वेदिकाएं प्राप्त हुई हैं। अग्नि वेदिकाओं का भी धार्मिक महत्त्व लगता है। गर्तों में प्राप्त सामग्री के आधार पर ब्रजवासी लाल और बालकृष्ण थापर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इन उथले गड्ढों को खोद कर इनमें आग जलाई जाती थी, फिर उसे बुझा दिया जाता था जैसा इनमें प्राप्त कोयले के साक्ष्य से स्पष्ट है। मध्य में

1. राव ने लोथल में (देखिए नीचे), इससे मिलते जुलते उदाहरण पाये और कसाल ने भी आमरी में इत तरह के अवशेष पाये। सांकलिया का कहना है कि संभवतः हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो में भी एसे उदाहरण रहे होंगे, किंतु तीव्र गति से लिए उत्खननों में उनकी पहचान नहीं हो पाई। देखिए सांकलिया, **प्रीहिस्ट्री एण्ड प्रोटोहिस्ट्री आफ इंडिया एंड पाकिस्तान,** द्वितीय संस्करण, पृष्ठ, 350।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बेलनाकार या आयताकार धूप में सुखाया मिट्टी का एक खण्ड खड़ा कर दिया जाता था। और फिर किसी धार्मिक अनुष्ठान की पूर्ति हेतु उनमें पक्की मिट्टी के तिकोन पिण्ड रख दिये जाते थे। इनका धार्मिक महत्त्व इससे और अधिक स्पष्ट हो जाता है जब हम देखते हैं कि एक केक पर ऐसा दृश्य अंकित है (फ० XVIII, 2) जिसे विद्वानों ने मानव द्वारा बकरी की बलि दिए जाने का चित्रण माना है। दूसरी ओर एक देवता का अंकन है जिसके सिर पर सींग हैं। सींग के कारण शिव-पशुपति जैसे देवता से पहचान समीचीन है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि कालीबंगां के चबूतरों का धार्मिक महत्त्व था और संभवतः इनके ऊपर जो भवन रहे होंगे वे पुरोहितों के आवास रहे होंगे। हड़प्पा, मोहेंजोदड़ो और लोथल के संदर्भ में विद्वानों ने चबूतरों के निर्माण को बाढ़ से सुरक्षा के लिए माना किंतु कालीबंगां में बाढ़ के कोई साक्ष्य नहीं हैं। या तो हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो में भी इनका धार्मिक महत्त्व स्वीकार करना होगा या फिर मानना होगा कि कालीबंगां के लोगों ने हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो के नगर निर्माण की शैली का अंधानुकरण किया। लोथल में एक चबूतरे पर ईंटों की बनी वेदी मिली। इसमें बैल (या गाय) की जली हड्डियां और उसके साथ सोने का लटकन कार्नीलियन का मनका, चित्रित मृद्भाण्ड के खंड और राख मिली। यह लोथलवासियों द्वारा पशुबलि दिए जाने का साक्ष्य लगता है। वैदिक काल में भी बैल की बलि दिये जाने के साक्ष्य मिलते हैं। कालीबंगां में निचले नगर के बाहर पूर्व में एक छोटे से टीले के उत्खनन से ईंटों के घेरे के भीतर पांच अग्निवेदिकाओं का समूह मिला। यहां पर आवासीय स्तरों का कोई साक्ष्य न था।

लोथल के निचले नगर में कई घरों में फर्श के नीचे, या कच्ची ईंटों के चबूतरे के ऊपर आयताकार या वृत्ताकार मिट्टी के घेरे बने थे। इनमें से कुछ में राख, पक्की मिट्टी के तिकोने केक, और कभी-कभी मिट्टी के बर्तन भी मिलते हैं। इनके आकार-प्रकार से स्पष्ट है कि इनका प्रयोग चूल्हे की तरह नहीं होता था, और ये इतने बड़े हैं कि इनका भाण्ड के रखने के लिए भी उपयोग नहीं लगता।

शि० रंगनाथ राव के विवरण के अनुसार लोथल में घरों में ही नहीं अपितु कुछ सार्वजनिक स्थानों में भी थोड़ी ही ऊंची वेदियों के समान पक्की ईंटों के घेरे मिले हैं। इनके भीतर भी तिकोन मिट्टी के केक, अंडाकार मिट्टी की गोलियां, राख और मृद्भाण्ड के टुकड़े मिले हैं। इनमें से कुछ में गड्ढे (post-holes) मिले हैं जिनमें मूलतः लकड़ी के खंभे लगे रहे होंगे। एक स्थान पर ...दी के साथ पक्की मिट्टी का चमच्च (ladle) भी मिला जिस पर धुएं के धब्बे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थे। रंगनाथ राव का अनुमान है कि इनका प्रयोग आग में तरल पदार्थ डालने के लिए किया जाता था। गढ़ी में इस तरह के अग्निकुण्ड बनने निचले नगर से बाद में प्रारंभ हुए। एक स्थल के समीप तो एक सुंदर चित्रित बर्तन भी मिला जिसका संबंध भी अग्निपूजा से लगता है। सांकलिया परवर्ती भारतीय साक्ष्य के आधार पर इन अग्निवेदियों को सार्वजनिक धार्मिक अनुष्ठान मानने के पक्ष में नहीं हैं, और पारिवारिक अनुष्ठानों के लिये प्रयुक्त मानते हैं।

कुछ विद्वानों का कहना है कि कुछ मुद्राछापें और मुद्राएं भी तावीज की तरह इस्तेमाल की जाती थीं। इनमें से कुछ तावीज प्रजनन शक्ति के प्रतीक के रूप में पहने जाते रहे होंगे। सीप के एक उपकरण में गांठदार अभिप्राय चित्रित है। गांठ का पूर्व और पश्चिम दोनों में धार्मिक महत्व रहा है और इस गांठ पर दो छेद हैं जो संभवतः इस बात के द्योतक लगते हैं कि उसे कपड़े पर सिया गया होगा। कदाचित कुछ मनके भी, विशेषतः वे जिन पर त्रिपत्र अलंकरण हैं, तावीज की तरह प्रयोग में लाये जाते रहे थे। त्रिपत्र डिजाइन का धार्मिक महत्त्व था और कुछ के अनुसार शायद वह तारे का द्योतक था। मिट्टी के कुछ मुखौटे मिले हैं जिनका प्रयोग धार्मिक उत्सवों पर किसी नाटक की भूमिका में पात्रों द्वारा किया जाता रहा होगा। मुद्राओं पर एकश्रृंगी पशु के सामने जो वस्तु दिखाई गई है उसकी पहिचान कुछ लोगों ने धूपदानी से की है। जो भी हो, इसका एकश्रृंगी पशु के संदर्भ से अलग भी धार्मिक महत्त्व था ? यह कुछ मुद्राछापों पर उसके स्वतंत्र रूप से अंकित होने से स्पष्ट है। दो कांचली मिट्टी की मुद्राछापों पर एक ही तरह की छाप है और पांच अन्य कांचली मिट्टी की मुद्राछापों पर अलग ढंग से धूपदानी (?) दिखाई गई है।

स्वस्तिक और ग्रीक सलीब (क्रास) काफी संख्या में अंकित मिले हैं। ये एलम और कुछ अन्य प्राचीन सभ्यताओं की कलाकृतियों में भी अंकित मिलते हैं। मोहेंजोदड़ो में वामवर्ती और दक्षिणवर्ती दोनों ही प्रकार के स्वास्तिक पर्याप्त संख्या में मिलते हैं लेकिन हड़प्पा में कुछ अपवादों को छोड़ कर ऐतिहासिक काल के समान ही स्वास्तिक दक्षिणवर्ती हैं। स्वास्तिक का संबंध सूर्यपूजा से हो सकता है। कुछ विद्वान तो इसे निश्चित रूप से सूर्य का प्रतीक मानते हैं। चक्र की तरह के कुछ आकार भी सूर्य के प्रतीक हो सकते हैं। एक मुद्रा पर एकश्रृंगी पशु के आगे सूर्य सा बना है जिससे बहुत-सी किरणें फूट रही हैं। स्वयं एकश्रृंगी पशु भी मानों उसकी ही एक किरण हो। मैके के अनुसार इस मुद्रा के साक्ष्य से एकश्रृंगी पशु का सूर्य से संबंध ज्ञात होता है।

शवों के साथ मिट्टी के बर्तन एवं अन्य सामग्री रखी मिली हैं। इससे उनकी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मृत्यु के पश्चात् के जीवन की धारणा होने के बारे में जानकारी मिलती है। शवों को साधारणतः उत्तर-दक्षिण दिशा में लिटाया गया है, जो धार्मिक विश्वास का ही फल हो सकता है। लोथल के तीन कब्रों में दो-दो शवों को गाड़ा गया है। यदि इनमें एक स्त्री और एक पुरुष साथ-साथ गाड़े गये हैं तो ये पति के मरण के साथ पत्नी के भी जीवन-त्याग का साक्ष्य हो सकती हैं।

सिंधु सभ्यता के लोगों के धार्मिक जीवन के संबंध में लिखित साक्ष्य प्राप्त न होने से यह कहना कठिन है कि किस देवता का उनके जीवन में सर्वाधिक प्रभुत्व एवं मान्यता थी। मार्शल, मैके, व्हीलर आदि विद्वानों का मत है कि संभवतः उस अतीत युग में मातृदेवी की उपासना सबसे अधिक प्रचलित थी और देवताओं में उसका स्थान सर्वोपरि था। के० एन० शास्त्री ने वैदिक धर्म की भांति ही हड़प्पा-वासियों के धर्म में भी पुरुष देवताओं का अधिक महत्त्व माना है। उनके अनुसार सिंधु सभ्यताकाल में मातृदेवी की अपेक्षा पीपल देवता की अधिक महत्ता थी जिसका अंकन मुद्राओं पर सर्वाधिक लोकप्रिय रहा। कालीबंगां और लोथल की खोदाइयों से प्राप्त कुछ अग्निकुण्ड कौतूहलवर्धक साक्ष्य उपस्थित करते हैं। इनमें प्राप्त पशुओं की हड्डियों और मिट्टी के पिण्ड, जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, पशु बलि के सूचक लगते हैं।

लोथल में नारी मृण्मूर्तियां बहुत कम मिली हैं। रंगनाथ राव तो इन थोड़ी-सी नारी आकृतियों में से केवल एक मृण्मूर्ति को ही मातृदेवी की मूर्ति मानते हैं। कोटदीजी में मातृदेवी की मूर्तियां तो मिली हैं किंतु लिंग और योनि नहीं मिले। आमरी कालीबंगां, रंगपुर, रोपड़, आलमगीरपुर में भी मातृदेवी की उपासना लोकप्रिय नहीं लगती बल्कि यह भी संभव है कि इसका प्रचलन ही नहीं था। कालीबंगां में तो 'लिंग' और 'योनि' भी नहीं मिले। वहां पर न पत्थर की ही देवता की कोई मूर्ति मिली है और न मुद्राओं पर ही किसी देवता का अंकन है। अन्य क्षेत्रों की मुद्राओं पर मोहेंजोदड़ो की मुद्रा पर प्राप्त शिव-पशुपति जैसा देवता नहीं मिलता। इसका अर्थ यह हुआ कि भौगोलिक तथा अन्य भिन्नता के कारण सिंधु सभ्यता में भी परिवर्तन व परिवर्धन हुए। यह भी संभव है कि परिवर्तन का कारण अन्य संस्कृति के लोगों के साथ संपर्क रहा हो। इस संबंध में साक्ष्य इतने पुष्ट नहीं हैं कि कोई सर्वमान्य और निश्चित अभिमत व्यक्त किया जा सके। यह कहना भी कठिन है कि धर्म के क्षेत्र में सिंधु सभ्यता ने अन्य संस्कृतियों से कब और कितना ग्रहण किया, किंतु इतना कहा जा सकता है कि परवर्ती भारतीय धार्मिक विश्वासों में अनेक तत्व ऐसे हैं जिनका मूल सिंधु सभ्यता में ढूंढा जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचन उस युग के धर्म के बारे में एकांगी और अपर्याप्त सूचना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देते हैं। वास्तव में ये साक्ष्य धर्म की जीवन्त रूपरेखा प्रस्तुत करने की बात तो दूर रही उसका पूरा ढांचा भी नहीं प्रस्तुत करते हैं। भौतिक प्रतीकों की धार्मिक धारणाओं और विश्वासों को अभिव्यक्त करने की अपनी सीमा है। फिर अनेकशः एक ही वस्तु एक संदर्भ में धार्मिक हो सकती है और दूसरे संदर्भ में लौकिक; मानिये तो देवता न मानिये तो पत्थर वाली बात सिंधु सभ्यता के कई संदर्भों में लागू रही होगी। ऐतिहासिक काल में भी अक्सर धार्मिक और लौकिक का भेद करना कठिन हो जाता है; फिर साहित्यिक साक्ष्य-रहित प्रागैतिहासिक काल की तो बात ही अलग है। जैसे व्हीलर लिखते हैं एक माता-पुत्र का अंकन एक ओर साधारण लौकिक अंकन हो सकता है, दूसरी ओर धार्मिक देवी का। अनेक प्राचीन संस्कृतियों में राजत्व और देवत्व का अभिन्न संबंध था। वही व्यक्ति जो शासक था वह देवताओं का विशेष कृपापात्र, दैवी शक्ति से संपन्न, अथवा देवता का अवतार मान कर पूजा भी जा सकता था, आज के शासक के बारे में जनता की जो धारणा है वह प्राचीन काल की धारणा से पूरा मेल नहीं खाती। जो भी जानकारी मिलती है उससे कुछ ऐसे निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं और निकाले गये हैं जो सर्वमान्य भले ही नहीं बहुमान्य अवश्य हों।

सिंधु सभ्यता के धर्म में देवी-देवताओं की मानव, पशु और प्रतीक तीनों रूपों में कल्पना की गई है, इस तरह उनके स्वरूप के बारे में तीनों प्रकार की धारणाओं का प्रचलन साथ-साथ था। नागों को अर्धमानव अर्धसर्प दिखाने की जो धारणा ऐतिहासिक काल में मिलती है उसका मूल सिंधु सभ्यता में प्राप्त होता है। ऐतिहासिक काल में हिन्दू धर्म में कुछ ऐसे तत्व हैं जो एक ओर सिंधु सभ्यता में विद्यमान लगते हैं किंतु वैदिक धर्म में नहीं मिलते या अपेक्षाकृत गौण रूप में मिलते हैं। इनमें शिव, मातृदेवी, नाग, वृक्ष, पशु, लिंग आदि की पूजा और योग उल्लेखनीय हैं। और यदि मान लिया जाय कि बाद के लोगों ने आर्यो से पूर्व की इस संस्कृति के तत्वों को ग्रहण किया तो यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि ये तत्त्व उन्होंने एक आदिम संस्कृति से नहीं वरन् प्राचीन विश्व की एक अत्यधिक विकसित संस्कृति से ग्रहण किये थे, और यह भी असंभव नहीं कि हिंदू धर्म के कुछ दार्शनिक सिद्धांत भी इस संस्कृति की देन हों। यद्यपि इस तरह के सिद्धान्तों को निश्चित रूप से पहिचान सकना कठिन है किंतु आर्यों के साहित्य में दर्शन के जो तत्व नहीं मिलते उनमें से कुछ का स्रोत इस सभ्यता को मानना अनुपयुक्त न होगा। सिंधु सभ्यता के धर्म से मिलते जुलते अनेक तत्व मेसोपोटामिया के धर्म में मिलते हैं। इस संदर्भ में गिलगामेश और इंकिडू की तरह की आकृतियां, जानवरों को देवता का माध्यम मानना, सींगों को देवत्व

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का चिह्न मानना, और तिपतिया अलंकरण विशेष उल्लेखनीय हैं। किंतु इस निष्कर्ष पर पहुँचना कठिन है कि ये भावना और अभिप्राय की समानता प्राचीन मेसोपोटामिया और सिंधु संस्कृति के मध्य संपर्क का फल या स्वतंत्र रूप से विकसित हुए, और समानता मात्र आकस्मिक है।

होज़्नी (Hrozny) के मतानुसार तो कई आद्य भारतीय देवता हिताइत देवशास्त्र से आये हैं, कुछ हुरी देवशास्त्र से और कुछबेबी लोनी देवशास्त्र से। यदि परस्पर संपर्क के ही कारण समानता है तो चूंकि कालक्रम का दृष्टि से मेसोपोटामिया के देवशास्त्र में ये देवता सिंधु सभ्यता के काल से पहले ही मिलने लगते हैं, अतः सिंधु सभ्यता ने इन्हें मेसोपोटामिया से ग्रहण किया होगा। यह भी हो सकता है कि किसी तीसरे स्रोत से दोनों क्षेत्रों की सभ्यताओं ने ये तत्व ग्रहण किये हों। यह भी संभव है कि सिंधु सभ्यता के कोई खास धार्मिक विश्वास समाज के किसी खास वर्ग में प्रचलित थे। हो सकता है कि आजकल के कुछ हिंदुओं की तरह उस काल में भी कुछ लोग किन्हीं खास धार्मिक विश्वासों को विशेष रूप से मानते हुए भी अन्य कई धार्मिक विश्वासों को भी अपने धर्म का ही अंग मानते थे। यह बात भी कुछ विचित्र है कि मातृदेवी की मिट्टी की तो अनेक मूर्तियां मिली हैं किंतु पत्थर में उसकी एक भी मूर्ति नहीं नहीं मिली, और न मुद्राओं पर ही उस रूप का अंकन है जिसे मृण्मूर्तियों में पाते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 12

आर्थिक जीवन

सिंधु सभ्यता के नगरों के मकानों के भग्नावशेषों से अनुमान लगाया जा सकता है कि अधिकांश लोगों का जीवन सामान्य रूप से समृद्ध था। सुख और समृद्धि के लिए लोगों ने विभिन्न साधनों का उपयोग किया था। वे कृषि करना जानते थे। कलात्मक वस्तुओं के प्रति उनकी अभिरुचि थी, उनकी कुछ वस्तुओं की विदेशों में भी खपत थी। विदेशों को किये गये निर्यात से प्राप्त आय से लोगों की खुशहाली में और भी वृद्धि हुई होगी। संभवतः तांबे के खान पर और सक्कर रोहरी के चर्ट भंडार पर सिंधु सभ्यता के लोगों ने अपना नियंत्रण रक्खा था ताकि उपकरण बनाने के लिए ये ताम्र और पाषाण वांछित मात्रा में और अबाध रूप से प्राप्त होते रहें।

सिंधु सभ्यता-काल में कौन-कौन से पशु पाले जाते थे, इसका पता हमें उस सभ्यता के संदर्भ में पाए जाने वाले पशुओं के अस्थि-अवशेषों, मृद्भाण्ड-चित्रणों, मुद्रा-अंकनों तथा खिलौनों से होता है। बकरी उसी नस्ल की थी जो आज काश्मीर में पाई जाती है और जो अपनी अच्छी ऊन के लिए सुविख्यात है। भेंड़ सियात्क प्रथम में प्राप्त भेड़ों की तरह की थीं। भेड़-बकरी का पालन मांस, दूध और ऊन के लिए होता रहा होगा। गाय-बैल की हड्डियां प्रभूत मात्रा में मिली हैं। गाय का दूध पीते रहे होंगे। त्स्वाइनर के लेनुसार कूबड़वाला बैल का विकास 'वास नोमेडिकस' से हुआ जो भारत में अभिनूतन (प्लीस्टोसीन) काल से पाया जाता है। ऐसा प्रायः माना जाता है कि इस पशु का सबसे पहले पालन दक्षिणी एशिया से प्रारंभ हुआ। यह एक विचारणीय प्रश्न है कि कहीं कूबड़ा बैल भी तो मध्य-पूर्व से नहीं लाया गया था। वैसे यह भी संभव है कि यह मूलतः सिंधु प्रदेश की नस्ल हो। बलूचिस्तान में रानाघुंडई के दूसरे काल में इस तरह के बैल की हड्डियां मिली हैं। तांबे और मिट्टी की बनी भैंसे की मूर्तियां पायी गायी हैं। भैंसे का उपयोग आज भी सामान ढोने, गाड़ी खींचने और हल चलाने में होता है। भैंस से दूध और घी की प्राप्ति होती रही होगी। सुअर पालतू भी था और वन्य भी। और इन दोनों तरह के सुअरों का मांस लोग खाते रहे होंगे। सुअर के बाल आज ब्रश बनाने में काम आते हैं। उस समय भी उनका कोई एसा ही उपयोग रहा था, यह निश्चित रूप से कहा नहीं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जा सकता । ऊँट का अंकन सिंधु सभ्यता की एक भी मुद्रा पर नहीं है, परंतु उसकी थोड़ी सी हड्डियां खोदाइयों में पायी गयी हैं। ये हड्डियां कूबड़ वाले ऊँट की हैं । इसका प्रयोग सवारी के लिए और माल ढोने के लिए होता रहा होगा। ऊँट की हड्डियों की अल्पता और मुद्राओं पर उसके चित्रण का अभाव इस बात के द्योतक हैं कि ये अधिक संख्या में नहीं रहे होंगे । फारसी मकरान के खुसरो की एक कब्र में प्राप्त एक तांबे की गैंती पर ऊँट का चित्रण मिला है जिसकी तिथि द्वितीय सहस्राब्दी ई. पू. आंकी गई है। हाथी वैभव और संपन्नता का प्रतीक माना जाता है । इस पशु का अंकन मुद्राओं पर हुआ है । सिंधु सभ्यता में आजकल भारत में प्राप्त दोनों ही नस्लों के हाथी उस समय होने के साक्ष्य मिले हैं। बारहसिंघा, सांभर, हरिण इत्यादि का उपयोग मांस तथा खाल के लिए रहा होगा। तांबे के बने मछली पकड़ने के कांटे उपलब्ध हुए हैं । मछली पकड़ना यहां के निवासियों का एक प्रमुख उद्योग रहा होगा खोदाई में मछली की हड्डियों के कई ढेर मिले हैं जिससे स्पष्ट है कि मछली भोजन का महत्त्व-पूर्ण अंग रही होगी । मछली के अतिरिक्त लोगों के भोजन में कछुए का मांस भी सम्मिलित रहा होगा । हड़प्पा, लोथल और मोहेंजोदड़ो इत्यादि सिंधु सभ्यता के स्थलों पर खोदाइयों से तरह-तरह के कछुओं की हड्डियां मिली हैं ।

मुद्राओं पर अंकित पशुओं में गैंडे का सर्वथम अंकन आमरी के मृत्पात्रों पर मिलता है। सिंधु संस्कृति की मुद्राओं पर इसका विशेष रूप से अंकन है । सिंधु नदी की घाटी में यह 18वीं शती तक पाया जाता रहा । ऐतिहासिक काल में इसके चर्म से ढाल बनायी जाती थी । वे लोग कुत्ता भी पालते थे। कुत्ते की कई नस्लें थीं जैसा कि इस पशु की मूर्तियों से स्पष्ट है। कुत्ते रखवाली के लिए और शायद शिकार में सहायता के लिए भी पाले जाते रहे होंगे । हड़प्पा से एक मूर्ति में कुत्ते को मुंह में एक खरगोश पकड़े हुए दिखाया गया है । सिंधु सभ्यता के लोगों को अश्व की जानकारी थी या नहीं इसके बारे में प्रारंभ से ही विद्वानों में मतभेद रहा है। रानाघुण्डई प्रथम से प्राप्त हुए दांतों की पहचान कुछ विद्वानों ने घोड़े के दांत से की है, किंतु त्स्वाइनर का मत है कि ये घोड़े के न होकर एक प्रकार के गधे के हैं। मोहेंजोदड़ो में ऊपर की सतह पर प्राप्त घोड़े की हड्डियों को कुछ विद्वान् सिंधु संस्कृतिकाल की, और कुछ परवर्ती काल की मानते हैं। मोहेंजोदड़ो से प्राप्त मिट्टी की बनी घोड़े जैसी एक आकृति के बारे में भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वह घोड़ा ही है, यद्यपि कुछ विद्वानों ने उसे घोड़ा ही माना है । लोथल से भी ऐसे तीन मृण्मय खिलौने मिले हैं जिन्हें कुछ विद्वान् घोड़े की अनुकृति मानते हैं । सुरकोटडा में भी सिंधु सभ्यता के अंतिम चरण में घोड़े की अस्थियां मिली हैं । इन साक्ष्यों से इस सभ्यता को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनार्य सिद्ध करने वाले प्रमुख तर्कों में से एक कम हो जाता है। हड़प्पा में गधे की हड्डियां मिली हैं। इस पशु का, प्रयोग बोझा ढोने और शायद रथ चलाने में होता रहा होगा। खच्चर के उपयोग के साक्ष्य नहीं मिलते।

बतख का चित्रण लोथल के बर्तनों पर बहुत मिलता है। मोर का चित्रण तो प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण सिंधु-संस्कृति के स्थलों से प्राप्त बर्तनों पर किया गया है। शायद बत्तख और मोर का भी मांस लोग खाते रहे होंगे। आज तो लोग आम तौर से मोर का मांस खाना अच्छा नहीं मानते, किंतु कम से कम अशोक के समय में (तृतीय शती ई. पू.) इसका मांस राजा की रसोई तक में बनता था। अतः आश्चर्य नहीं कि सिंधु सभ्यता-काल में इसका प्रयोग भोज्य सामग्री के रूप में होता रहा हो।

सिंध और पंजाब में प्रतिवर्ष नदियों द्वारा लाई उपजाऊ मिट्टी में कृषि कार्य अधिक श्रमसाध्य नहीं रहा होगा। इस नरम मिट्टी में कृषि के लिए शायद तांबे की पतली कुल्हाड़ियों को लकड़ी के हत्थे पर बांध कर तत्कालीन किसान भूमि खोदते रहे होंगे। चर्ट के फलकों को लकड़ी के हत्थे पर चिपक कर हँसिये की तरह उनका प्रयोग किया गया होगा। ऐसा भी सुझाव दिया गया है कि पत्थर की कुछ छुरियों का भी लकड़ी के हत्थे पर लगा कर भूमि खोदने के दिए उपयोग होता रहा हो। मोहेंजोदड़ो से पत्थर के तीन ऐसे उपकरण मिले हैं जिनके आकार-प्रकार और भारीपन से इनके शस्त्र के रूप में प्रयुक्त होने की संभावना कम लगती है। इन्हें कुछ लापरवाही के साथ वनाया गया है। 25.91 सेमी लम्बा, 8.13 सेमी से लेकर 10.92 सेमी तक चौड़ा और 5.33 सेमी मोटा है। दूसरा 25.15 सेमी लंबा, 7.62 सेमी से 10.52 सेमी चौड़ा और 3.55 सेमी मोटा है। तीसरा कुछ टूट गया है। ये पर्याप्त भारी हैं। ऐसा सुझाव दिया गया है कि ये हल के फाल थे। नदियों द्वारा लाई गई बिना कंकड़-पत्थर की मिट्टी वाली जमीन को जोतने के लिए इसका प्रयोग भलीभांति किया जा सकता था। हल लकड़ी के रहे होंगे जो अब नष्ट हो गये हैं। थोलल की एक पकाई मिट्टी की प्लेट पर बीज वपित्र का अंकन है जो राव के मतानुसार कृषि का महत्त्वपूर्ण उपकरण था। कालीवंगां में सिंधु संस्कृति से पूर्व की संस्कृति के संदर्भ में नगर की सुरक्षा दीवार के बाहर जुते हुए खेत के चिन्ह मिले।[1]

1. इस खेत में जो सीते थे वे पूर्व पश्चिम में 30 सेंटी मीटर की दूरी पर और उत्तर दक्षिण की दिशा में 190 सेंटी मीटर की दूरी पर। जुताई का यह तरीका आज भी कलीबंगां के आसपास के क्षेत्र में प्रचलित है, जिसमें एक ही खेत में दो तरह के अनाज वोए जाते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हड़प्पा सभ्यता में, जो उससे भी अधिक विकसित थी, निश्चय ही हल का प्रयोग होता रहा होगा। सिंचाई के लिए बांध और नहर थीं जो अब बाढ़ द्वारा लाई मिट्टी के नीचे दब गई हैं। नगर के आसपास की भूमि में इतना अनाज पैदा होता था कि वहाँ के लोग अपनी जरूरत के लिए अनाज रख लेने के बाद शेष अनाज इन नगरों के लोगों के लिए भेज सकते थे।

सिंधु जैसी समृद्ध सभ्यता के पर्याप्त जनसंख्या वाले महानगरों की स्थिति और विकास एक अत्यंत उपजाऊ प्रदेश की पृष्ठभूमि में ही संभव था। नागरिक सभ्यता के पनपने के लिए लोगों को धातु से विभिन्न प्रकार के उपकरण बनाने का ज्ञान अत्यन्त सहायक है। विभिन्न प्रकार की धातुओं और अन्य प्रकार के उपकरणों में दक्षता तभी प्राप्त हो सकती है जब कुछ लोग पेशे के तौर पर एकमात्र वही कार्य करें। और पेशेवर शिल्पी तभी हो सकते हैं जब किसान लोग अपने भरण-पोषण के पश्चात् इतना अतिरिक्त अन्न पैदा करें कि शिल्पियों का भी भरण-पोषण हो सके। सिंधु सभ्यता के विकसित तकनीक से बने विभिन्न उपकरणों से स्पष्ट है कि वे पेशेवर शिल्पियों की कृतियां हैं और उस समय के कृषक निश्चय ही पर्याप्त मात्रा में अतिरिक्त अन्न पैदा करते थे। सिंधु सभ्यता के लोग गेहूँ उपजाते थे जो रोटी बनाने के लिए उपयुक्त था। गेहूँ की दो प्रजातियां थीं—ट्रिटीकम कम्पेक्टम और स्फेरोकोकम। जौ की भी दो प्रजातियां, होरडियम वलौर और हैक्सास्टिकम उगाई जाती थीं। मेसोपोटामिया और मिस्र के साक्ष्य से स्पष्ट है कि वहां पर जौ की खेती सिंधु सभ्यता से पहले से होती थी। जिस जंगली जौ के प्रकार से यह खेती द्वारा उपजाया जौ प्राप्त हुआ है वह अब भी तुर्किस्तान, ईरान और उत्तरी अफगानिस्तान में मिलता है। वेविलोव (Vavilov) ने सुझाया है कि मानव द्वारा प्रयुक्त गेहूँ का मूल स्थान हिमालय के पश्चिमी छोर पर अफगानिस्तान में रहा होगा, जबकि कुछ विद्वान ज़गरोस (Zagros) पर्वत और कैस्पियन सागर के बीच वाले क्षेत्र को इसका मूल स्थल मानते हैं।

गेहूँ और जौ तो सिंधु सभ्यता के लोगों के मुख्य खाद्यान्न थे ही, वे खजूर, सरसों, तिल और मटर भी उगाते थे। सरसों तथा तिल की खेती मुख्य रूप से तेल के लिए करते रहे होंगे। वे राई भी उपजाते थे। हड़प्पा में तरबूज के बीज मिले। सेलखड़ी की बनी नीबू की पत्ती से स्पष्ट है कि वे लोग नीबू से परिचित थे। यहीं से एक चित्रित बर्तन की आकृति अनार की और दूसरे चित्रित बर्तन की नारियल की तरह है जो सिंधु सभ्यता के लोगों का इन दोनों फलों से परिचित होने की सूचक हैं। लोथल और रंगपुर से धान (चावल) की उपज के बारे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में महत्त्वपूर्ण जानकारी मिली है। वहां से प्राप्त मुद्रा-छापों के पीछे धान की भूसी लगी पायी गयी है। परीक्षण से पता चला है कि यह धान निम्न-कोटि का था। वैसे यह उल्लेखनीय है कि सिंधु सभ्यता के प्रमुख नगरों—यथा हड़प्पा तथा मोहेंजोदड़ो से धान की जानकारी होने का कोई साक्ष्य नहीं प्राप्त हुआ है। सौराष्ट्र में बाजरे की खेती होती थी। लोथल में बाजरे के दाने मिले हैं। वहां के लोग अनार के फल से भी परिचित थे।

राजकीय स्तर पर अनाज के संरक्षण के लिए हड़प्पा, मोहेंजोदड़ो और लोथल में विशाल अन्नागारों में अन्न का आगमन ओर निर्गमन शासन द्वारा नियंत्रित रहा होगा। इसके लिए शासन की ओर से उच्च पदाधिकारी, लिपिक, लेखाकार, मजदूर आदि नियुक्त रहे होंगे। कर के रूप में वसूल किया गया अनाज इन अन्नागारों में संग्रहीत होता रहा होगा और एक तरह से ये अन्नागार उस समय के सरकारी बैंक या खजाने का कार्य करते रहे होंगे। उस युग में सिक्कों के प्रचलन का कोई निश्चित साक्ष्य नहीं मिलता, कदाचित् अनाज के रूप में ही राजकर्मचारियों को वेतन भी दिया जाता रहा होगा। यही नहीं, अनाज विनियम का एक सबसे महत्त्वपूर्ण साधन भी रहा होगा। अन्नागारों का परिपूर्ण होना या खाली होना तत्कालीन शासक की समृद्धि अथवा विपन्नता का द्योतक रहा होगा। समकालीन दजला-फरात की घाटी में प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण नगरों में अन्नागार थे जिनमें से कुछ तो अत्यन्त विशाल थे[1]। इनमें से कुछ मंदिरों से संवद्ध थे और कुछ नहरों के किनारे स्थित थे। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि हड़प्पा के विशाल अन्नागार नदी-तट पर स्थित थे। मिस्र के प्राचीन लेखों में भी राजकीय अन्नागारों का और राजा के निंजी अन्नागारों का विशद उल्लेख है।[2]

---

1. उर के एक लेख में इस बात का उल्लेख है कि एक अन्नागार इतना बड़ा था कि उसमें 4020 दिवस की मजदूरी में देय अन्न संग्रहीत था। दूसरे लेख में अन्नागार के अधीक्षक का उल्लेख है जिसके अन्नागार में 10,930 दिवस की मजदूरी देने के लिए पर्याप्त अन्न संग्रह में था। एक तीसरे लेख में राजकीय अन्नागारों से उधार लिए अन्न को व्याज सहित लौटाने का उल्लेख है। इन उपर्युक्त लेखों की तिथि 2130-2000 ई० पू० के लगभग है और हड़प्पा सभ्यता के चरम विकास के समकालीन है। देखिए, व्हीलर **'इंडस सिविलिज़ेशन'** तृतीय संस्करण, पृ० 35।

2. यह उल्लेखनीय है कि हड़प्पा, मोहेंजोदड़ो और लोथल में जो अन्नागार मिले हैं जो निर्माण की दृष्टि से ऐतिहासिक काल से पूर्व अपनी सानी नहीं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हड़प्पा में अन्नागारों के समीप ही अनाज कूटने के लिए बने चबूतरे और मजदूरों (?) के निवास भी मिले हैं जो इस बात के द्योतक है कि शासन द्वारा अन्नागारों को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता था और उनमें कार्य करने वालों के निवास की व्यवस्था समीप ही की गयी थी। लोग अपने लिए बड़े-बड़े घड़ों में अनाजो संग्रह करके रखते थे। यह भी सभव है कि अनाज गड्ढों में भी रखा जाता हो। हड़प्पा में भूमिगत तीन बड़े बड़े बर्तन पाये गये जिनके किनारे पर ईंटों का चपटा घेरा था। शायद इनका उपयोग ऐसे ही काम के लिए होता था। अनाज और अन्य वस्तुओं को चूहों से बचाने के लिए लोगों ने चूहेदानियों का प्रयोग किया था। मिट्टी की बनी हुई चूहेदानियां उत्खनन से मिली हैं। हड़प्पा और मोहेंजोदड़ में आटा पीसने की चक्की नहीं मिलीं। यह अनुमान लगाया जा सकता है कि अनाज को ओखली में (राजकीय स्तर पर कई विशाल ओखलियों की व्यवस्था किये जाने के प्रमाण मिले हैं) कूट कर या सिल-बट्टे[1] (फ० XXI,2) द्वारा पीस कर आटा बनाया जाता था। सिल पर पीसने से आटे के साथ कुछ पत्थर के टुकड़े मिल जाते थे और इस तरह के आटे की रोटी खाने से दांतों पर दुष्प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। इस सिलसिले में यह उल्लेखनीय है कि उत्खनन से प्राप्त कुछ मानव दांतों के अत्यधिक घिसे होने के लिए मार्शल ने इस तरह के ही पत्थर मिश्रित आटे का निरतंर प्रयोग को कारण बताया है। लेकिन लोथल में एक वृत्ताकार चक्की के दो पाट मिले हैं। ऊपर वाले पाट में अनाज डालने के लिए छेद है। इस तरह की चक्की के प्रयोग से अनाज के महीन और शीघ्र पीसने में सिल पर पीसने की तुलना में काफी सहूलियत होती है। सांकलिया ने लोथल के इन चक्की के पाटों को सिंधु सभ्यता के काल के होने में संदेह व्यक्त किया

रखते, लेकिन इनके स्वामित्व, उपयोग आदि के बारे में कुछ भी लिखित सामग्री उपलब्ध नहीं है, केवल अनुमान से ही कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। दूसरी ओर मेसोपोटामिया और मिस्र में वहां के प्राचीन अन्नागारों के बारे में तत्कालीन लेखों में विस्तृत उल्लेख हैं, किन्तु अभी तक उत्खनन से भवनों से ऐसे अवशेष वहां नहीं मिले हैं जिन्हें उनकी विशिष्टता के कारण निश्चित रूप से अन्नागार के रूप में पहचाना जा सके।

1. सिंधु सभ्यता के प्रायः सभी स्थलों से सिल-बट्टे प्राप्त हुए हैं। कई सिल लंबे समय तक प्रयोग किये जाने के कारण काफी गहरे भी हो गये हैं। मोहेंजोदड़ो के सिल औसतन 53.34 सेमी लंबे और 22.86 सेमी चौड़े हैं। ये अधिकतर अलाबास्टर पत्थर के हैं लेकिन अन्य पत्थरों के बने सिल भी मिले हैं। बट्टे औसतन ग्यारह इंच लंबे और चार इंच व्यास वाले हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। उनका कहना है कि यह न केवल लोथल अपितु पूरी सिंधु सभ्यता में इस तरह का एकमात्र उदाहरण है; यदि लोग इस तरह की चक्की के प्रयोग से अवगत थे तो उन्होंने तकनीकी दृष्टि से अत्यधिक सुविधाजनक होने के कारण ऐसी चक्कियां विशाल संख्या में बनायी होतीं। साथ ही सिंधु सभ्यता के अन्य स्थलों से, विशेषतया लोथल की अपेक्षा कहीं अधिक विकसित एवं समृद्ध नगरों—हड़प्पा और मोहेंजोंदड़ो से भी, जिनसे लोथल का संपर्क था, इसके अवशेष मिलते। यह भी ध्यान देने योग्य है कि मध्य-भारत तथा महाराष्ट्र की ताम्राश्मयुगीन संस्कृतियों में भी इस तरह की चक्की के अवशेष नहीं मिलते। ईरान, ईराक और अनातोलियता में भी इतनी प्राचीन संस्कृतियों के संदर्भ में चक्की नहीं मिलती। सांकलिया का कहना है कि प्रकार-विज्ञान (Typology) से तो यह लोथल की चक्की ईसवी सन् की पहली शताब्दियों की कृति लगती है। यह उल्लेखनीय है कि लोथल का उदाहरण टीले की सतह पर मिला; उत्खनन के दौरान नहीं। यद्यपि लोथल में प्रारंभ से अंत तक सिंधु अथवा उपसिंधु सभ्यता के ही अवशेष मिले हैं तथापि यह असंभव नहीं कि प्रथम शती या उसके बाद यहां पर छोटी-मोटी बस्ती रही हो जिसके अवशेष बह गए लेकिन चक्की का पाट भारी होने से बचा रह गया हो।

कपास की खेती होती थी और वस्त्र-निर्माण एक महत्त्वपूर्ण व्यवसाय रहा होगा। मोहेंजोदड़ो से एक चांदी के बर्तन में भी कपड़े के अवशेष पाये गए हैं। यह मजीठ से लाल रंगा हुआ था। बाद में वहीं से दो उदाहरणों में ताँबे के उपकरणों को लपेटे सूत का कपड़ा और धागा मिला है। यह साधारण किस्म की कपास का बना है जो भारत में आज भी उगायी जाती है। कालीबंगां से एक बर्तन का टुकड़ा मिला है जिस पर सूती कपड़े के निशान हैं। यहीं एक उस्तरे पर भी कपास का वस्त्र लिपटा हुआ मिला। लोथल में मुद्राछापों के पृष्ठ भाग पर कपास के बने कपड़े के निशान हैं। लोथल और रंगपुर के आसपास का क्षेत्र कपास उपज़ाने के लिए बहुत ही उपयुक्त था। शायद कपास का क्षेत्र होने के कारण यहां पर सिंधु सभ्यता के लोगों को अपनी बस्ती बसाने की प्रेरणा मिली हो। आलमगीरपुर में एक मिट्टी की नांद पर बुने कपड़े के निशान हैं। मेसोपोटामिया के लगश के समीप स्थित उम्मा (Umma) से सिंधु सभ्यता की मुद्रा पर कपास से बना कपड़ा लगा था।

कताई-बुनाई के लिए प्रयुक्त किये जाने वाले तकुए छोटे-बड़े सभी तरह के घरों में पाये गये हैं। ये साधारणतया मिट्टी, कांचली मिट्टी, शंख, पेस्ट आदि के बने हैं जो इस बात के द्योतक हैं कि संपन्न और गरीब दोनों ही कताई बुनाई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करते थे। इनमें से कुछ पर दो और कुछ पर तीन छेद हैं। अधिकांश पर बारीक छेद हैं जो मैके के अनुसार इस बात के द्योतक हैं कि इन पर लगी डंडी लकड़ी की न होकर धातु की रही होगी। इनमें से अधिकांश काफी हल्के हैं जो इस बात के द्योतक है कि इन पर अपेक्षाकृत पतला सूत काता जाता था। कुछ चरखियां भी मिली हैं। सिंधु सभ्यता के मेसोपोटामिया के साथ व्यापार में, सूती वस्त्रों का महत्त्वपूर्ण भाग रहा होगा।[1] सूती वस्त्र कितनी मात्रा में निर्यात किये जाते थे इसका अनुमान लगाना कठिन है। समकालीन मेसोपोटामिया में अतसी (फ्लैक्स) का प्रयोग होता था। पुरोहित (?) की शिल्प-मूर्ति में शाल पर तिपतिया अलंकरण दिखाया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि वस्त्रों पर कढ़ाई भी होती रही होगी। स्वाभाविक है कि वस्त्र उद्योग एक महत्त्वपूर्ण उद्योग रहा होगा और कुछ लोग जुलाहे का काम पेशे के तौर पर करते होंगे। सिंधु सभ्यता से कपास की बनी वस्तुओं का निर्यात मेसोपोटामिया को होता था।

हड़प्पा संस्कृति में कला-कौशल का पर्याप्त विकास हुआ था। संभवतः ईटों का उद्योग भी राज-नियंत्रित था। सिंधु सभ्यता के किसी भी स्थल के उत्खनन में ईंट पकाने के भट्ठों के अवशेषों का न मिलना इस बात का द्योतक है कि धुएं के दुष्प्रभाव से बचने के हेतु भट्ठे नगर से बाहर लगाये गये थे। यह ध्यान देने योग्य है कि मोहेंजोदड़ो में अंतिम प्रकाल (जबकि नागरिक स्तर में अत्यधिक ह्रास हो चुका था) को छोड़ कर नगर के भीतर मृद्भाण्ड बनाने के भट्ठे तक नहीं मिलते। बर्तन बनाने वाले कुम्हारों का एक अलग वर्ग रहा होगा। अंतिम प्रकाल में तो इनका नगर में ही एक अलग मुहल्ला रहा होगा, ऐसा विद्वानों का अनुमान है। यहां के कुम्हारों ने कुछ विशेष आकार-प्रकार के बर्तनों का ही निर्माण किया, जो अन्य सभ्यता के बर्तनों से अलग पहचाने जाते हैं।

पत्थर, धातु और मिट्टी की मूर्तियों का निर्माण भी महत्त्वपूर्ण उद्योग रहे होंगे। मनके बनाने वालों की दूकानों और कारखानों के बारे में चन्हुदड़ो और लोथल के उत्खननों से जानकारी मिली है। मुद्राओं को तैयार करने वालों का एक विशेष वर्ग रहा होगा। कुछ लोग हाथीदांत का काम करते थे। हाथीदांत के प्राप्तिस्थलों में उस काल में गुजरात भी रहा होगा और हाथीदांत की वस्तुओं के निर्माण और व्यापार में लोथल का महत्त्वपूर्ण हाथ रहा होगा। सिंधु सभ्यता से कीमती पत्थरों के मनके और हाथीदांत की वस्तुएं पश्चिमी एशिया में निर्यात

---

1. इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि ऐतिहासिक काल में मेसोपोटामिया में कपास के लिए "सिंधु" शब्द का प्रयोग हुआ है जिसे ग्रीक भाषा में Sindon का रूप दिया गया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की जाती थीं। मछुओं की संख्या भी कम नहीं रही होगी। व्यापारी वर्ग संपन्न वर्ग रहा होगा। पुरोहितों, वैद्यों, ज्योतिषियों के भी वर्ग रहे होंगे और संभवतः उनका समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान रहा होगा।

सिंधु सभ्यता के हड़प्पा, मोहेंजोदड़ो, लोथल आदि नगरों की समृद्धि का मुख्य स्रोत व्यापार और वाणिज्य था जो भारत के अन्य क्षेत्रों तथा विदेशों से जल-स्थल दोनों मार्गों द्वारा हुआ करता था। निश्चय ही इतनी दूर के देशों से बड़े पैमाने पर इतर क्षेत्रों से व्यापार के लिए अच्छा व्यापारिक संगठन रहा होगा और व्यापार में पर्याप्त लाभ ही इस विदेशी व्यापार के लिए प्रेरणा-स्रोत रहा होगा। नगरों में कच्चा माल आस-पड़ौस तथा सुदूर स्थानों से उपलब्ध किया जाता था। किन-किन स्थानों से कच्चे माल का मोहेंजोदड़ो में आयात किया जाता था ऐसा अनुमान विद्वानों ने लगाया है। इसका संक्षिप्त उल्लेख निम्न है—

बिटूमिन (डामर)—मार्शल के अनुसार सिंधु के दाहिने तीर पर स्थित इसा खेल (Isa Khel) या बलूचिस्तान से, या फरात नदी के तीर पर स्थित (Hit) से विटूमिन लाया जाता रहा होगा।

अलाबास्टर—यह संभवतः बलूचिस्तान से प्राप्त किया जाता था।

सेलखड़ी—अधिकांश सेलखड़ी बलूचिस्तान और राजस्थान से लायी जाती थी। राव का कहना है कि भूरे (ग्रे) और कुछ पाण्डुता लिए प्रकार की सेलखड़ी शायद दक्कन से आती थी। लेकिन सांकलिया इसे सही नहीं मानते। वे इस बात की संभावना मानते हैं कि लोथल में सेलखड़ी उत्तरी गुजरात के देवनी मोरी या किसी अन्य स्थल से लायी गयी होगी।

चांदी—मुख्यतः अफगानिस्तान अथवा ईरान से आयातित होती थी। आभूषणों के अतिरिक्त इसके थोड़े से वर्तन भी मिले हैं। राव का कहना है कि यदि कोलार खदान से सोना निकालने वाले चांदी व सोना अलग कर सकते थे तो लोथल में, जहां पर चांदी का प्रयोग बहुत कम मिलता है (केवल एक चूड़ी और एक अन्य वस्तु जिसकी पहचान कठिन है, ही मिली है), चांदी कोलार की खान से आयी होगी। दूसरा संभावित स्रोत वे राजस्थान से उदयपुर के समीप जवारखान को मानते हैं।

सोना—जैसा इडविन पारको ने सुझाया है, सोना अधिकतर दक्षिण भारत से आयात किया गया। इसकी पुष्टि इस बात से होती है कि हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो से प्राप्त सोने में चांदी का मिश्रण है जो दक्षिण के कोलार की स्वर्ण-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खानों की विशेषता है। मास्की, पिक्लिहल, तेक्कल कोटा जैसे कोलार स्वर्ण-क्षेत्र के निकटवर्ती स्थलों में नवपाषाण युगीन संस्कृति के संदर्भ में सिंधु सभ्यता-प्रकार के सेलखड़ी के चक्राकार मनके मिले हैं और तेक्कल कोटा से तांबे की कुल्हाड़ी भी। इससे दक्षिणी क्षेत्र से सिंधु सभ्यता का संपर्क होना लगता है। यों ईरान और अफगानिस्तान से भी कुछ सोना आ सकता था और कुछ नदियों की बालू को छान कर प्राप्त किया जाता था। विभिन्न प्रकार के आभूषणों, मुख्यतः मनके और फीतों के निर्माण हेतु इसका प्रयोग किया जाता था।

तांबा—सिंधु घाटी और राजस्थान के हड़प्पा स्थलों में तांबा मुख्यतः राजस्थान के खेत्री क्षेत्र से आता रहा होगा। तांबे का प्रयोग अस्त्र-शस्त्र, दैनिक जीवन में उपयोग के उपकरण, बर्तन और आभूषण बनाने में होता था। रासायनिक विश्लेषणों से खेत्री के ताम्र अयस्क और हड़प्पा व मोहेंजोदड़ो के ताम्र उपकरणों में पर्याप्त समानता दृष्टिगोचर हुई। खेत्री के तांबे में आर्सेनिक और निकिल पर्याप्त मात्रा में मिलता है और हड़प्पा-मोहेंजोदड़ो के ताम्र उपकरणों के विश्लेषण से उनमें भी यही बात पायी गई। लोथल में प्राप्त तांबा ऐसे खान से आता था जिसमें आर्सेनिक नहीं है। राव का अनुमान है कि शायद दक्षिणी अरब के ओमन से लोथल में तांबा आयात किया जाता था। लोथल से प्राप्त तांबे की सिल का आकार और तौल सूसा में प्राप्त तांबे की सिलों के समान है। लेकिन सांकलिया का मत है कि संभवतः लोथल का तांबा, कम से कम उसका कुछ भाग, स्थानीय खान या खानों से प्राप्त हुआ होगा।

टीन—यह धातु शायद अफगानिस्तान या ईरान से आयातित होती थी। कुछ का कहना है कि हजारी बाग (बंगाल) से भी कुछ टीन आता होगा। लेकिन हजारीबाग से सीधा व्यापारिक मार्ग उस काल में था और वहां से पर्याप्त मात्रा में यह धातु प्राप्त हो सकती थी इस पर कुछ विद्वानों ने संदेह व्यक्त किया है। दूसरी ओर ईरान से तो सिंधु सभ्यता के लोगों का संपर्क था ही, अतः वहां से इसका आयातित होना अधिक आसान था। टिन का स्वतंत्र रूप से उपयोग न करके 6 से 13 प्रतिशत तक तांबे में मिलाकर कांसा बनाया जाता था। इस मिश्रित धातु से निर्मित उपकरण शुद्ध तांबे के बने उपकरणों से कहीं अधिक मजबूत हैं और उनकी धार भी अधिक प्रखर होती थी।

सोसा—ईरान, अफगानिस्तान और मुख्यतः राजस्थान (अजमेर) से लाया गया होगा। इसका प्रयोग बहुत कम था।

क्वार्इजट—खोरासान (उत्तर-पूर्वी फारस) या अफगानिस्तान से प्राप्त होता था। मोहेंजोदड़ो में इसकी थोड़ी-सी ही मुद्राएं मिली हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जेडाइट—पामीर या और पूर्वी तुर्किस्तान से आया होगा। यों तिब्बत और उत्तरी बर्मा में भी यह उपलब्ध है। इसके भी मनके मिले हैं जो अत्यल्प संख्या में हैं।

लाजवर्द—बदख्शां (अफगानिस्तान के उत्तरी क्षेत्र) से यह लाया गया होगा। इसका प्रयोग अत्यल्प मात्रा में हुआ है। लाजवर्द के बने मोहेंजोदड़ो से दो मनके और एक गोटी, हड़प्पा से तीन मनके और खचित करने के लिए प्रयुक्त एक टुकड़ा, चन्हुदड़ो से दो अधबने मनके और लोथल से दो मनके मिले हैं। लाजवर्द के मनके मेसोपोटामिया में पर्याप्त संख्या में मिले हैं, अतः यह अनुमान लगाना स्वाभाविक है कि सिंधु सभ्यता की लाजवर्द की वस्तुएं मेसोपोटामिया से आयी होंगी; किंतु चन्हुदड़ो के अधूरे बने मनके इस बात के द्योतक हैं कि इनका निर्माण वहीं पर हुआ था। यह भी उल्लेखनीय है कि नाल में सिंधु सभ्यता के विकसित चरण से पूर्व की तिथि वाले स्तर में लाजवर्द के मनकों से बनी कई लड़ियों के हार मिले हैं। यह लाजवर्द उत्तरी-पूर्वी अफगानिस्तान में स्थित बदख्शा से प्राप्त किया गया होगा।

लाल रंग—यों तो यह कच्छ और मध्य भारत में भी मिलता है, किंतु फारस की खाड़ी के द्वीप होरमुज में बहुत चमकदार लाल रंग मिलता है, अतः इसके वहीं से लाये जाने की अधिक संभावना है।

हीमाटाइट—यह राजपूताना से आता था।

शंख घोंघे—ये भारत के पश्चिमी समुद्रतट से और फारस की खाड़ी से प्राप्त किये जाते थे।

गोमेद **कार्नीलियन(तामड़ा)** **सुलेमानी (Onyx)** **कैल्सेडोनी** **स्फटिक**	ये राजपूताना, पंजाब, मध्य भारत और काठियावाड़ में मिलते हैं। काठियावाड़ में सिंधु सभ्यता के महत्त्वपूर्ण स्थल लोथल, रंगपुर आदि के होने से इस क्षेत्र से उनके आयात किये जाने की संभावना अधिक है।

स्लेटी पत्थर—यह राजस्थान से लाया गया होगा।

जैस्पर—अधिकांश विद्वानों के अनुसार इसका राजस्थान से आयात होता था। लेकिन राव का कहना है कि रंगपुर के समीप भादर नदी के तल में जैस्पर मिलता है।

संगमरमर—1950 में व्हीलर द्वारा की गई खुदाइयों में मोहेंजोदड़ो में संगमरमर के कुछ टुकड़े मिले जो किसी भवन में प्रयुक्त रहे होंगे। यह राजस्थान से लाया गया होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चर्ट—यह सक्कर-रोहरी से प्राप्त होता था ।

ब्लड स्टोन—यह राजस्थान से लाया गया होगा ।

फुक्साइट (Fuchsite)—मोहेंजोदड़ो से एक साढ़े चार इंच ऊँचा जेड की तरह के रंग का प्याला मिला है जिसके निर्माण-वस्तु की पहिचान फुक्साइट से की गई है । इसको मैसूर से प्राप्त किया गया होगा ।

जमुनिया—यह दक्कन की पहाड़ियों (ट्रैप) से लाया जाता रहा होगा ।

अमेजोनाइट—पहले यह धारणा थी कि संभवतः सिंधु सभ्यता के लोगों द्वारा यह पत्थर दक्षिणी नीलगिरि पहाड़ी या काश्मीर से प्राप्त किया गया होगा, लेकिन आज यह मान्य है कि वह अहमदाबाद के उत्तर में हीरापुर पठार से लाया गया होगा जो कि सौराष्ट्र के सिंधु सभ्यता के स्थलों के अत्यंत समीप है ।

देवदार
शिलाजीत | ये दोनों हिमालय से लाये जाते थे ।

'पुए' के आकार की तांबे की सिल—ये लोथल में मिली है । ये फारस की खाड़ी के द्वीपों से लायी जाती थी ।

सिंधु सभ्यता के नगरों का व्यापारिक संबंध मेसोपोटामिया तथा फारस की खाड़ी से होने के बारे में पर्याप्त पुरातात्विक साक्ष्य प्राप्त हैं । सबसे महत्त्वपूर्ण साक्ष्य सिंधु सभ्यता की वे मुद्राएँ हैं (देखिये अ० काल-निर्धारण) जो मेसोपोटामिया के विभिन्न नगरों से पायी गयी हैं । ये वस्तुतः व्यापार के माध्यम से वहां पहुंची थीं । कुछ विद्वानों का मत है कि मेसोपोटामिया में सिंधु सभ्यता के व्यापारियों की एक वस्ती थी ।[1] मेसोपोटामिया के लोग भी सिंधु सभ्यता के नगरों में आते थे इसकी जानकारी हमें उस शवाधान से होती है जिसमें शव को मेसोपोटामिया की परंपरा में सरकंडों से ढक कर लकड़ी के ताबूत में रख कर दफनाया गया था (देखिए अध्याय 'शव-विसर्जन') । लोथल में सेलखड़ी की वृत्ताकार बटन जैसी मुद्राएँ मिली हैं (फ० X 11, 5) । ऐसी ही मुद्राएँ बहरीन द्वीप और अन्य फारस की खाड़ी के स्थलों में विशेष रूप से मिली हैं (विस्तार के लिये देखिए अध्याय 'मुद्राएँ') । इसी तरह की कुछ मोहरें मेसोपोटामिया से भी मिली हैं । ऐसा लगता है कि बहरीन के व्यापारी भारत और मेसोपोटामिया के व्यापारियों के बीच बिचौलिया का काम करते थे और उन्हीं के

---

1. शि. रंगनाथ राव के अनुसार सिंधु सभ्यता के व्यापारियों की बस्तियां न केवल मेसोपोटामिया में अपितु बहरीन द्वीप और दियाला घाटी में भी थीं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माध्यम से ये मुद्राएँ लोथल पहुँची होंगी। इसके अतिरिक्त और भी कई वस्तुएँ पायी गयी हैं जो अपने निर्माण-क्षेत्र से दूर किसी दूसरे देश या क्षेत्र के अवशेषों के साथ मिली हैं, जिनका अन्यत्र उल्लेख किया गया है। उत्तरी सीरिया में रास शम्रा (Ras Shamra) की खोदाइयों से हाथीदांत की छड़ मिली हैं जिन्हें सिंधु सभ्यता का माना गया है सूसा (ईरान) से सिंधु सभ्यता निर्मित एक मुद्रा, एक घनाकार बाट हाथीदांत की एक गोटी व रेखांकित मनके मिले हैं। तांबे की सिल, बैल के आकार का तावीज, स्वस्तिक चिह्न अंकित मिट्टी के बर्तनों के ढक्कन लोथल तथा सूसा दोनों ही स्थलों में पाये गये हैं।

मेसोपोटामिया से प्राप्त एक प्राचीन लिखित साक्ष्य में मेलुह्ह, तिल्मुत (डिल्मुन) तथा मगन से मेसोपोटामिया में विभिन्न आयात की जाने वाली वस्तुओं की सूची दी हुई है। उसमें कुछ वस्तुएं ऐसी हैं जिन्हें सुलभता से निर्यात करने वाला सिंधु सभ्यता का कोई क्षेत्र ही हो सकता है। यह सही है कि तिल्मुन, मेलुह्ह और मगन की पहिचान के बारे में मतभेद हैं और विद्वानों ने अलग-अलग स्थलों से इनकी पहचान सुझाई है जिसका कुछ विस्तार से उल्लेख परिशिष्ट में किया गया है (परिशिष्ट)। लेकिन इससे प्रायः सभी सहमत हैं कि मेसोपोटामिया की वस्तुओं के निर्यात करने के स्रोत इन स्थलों में से कम से कम एक की पहचान सिंधु सभ्यता से करनी चाहिए और अन्य भी सिंधु और मेसोपोटामिया के बीच के ही किसी क्षेत्र के द्योतक हैं।

सुमेरी ताम्रपट्टिकाओं पर अंकित लेखों का साक्ष्य बताते हैं कि डिल्मुन से जहाज लगश के उर-नन्शे (2450 ई. पू.) के काल में काठलेकर और अक्कद के सारगान के काल (लगभग 2350 ई. पू.) में डिल्मुन मगन और मेलुह्ह से विभिन्न सामग्री लेकर जहाज राजधानी अगेड (बेबीलोन) में आते थे। 2100 ई. पू. के लगभग उर और मेलुह्ह के बीच सीधा संपर्क टूट चुका था तथापि तांबा, हाथीदांत, कीमती पत्थर और कुछ खास जानवर फिर भी वहां से लाये जा रहे थे। लेकिन पुनः लार्सा राजवंश (लगभग 1950 ई. पू.) के समय डिल्मुन से लौटे व्यापारियों ने निन्गल देवी को व्यापार के लिए लाई वस्तुओं-सोना, चांदी, तांबा, हाथीदांत की कंघी, उत्खचन, लाजवर्द, कीमती पत्थरों के मनके, लकड़ी और मोती-में से कुछ अंश चढ़ाए। ओपेनहाइम ने निष्कर्ष निकाला कि 2350 ई. पू. उर का मगन और मेलुह्ह के साथ सीधा संपर्क था लेकिन 2100 ई. पू. के लगभग मेलुह्ह और 1900 ई. पू में मगन के साथ उसका सीधा संपर्क टूट गया। इन संदर्भों से ऐसा लगता है कि उर की तरफ से डिल्मुन, मगन और मेलुह्ह एक दूसरे से अधिक दूरी पर स्थित थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपर्युक्त विवेचन के अंतर्गत उल्लिखित बलूचिस्तान, राजस्थान, गुजरात आदि क्षेत्र में सिंधु सभ्यता के कई स्थल मिले हैं और इसलिए वहां से विभिन्न प्रकार की निर्माण-वस्तुओं को प्राप्त करना कठिन नहीं रहा होगा। मध्य एशिया, फारस, अफगानिस्तान भी सिंधु सभ्यता के क्षेत्र के बहुत ही निकट स्थित थे। मेसोपोटामिया से संपर्क स्थल और जल दोनों ही मार्गों से रहा होगा। सिंधु सभ्यता के स्थल और मेसोपोटामिया के मध्य थल मार्ग होने वाले व्यापार में बलूचिस्तान और ईरान ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। सिंधु सभ्यता के स्थलों का मेसोपोटामिया की अपेक्षा मिस्र से कम संपर्क था। मिस्र के संपर्क में लोथल की ही विशेष भूमिका रही। रंगनाथ राव ने लोथल से प्राप्त एक मृण्मूर्ति को गुरिल्ला की आकृति पहचाना है। पूर्वी अफ्रीका के क्षेत्र से संपर्क के फलस्वरूप इस पशु की आकृति बनाने की प्रेरणा मिली होगी। 'ममी' का माडल बनाने का प्रेरणा-स्रोत भी मिस्र ही रहा होगा। राव का कथन है कि लोथल की समुद्र-देवी का नाम सिकोतरी माता है जो पूर्वी अफ्रीका के समुद्र तट के द्वीप सकोतरो (Sakotaro) के नाम पर आधारित लगता है। पूर्वी अफ्रीका के समुद्रतट के स्थलों में कीमती पत्थरों के भारतीय मनके मिले हैं।

भारतीय और भारतेतर प्रदेशों में व्यापार के कारण एक सुसंगठित व्यापारी वर्ग का उदय हो गया होगा। ऐसा लगता है कि ये व्यापारी अपने माल को पैक कर बंडलों पर अपनी मुद्रा अंकित कर देते थे जिससे यह पहचान हो सके कि माल किसने भेजा। मुद्रा-छाप का बंडल पर लगे रहना इस बात का भी द्योतक होता है कि वह बंडल पहले किसी ने खोला नहीं है। यह भी हो सकता है कि राजकीय अधिकारी अथवा व्यापारिक संगठनों के कर्मचारी माल का निरीक्षण कर उस पर मुद्रा लगाते थे। ऐसी स्थिति में बंडल पर मुद्रा का लगा होना इस बात का भी द्योतक रहा होगा कि माल निर्धारित कोटि का है। लोथल के अन्नागार या भांडागार में लगभग सत्तर मुद्रा-छापें मिलीं जिनके पीछे चटाई जैसे कपड़े के और बटी रस्सी के निशान मिले हैं। स्पष्ट है कि वस्तुओं के बंडलों को कपड़े या टाट जैसी वस्तु में रख कर और रस्सी से बांध कर रस्सी की गांठ पर मोहर लगाई गई थी। इसी जगह कुछ मिट्टी के लोंदे पर कई मुद्रा-छापें हैं, जिससे लगता है कि कई व्यापारियों का साझा व्यापार भी चलता था और किसी साझे लेन-देन के सिलसिले में उन सभी ने अपनी-अपनी मुहर लगाई थी। अनेक मुद्राओं पर एक ही प्रकार के लेख अभिप्राय हैं जो किसी व्यापारी विशेष या राजकर्मचारी के लगते हैं।

व्यापारियों के कारवां व्यापार के सिलसिले में तत्कालीन व्यापारिक पथों पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आते-जाते रहे होंगे। उनके इन मार्गों पर रुकने के लिए सराय इत्यादि की व्यवस्था रही होगी, और इस संदर्भ में पिगट अमीलानो नामक स्थल को ऐसे ही एक व्यापारिक मार्ग पर स्थित एक सराय होने का उल्लेख करते हैं। व्यापार में सामान की ढुलाई के लिए ऊंट का प्रयोग होता रहा होगा। बैल और भैंसे पर भी सामान लाद कर ले जाया जाता होगा। यदि घोड़े से विकसित सिंधु सभ्यता के लोग परिचित थे तो उनका भी, विशेषतः पहाड़ी क्षेत्र में, इस संदर्भ में उपयोग होता रहा होगा। और आजकल के रिवाज को देखते हुए यह भी कहा जा सकता है कि पहाड़ी क्षेत्र में बकरियों का भी प्रयोग इस काम में हो सकता था। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि पिगट के अनुसार सिंधु नदी द्वारा निरंतर अपना मार्ग बदलते रहने के कारण उसका मुहाना, जहां दलदल बढ़ जाता था, समुद्री व्यापार के लिए अधिक उपयुक्त न था और मेसोपोटामिया के साथ थल मार्ग से होने वाले व्यापार में कुल्ली के व्यापारियों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की होगी।

भारी किंतु धीमे यातायात के लिए बैलगाड़ी निश्चित रूप से प्रयुक्त होती थी। इनके चक्के ठोस होते थे और वे आकार-प्रकार में, जैसा कि बैलगाड़ी के मिट्टी के माडलों से अनुमान लगाया जा सकता है, सिंधु क्षेत्र में आजकल प्रयुक्त की जा रही बैलगाड़ियों से अधिक भिन्न नहीं थीं। खोदाई के दौरान पहियों के जो निशान प्राप्त हुए हैं उनमें दो पहियों के बीच की दूरी एक मीटर से थोड़ी अधिक है। यही दूरी इस क्षेत्र में आजकल प्रयुक्त बैलगाड़ियों में भी समान्यतया पायी जाती है। मोहेंजोदड़ो के साक्ष्य दो-पहियों वालीं गाड़ी के ही अधिक हैं। कांसे की भी दो पहियों वाली खिलौना-गाड़ियां मिली हैं। चन्हुदड़ो से जो मिट्टी की खिलौना गाड़ियां मिली हैं वे चार पहिये वाली गाड़ी की नकल लगती हैं, जिनमें आगे के पहिए पीछे के पहियों से कुछ बड़े हैं। कुछ खिलौना-गाड़ियां कांसे तथा तांबे की बनी भी मिली हैं। हड़प्पा और चन्हुदड़ो की ये खिलौना गाड़ियां सुंदर ढंग से बनी है। इनके ऊपर चंदोवा भी है। आज की इक्का-गाड़ियों से इनकी सहज तुलना की जा सकती है। इनका प्रयोग लोगों के आने-जाने के लिए और सामान ढोने के लिए किया जाता रहा होगा। लोथल में कुछ मिट्टी की खिलौना-गाड़ियां तो मिली ही हैं, अलाबास्टर का एक पहिया भी मिला है। एक मृद्भाण्ड के टुकड़े पर एक व्यक्ति को दो पहियों पर खड़ा दिखाया है जो असीरिया के मृद्भाण्डों पर चित्रित रथ हांकने की आकृति से मिलता-जुलता है। राव का मत है कि लोथल के वे लोग घोड़ों द्वारा खींचे जाने वाले रथों से भी परिचित थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उस काल में जल मार्ग से भी पर्याप्त मात्रा में व्यापार होता था। किसी नाव के अवशेष नहीं मिले। लकड़ी की बनी होने के कारण नावें इतने समय तक सुरक्षित नहीं रह सकती थीं। अतः इनकी प्राप्ति की संभावना कम ही थी। लेकिन नाव के चित्रण मिले हैं। नाव का एक चित्रण मोहेंजोदड़ो से लापरवाही से निर्मित एक बर्तन (आ० 10, 1) पर मिला है जिसमें ऊँचा पौताग्र और पौतपार्श्व, मस्तूल, लपेटी हुई पाल और एक लंबी संचालन-पतवार दिखायी गयी है। दूसरा चित्रण मोहेंजोदड़ो की ही एक मुद्रा (आ० 10,1) पर है जो अपेक्षाकृत सावधानी से बना है। इसमें भी नाव का ऊँचा पोताग्र और पोत-पार्श्व दिखाए गए हैं। डेल्स को मोहेंजोदडो की एक मुद्रा पर नाव का चित्रण पक्षियों तथा जल जीवों के साथ। नाव के बीच घर जैसा बना है (आ० 10,3)। ये नाव के चित्रण इस बात के द्योतक हैं कि सिंधु सभ्यता की नावें प्राचीन क्रीट और मेसोपोटामिया की नावों से बहुत कुछ मिलती जुलती थीं और यद्यापि उनका उपयोग अधिकतर नदियों में ही रहा होगा, तथापि समुद्र में भी उनका उपयोग हो सकता था। आज भी अरब लोग छोटी-छोटी नौकाओं को भी समुद्र में चलाते हैं। लोथल से नावों के पांच माडल मिले हैं। इनमें कुछ पर पाल दिखाये गये हैं और कुछ पर नहीं। इनमें से केवल एक ही ऐसा है जो समूचा बचा है, बाकी टूटे हैं। इसकी 'कील' सुस्पष्ट और नुकीली है। पोताग्र नुकीला और पृष्ठभाग ऊँचा व चपटा है। नाव में तीन छेद हैं। एक पृष्ठभाग के पास मस्तूल स्थापित करने के लिए, दूसरा पोताग्र (प्रो) के सामने वाला रस्सी के लिए और तीसरे में एक खंभा है जो पतवार को सहारा दिये था। लोथल से प्राप्त मृद्भाण्ड के टुकड़े पर भी नाव के चित्रण मिले हैं। मैके ने (फ.ए.पृ. 647) आधुनिक युग के साक्ष्य के आधार पर सिंधु सभ्यता के व्यापारियों द्वारा दजला-फरात तक पहुँचने के बारे में निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले हैं। कराची के बन्दरगाह से बसरा की समुद्रयात्रा में लगभग 1400 मील की की दूरी है। प्राचीन काल में दजला और फरात तथा सिंध नदियों के मुहाने आज की अपेक्षा समुद्र तट से काफी अंदर थे और इसलिए यात्रा कुछ और अधिक मील दूर की रही होगी। फिर सिंधु सभ्यता के काल में नावें समुद्र तट के निकट चलती रही होंगी जिससे यात्रा की दूरी और बढ़ जाती होगी। आजकल की बड़ी नावों (लगभग 60 टन वाली) को बसरा से कराची आने में करीब दो मास लगते हैं और ये साल के हर मौसम में यात्रा कर सकती हैं, किंतु छोटी (लगभग 5 टन वाली) नावें केवल दिसंबर, जनवरी और फरवरी में ही चल पाती हैं। मैके का अनुमान है कि सिंधु सभ्यता के काल में भी काफी बड़ी नावें, जो वर्षभर यात्रा के उपयुक्त थीं, प्रयुक्त होती रही होंगी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जब तक सिंधु सभ्यता के हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो ही प्रमुख नगर ज्ञात थे, लोगों का यही मत था कि मेसोपोटामिया और सिंधु सभ्यता के मध्य व्यापारिक तथा सांस्कृतिक आदान-प्रदान में इन्हीं दो नगरों का योगदान रहा होगा। इन दो नगरों की विशालता एवं संपन्नता तो अभी भी सिंधु सभ्यता के स्थलों में अप्रतिम है, और इन्हें तो व्यापारिक एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान का श्रेय देना ही होगा, लेकिन कुछ श्रेय हमको स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद ज्ञात और उत्खनित स्थलों को भी देना होगा। इस सिलसिले में लोथल का अपना विशिष्ट महत्त्व है। यहां पर उत्खनन एक विशाल, लगभग आयताकार, पकाई ईटों का घेरा मिला है (जिसका वर्णन हमने विस्तार से परिशिष्ट में किया है)। रंगनाथ राव ने इसकी पहिचान गोदी बाड़ा (फ० VI, 2) से की है और यह मत व्यक्त किया है कि लोथल पहले भोगावा और साबरमती नदियों के संगम पर था और ज्वार के समय गोदी में जहाज आते-जाते थे। यद्यपि कुछ लोगों ने इसे गोदी स्वीकारने में हिचकिचाहट और कुछ ने असहमति भी व्यक्त की है, तथापि अधिकांश पुरातत्ववेत्ता अपनी कृतियों में इसका उल्लेख गोदी के रूप में किया हैं।

समुद्री व्यापार के सिलसिले में सिंधु सभ्यता के वासियों ने समुद्र तट पर कई व्यापारिक केन्द्र (स्टेशन) स्थापित किये थे जहां पर वे सामान की अदला-बदली कर सकते थे। रात का पड़ाव डाल सकते थे, और आवश्यक खाद्य-सामग्री प्राप्त कर सकते थे। संभवतः सौराष्ट्र के तट और उसके समीप किम नदी के तट वर भगत्राव, नर्मदा तट पर मेधम, हिरण्य नदी के तट पर प्रभास, साबरमती पर लोथल, और मकरान के तटपर सुत्कजेन्डोर, सोत्काकोह इत्यादि समुद्रतटीय व्यापारिक पड़ाव थे। उस काल में समुद्रयात्रा बड़ा जोखिम का कार्य था और ये लोग निश्चय ही सामुद्रिक हवाओं और अन्य समस्याओं के बारे में पर्याप्ति जानकारी प्राप्त कर चुके थे।

विदेशी व्यापार में कौन सी वस्तुएं आयात निर्यात की जाती थीं, इसका ठीक ठीक अनुमान लगाना आसान नहीं। यह कहना कठिन है कि सिंधु सभ्यता काल में भी भारत से मसाले और मिर्च का निर्यात होता था, जैसा कि ऐतिसिक काल में होता रहा। क्या धूप भी उस समय भारत से निर्यातित होती थी इसका निश्चित उत्तर देना कठिन है। पिगट का कहना है कि शायद दासों का व्यापार भी होता रहा हो। वे मोहेंजोदड़ों में प्राप्त नर्तकी की विख्यात कांस्य-मूर्ति के संबंध में यह धारणा व्यक्त करते हैं कि मोहेंजोदड़ो के व्यापारी व्यापारिक यात्रा के दौरान बलूस्तान से किसी नर्तकी को अपने साथ ले आये थे और उसकी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आकृति से प्रेरणा लेकर मोहेंजोदड़ो के किसी कलाकार ने नर्तकी की यह मूर्ति बनाई होगी।

सिंधु सभ्यता के विभिन्न स्थलों से जो निर्मित वस्तुएं पाई गई हैं उनमें बहुत कुछ समरूपता है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि आर्थिक क्षेत्र में भी सुसंगठित शासनतंत्र का कड़ा नियंत्रण था। किंतु मात्र शासकीय नियंत्रण से ही ऐसी समरूपता आना संभव नहीं लगता, जैसा कि पिगट ने लिखा है। इसके साथ ही कोई वाणिज्यिक संहिता और वस्तुओं के मानकीकरण की कोई व्यवस्था भी रही होगी जिनके द्वारा इंटों के आकार, बर्तनों के आकार-प्रकार, बाट-बट-खरों की तौल का निर्धारण और उन पर नियंत्रण रखा जाता रहा होगा। शायद वणिकों के अपने संगठन थे, वैसे ही जैसे कि ऐतिहासिक काछ में श्रेणी और निगम थे, और वस्तुओं के निर्माण और व्यापार में इन आर्थिक संगठनों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा होगा। सड़कों को सीधा बनाये रखना इस बात का द्योतक है कि भूमि पीढ़ी दर पीढ़ी एक ही परिवार में रहती थी।

हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो दोनों ही स्थलों पर श्रमिकों (दासों ?) के लिए निर्मित आवास महत्वपूर्ण हैं। भारत ही नहीं अपितु एशिया के देशों में एक तरह के व्यवसाय-उद्योग वाले लोग एक क्षेत्र में ही साधारणतः रहते हैं, और यह आर्थिक जीवन का एक सुविदित पक्ष है। किंतु सिंधु सभ्यता के संदर्भ में महत्वपूर्ण बात यह है कि एक ही प्रकार के कार्य करने वाले श्रमिकों के एक साथ रहने के लिए एक ही प्रकार के आवास के निर्माण की योजना स्वयं शासन द्वारा तैयार और क्रियान्वित की गई लगती है। इस बात की संभावना कम है कि ये मकान किसी आर्थिक संगठन द्वारा निर्मित किये थे, यद्यपि ऐसा असंभव नहीं है। पिगट तो पश्चिमी एशिया में इन्हें अपने ढंग का सर्वप्रथम सुसंगठित उद्योग का उदाहरण मानते हैं।

मापदण्ड (स्केल)

मोहेंजोदड़ो से जो मापदण्ड मिला था वह सीप का है। यह खण्डित है। मैके द्वारा उसका विवरण प्रस्तुत किया गया है जो संक्षेप में इस प्रकार है। यह 16.55 सेमी लंबा, 1.55 सेमी चौड़ा और ·675 सेमी मोटा और है और इसके केवल एक ही तरफ निशान अंकित है। इस पर बराबर बराबर दूरी पर नौ निशान बने हैं किन्हीं दो निशानों के बीच की दूरी 0·66 सेमी है, (जब यह मापदण्ड साबूत रहा होगा तब वह कितने भागों में विभाजित रहा होगा, यह कहना कठिन है) और पांच ऐसी इकाइयों को दूसरे प्रकार की विभाजक रेखाओं से अलग किया गया है जिसकी माप 3.3 सेमी है। इसके दशमवलव प्रणाली के 33 सेमी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मापदण्ड (स्केल) का खण्डित भाग ह, की संभावना लगती हैं। इस तरह क, पैमाना मिस्र, एशियामाइनर, यूनान, सीरिया इत्यादि की प्राचीन संक्रुतियों में भ, प्रचलन में था। जैसे मैके का कहना है, पैमाने के लिए सीप का प्रयोग इसलिए विशेष उपयुक्त है कि इसमें सिलवटें (Warp) अथवा दरारें पड़ने की संभावना नहीं रहती और साथ ही तापमान के परिवर्तन का भी इस पर खास प्रभाव नहीं पड़ता। हां सीप के पैमाने बहुत बड़े आकार के नहीं बन सकते। विभिन्न टुकड़ों को धातु से जोड़ कर लंबा पैमाना बनाया तो जा सकता है पर यह श्रमसाध्य है और इस बात की संभवना ही अधिक है कि बड़े पैमाने कांसे या तांबे के बने थे। भाग्यवश हड़प्पा से इस तरह के पैमाने का साक्ष्य मिला है। निम्नलिखित विवरण मुख्यातः माधोस्वरूप वत्स के विवरण पर आधारित है 3.75 सेमी लंबा है, इस पर 0.93 सेमी की विभाजन रेखाएं खिंची हैं जो शायद 51.55 सेमी के हस्त-परिमाण पर आधारित लगती हैं। इन दो पैमानों का 150 उत्खात भवनों के उदाहरणों पर प्रयोग किया गया और यह पता चला कि दो तरह के नाप के पैमाने थे—एक हस्त-मापदण्ड जिसको लंबाई 50.75 सेमी से 52 सेमी तक होती थी औरदूसरा 'फुट' की तरह का पैमाना जो 32.5 सेमी से 33 सेमी तक का होता था। साधारणतः भवनों की माप इन्हीं गुणांक में पाई गई।[1]

लोथल से एक हाथी-दांत का पैमाना मिला है (फ० XXII, 4)। राव का कहना है कि इस पैमाने पर अंकित विभाजन की इकाइयां मोहेंजोदड़ो के पैमाने पर अंकित इकाइयों से छोटी हैं। और यह पैमाना मोहेंजोदड़ो के पैमाने से अधिक सही है। इसकी चौड़ाई पंद्रह मिलीमीटर और मोटाई छह मिलीमीटर है। इसका कुछ भाग टूट गया है, जो बचा हुआ भाग मिला है उसकी लंबाई मिलीमीटर 128 मिलीमीटर है। इस पर 46 मिलीमीटर की लंबाई में 27 विभाजक रेखाएं ही बची हैं। दो रेखाओं के बीच की दूरी 1.7 मिलीमीटर है। कालीबंगां से भी एक पैमाना मिला है पर अभी उसके बारे में विस्तृत विवरण प्रकाशित नहीं हुआ है।

बाट-बटखरे

शायद ही विश्व की किसी प्राचीन सभ्यता के उत्खनन से इतने बाट मिले

---

1. उदाहरणार्थ मोहेंजोदड़ो का विशाल स्नानागार 32.75सेमी पैमाने की इकाई से 36 × 21 था और हड़प्पा में अन्न कूटने के लिए निर्मित वृत्ताकार चबूतरों का व्यास 33 सेमी पैमाने की इकाई से 10 इकाई था। फ्लिंडर्स पीट्री ने अपने गहन अनुभव के आधार पर यह बताया कि एशिया में भी प्राचीन काल में 33 सेमी का माप ही अधिकांशतः प्रयुक्त होता था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हों जितने कि सिंधु सभ्यता में मिले हैं। कई स्थानों से विशाल संख्या में बाट मिले हैं ऐसा नहीं कि ये नगर के कुछ ही स्थानों में ही (जिन्हें व्यापारिक केन्द्र या कारखाने-फैक्टरी का स्थल माना जा सकता है) काफी संख्या में मिले हों; ये नगर के विभिन्न क्षेत्रों में कहीं कम कहीं अधिक संख्या में मिले हैं। ये छोटे और बड़े (फ० XXII 2) दोनों ही तरह के घरों में पाये गये हैं। इससे यह अनुमान लगाया गया है कि गृहणियां इन्हें अपने घरों में रखती थीं और इनसे इसकी जांच किया करती थीं कि बाजार में बनिये ने सामान ठीक तौला है या नहीं। इनका उपयोग घर की पुरानी टूटी-फूटी चीजों को कबाड़ी के हाथ बेचने में भी होता रहा होगा। सिंधु सभ्यता में मोहेंजोदड़ो जैसे समृद्ध नगरों में आबादी का एक बड़ा भाग व्यापारियों का था जो दूकानों में तो बाट रखते ही रहे होंगे, घरों में भी, जिनका गोदाम की तरह भी उपयोग हो सकता था, वे कुछ बाट रखते रहे होंगे।

क्रय-विक्रय नें नाप तौल में एकरूपता रहे इसका सिंधु सभ्यता के लोगों ने पूरा प्रयास किया था, और इसमें उन्हें पर्याप्त सफलता मिली थी। हड़प्पा, मोहेंजोदड़ो, चन्हुदड़ो और अन्य सिंधु सभ्यता के स्थलों से संस्कृति के विभिन्न चरणों में प्राप्त बाट लगभग एक ही तौल-प्रणाली पर आधारित थे। ये बाट कई प्रकार के पत्थरों के बने हैं, किंतु भूरे चर्ट पत्थर के बाट सबसे अधिक संख्या में मिले हैं। अन्य पत्थरों में चूना-पत्थर, सेलखड़ी, स्लेट पत्थर, कैल्सोडोनी इत्यादि उल्लेखनीय हैं। इनके बनाने के लिए काफी कठोर पत्थर का चुनाव करना और इनके निर्माण में अत्यंत सावधानी व सतर्कता बरतना इस बात का द्योतक है कि इनके निर्माण में शासकीय नियंत्रण था। नीचे मैके के वर्गीकरण के आधार पर बाटों का विवरण दिया गया है :—

1. घनाकार—ये सर्वाधिक संख्या में मिले हैं (फ० XXII, 2)। अधिकांशतः इनके छहों फलक लगभग बराबर हैं। मोहेंजोदड़ो में प्राप्त इस तरह का सबसे छोटे बाट का आकार 0.75 × 0.75 × 6.25 सेमी और सबसे बड़े का 17 × 15 × 9.5 सेमी है। ये चर्ट पत्थर के बने हैं जिनमें से कुछ पर धारियां हैं। उनको पहले छील-तराश कर समतल बनाया गया है और बाद में पालिश कर दी गयी है।

2. ऊपर और नीचे की ओर चपटे वर्तुलाकार बाट—ऐसे बाटों की संख्या अधिक नहीं है। ये कैल्सोडोनी, चूना-पत्थर, चकमक, गोमेद आदि पत्थरों के हैं। मोहेंजोदड़ो में इस प्रकार के बाट केवल छह मिले हैं। ये छोटे बड़े आकार के हैं। उपलब्ध बाटों में से अधिकांश भलीभांति बनाये गये हैं। इनकी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संख्या कम होने से ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि इन्हें किसी खास उद्देश्य से बनाया गया था। मिस्र और मेसोपोटामिया में इस तरह के बाट नहीं मिलते।

3. ऊपर और नीचे की ओर चपटे बेलनाकार बाट—मोहेंजोदड़ो में इस तरह के बाट के मात्र दो उदाहरण हैं। इनकी ऊँचाई 3.5 सेमी और व्यास 4.5 सेमी है।

4. छेद-वाले शंक्वाकार बाट—मोहेंजोदड़ो में इस तरह के बाटों के चार उदाहरण मिले हैं। ये ऊपर की ओर शंक्वाकार हैं। ये भलीभाँति तराश कर बनाये गये हैं। इनमें से एक 10.262 किलोग्राम वजन का है। यह 24.75 सेमी ऊँचा है और इसके चपटे पेंदे का व्यास 13.75 इंच है। भारी होने के कारण प्रयोग करने और प्रयोग के बाद हटाने में इसे घसीट कर ले जाया जाता था, जिससे इस पर टूटने-फूटने के चिह्न हैं। इस तरह के बाट भारतेतर सभ्यताओं में नहीं मिलते। हड़प्पा में भी इस तरह के बाट मिले हैं और इस तरह का एक बाट नाल (बलूचिस्तान) में भी मिला है।

5. ढोलाकार—मोहेंजोदड़ो में पहले (मार्शल के निदेशन में किये उत्खनन में) इस तरह के आठ उदाहरण और बाद में (मैके के निदेशन में) तीन मिले। हड़प्पा में ऐसे बाट अपेक्षाकृत अधिक संख्या में पाये गये हैं। मोहेंजोदड़ो के बाट एक किलो से कम वजन के हैं। मिस्र और मेसोपोटामिया की समकालीन और पूर्ववर्ती संस्कृतियों के लोग ऐसे बाटों का प्रयोग करते थे। मैके ने सुझाया है कि मोहेंजोदड़ो में शायद इस तरह के बाट किसी ऐसे समुद्रतटीय स्थल से, जिसका सुमेर और एलम से संपर्क था, लाये गये होंगे, क्योंकि सुमेर और एलम में इस तरह के बाट बहुत लोकप्रिय थे।

इसके अतिरिक्त कुछ पत्थर की शंक्वाकार वस्तुएँ भी मैके के अनुसार बाट हो सकते हैं। ये अपेक्षाकृत बहुत कम (कुछ ग्राम) ही वजन के हैं। मोहेंजोदड़ो से प्राप्त चूना-पत्थर की चपटे पेंदे वाली एक वस्तु मिली है, यह 21.25 सेमी ऊँचाई, 2.62 सेमी व्यास और 26.5 ग्राम वजन वाली है। मैके इसके भी बाट होने की संभावना मानते हैं। निर्धन लोग कदाचित् बिना तराशे पत्थर की गिट्टियों का ही बाट के तौर पर प्रयोग करते रहे होंगे।

इन बाटों का क्रम-विन्यास विश्व की अन्य प्रचलित तौल प्रणालियों से भिन्न और विशिष्टता लिए है, और इसे यत्नपूर्वक हड़प्पा सभ्यता के विभिन्न स्थलों पर लागू किया गया था। विभिन्न बाटों की तौल का अनुपात इस तरह है :—1, 2, 8/3, 4, 8, 16, 32, 64, 160, 200, 320, 640। इससे यह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निर्धारित किया जा सकता है कि इकाई 16 के अनुपात में थी, जो वजन में 13.625 ग्राम थी। छोटे तौल वाले माप में द्वयांगी (दून-प्रणाली) और बड़े तौल वाले दशमलव प्रणाली पर आधारित थे। प्रभाजित तौल में तिहाई की तौल के बांट भी थे। पिगट ने 16 के गुणक की तौल के आधार को इसलिए भी विशिष्ट बताया है कि आधुनिक काल में भी (मीट्रिक प्रणाली के प्रचलन से पूर्व) रुपये में सोलह आने होते हैं। किंतु तौल के संदर्भ में (मीट्रिक प्रणाली से पूर्व) भारत में प्रचलित सोलह छटांक का एक सेर का उदाहरण देना अधिक उपयुक्त होगा। मोहेंजोदड़ो से सात ऐसे बाट मिले हैं जो उपर्युक्त तौल प्रणाली में ठीक नहीं बैठते और किसी दूसरी तौल प्रणाली पर आधारित थे। रंगनाथ राव का कहना है कि लोथल के विकसित प्रकाल में जब उसका बेबीलोन के साथ व्यापार चरम विकास पर था, लोथल के व्यापारियों ने सामान्य सिंधु प्रकार के बाटों के अतिरिक्त बेबीलोन के तौल पर बाट भी बनवा कर प्रयोग किये।

छोटे तौल के बाटों का प्रयोग गहने और मनके बनाने वाले करते रहे होंगे। चन्हुदड़ो के मनके बनाने वाले की दूकान पर इस तरह के कई बाट मिले हैं। बाटों पर कोई तौल के द्योतक लेख या चिह्न अंकित नहीं मिले हैं। इससे यह अर्थ लगाया गया है कि जो व्यापारी-दूकानदार इनका प्रयोग करते थे वे पढ़े-लिखे नहीं थे। किंतु, जैसा कि पिगट का कहना है, यह निष्कर्ष समीचीन नहीं लगता।

मिट्टी और धातु के बने तराजू के पलड़े थोड़ी संख्या में मिले हैं। एक तांबे या कांसे की छड़ भी मिली है जिस पर संभवतः पलड़े लगाए गए होंगे। इसके किनारे पर पलड़ों को टांगने के लिए बांधी गई रस्से के चिह्न भी स्पष्ट थे। तराजुओं का बांटों की तुलना में अत्यंत कम संख्या में पाया जाना यह स्पष्ट करता है कि लोग अधिकांशतः पलड़े और डंडी लकड़ी के बनाते रहे होंगे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 13

परिधान तथा आभूषण

परिधान तथा आभूषणों के संबंध में जानकारी के स्रोत हैं—कुछ पत्थर की प्रतिमाएं (फ० IX; X, 2), कांस्य प्रतिमा (फ० X, 1) और मृण्मूर्तियां (फ० XI, XII) जिन्हें वस्त्र और आभूषण पहने दिखाया गया है, कपड़े के वे टुकड़े जो नष्ट होने से बच गये हैं और विभिन्न प्रकार के आभूषण जो खोदाई से प्राप्त हुए हैं। जिस क्षेत्र में हड़प्पा संस्कृति पनपी वह प्राचीन काल से अच्छी कपास की खेती के लिए प्रसिद्ध रहा है। अतः आशा यही की जाती है कि सिंधु सभ्यता के लोग भी कपास के सूती वस्त्रों का प्रयोग करते थे, और उपलब्ध साक्ष्य इसकी पुष्टि करते हैं। दयाराम साहनी को 1926 में सूत से लिपटा एक बर्तन मिला था जिसके अंदर गहने थे। मैके को मोहेंजोदड़ो में तांबे की वस्तुएँ सूत के धागे और कपड़े में लिपटी मिलीं। मोहेंजोदड़ो से ही एक मछली मारने का कांटा धागे से लिपटा उपलब्ध हुआ। आलमगीरपुर की खुदाई से सिंधु सभ्यता के संदर्भ में वस्त्र का जो टुकड़ा प्राप्त हुआ है वह अच्छे किस्म की कपास से बनाये गये सूत का नहीं है। सूती वस्त्रों के अलावा ऊनी वस्त्र भी प्रचलित रहे होंगे। प्राचीन मिस्र की सभ्यता में सन (फ़्लैक्स) का प्रयोग वस्त्र निर्माण में होता था। या तो सिंधु सभ्यता के लोगों को सन के उपयोग के बारे में ज्ञान नहीं था अथवा सन के वस्त्र भूमिगत लवणों के प्रभाव से नष्ट होने के कारण खोदाई से इस विषय में कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं हो सका है। सन सूत से अधिक मज-बूत होता है, किंतु वस्त्र बनाने के लिए इसे तैय्यार करना अपेक्षाकृत कठिन होता है। हो सकता है कि इसी कारण सन का उपयोग न किया गया हो। उच्च वर्ग और निम्नवर्ग के लोगों के वस्त्रों में अंतर रहा होगा, यद्यपि उपलब्ध साक्ष्यों से इस विषय पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता है।

उत्खननों से प्राप्त पुरुष मूर्तियों की संख्या अधिक नहीं है और जो प्राप्त हुई भी हैं वे अधिकांशतः मस्तक अथवा अधोभाग से खण्डित हैं। अतः उस काल के पुरुषों द्वारा धारण किये जाने वाले वस्त्र तथा आभूषणों के विषय में पर्याप्त जानकारी प्राप्त करना कठिन है। मोहेंजोदड़ो की प्रसिद्ध योगी अथवा पुरोहित की मूर्ति (फ० IX, 1) को शाल ओढ़े दिखाया गया है जो सिंधु सभ्यता के लोगों के सुंदर वस्त्र निर्माण के ज्ञान का उत्तम उदाहरण है। उसने शाल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को बाएं कंधे को ढकते हुए ओढ़ रखा है तथा दायां कंधा खुला छोड़ रखा है। मेसोपोटामिया की कई कब्रों के पास पिनें पायी गयी हैं। अनुमान है कि पिनें वस्त्र को शरीर पर बांधने के लिए प्रयुक्त होती थीं। हो सकता है कि सिंधु सभ्यता के लोग भी शाल को पिन से बांधते रहे हों। शाल के नीचे अधोवस्त्र पहना जाता होगा, किंतु इस संबंध में कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। जिस तरह से पुरोहित मूर्ति को शाल ओढ़े दिखाया गया है, उस तरह शाल ओढ़ने की प्रथा आज भी प्रचलित है। इस शाल पर तिपतिया अभिप्राय है जो काढ़ा हुआ लगता है। यह अभिप्राय, जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, कई प्राचीन संस्कृतियों के संदर्भ में अलंकरण के रूप में मिलता है। पुरुषों के प्रिय आभूषणों के विषय में इतना ही ज्ञात है कि वे मस्तक पर बालों को केश-पाश से बांधते थे और कुछ लोग बांह भुजबंद से विभूषित करते थे। पुरुषों द्वारा वर्गाकार दाढ़ी रखने के साक्ष्य भी सिंधु सभ्यता की मूर्तियों में प्राप्त हैं। इस तरह से दाढ़ी रखने की परंपरा सुमेर में भी प्रचलित थी। तांबे और कांसे के बने उस्तरे मिले हैं जिनसे हजामत बनायी जाती रही होगी। इस कार्य में प्रवीण लोगों का एक अलग वर्ग भी रहा होगा।

नारी मृण्मूर्तियों (फ० XI, XII) में, जिन्हें मातृदेवी पहचाना गया है, प्रायः विपुल आभूषण एवं कुछ वस्त्रों के धारण करने के चिह्न पाये जाते हैं। वे सिर, कान, कण्ठ, भुजा, कटि और पांवों के आभूषण पहने दिखाई गई हैं जो आकार और आकृति में रोचक विविधता लिए हैं। कुछ नारी आकृतियों को घुटने तक या घुटनों से कुछ ऊपर तक लम्बाई वाला स्कर्ट की तरह का वस्त्र पहने दिखलाया गया है। यह निश्चय कर सकना कठिन है कि यह वस्त्र सिला हुआ है अथवा यूं ही चारों ओर लपेट लिया गया है। ऐतिहासिक काल में हमें इसी तरह के अधोवस्त्र के दर्शन गुप्त-कालीन मृण्मूर्तियों और अजंता की चित्रकला में मिलते हैं। कुछ नारी मूर्तियां पंखे की तरह का शिरोवस्त्र पहने दिखाई गई हैं। कटि से ऊपरी भाग में वस्त्र नहीं दिखाये गये हैं। लेकिन केवल इसी साक्ष्य से यह निश्चित निष्कर्ष निकालना कि वे ऊपर के वस्त्र पहिनती ही नहीं थीं, समीचीन नहीं होगा। वैसे आज भी कुछ जनजातियां ऐसी हैं जिनमें स्त्रियां कटि से ऊपर नग्न रहती हैं।

खोदाइयों में प्रायः सभी सिंधु सभ्यता के स्थलों से आभूषणों के समूचे और खण्डित भाग मिले हैं जिनमें सिंधु-सभ्यता के लोगों की आभूषणों के विषय में रुचि एवं कारीगरों की कार्य कुशलता का परिचय प्राप्त होता है। ये आभूषण सोना, चांदी और अर्ध-बहुमूल्य पत्थरों से बने हैं। आज कीमती पत्थर ग्रहों को शांत करने के लिये भी धारण किये जाते हैं। साथ ही धातुओं से बने कुछ वस्तुओं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का भी कुछ ऐसा ही महत्व रहा है। उस काल में भी कुछ आभूषण धारण करने के संबंध में ऐसी ही धारणा थी या नहीं कुछ कहा नहीं जा सकता।

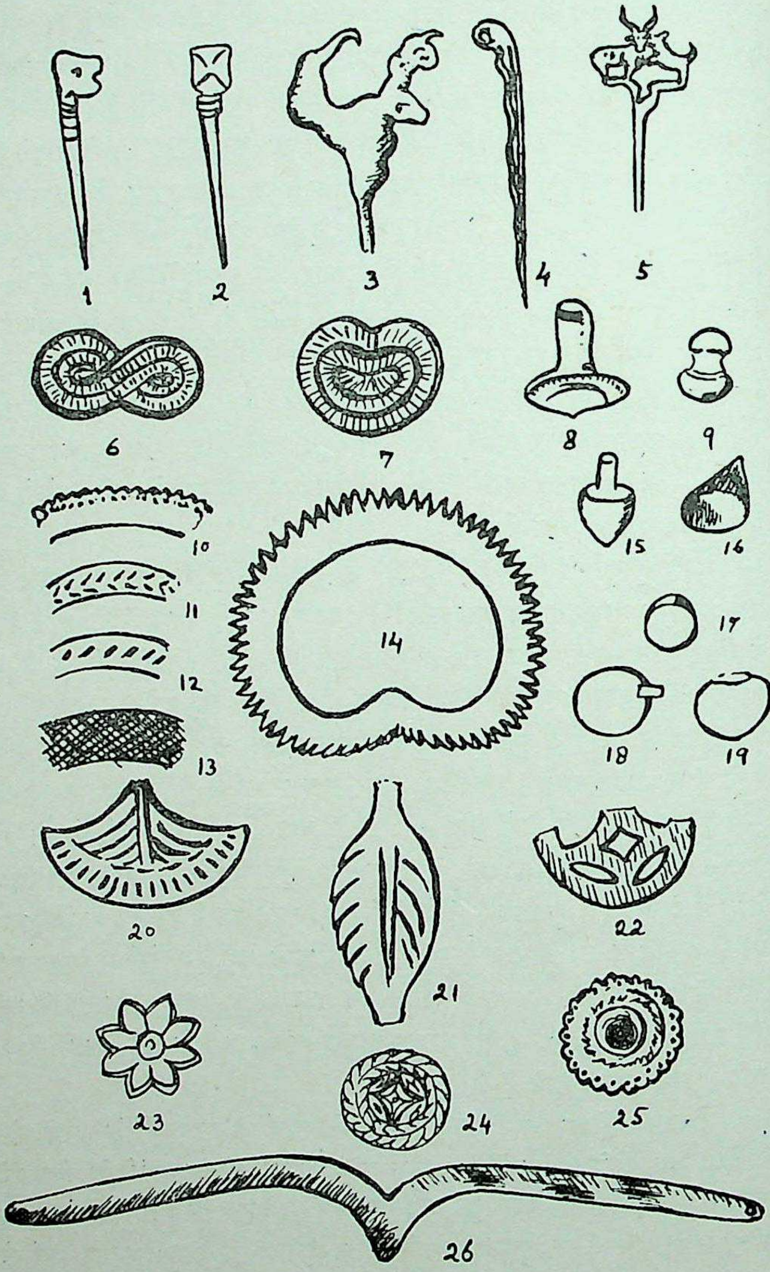

आरेख 17

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लेकिन मिस्र और बेबीलोन में लोग आभूषणों को उसमें जादुई शक्ति होने की धारणा से भी पहिनते थे। कुछ आभूषणों पर धार्मिक चिह्न भी मिलते हैं।

सिर से लेकर पैर तक कई आकार-प्रकार के आभूषण कारीगरों ने गढ़ डाले थे। इनसे स्पष्ट है कि सिंधु सभ्यता में स्त्रियों का आभूषण प्रेम आजकल की स्त्रियों, विशेषतः ग्रामीण स्त्रियों, के आभूषण-प्रेम से कम नहीं था।

स्त्रियां बालों को कांटे और शंखाकार आभूषणों से सजाती थीं। खोदाइयों से प्राप्त कांटे (आ० 17, 1–5) मिट्टी, तांबा, कांसा और शंख के बने हैं। मोहेंजोदड़ो से वत्स की एक ताम्र-निर्मित बालपिन का ऊपरी भाग मिला; उस पर हिरन के कान को काटते हुए कुत्ते का अंकन है। वहीं से प्राप्त एक हाथी-दांत के पिन का ऊपरी भाग कुत्ते के सिर के समान बना है। कांचली मिट्टी के बने ऐसे ही बालपिन पर ताली बजाते हुए तीन बंदर अंकित हैं। कुछ बालपिन सादे भी हैं।

कर्णाभरण (आ० 17,8,1,24,25) भी कई तरह के थे। वैसे सामान्यतया दोनों कानों में एक ही तरह का आभूषण पहना जाता था, किंतु मोहेंनजोदड़ो की कुछ नारी मृणमूर्तियों को दोनो कानों में अलग-अलग तरह का आभूषण पहने दिखाया गया हैं। कुछ कर्णफूल में पत्ती का सा किनारा है। कांचली मिट्टी के बने कान की कील और झाले पाये गये हैं। मोहेंजोदड़ों के एक बुंदे पर चार कोने वाला तारा है। मैके के अनुसार इसका कुछ जादुई महत्व रहा होगा। मेसोपोटामिया की एक मृणमूर्ति में भी ऐसा ही आभूषण दिखलाया गया है। कांचली मिट्टी के कुछ कान के छोटे बुंदे उपलब्ध हुए हैं। कानों में बाली पहनी जाती थी। बालियां तांबे, कांसे और चांदी की मिली हैं। मोहेंजोदड़ो से एक बच्चे की तांबे की बाली मिली है।

कुछ आभूषणों की पहिचान जाड़ाऊटीका से की गई है। ये मिट्टी, हाथीदांत, कांचली मिट्टी और शंख के बने हैं। ये आकृति में कुछ पंखे जैसी कुछ अर्धचन्द्राकार, कुछ तिपतिया जैसी, कुछ ऊँची टोपी के समान है और कुछ पर तीन बूटे अंकित हैं। केश सँभाले रखने के लिए फीते (आ० 17,26) का उपयोग, स्त्री और पुरुष दोनों ही करते थे। इस तरह के प्रयोग के लिए सोने की पत्ती के फीते मिले हैं। एक उदाहरण में पत्ती के मध्य भाग में छिद्र है, एक अन्य उदाहरण में मध्य भाग अंग्रेजी के V आकार के समान कटाव लिए है। स्त्रियां कानों में विभिन्न प्रकार के कर्णाभरण धारण करती थं। मातृदेवी की प्रायः सभी मृणमूर्तियों को कर्णाभरण धारण किये हुए दिखलाया गया है। इनमें से कुछ कर्णफूल जैसी और कुछ ठोस डाट जैसी आकृति के हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साधारणतः भारत में नाक में आभूषण पहनने का रिवाज मुसलमानों के आने से माना जाता है। प्राचीन काल की किसी मूर्ति, चित्र अथवा साहित्य में इस संबंध में कोई निश्चित साक्ष्य नहीं मिलता। सिंधु सभ्यता के अवशेषों में कुछ इस तरह की शंख, सेलखड़ी या कांचली मिट्टी की वस्तुयें मिली हैं जिनकी नाक के आभूषण के रूप में पहचान की गई हैं।

खोदाइयों से कुछ आभूषणों के निधान मिले हैं जिनमें तरह-तरह के आभूषण पाये गये। कुछ तो ऐसे हो सकते हैं जो लोगों ने संभवतः चोरों के भय से भूमि में छिपा कर रखे होंगे। गांवों में आज भी लोग सुरक्षा के लिए आभूषण जमीन में गाड़ कर रखते हैं, और महिलाएं विशेष उत्सव के अवसर पर ही उन्हें निकाल कर धारण करती हैं। इन निधानों में जो हारों के अवशेष मिले हैं उनसे पूरे हार की रूपरेखा पुनर्निर्मित की जा सकी है (फ० XXIII,1,2) हारों में रोचक विविधता पाई जाई जाती है। इनमें 17,20,48 और 53 मनकों का प्रयोग हुआ है। मनके हरे जैस्पर, जेड, नीली कांचली मिट्टी, पकाई सेलखड़ी, हैमाटाइट इत्यादि के बने हैं। जिस हार में 48 मनके हैं उनमें 13 हरे जेड के, नौ कांचली मिट्टी के, और 26 सेलखड़ी के हैं। सेलखड़ी के मनकों के किनारे सोने के हैं। और जिस हार में 53 मनके हैं उसमें 7 लोलक हैं, 26 वर्तुलाकार सोने के किनारों वाले सेलखड़ी के मनके, 2 कांचली मिट्टी के और 18 गोमेद तथा हैमाटाइट के मनके हैं।

हड़प्पा से सोने के मनकों वाला एक सुन्दर 6 लड़ी का हार मिला है। इसमें छह छेद वाले अंतरक हैं। छोटे-छोटे सोने तथा सेलखड़ी के बने मनकों और लोलकों वाला हार भी पर्याप्त आकर्षक हैं। मोहेंजोदड़ो से मार्शल को एक काफी बड़े आकार वाला हार प्राप्त हुआ है। हार के बीच में नलीदार ढोलाकार गोमेद के मनके हैं। ये मनके एक दूसरे से पांच चपटे गोल सोने के मनकों द्वारा अलग अलग गुंथे थे। इसके अलावा इसमें सात गोमेद के लोलक हैं जिनके बीच-बीच सोने से मढ़े किनारों वाले सेलखड़ी के मनके गुंथे हैं। मोहेंजोदड़ो से ही एक कार्नीलियन के मनकों से बना पर्याप्त लम्बा हार उपलब्ध हुआ है। इसकी डोरियां तो नष्ट हो गईं किंतु मनके अपने स्थान पर मिले हैं। इसमें दोनों किनारों पर छः छः तांबे के अंतरक (spacers) हैं। हर कर्नीलियन मनके के बाद एक तांबे का मनका गुंथा है। हार के एक सिरे पर ताम्र-निर्मित अर्धचन्द्राकार और दूसरे सिरे पर नली जैसा अंतक है।

हारों के लोलक, अंतक और अंतरक अलग-अलग आकार के तथा पदार्थों के बनाये गये थे। इनमें से कुछ तो बड़े आकर्षक हैं जैसे गोमेद का अर्धचन्द्राकार,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कांचली मिट्टी का पंखाकार, नीली कांचली मिट्टी का पत्राकार, साधारण कांचली मिट्टी का हृदयाकार, सेलखड़ी का पुष्पाकार लोलक। हड़प्पा से एक ऐसा अंतक मिला है जिसमें तीन छिद्र हैं जो अन्ततः एक ही छिद्र में मिल जाते हैं। अंतरक दो तरह के हैं—लंबी चपटी पट्टी की तरह जिसमें इच्छानुसार कम या अधिक छिद्र किये गये हैं, और वे जो साधारण मनकों की तरह के हैं।

मोहेंजोदड़ो से कांचली मिट्टी, शंख, मिट्टी और सेलखड़ी से बनी चूड़ियां मिली हैं। स्त्रियां कई चूड़ियां पहिनती थीं। आज चूड़ियां सुहाग (पति के जीवित होने) का सूचक मानी जाती हैं। शायद इनका ऐसा ही कुछ महत्व उस काल में भी रहा हो। ताम्र नर्तकी की मूर्ति में उसकी बायीं भुजा चूड़ियों से बोझिल दिखायी गयी है। नर्तकी के दायें हाथ की कलाई में केवल तीन-चार चूड़ियां हैं और भुजबन्ध के रूप में तीन। मृण्मूर्तियों के हाथों में तीन, चार या पांच चूड़ियां मिलती हैं। असमान या समान संख्या में चूड़ियों को पहने दिखाने के पीछे कोई आशय था या नहीं, यह कहना कठिन है।

काशीनाथ दीक्षित को मोहेंजोदड़ो से दो सोने के पतले पत्र मिले जो मूलतः चूड़ियां रहे होंगे। कंगन और चूड़ियां प्रायः सभी पदार्थों की बनी उपलब्ध हुई हैं। हड़प्पा के एक निधान से सोने का बना एक कंगन प्राप्त हुआ है। इसके दोनों किनारे अंदर की ओर मुड़े हैं। इसका व्यास 4·41 सेमी है। वत्स को यहां से एक अंडाकार चूड़ी मिली थीं। कुछ मृतकों को आभूषण पहने ही दफनाया गया था। मोहेंजोदड़ो से सोने की चूड़ियां मिली हैं। मैंके को एक निधान में चार चूड़ियां मिली थीं जिनमें से एक चूड़ी में अंदर लाख होने के भी प्रमाण हैं। चांदी की चूड़ियां भी बनायी जाती थीं। मोहेंजोदड़ो से प्राप्त एक चांदी की अण्डाकार चूड़ी को मार्शल ने प्रकाशित किया है। इसके दोनों कोने अंदर की ओर झुके हैं। इससे मिलती-जुलती चूड़ियां सीरिया में भी मिली हैं जिन्हें अमेनम्हत II (1938-1904 ई० पू०) की चूड़ियों से पहिचान गया है।

कांसे की बनी चूड़ियां चपटे या गोल तार से बनाई गई हैं। अधिकांश उदाहरणों में तार को गोलाई देकर चूड़ी तैयार कर ली गई है। इस तरह की बनी हुई कांसे की चूड़ियां किश हिसार और शह टेप से भी पायी गयी हैं। कांचली मिट्टी की बनी कुछ चूड़ियां सादी हैं और कुछ पर अभिप्राय उत्कीर्ण हैं कुछ पर V अक्षर जैसा अलंकरण है। हृदय जैसे आकार वाली भी चूड़ियां प्राप्त हुई हैं। त्रि-अरीय डिजाइन वाली चूड़ियां मोहेंजोदड़ो, लोहुँजोदड़ो और कोटला निहंग से पायी गयी हैं। सफेद पेस्ट की बनी चूड़ियां खूब अलंकृत हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस तरह की चूड़ियां मैसोपोटमिया में भी लोकप्रिय थीं। सेलखड़ी की चूड़ियों पर रेखांकन मिलता है। इन पर V के आकार का तिरछी रेखाओं का अलंकरण है। चूड़ियों में सर्वाधिक संख्या मिट्टी की चूड़ियों की है। यह सादी और अलंकृत दोनों तरह की पायी हैं। भूरी, काली और लाल रंगों की चूड़ियां हैं। वत्स के अनुसार मिट्टी की चूड़ियों में जो लाल भूरा रंग मिलता है उसका मुख्य कारण फैरस आक्साइड और मैंगनीज तथा टीन आक्साइड का मिश्रण है। हृदय की आकृति से मिलती जुलती मिट्टी की चूड़ियां बहुतायत से पायी गयी हैं मिट्टी की चूड़ियां कुम्हारों ने बनाई होंगी। शंख की चूड़ियां दो तरह की हैं। उन्हें या तो दो भागों में बनाया गया है अथवा शंख से काट कर चूड़ी की आकृति दी गयी है।

मिट्टी और तांबे की अंगूठियां (आ० 17, 17, 19) भी उत्खनन में मिली हैं। ये तांबे की अंगूठियां या तो साधारण तौर पर तार को मोड़ कर तैयार की गयी हैं या चपटा करके बनायी गयी हैं। अंगूठियां तार के दो, तीन, चार, पांच या सात बल देकर बनी हैं। चांदी के एक दो ही उदाहरण हैं, सोने की एक भी अंगूठी नहीं मिली। कुछ कांचली मिट्टी के भी उदाहरण हैं। शंख के बहुत से उदाहरण मोहेंजोदड़ो में प्राप्त हैं। इन पर कोई डिजाइन नहीं है।

स्त्रियां कर्धनी और पाद-भूषण भी पहनती थीं जैसा कि मृण्मूर्तियों के अंकन से स्पष्ट है। मोहेंजोदड़ो से सिर की आकृति वाली एक कांच की ढली हुई चकती मिली है। इसका व्यास 5.08 सेमी है। इसमें उपर से नीचे दो छिद्र हैं। इसके बारे में यह अनुमान किया जाता है कि यह चकती किसी कर्धनी का भाग रही होगी। पैरों में प्रायः मोटे कड़े पहने दिखलाये गये हैं। ये कड़े किस धातु के बनाये जाते थे यह ज्ञात नहीं है क्योंकि उत्खननों में कोई कड़ा प्राप्त नहीं हुआ है। ये ठोस भी हैं और कुछ पोले। लखियो से मजूमदार को एक ताम्र-मूर्ति का पैर मिला जिसमें एक ही खंड से निर्मित पाद-कटक दिखलाया गया है। क्नोसास के भित्ति चित्रों में भी इस तरह के पाद-कटक का चित्रण है। मोहेंजोदड़ो की कांस्य नर्तकी की मूर्ति को कई कटक पहने दिखलाया गया है। बेबीलोन में स्त्रियां तीन से पांच तक कटक धारण करती थीं, जैसा कि खोदाई से प्राप्त अस्थि-पंजरों के साथ मिले आभूषणों से स्पष्ट है। बेबीलोन में हड़प्पा से कुछ मिट्टी की बड़े आकार (लगभग 3.8 व्यास) की चूड़ियां उपलब्ध हुई हैं। लखियोपीर से भी एक इसी व्यास का खण्डित मृण्मय छल्ला मिला था। यह अनुमान किया जाता है कि इन्हें शायद पैरों में पहना जाता रहा हो।

स्त्रियां आभूषण पहनने के साथ साथ अपने को आकर्षक तरीके से सजाती

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी रही होंगी। तांबे की नर्तकी के बाल पीछे संवार कर दाहिनी ओर गिरे दिखाए हैं। वे अच्छी तरह सुलझे हुए हैं। नारी मृण्मूर्तियां विपुल शिरोभूषणों से मण्डित हैं। एकाध उदाहरण में पुष्पों का शिरोलंकरण है। कांचली मिट्टी के छोटे-छोटे पात्र हड़प्पा, मोहेंजोदड़ो और चन्हुदड़ो की खोदाइयों से विभिन्न स्तरों से उपलब्ध हुए हैं। इनके अंदर, यह अनुमान किया जाता है, कि कोई श्रृंगार से संबंधित पदार्थ रखा जाता होगा। हड़प्पा मोहेंजोदड़ो और कुछ अन्य स्थलों से प्राप्त अंजन रखने के पात्र और सलाइयों की प्राप्ति इस बात का साक्ष्य है कि स्त्रियां (और शायद पुरुष भी) काजल का प्रयोग करती थीं। मोहेंजोदड़ो के उत्खननों से एक हरे रंग का पदार्थ काफी मात्रा में पाया गया है। अनुमान है कि यह आंखों की सुंदरता बढ़ाने के लिए प्रयोग किया जाने वाला कोई पदार्थ था।

आभूषणों में तावीजों की भी गणना की जा सकती है। सिंधु सभ्यता के आकार-प्रकार में रोचक विभिन्नता मिलती है। ये या तो त्रिभुजाकार या चतुर्भुजाकार हैं अथवा पशु-आकृति के हैं। हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो दोनों स्थानों से त्रिभुजाकर शंख के बने तावीज मिले हैं। चूना-पत्थर का एक चतुर्भुजाकार पदक की आकृति का उदाहरण मोहेंजोदड़ो से मिला है। इस पर स्वस्तिक और अनंत सर्पिल रेखा है। हड़प्पा से एक पक्षी की आकृति का टूटा हुआ तावीज कांचली मिट्टी का पाया गया। पक्षियों की शक्ल के तावीज अन्य स्थानों से भी मिले हैं। उर और किश में फाख्ता पक्षी बहुत लोकप्रिय था। कार्नीलियन से बने पक्षी की आकृति के आभूषणों के उदाहरण पिपरावा और तक्षशिला से ऐतिहासिक युग के स्तरों में मिलें हैं। इसके अतिरिक्त कांचली मिट्टी की मछली, गिलहरी और भेंड़, मिट्टी का बैल शंख का बैल का सिर, मिट्टी का बंदर की आकृति के तावीज हड़प्पा से उपलब्ध हुए हैं। अन्य पशु-पक्षियों में कछुआ, सर्प, सुअर, हाथी, चीता, और उलूक हैं जो अधिकांशतः कांचली मिट्टी के हैं। इनमें से भेंड़ का धार्मिक महत्व मिस्र में था। गार्डन चाइल्ड का विचार है कि हो सकता है सिंधु सभ्यता के लोगों की भी ऐसी धारणा रही हो। तावीजों के ऐसे उदाहरण चतुर्थ सहस्राब्दी ई० पू० के हैं। कुछ क्रीट के मिनिओन II कालीन भी हैं। कीमती पत्थरों के बने पशुओं की आकृति के तावीज पहिनने की प्रथा आज भी हमारे देश में है।

सिंधु सभ्यता काल के लोग प्रसाधन प्रेमी थे। उत्खननों से तांबे के दर्पण (फ० XXII, 3) उस्तरे, कंघे, अंजन-शलाकाएं, श्रृंगारदान, इत्यादि की प्राप्ति है। दर्पण तांबे के थे। इन्हे पालिश कर चमकाया गया होगा जिससे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रतिबिंब स्पष्ट दिखाई देता रहा होगा । ये हत्थेदार थे । कंघे हाथीदांत के होते थे जो अधिकतर अंग्रेजी अक्षर V की आकृति के हैं । इसमें दांत एक ओर हैं या दोनों ओर । इन पर एक दूसरे को घेरे वृत्तों का भी अलंकरण है । ऐसी कुछ अंजन शलाकायें मिली हैं जिनका ऊपरी भाग बतख के सिर के समान है । इनके भीतर अंजन या सुरमा रखा जाता रहा होगा ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 14

आमोद्-प्रमोद्

आमोद-प्रमोद भी जीवन का आवश्यक अंग है। अतः यह स्वाभाविक है कि सिंधु सभ्यता के लोग भी जीवन को मधुर बनाने के लिए नाना प्रकार के मनोविनोद करते रहे होंगे। उनके साहित्यिक मनोविनोद, गोष्ठियाँ, कथा-कहानियां, नाटक इत्यादि के बारे में प्रमाण के अभाव में कुछ भी कहना कठिन है। लेकिन यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वे किसी-न-किसी रूप में इनका प्रयोग करते रहे होंगे। मनोविनोद से संबंधित काठ और अन्य ऐसे पदार्थों की बनी वस्तुएं जो शीघ्र नष्ट हो जाती हैं, उपलब्ध नहीं हैं, यद्यपि यह अनुमान लगाना स्वाभाविक है कि लकड़ी के खिलौने इत्यादि उस समय भी बनते रहे होंगे। इस संबंध में जो सामग्री प्राप्त हुई है उसके आधार पर दूसरे प्रकार के आमोद-प्रमोद के साधनों के बारे में अनुमान लगाये जा सकते हैं।

स्त्रियों तथा पुरुषों की कुछ मृण्मयी आकृतियों का तो लगभग निश्चित रूप से धार्मिक महत्त्व लगता है, किंतु कुछ ऐसी भी हैं जो खिलौने के रूप में प्रयुक्त होती रही होंगी। उनमें कुछ के निर्माण शैली को देखकर ऐसा लगता है कि कुछ तो बच्चों की ही कृतियां रही होंगी। मनुष्य आकृतियों में इस सिलसिले में बौनों की आकृतियों का मुख्य रूप से उल्लेख किया जा सकता है। जानवरों की मूर्तियां कुछ अपवादों को छोड़कर निश्चय ही बच्चों के खिलौने थे। मिट्टी की बनी बैलों की कुछ आकृतियां मिली हैं जिनके कूबड़ और पीछे के भाग में छेद था जिसमें रस्सी डाल कर सिर को (जो अलग से बनाकर लगाया गया था) हिला-डुलाया जा सकता है। यह बच्चों का एक खिलौना रहा होगा। मिट्टी की बनी बंदर की ऐसी एक आकृति मिली है जिसमें झुकाव लिए छेद था जिसके कारण वह रस्सी से खिसक सकता था। इसे देखकर बच्चे कौतूहल करते और प्रसन्न होते होंगे।

मिट्टी की खिलौना-गाड़ियों के पहिये बड़ी संख्या में मिले हैं जिन्हें सिंधु सभ्यता के बच्चे गाड़ी से जोड़कर मनोरंजन किया करते थे। पहियों में एक ओर का धुरा (hub) उठा हुआ है। सुमेरी संस्कृति में भी सिंधु सभ्यता से मिलते जुलते पहिये मिले हैं, पर उनमें दोनों ओर धुरा (hub) दिखाये गये हैं। खिलौना-गाड़ियों के कई ढांचे भी मिले हैं। इन पर छिद्र बने हैं जिनमें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

डंडे लगाये जाते थे। ये उस समय प्रचलित बैलगाड़ियों की ही अनुकृतियां होंगी। आज के सिंध में चलने वाली बैलगाड़ियों से वे बहुत कुछ मिलती जुलती हैं। कुछ गाड़ियों में अंग्रेजी के अक्षर 'वी' (V) आकार का उठान है। कुछ की आकृति अवतल (concave) तथा दीवार छोटी-छोटी हैं। हड़प्पा से प्राप्त एक मिट्टी और काँसे की गाड़ी का माडल आज के इक्के से कुछ मिलता-जुलता है। हड़प्पा के ही खिलौना गाड़ी की आकृति उलटी काठी और दूसरी की नौका (canoc) के समान है। चंहुदड़ो के उत्खनन में भी मिट्टी की गाड़ी का प्रतिरूप मिला है। इनमें एक में गाड़ी हांकने वाले को हाथ में कोड़ा पकड़े दिखाया गया है।

एक मिट्टी की बनी आकृति में सिर और सींग तो मेढ़े के हैं किंतु शरीर तथा पूंछ चिड़िया की है। यह लंबाई में साढ़े चार इंच है और अंदर खोखली है। इस आकृति के दोनों पार्श्व में छेद हैं जिसमें अनुमानतः एक डंडी लगी रही होगी। या तो उस डण्डी पर पहिये लगाकर इसे गाड़ी बनाया गया होगा या डंडी पर पशु को झुलाया जाता रहा होगा। इसकी गर्दन में भी छेद हैं जिसमें रस्सी डालकर बच्चे इस आकृति को आगे खींच कर चलाते रहे होंगे। यह बच्चों की कृति नहीं लगती, किंतु इसका प्रयोजन बच्चों का मनोरंजन ही था। पक्षी जुते गाड़ियों का प्रचलन योरप में 1300 ई० पू० और चीन में ऐतिहासिक काल में विद्यमान था। भारत में सिंधु सभ्यता में ही नहीं ऐतिहासिक काल में भी इस तरह के खिलौने मिले हैं, (उदाहरण के लिए बसाढ़ (वैशाली) की खुदाई से)। नन्नी गोपाल मजूमदार ने यह सुझाया है कि चीन ने इस प्रकार के खिलौने बनाना भारत से सीखा होगा क्योंकि ऐतिहासिक काल में भारत-चीन संबंध थे, और योरोपीय उदाहरणों के प्रेरणा स्रोत भी शायद यही भारतीय खिलौने रहे हों।

लोग पक्षियों को पिंजरों में रखकर पालते भी थे। चोंच खोलकर चहचहाती सी एक चिड़िया को पिंजरे के भीतर दिखाया गया है। इसमें किसी गाने वाली चिड़िया को दिखाना अभिप्रेत लगता है। पिंजरे के भीतर दिखायी गयी चिड़िया बुलबुल-सी लगती है। संस्कृत साहित्य में पालतू पक्षियों के बड़े रोचक उल्लेख मिलते हैं और नारी के साथ उनके अंकन ऐतिहासिक काल की कई मूर्तियों में मिलते हैं। पिंजरे नासपाती की आकृति के हैं। शायद ये लोग मुर्गा, तीतर इत्यादि भी लड़ाते थे जिन्हें पिंजड़ों में रखा जाता रहा होगा। मिट्टी के झुनझुने पर्याप्त संख्या में पाये गये हैं। ये पोले हैं और इनके भीतर कंकड़ भरे हैं। ये गेंद की तरह गोल हैं। कुछ तो इनमें बिना चित्रण के हैं किंतु कुछ पर लाल रंग का कुछ डिजाइन बना हुआ है। फाख्ता की आकृति के खिलौने भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बनाये जाते थे। इस आकृति के जो खिलौने मिले हैं वे खोखले हैं और पूंछ के पास पीठ पर इनमें छेद बना है। छेद पर मुँह लगाकर फूंकने से सीटी की तरह की आवाज निकलती है। बच्चे इससे सीटी बजाते रहे होंगे और फाख्ता की आवाज की भी नकल करते रहे होंगे।[1] एक डंडे पर एक छोटा-सा जानवर स्थित है जिसकी पहचान कठिन है। यह भी एक प्रकार का खिलौना लगता है। अन्य प्राचीन सभ्यताओं में जानवरों की आकृति वाले झुनझुने भी मिलते हैं पर सिंधु सभ्यता में इस तरह के झुनझुनों का सर्वथा अभाव है।

हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो से मिट्टी के तराजू मिले हैं जिनसे बच्चे खेलते रहे होंगे। तराजू का मिट्टी का बना एक पलड़ा सुरकोटडा में पाया गया है। मिट्टी के सांचे भी मिले हैं जिनके बारे में यह अनुमान है कि उनका उपयोग बच्चों द्वारा खेल के दौरान मिट्टी की खिलौना रोटियां (fancy bread) या खिलौना मिठाई बनाने के लिए किया जाता रहा होगा। मिट्टी की बनी सिलें (mortor) और उनसे जुड़े हुए मिट्टी के ही बट्टे भी मिले हैं, ये भी बच्चों के खिलौने रहे होंगे। मिट्टी की बनी कुर्सी के छोटे-छोटे माडल भी मिले हैं। यह अधिकांशतः भौंडी आकृति के हैं, ये असावधानी से बने हैं और बच्चों की कृतियां लगती हैं। गुड़ियों के खेल में गुड़ियों को वे लोग कुर्सी पर बिठाते रहे होंगे। मिट्टी की बनी हुई एक टोकरी हड़प्पा के विशाल अन्नागार के पूर्वी भाग के समीप पायी गयी है। यह सिंधु सभ्यता में इस तरह का एकमात्र उदाहरण है और हो सकता है वह भी बच्चों के खेल की वस्तु रही होगी।

कुछ हार्न-ब्लेड, सेलखड़ी तथा लाजवर्द की बनी लटकन जैसी आकृतियां मिली हैं ऊपरी भाग में एक खांचा बना है। ये समतलोत्तल (Plano-convex) हैं। आज भी बच्चे सिंधु सभ्यता में प्राप्त उपर्युक्त वस्तुओं से मिलते उपकरणों से खेलते हैं और यह अनुमान लगाना स्वाभाविक है कि उस काल में भी वे खेल में प्रयोग की जाती रही हों।

सिंधु सभ्यता के लोग पांसे का भी खेल खेलते थे। वैदिक साहित्य से ज्ञात होता है कि उस काल में भी पांसे का खेल अत्यन्त लोकप्रिय था और ऐतिहासिक काल के साहित्य में भी इस खेल के अनेक महत्त्वपूर्ण संदर्भ मिलते है। राजाओं के लिए तो यह लगभग अनिवार्य व्यसन था। हड़प्पा में कुल सात

---

1. जैसा वत्स ने उल्लेख किया है, आज पंजाबी में 'घुग्गु' शब्द का अर्थ ही फाख्ता की शक्ल की सीटी है। यह संभव है कि सिंधु सभ्यता में भी इसी परंपरा के अनुसार सीटियों को फाख्ता की आकृति दी गई हो।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पांसे—चार मिट्टी के दो पत्थर के और एक कांचली मिट्टी के मिले हैं। मोहेंजोदड़ो में भी मिट्टी और पत्थर के बने घनाकार पांसे (फ० XXII, 1) मिले हैं। ये पांसे आजकल के पांसों से मिलते जुलते हैं। इनका आकार लगभग 3 सेमी × 3 सेमी × 3 सेमी से लेकर 3.81 सेमी × 3.81 सेमी × 3.81 सेमी तक है। मोहेंजोदड़ो के पांसों का परीक्षण करने पर मैके ने यह पाया कि इन पांसों के कुछ पक्ष समतल नहीं हैं और इससे उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि यह संभवतः ऐसा जानबूझकर इस उद्देश्य से किया गया था कि पांसा फेकने पर ज्यादातर अधिक नंबर वाला हिस्सा ही ऊपर की ओर दिखे। लगता है कि लोग जुआ खेलने में अपने-अपने पांसे लाते थे और इस तरह उन्हें बनाते थे कि दांव अच्छा लगे और वे विजयी हो जांय। इनमें से कुछ पांसे पर्याप्त कलात्मक हैं। इन पांसों के छहों ओर नम्बर पड़े हैं जो उथले छेदों के रूप में है। इनकी संख्या एक से छः तक है मोहेंजोदड़ो के अधिकांश पांसे इस तरह के बने हैं। अधिकांश पांसे का वह पक्ष जिस पर एक छिद्र खुदा है उसके उस पक्ष के ठीक पीछे पड़ता है जिस पर दो छेद बने हैं। और इस तरह तीन छेद वाले पक्ष की उल्टी ओर चार, और पांच के विपरीत छः पड़ता है। यह उल्लेखनीय है कि इस तरह का एक पांसा टेप गौरा (Tepe Gawra) में मिला है जो भारतीय संपर्क का द्योतक लगता है। आधुनिक पांसों में इस तरह नंबर होते हैं कि विपरीत दो पक्षों पर अंकित छिद्रों का योग सात हो, यथा छः छिद्र वाले पक्ष में उलटी ओर एक, पांच छिद्र वाले के उलटी ओर दो और चार छिद्र वाले पक्ष के उलटी ओर तीन। हड़प्पा के चार पांसों में तो उपर्युक्त मोहेंजोदड़ो के पांसों की तरह ही निशान बने हैं, लेकिन दो में एक के उल्टी ओर दो, तीन के उल्टी ओर पांच और चार के उल्टी ओर छः हैं, और एक उदाहरण में तो आधुनिक पांसों की तरह एक छः के विपरीत, दो पांच के उल्टी ओर और तीन चार के उल्टी ओर मिला है। अंतिम प्रकार का एक पांसा बेल्लासिस (Bellasis) को ब्राह्मणाबाद में 1854 में मिला था। पीट्री ने इस अंतिम प्रकार के पांसे का मिस्र की प्राचीन संस्कृतियों के संदर्भ में भी प्राप्त होने का उल्लेख किया है। लेकिन मिस्र के पांसों पर अन्य प्रकार से भी नंबर दिया गया था और इसके लिए कोई निश्चित नियम नहीं मालूम पड़ता। मोहेंजोदड़ो में दो पांसे एक दूसरे से कुछ ही दूरी पर मिले, और हड़प्पा में पाये गये तीन पांसे दो पकाई मिट्टी के और एक पत्थर का भी समान आकार के थे लेकिन ये तीनों एक दूसरे से काफी दूर मिले थे। यह कहना कठिन है कि वे खेल में एक बार के दांव में एक से अधिक पांसों का प्रयोग करते थे या नहीं।

मोहेंजोदड़ो के लोग पांसों को विशेषतः मिट्टी के पांसों को, मुलायम सतह-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाली वस्तु, शायद कपड़े के ऊपर फेंकते रहे होंगे, क्योंकि इनमें ज्यादा टूट फूट नहीं है। लेकिन हड़प्पा के न केवल मिट्टी के बल्कि पत्थर के भी पांसों पर टूट-फूट के स्पष्ट चिह्न हैं जिससे लगता है कि इन्हें किसी सख्त सतह या जमीन पर फेंक कर खेलते थे। वे लोग इन पांसों से ही पूरा खेल खेलते थे अथवा इनकी सहायता से चौपड़ जैसा कोई खेल यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। हाथी दांत या हड्डी के बने कुछ आयताकार, कुछ वर्गाकार कुछ गोल काट वाले और कुछ तिकोन उपकरण पर्याप्त संख्या में मिले हैं। ये सावधानी से बनाये गये हैं और कई पर पालिश भी है। इनके भी जुआ खेलने में प्रयोग किये जाने की संभावना लगती है। उनके तीन पक्षों पर क्रमशः एक, दो और तीन निशान हैं बाकी पक्ष लंबी रेखाओं से अलंकृत हैं। कुछ पर खास तरह के चिह्न हैं जो अधिकतर सभी तरफ एक से हैं इन चिह्नों का अभिप्राय स्पष्ट नहीं है।

सिंधु सभ्यता के विभिन्न स्थलों के उत्खननों से मिट्टी कांचली मिट्टी, शंख संगमरमर, स्लेट, सेलखड़ी आदि की बनी गोटी की तरह की वस्तुएं पायी गयी हैं। कभी-कभी इन्हें अलंकृत भी किया गया है। ये विभिन्न आकार प्रकार के हैं। चतुष्कोण गोटियां मोहेंजोदड़ो में पर्याप्त संख्या में मिली हैं। इस आकार में एक गोटी कांसे की और अनेक पेस्ट की बनी मिली हैं। सुमेरी संस्कृति में भी इस तरह की गोटियां मिली हैं। इस तरह के आकार की गोटियों को उठाकर दूसरे खाने में रखना सुविधाजनक नहीं होता इसलिए कदाचित् उन्हें सरकाकर चलाते रहें होंगे। एक चार भुजीय गोटी भी मिली है और एक तिकोन पार्श्व वाली भी जिसका सिरा और तल चपटा है। घनाकार हाथी दांत के पांसे भी कुछ मिले हैं जिनके सभी ओर एक ही तरह के निशान हैं। इनमें से कुछ तो विशिष्ट आकृति के हैं और परंपरागत शैली में निर्मित लिंगों से मिलते हैं जो सम्भवतः लिंग ही थे और उनका धार्मिक महत्त्व भी रहा होगा, लेकिन बाकी गोटियां ही रही होंगी। लोथल के उत्खनन से तो घोड़ा (?), मेढ़ा, कुत्ता और बैल के सिर वाली गोटियां भी मिली हैं जो अपने में बहुत कौतूहलपूर्ण हैं (फ० XXIV, 1) और आज के शतरंज की गोटियों के अधिक निकट हैं। मोहेंजोदड़ो से थोड़ी सी मानव मृण्मूर्तियों को भी उनके आकार-प्रकार के आधार पर मैके ने तो गोटियां ही माना है। इनको खेलने के लिए लकड़ी के बोर्ड बनाये गये होंगे जो नष्ट हो गये हैं। बूली को उर में लगभग सिंधु सभ्यता के सम-कालीन सभ्यता के संदर्भ में लकड़ी के दो बोर्ड मिले हैं। एक में बीस खाने थे और दूसरे में केवल बारह। इनमें काफी मात्रा में शंख से भराई की गई थी। इस तरह के खेल में आज के शतरंज से कहीं कम गोटियां प्रयुक्त होती रही होंगीं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिंधु सभ्यता के संदर्भ में पर्याप्त संख्या में प्राप्त हुई इन गोटियों में एक ही आकार-प्राकार की गोटियाँ बहुत थोड़ी—तीन-चार ही मिली हैं। इससे भी यही अनुमान लगाया जा सकता है कि यहाँ खेल थोड़ी ही गोटियों से खेला जाता था। मोहेंजोदड़ो में दो ईंटें मिली हैं जिन्हें खेल के बोर्ड की तरह इस्तेमाल किया जाता रहा होगा। ये खंडित हैं। एक ईंट में चार कतारों में उथले गड्ढे हैं और एक किनारे पर चार (शायद मूलतः पाँच) वर्गाकार छेद हैं। यह कहना कठिन है कि इस बोर्ड पर कितने छेद थे किंतु सर्वाधिक छेद वाली कतार में कुल पंद्रह छेद हैं। इनमें गोटी की तरह प्रयोग के लिए गुठलियों का प्रयोग करते रहे होंगे। गड्ढों की संख्या से मैके ने अनुमान लगाया कि शायद चार या पाँच लोग इस खेल में भाग लेते थे। मैके के अनुसार मेम्फिस में प्राप्त एक बोर्ड समानता में इसके निकट है जिसमें चौदह छेदों वाली तीन कतारें हैं। मैके ने युगाण्डा (अफ्रीका) के आजकल के आठ छेद वाली चार कतारों वाले बोर्ड का भी तुलना के लिए उल्लेख किया है। इसे दो ही लोग खेलते हैं। मोहेंजोदड़ो में प्राप्त दूसरी खंडित ईंट पर मैके के अनुसार मूलतः तीन कतारे थीं जिनमें से प्रत्येक में चार-चार खाने थे पर उन्होंने यह भी संभावना व्यक्त की है कि हो सकता है कि पूरा बोर्ड कई ईंटों को साथ जोड़कर बनाया गया हो और यह ईंट उसका एक भाग ही हो। इस ईंट के एक आयत में गुणा (×) का चिह्न था जो खेल में 'घर' का परिचायक लगता है। मैके ने ठीक ही कहा है कि घर की फर्श की ईंट पर इस तरह का चौसर बना मिलना इस बात का द्योतक है कि घर के नौकर लोग विशेष रूप से उसका प्रयोग करते थे। एक ईंट पर चार कतारों में उथले गड्ढे से बनाये गये हैं जिनमें गोलियों की सहायता से आजकल के बच्चों की तरह खेल खेलते थे। लोथल से भी दो खेलने के बोर्ड के नमूने मिले हैं—एक मिट्टी का और एक ईंट का (फ० XXIV, 2)।

विभिन्न प्रकार के पत्थर, सीप, पेस्ट आदि की छोटी बड़ी गोलियाँ भी मिली हैं। कुछ गोलियों पर अलंकरण भी मिलता है। मिट्टी की गोलियों पर या तो कुछ उथले से छेद बने हैं या उनकी सतह पर मिट्टी के छोटे-छोटे टुकड़े लगे हैं। सीप की गोलियों पर वृत्त-के-भीतर-वृत्त के डिजाइन हैं। काँचली मिट्टी के कंचों पर या तो इसी तरह का 'अलंकरण' है या फिर कुछ रेखाएँ 'छाया' के तौर पर हैं। इस तरह की गोलियाँ अनेक प्राचीन सभ्यताओं के उत्खननों में पायी गयी हैं। वे मिस्र में, प्रागैतिहासिक और ऐतिहासिक काल की संस्कृतियों के संदर्भ में पर्याप्त संख्या में मिली हैं और सिंधु सभ्यता में प्राप्त गोलियों से मिलती जुलती हैं। शंख की गोलियों पर उभरा हुआ अलंकरण है जो बीच में अभिप्राय के आकार की जगह छोड़कर शेष भाग को रगड़ने से बनाया गया था, यह विधि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निश्चिय ही श्रमसाध्य थी। कुछ गोलियां एकदम चिकनी सतह की हैं। मैके ने सुझाया है कि कंचे खेलने के लिए बनी गोलियों को इतनी सावधानी से बनाने की आवश्यकता नहीं थी।वे अमेरिका की मय सभ्यता का उल्लेख करते हैं जिनमें गोलियों का प्रयोग दैवी क्रियाओं के लिए किया जाता था। मिट्टी, सीप और पत्थर की बनी छोटी नुकीली कुछ शंक्वाकार वस्तुएँ उपलब्ध हुई हैं जिनकी कदाचित् आजकल के 'नौ पिनों' (नाइन पिंस) की सहायता से खेले जाने वाले जैसे किसी खेल में पिनों के स्थान पर प्रयोग किया जाता था। इनको कंचों से निशाना मार कर गिराया जाता रहा होगा।

नृत्य भी मनोरंजन का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। निस्संदेह सिंधु सभ्यता में यह कला लोकप्रिय थी। मोहेंजोदड़ो की कांसे की नर्तकी की दो आकृतियाँ और पत्थर की नृत्य करती हुई आकृति (जिसे मार्शल ने नटराज का पूर्व रूप बताया था और वासुदेवशरण अग्रवाल ने नर्तकी) तो सुप्रसिद्ध हैं ही (देखिये पृष्ठ 68,70)। मोहेंजोदड़ो की एक मुद्रा पर एक व्यक्ति ढोल-की-सी आकृति की वस्तु बजा रहा है। एक दूसरी पुरुष मूर्ति के कंधे से भी ढोल जैसी कोई वस्तु लटकती है जिससे स्पष्ट है कि उस काल के लोग ढोल जैसे किसी वाद्य-यंत्र से परिचित थे। इसमें कई व्यक्ति नृत्य करते भी दिखाये गये हैं (फ० ए० 356)। कुछ विद्वानों ने लिपि के कुछ चिह्नों को वीणा की तरह के किसी यंत्र का अंकन माना है। राव ने लोथल से प्राप्त सीप के एक उपकरण को किसी वाद्य-यंत्र का अंग माना है। गायन भी मनोरंजन का एक साधन रहा होगा, लेकिन इसके बारे में केवल कल्पना ही की जा सकती है। तत्कालीन साहित्य के अभाव में इसके साक्ष्य प्राप्त होने का प्रश्न ही नहीं उठता। मिट्टी के बने कुछ मुखौटे मिले हैं जिन्हें कुछ विद्वानों ने नाटक के पात्रों द्वारा प्रयोग किये जाने की संभावना व्यक्त की है। मोहेंजोदड़ो से प्राप्त एक मुद्रा पर एक आकृति है जो नृत्य की मुद्रा में है। इसका चेहरा तो आदमी की तरह है किंतु दुम बंदर की सी। कान काफी बड़े हैं और बंदर के जैसे नहीं है। मैके ने सुझाया है कि इसमें मुखौटा और नकली दुम लगाये हुए व्यक्ति का चित्रण अभीप्सित था।

// मछली, जो समीपवर्ती नदियों से प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थी, दैनिक भोजन का अंग अवश्य रही होगी। पर पशु-मांस संभवतः त्योहारों के अवसरों पर ही विशेष रूप से प्रयुक्त होता रहा हो। ऐसे अवसरों पर पशुबलि का भी आयोजन होता रहा होगा। शिकार खेलना (आ० 10, 4) और मछली पकड़ना मनोरंजन का भी साधन रहा होगा, वैसे मुख्यतः इनका आर्थिक महत्त्व था। मछली पकड़ने के कई काँटे खुदाई में प्राप्त हुए हैं। एक मुद्रा पर तीर से हिरन को मारते दिखाया गया है। एक अन्य मुद्रा पर एक मनुष्य पेड़ पर चढ़ा है। नीचे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जमीन पर बाघ है। यह आखेट से संबंधित दृश्य लगता है। ताँबे के बने बाणाग्र (बाण के फल) मिले हैं जिनसे धनुष-बाण का प्रयोग स्पष्ट है। मिट्टी की छोटी-छोटी प्राप्त गोलियाँ मिली हैं जो गुलेल में लगाकर पक्षी और छोटे-छोटे जानवर मारने के लिए प्रयुक्त की जा सकती थीं। कुत्ते की कई नस्लों का रूपांकन मिलता है, किंतु यह कहना कठिन है कि शिकार के लिए कुत्तों का भी प्रयोग करते थे या नहीं। बाद में सिंध में कुत्तों की सहायता से सूअर का शिकार करने की प्रथा रही और एलम में भी ऐसी प्रथा थी। हो सकता है कि सिंधु घाटी में भी ऐसी ही प्रथा रही हो।

कुछ मुद्राओं पर बैल की आकृति के आस-पास मनुष्य भी अंकित हैं। मोड़ ने इन दृश्यों को मनुष्य-वृष-युद्ध से संबंधित दृश्य का द्योतक माना है। मनोरंजन की यह प्रथा प्राचीन क्रीट की सभ्यता में बहुत लोकप्रिय थी। एक मुद्रा पर मनुष्य का दो व्याघ्रों से युद्ध (?) के दृश्य का अंकन संभवतः धार्मिक महत्त्व का परिचायक है। यह कहना कठिन है कि आधुनिक सरकस की भाँति वे लोग हिंस्र पशुओं से इस तरह मल्ल-युद्ध कर लोक रंजन करते थे। एक मुद्रा (आ० 10, 6, सबसे ऊपर का दृश्य) पर दो बैलों को लड़ते दिखाया गया है।

कुओं के पास बैठने के लिए बेंचे बनी मिली हैं। नारियाँ आ-आकर अपनी बारी की प्रतीक्षा में वहां बैठती रहती होंगी और गप-शप करके और गीत गाकर मन बहलाती रही होंगी। मिट्टी के बर्तन के टुकड़े और कुछ एक मुद्राओं पर नाव का चित्रण है। कोई आश्चर्य नहीं कि यातायात के अलावा इनका प्रयोग नौका-बिहार के लिए भी होता रहा हो। विशाल स्नानागार का धार्मिक महत्त्व हो सकता है, किंतु जल बिहार के लिए उसके प्रयोग की संभावना को नकारा नहीं जा सकता। उस विकसित नागरिक जीवन में विभिन्न अवसरों पर प्रीतिभोजों का आयोजन भी होता रहा होगा, विशेषतः त्योहारों, धार्मिक उत्सवों और विवाह तथा अन्य विभिन्न संस्कारों के संपन्न करने में। कुछ मुद्राओं के साक्ष्य से ज्ञात होता है कि कुछ उत्सवों में पशुओं को भी शोभा-यात्रा में ले जाया जाता रहा होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 15

सिंधु सभ्यता की लिपि

सिंधु सभ्यता की लिपि अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी और विद्वानों के लिए चुनौती बनी हुई है। महादेवन और विश्वनाथन द्वारा हाल ही के शोध कार्य के अनुसार अभी तक सभ्यता की कुल मिलाकर 2467 अभिलिखित वस्तुएं प्राप्त हुई हैं। इनमें से मोहेंजोदड़ो से 1398 तथा हड़प्पा से 891 प्राप्त हुई हैं जो कुल का क्रमश: 56.67 और 36.12 प्रतिशत होता है। इस तरह अभिलिखित वस्तुओं का लगभग 93 प्रतिशत अकेले इन दो ही स्थलों से प्राप्त हुआ है। इसमें मुद्राएं और मुद्रा-छापों, जिनकी संख्या 2228 है, ही संपूर्ण (2467) का 90·32 प्रतिशत हैं। अभिलिखित ताम्रपट्टों की संख्या 113 और लेख वाले ठप्पों से अंकित मृद्भाण्डों की संख्या 83 है। सुरकोटडा और वणावली में कुछ बर्तनों के टुकड़ों पर हड़प्पा लिपि चित्रित मिली है। अनेक भारतीय और विदेशी विद्वानों ने सिंधु सभ्यता के लेखों को पढ़ने का प्रयास किया और कुछ ने तो उन्हें सही पढ़ लेने का दावा भी किया। इनमें से कुछ प्रयास तो निश्चय ही वैज्ञानिक विधि पर आधारित हैं, और कुछ केवल लेखक के पूर्वाग्रहों को सिद्ध करने का प्रयास मात्र लगते हैं। जहां तक पढ़ लेने के दावों का प्रश्न है अधिक से अधिक एक ही दावा सही हो सकता है, परंतु अधिक संभावना यही है कि इनमें से एक भी सही नहीं है।

लिपि पढ़ने के प्रयास

इन लेखों को सर्वप्रथम 1925 में वैडेल (Waddell) ने पढ़ने का प्रयास किया। वह सिंधु सभ्यता के लोगों को आर्य मान कर चले। उन्होंने सुमेरी लिपि से तुलना कर और सुमेरी सभ्यता के लोगों और आर्यों को एक ही समझ कर सिंधु सभ्यता के लेखों को पढ़ने की चेष्टा की। इन लेखों में उन्होंने वेद, रामायण, और महाभारत के महापुरुषों के नाम पढ़े हैं और पशुओं की आकृतियों को भी लेख का ही अंग माना है। 1931 में लैंगडन ने और बाद में सी० जे० गैड्स और सिडनी स्मिथ ने भी इन लेखों के बारे नें यह धारणा व्यक्त की कि ये संस्कृत भाषा में लिखे हैं। स्मिथ ने तो मोहेंजोदड़ो की एक मुद्रा पर अंकित तीन पंक्तियों वाले लेख के अक्षरों के बारे में जो अनुमान लगाया है वह इस प्रकार है—पहली पंक्ति के सिरे पर का जो चिह्न है वह उनके अनुसार किसी शब्द का अन्त करने के लिए प्रयुक्त किया गया लगता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। तीसरी पंक्ति में जो लेख है वह नाम लगता है। बीच की पंक्ति में 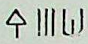 तीन चिह्न हैं जो पुत्र के द्योतक लगते हैं। संक्षेप में उनके अनुसार तीन पंक्तियों में से प्रथम में नाम, मध्य में पुत्रार्थक शब्द और अंतिम पंक्ति में नाम है। बीच की तीन लकीरों की उन्होंने 'त्रि' (तीन) के द्योतक होने की संभावना मानी और वर्णमाला के संदर्भ में 'त्रि' का त्र् का द्योतक माना। पहला अक्षर = पु, ||| = त्र्, और = अ, तीनों अक्षर = पु + त्र् + अ = पुत्र। स्मिथ का यह प्रयास रोचक अवश्य है किंतु मध्य के चिह्नों को यदि पुत्र अर्थ का द्योतक मान भी लिया जाय तो भी उसके लिए संस्कृत भाषा का शब्द 'पुत्र' ही प्रयुक्त हुआ है यह कहना कठिन है। पुनश्च तीन लकीरों को 'त्रि' फिर 'त्रि' से 'त्र्' और फिर अलग से 'अ' का जोड़ना यह एक क्लिष्ट कल्पना लगती है। इसे बिना किसी अन्य पुष्ट साक्ष्य के स्वीकार करना कठिन है।

प्राणनाथ ने ब्राह्मी लिपि के साथ सिंधु लिपि का तुलनात्मक अध्ययन कर ब्राह्मी लिपि के साथ सिंधु सभ्यता के लिपि चिह्नों का ध्वनि निर्धारण करने की चेष्टा की है। उनका अनुमान है कि अक्षर व्यंजन हैं और कुछ पर स्वर मात्राएं लगी हैं। उनके अनुसार भाषा संस्कृत या प्राकृत थी। फिलण्डर्स पीट्री, जो मिस्री सभ्यता के अधिकारी विद्वान् हैं, ने यह मत व्यक्त किया है कि ये मुद्राएं राजकर्मचारियों की हैं और मिस्र की प्राचीन लिपि के तुलनात्मक अध्ययन से इसे पढ़े जाने की संभावना है। इन्होंने अपने ढंग से कुछ राजपदों के नाम भी पढ़ डाले। मेरिग्गि (Meriggi) के अनुसार यह लेख केवल पदवाचक नहीं हो सकते। उनके अनुसार यह लिपि भाव-ध्वनि लेखन शैली पर आधारित लगती है और इसके कुछ चिह्न भावचित्र और कुछ phonem थे। इन्हें पहचानने के लिए उन्होंने अधिकांशतः हिताइत शब्दावली का सहारा लिया। हंवेज़ी (Hevesy) ने सिंधु लिपि और ईस्टर द्वीप की लिपि में समानता बतायी है और यह मत व्यक्त किया है कि ईस्टर द्वीप की लिपि से सिंधु लिपि का विकास हुआ था। पर दो लिपियों की समानता ऊपरी लगती है और इस मत को स्वीकार करने में सबसे कठिनाई यह है कि ईस्टर द्वीप की लिपि की तिथि ज्ञात नहीं है।

1934 में हण्टर ने इस लिपि को पढ़ने का प्रयास करते हुए उसका वैज्ञानिक विधि से विश्लेषण किया। इन्होंने कहा कि सिंधु लिपि एक विशिष्ट लिपि है, पर सुमेर और एलम की लिपियों से मिलती जुलती है। लेखों को उन्होंने नाम और पद का सूचक माना और अपना यह मत व्यक्त किया कि या तो इस सभ्यता के लोग द्रविड़ थे या फिर किसी नदी अथवा समुद्र तट वासी थे। हिता-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इत सभ्यता के फ्रांससी विद्वान् ह्रोज़नी (Hrozny) के अनुसार ये लोग आदि हिताइत थे जो भा-योरपीय की एक शाखा थी। हिताइत भाषा के आधार पर उन्होंने सिंधु लिपि को पढ़ने का प्रयास किया। मेसोपोटामिया के प्राचीन नगर उसकी प्रसिद्ध मुद्रा जिसे अधिकांश विद्वान् सिंधु सभ्यता का मूल मानते हैं, पर अंकित सुमेरी लिपि में अंकित लेख को वे सक् कुसि पढ़ते हैं और इसे सग्कुसि के लिए प्रयुक्त मानते हैं। 'कुसि' को वे उस क्षेत्र का नाम मानते हैं जिसमें सिंधु सभ्यता के नगर स्थित थे और उन्होंने सिंधु सभ्यता की उनसठ मुद्राओं पर 'कुसि' शब्द पढ़ डाला, जबकि इन सभी उनसठ मुद्राओं के चिह्न पूर्णतः समान नहीं हैं।

फादर हेरास ने यह मत व्यक्त किया है कि हड़प्पा वासी द्रविड़ थे, आर्य नहीं। ये लोग भूमध्यसागरीय जाति की शाखा के थे और द्रविड़ भाषा से संबद्ध भाषा का प्रयोग करते थे। हेरास इस भाषा को द्रविड़ी नाम देते हैं, जो उनके अनुसार आज की द्रविड़ भाषाओं के मूल में थी। उनका मत है कि प्रत्येक चिह्न एक पूर्ण शब्द का द्योतक है, अक्षर या सिलेबल का नहीं। हेरास ने इन लेखों में अपने ढंग से कुछ नाम ही नहीं, अपितु कविताओं के अंश भी पढ़ डाले।

स्वामी शंकरानन्द सिंधु सभ्यता के लोगों को आर्य मानकर चले और उन्होंने तांत्रिक प्रतीकों के आधार पर लिपि को पढ़ने का प्रयास किया। बेनी-माधव बरुआ ने भी इन चिह्नों को तांत्रिक चिह्न माना है, किंतु उनके निष्कर्ष स्वामी शंकरानन्द से भिन्न हैं। कृष्णराव भी लेखों की भाषा संस्कृत मानते हैं। एस० के० रे सिंधु लिपि को आदि ब्राह्मी का मूल मानते हैं। टी० एन० राम चन्द्रन भी मुद्रा लेखों को वैदिक कर्मकाण्ड से संबंधित मानते हैं।

फतेह सिंह का कहना है कि इन मुद्राओं का प्रयोग धार्मिक पुस्तकों की छपाई के लिए होता था। उनके अनुसार भाषा वैदिक संस्कृत के निकट है तथा प्रतीकात्मक है। उन्होंने ब्राह्मणों व उपनिषदों में लिखे मंत्र और वैदिक देवी-देवताओं के नाम पढ़े हैं। वे हड़प्पा सभ्यता में एक नहीं अनेक लिपियों (कम से कम चार) के प्रयोग की बात कहते हैं। मुद्राओं पर अंकित एक-शृंगी पशु को विशिष्ट प्रकार का अज मानते हैं और उसके लिए वैदिक साहित्य से प्रमाण देते हैं।

रूसी विद्वानों के एक दल ने, जिसके सदस्य वनोरोजोव वोल्कोव, गुरोव और अलेक्सेयेव थे, कम्प्यूटर की सहायता से यह जानने का प्रयास किया कि सिंधु लिपि के अमुक चिह्न विभक्ति, लिंग, काल, रुपिम (morphemes) इत्यादि के द्योतक हो सकते हैं। अपने निष्कर्षों को विभिन्न ज्ञात भाषाओं के साथ तुलना करने पर वे इस परिणाम पर पहुँचे कि इस दृष्टि से सिंधु सभ्यता के लेख द्रविड़

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाषा के अधिक निकट हैं। उन्होंने यह भी मत व्यक्त किया कि कुछ अपवादों को छोड़ कर, लिपि दाएँ से बाएँ पढ़ी जानी चाहिए।

फिनलैंड के चार विद्वानों की एक टोली ने हाल ही में इस लिपि पर काम किया। इस टोली के सदस्य थे—भारतीय-विद्या-विशारद अस्को पर्पोला, भाषाविद् पी० आल्तो, असीरीय-विद्याविद् सिमोपार्पोला और गणितज्ञ एस० कोस्केन्नेमि। लिपि पढ़ लेने के इस टोली के दावे की काफी धूम रही और दिल्ली के एक प्रमुख अंग्रेजी दैनिक (स्टेट्समैन) ने तो उस पर संपादकीय ही लिख डाला। इस प्रयास का कुछ विस्तार से उल्लेख करना समीचीन होगा। उपर्युक्त विद्वान् हड़प्पा संस्कृति के मूल को द्रविड़ ही मानते हैं। उन्होंने भी कौन सा चिह्न आदि या अंत में कितनी बार आया है और कौन चिह्न जोड़े या समूह में कितनी बार आते हैं इसका वैज्ञानिक विधि से विश्लेषण किया और इनके लिंग, कारक आदि का अर्थ लगाने की चेष्टा की। वे एक चिह्न को पूरे शब्द का वाचक (लोगोग्राफिक) मानते हैं।

सिधु लिपि में कंघी के आकार का एक चिह्न है। द्रविड़ भाषा में कंघी को पेंटिका कहते हैं, और पेंटि का अर्थ इसी भाषा में 'स्त्री' है। अतः इन फिन विद्वानों ने कंघी जैसे चिह्न को स्त्री माना और लेख-संदर्भ में उसे स्त्रीलिंग का द्योतक बताया। ये विद्वान् पहले के वैज्ञानिक प्रयासों के विश्लेषणों से भलीभाँति परिचित थे। उनका प्रयास नवीनतम वैज्ञानिक प्रयासों में है। किंतु जैसा कि ब्रजवासी लाल और टी० बर्रो का मत है, ये प्रयास सराहनीय होते हुए भी विसंगति पूर्ण हैं। यह भाषा द्रविड़ ही है और लिपि के चिह्नों की पहिचान सही की गई है, इसका कोई ठोस आधार नहीं है। कुछ चिह्न ऐसे भी हैं जिनकी पहिचान एक से अधिक वस्तुओं से की जा सकती है और की भी गई है। यथा फिन विद्वान चिह्न को 'हाथ' मानते हैं और इसका अर्थ व्यापार से लेते हैं, जबकि उपर्युक्त रूसी विद्वान् इसे एक 'मुट्ठी-भर' का सूचक मानते हैं और इसे माप का पैमाना कहते हैं। इस संदर्भ में हमें एक कहानी याद आती है जिसमें फ्रांसीसी भाषा से अनभिज्ञ एक भूखे जर्मन ने वर्षा के दिन फ्रांस के एक होटल में बैठ कर कुकुरमुत्ता से बनी एक खाद्य-सामग्री खाने की इच्छा से उसका चित्र बना कर होटल के परिचारक को दिया, और बेसब्री से वांछित भोज्य-सामग्री की प्रतीक्षा करता रहा। कुछ समय के बाद वह परिचारक आया और उसने उस जर्मन के हाथ में एक छाता थमा दिया।

अगर सिंधु सभ्यता की भाषा को द्रविड़ मान लिया जाय तो आशा यही की जानी चाहिए कि उसका व्याकरण और प्राचीन तामील का व्याकरण एक जैसा होगा। फिन विद्वानों (जिन्होंने इसे द्रविड़ों की कृति माना है) के निष्कर्ष

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस दृष्टि से खरे नहीं उतरते । फिन विद्वानों ने कंघी और बर्तन के चिह्नों को क्रमशः लिंग और कारक का द्योतक माना है । किंतु विशेषज्ञों का कथन है कि वह द्रविड़ भाषाओं के व्याकरण के विपरीत है, जिसके अनुसार अंत के चिह्न को कारकवाची चिह्न होना चाहिए, लिंगवाचक नहीं ।

शि० रंगनाथ का कहना है कि परवर्ती सिंधु लिपि, जैसा कि लोथल और काठियावाड़ के कुछ अन्य क्षेत्रों के साक्ष्य से स्पष्ट है, के लगभग 75 प्रतिशत वर्ण समकालीन सेमेटिक वर्णों से मिलते हैं और उनका भी वही उच्चारण करना ठीक होगा जो कि सेमेटिक वर्णों का है । सिंधु सभ्यता के लोगों का पश्चिमी एशिया से घनिष्ठ संबंध था ही । वे उच्चारण की दृष्टि से (phonology) हिताइत और सिंधु सभ्यता की भाषा में पर्याप्त समानता मानते हैं । उनका कहना है कि लेखों से ऐसा प्रतीत होता है कि इन मुद्राओं का प्रयोग मुख्यतः शासकों ने ही किया था और इनमें कुछ नाम वैदिक साहित्य में वर्णित ऋषियों के हैं और कुछ भौगोलिक । उनकी भाषा भा-योरपीय थी । एक लेख में वह मह्ल पढ़ते हैं । उन्होंने इसे मेसोपोटामिया के लेखों में प्राप्त मेलुह का द्योतक माना है, जिसे अधिकांश विद्वान हड़प्पा सभ्यता के किसी स्थल का द्योतक मानते हैं ।

यों तो अगर लिपि पढ़ भी जाय पर लेख की भाषा का ज्ञान न हो तो पढ़ लेने पर भी लेख का अर्थ निकालना और भाषा की निश्चित रूप से जानकारी होने पर भी यदि जिस लिपि में वह लिखा है उसका ज्ञान नहीं हो तो लेख पढ़ना कठिन होता है । फिर भी ऐसे लेखों का पढ़ना जिसकी न भाषा के बारे में और न लिपि के बारे में ही जानकारी हो[1] कितना कठिन कार्य है, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है ।

लिपि की सामान्य विशेषताएं

लिपि पढ़ने के लिए किये गये विभिन्न प्रयासों की जानकारी कराने के

---

1. पुराविद् साधारणतया यह मानते हैं कि लेखन कला का प्रारंभ सर्वप्रथम मेसोपोटामिया में हुआ और वहीं से फिर मिस्र वालों ने लेखनकला के विकास की प्रेरणा ली । जो विद्वान् इस बात की संभावना मानते हैं कि सिंधु सभ्यता ने भी प्रेरणा मेसोपोटामिया से ली, वे भी एक मत से यह घोषित करते हैं कि केवल भाव ही ग्रहण किया और जिस विकसित रूप में हम सिंधु लिपि को अलग-अलग पाते हैं वह मेसोपोटामिया से पर्याप्त भिन्न है । विभिन्न विद्वानों ने सिंधु भाषा बलूचिस्तान में द्रविड़ प्रकार की ब्राहुई भाषा की तरह की भाषा, मुण्डा वर्ग की भाषा, द्रविड़ भाषा और भा-योरोपीय भाषा माना है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पश्चात् लिपि के संबंध में निम्नलिखित कुछ ऐसी तर्क संगत बातों का उल्लेख करना समीचीन होगा जो सामान्य विशेषताओं के रूप में स्वीकार की जा सकती हैं :

1. यह लिपि अपनी अलग विशिष्टता लिए है और अन्य प्राचीन अर्वाचीन देशी और विदेशी लिपियों से उसकी तुलना करने पर समानता की अपेक्षा उसमें भिन्नता ही अधिक दिखाई देती है। इसलिए इसके कुछ अक्षरों की तुलना जहां प्राचीन मेसोपोटामिया, मिस्र आदि की लिपि के अक्षरों से की गई है, वहां कुछ ने इसे सुमेरीय, पूर्व-एलैमाइट (प्रोटोएलेमाइट) से, कुछ ने मिनाअन से, कुछ ने हिताइत से और कुछ ने ईस्टर द्वीप की लिपि से जोड़ा है। ऐसी भी संभावना व्यक्त की गई है कि नव पाषाणकाल की कोई लिपि रही होगी जिससे इन विभिन्न संस्कृतियों के लोगों ने अपने-अपने ढंग से विभिन्न लिपियों का विकास किया हो, फलस्वरूप उन लिपियों का अपना अलग-अलग व्यक्तित्व स्थिर हुआ हो।

2. जिस रूप में यह प्राप्त है वह आदिम लिपि नहीं अपितु पर्याप्त विकसित लपि का उदाहरण है; और इस विकसित स्थिति तक पहुँचने के लिए शताब्दियों का समय अपेक्षित है। साधारणतः यह देखा गया है कि लिपि आदिम रूप से जैसे जैसे विकसित होती जाती है वैसे ही उसके वर्णमाला के अक्षर कुछ सरल और उनकी संख्या कुछ कम होती जाती है। इस संदर्भ में यह बताना समीचीन होगा कि मेसोपोटामिया में हड़प्पा सभ्यता के लगभग समकालीन पूर्व-राजवंश काल की लिपि में लगभग 900 अक्षर-चिह्नों का प्रयोग होता था, वहाँ यदि हम अक्षरों के परिवर्तित रूपों को हटा दें तो हड़प्पा सभ्यता के लेखों में प्रयुक्त चिह्नों की संख्या लगभग तीन सौ ही रह जाती है। यों चिह्नों की संख्या के बारे में भी विद्वानों में मतैक्य नहीं है। दानी ने इनकी संख्या 537 बतायी है, किंतु यह भी स्पष्ट किया है कि अंकों और कोष्ठ-चिह्नों और इसी तरह के कुछ अन्य चिह्नों को छोड़ दिया जाय तो कुल चलन चिह्न 27 चिह्न वस्तुओं के और 27 चिह्न ज्यामितीय ही बाकी बचते हैं। महादेवन ने 410, स्मिथ और गैड्ड ने 396, हण्टर ने 250, सोवियत और फिन विद्वानों ने 300, हेरास ने 241, फेयर सर्विस ने 350 और 425 के बीच चिह्नों की संख्या मानी है। चिह्नों की संख्या के संबंध में सबसे छोटी संख्या शि० रंगनाथ राव ने सुझाई है। उनका कहना है कि चिह्नों की संख्या अधिक इसलिए आंकी गई कि संयुक्ताक्षरों को नहीं पहचाना गया। उनके अनुसार शुरू में लगभग 52 ही मूल चिह्न थे और बाद में हड़प्पा सभ्यता के अंतिम चरण में इनकी संख्या केवल 20 ही रह गई।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विभिन्न संयुक्ताक्षरों के कारण चिह्न भिन्न-भिन्न लगते हैं। दूसरी बात यह है कि व्यंजनों पर स्वर की मात्राएं लगाई गई हैं जिससे भी अक्षर-चिह्नों में अंतर आ गया है जिन्हें विद्वानों ने भिन्न चिह्न मान लिया।

3. मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा में सभ्यता का जीवनकाल विद्वानों ने 500 वर्ष से 1000 वर्ष तक आंका है। इस दीर्घ काल में इस सभ्यता की लिपि में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ नहीं दिखाई देता। हाल ही में लोथल और काठियावाड़ के हड़प्पा संस्कृति के अन्य स्थलों से प्राप्त कुछ लेखों के आधार पर शि० रंगनाथ राव ने यह मत व्यक्त किया है कि इस क्षेत्र में, समय के साथ-साथ लिपि में भी कुछ परिवर्तन हुए थे।

4. प्राप्त लेखों में कोई विशाल सार्वजनिक लेख, कोई व्यक्तिगत या व्यापार संबंधी पत्र, ऐतिहासिक लेख, या प्रशस्ति, अथवा साहित्यिक कृति नहीं हैं। लेख जो मिले हैं वे सभी खुदे हुए हैं (या बर्तनों के संदर्भ में लेखों के ठप्पे हैं), और बेलोच हैं। स्याही से भोजपत्र या कपड़े पर लिखा हुआ या गीली मिट्टी पर कलम से लिखा हुआ एक भी लेख, जिसमें प्रवाह के साथ लिखने की संभावना होती है, नहीं मिलता। सुरकोटडा और बणावली से थोड़े से बर्तनों के टुकड़े मिले हैं जिन पर स्याही से अक्षर चिह्नित हैं। पर उपलब्ध उदाहरणों में बहुत थोड़े ही एक साथ लिखे मिले हैं। यों तांबे या पत्थर पर बड़े लेख का न मिलना इस बात का द्योतक हो सकता है कि लेख कपड़ा या भोजपत्र जैसी अपेक्षाकृत शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओं पर लिखे जाते रहे होंगे।[1] इसके विपरीत फेयरसर्विस का कहना है कि बड़े लेख और प्रवाहमय लेखों का न मिलना इस बात का द्योतक है कि लेखन का प्रयोग सीमित उद्देश्य के लिए था। चूंकि लेख अधिकांशतः मुद्राओं पर मिलते हैं अतः यह लिपि मात्र मुद्रा-लेखों के लिए प्रयुक्त लगती है।

5. जहां तक लिपि के स्वरूप का प्रश्न है संसार की विभिन्न लिपियों का अध्ययन करने के पश्चात् विद्वान् इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि लिपि का स्वरूप निम्नलिखित में से ही एक रहा होगा—भाव-चित्रक (ideographic) जिसमें

---

1. यों मैके ने मोहेंजोदड़ो से प्राप्त पक्की मिट्टी की दो पट्टिकाओं को पहचान लिखने की पट्टिका से की है, जिन पर उनके अनुसार स्याही से अक्षर लिखते थे तथा उन्हें साफ करके पुनः प्रयोग करते थे। एक पट्टिका 17·5 सेमी लम्बी, 7·5 सेमी चौड़ी और 1 सेमी मोटी है, दूसरी 8 सेमी लम्बी 7·97 सेमी चौड़ी और 1·8 सेमी मोटी है। पर इनकी लेखन पट्टिकाओं के रूप में पहचान संदेह से परे नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रत्येक चिह्न एक शब्द का द्योतक होता है, अक्षर सूचक (syllabic) जिसमें एक चिह्नएक अक्षर (सिलेबिल) का द्योतक होता है और वर्णानुक्रमिक (alphabetic) जिसमें एक चिह्न एक वर्ण का द्योतक हो। लिपि के कुछ चिह्नों की पहिचान विभिन्न वस्तुओं से की जा सकती है, यथा, मनुष्य, मछली, पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े, वनस्पति (जैसे पीपल की पत्ती), मानव हाथ और पांव और शरीर के अन्य अंग, सींग, पहिया, घड़ा, छत्र, कुर्सी, मेज, धनुष-बाण इत्यादि। अक्षर-चिह्न की किसी वस्तु से ठीक पहचान कर भी ली जाय तब भी यह कहना कठिन है कि उसका उल्लेख किस संदर्भ में हुआ है। सीधी लकीरों की अंकों के द्योतक होने की संभावना है, पर अंकों का प्रयोग किस संदर्भ में हुआ है कहना कठिन है; ऐसा भी संभव है कि किसी संदर्भ में उनका प्रयोग बहुवचन दिखाने के लिए हुआ हो।

लिपि लिखने की दिशा

इस लिपि में क्या लिखा है इस पर तो विवाद है ही, लेखन की दिशा के बारे में भी विद्वान् एकमत नहीं हैं। कोई उसे ब्राह्मी की तरह बायें से दायें लिखी गई बताता है और कोई खरोष्ठी की तरह दायें से बायें। कोई उसे ऐसी (बूस्त्रोफेदन) लिपि मानता है जिसमें विभिन्न पंक्तियों में लेखन की दिशा क्रमशः बायें से दायें और दायें से बायें बदलती रहती है। विद्वानों ने कुछ चिह्नों को प्रारम्भ का, कुछ को अंत का, और कुछ को संख्यावाचक निर्धारित करने का प्रयास किया है। उनके स्वरूप और लेख में उनकी स्थिति से इस तरह का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है, और इससे लिपि के लिखने के रुख का पता चल सकता है। अनेक लेखों में एक ही प्रकार के क्रम में आने वाले अक्षरों का भी विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। ये प्रयास निश्चय ही वैज्ञानिक विधि पर आधारित हैं।

लगभग 99% ऐसी मुद्राओं में, जिन पर अभिप्राय और लेख दोनों ही अंकित हैं, पशु को दायें मुख किये दिखाया गया है। चूंकि साधारणतः पशुओं का अंकन सिर के भाग से ही प्रारंभ किया जाता है, अतः दक्षिणाभिमुख सिर इस बात का द्योतक लगता है कि अक्षरों को दायीं ओर से बायीं ओर लिखा जाता रहा होगा। इस संदर्भ में यह बताना समीचीन होगा कि परवर्ती ऐति-हासिक काल की मुद्राओं पर, जिनमें ब्राह्मी लिपि में लेख और पशुओं की आकृतियां हैं, पशु बाईं ओर सिर किये दिखाये गये हैं, जो कि सिर से प्रारम्भ कर चित्र बनाने की विधा, बायें से दायें ओर को लिखी जाने वाली ब्राह्मी लिपि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के अनुरूप है। यह निष्कर्ष फतेह सिंह की उस धारणा से अधिक तर्क संगत लगता है जिसके अनुसार हड़प्पा सभ्यता की मुद्राओं पर दाईं ओर मुख वाले (दक्षिणाभिमुख) पशु देवत्व के प्रतीक हैं और बाईं ओर मुख वाले (वामाभिमुख) पशु दैत्यत्व के; विशेष रूप से इसलिए कि सिंह हड़प्पा संस्कृति और वैदिक संस्कृति में अन्तर नहीं करते और उनकी इस धारणा को मान ऐतिहासिक काल की ब्राह्मी लिपि वाली मुद्राओं पर वामाभिमुख पशुओं से दैत्यत्व दिखाने का अभिप्राय मानना होगा जो ठीक नहीं लगता। मैके ने अपनी पुस्तक 'फर्दर एक्सवेशंस ऐट मोहेंजोदड़ो' में दस या ग्यारह ऐसी मुद्राओं का उल्लेख किया है जिनकी छापों में पशु वामाभिमुख दिखेंगे, बाकी (जिनकी संख्या कई सौ है) सब में दक्षिणाभिमुख। उनका सुझाव है कि ये थोड़े से अपवाद इसलिए हैं कि शायद कलाकार ने इन मुद्राओं में पशुओं की आकृति का आलेखन करने में किसी अन्य मुद्रा की छाप की नकल कर दी। हमें मैके का यह सुझाव काफी तर्कपूर्ण लगता है।

मोहेंजोदड़ो से प्राप्त एक मुद्रा पर दो पंक्तियों का लेख है। एक पूरी पंक्ति तो भरी है। दूसरी पंक्ति में पहली पंक्ति के बायीं ओर के अंतिम अक्षर के नीचे का चिह्न है। यह चिह्न अन्यकई मुद्राओं के लेख-पंक्तियों मेंअंत में मिलता है। स्पष्टतः जगह की कमी के कारण ही इस अक्षर को दूसरी पंक्ति में लिखना पड़ा। निश्चय ही अंत में आने वाला यह चिह्न प्रारंभिक चिह्न नहीं हो सकता, क्योंकि यदि यह प्रारंभिक चिह्न होता तो उसकी पहली पंक्ति में किनारे से पहला अक्षर होना चाहिए था। मोहेंजोदड़ो की ही एक अन्य मुद्रा पर लेख लिखने वाले को जगह की कमी महसूस हुई तो उसने दाईं ओर के चिह्नों को एक दूसरे के काफी निकट लिखा, किंतु जब फिर भी जगह पूरी नहीं हुई तो एक अक्षर नीचे की पंक्ति में लिख दिया। इससे ही स्पष्ट हो जाता है कि लेख बायें से दायें लिखा गया, और दूसरी पंक्ति में जो चिह्न है वह लेख के अंत के चिह्न का द्योतक है। अगर इस तरह का चिह्न अन्य लेखों के संदर्भ में, लेख के बीच में आता है तो इसका अर्थ यह लगाया जा सकता है कि वहां पर वह वाक्य के अंत का द्योतक है।

गैड्ड ने मोहेंजोदड़ो की एक ऐसी मुद्रा का उदाहरण दिया है जिस पर केवल लेख ही है, पशु की आकृति नहीं। लेख अपेक्षाकृत कुछ बड़ा है और मुद्रा के वर्गाकार क्षेत्र में तीन किनारों पर है। ऊपरी ओर बाएं किनारे में पूरे और नीचे के किनारे के बड़े हिस्से पर है। इसके अक्षरों के सिरे को देखते हुए 90 अंश के कोण पर मुद्रा घुमाने पर ही लेख को पढ़ने की सही स्थिति मिलती है। स्पष्ट है कि मुद्रा को हाथ से घुमा कर लेख पढ़ा गया और दूसरे तथा तीसरे वर्ग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(सेक्शन) की स्थिति इस बात की द्योतक है कि उसे दायीं ओर घुमाया गया था। दूसरे शब्दों में, पढ़ने वाले ने ऊपर दिए क्रम में पहले और सबसे लम्बे दायीं से बायीं ओर पढ़ना शुरु किया, फिर मुद्रा को 90 अंश पर घुमाया और दूसरे वर्ग को फिर दायें से बायें पढ़ा और इसी तरह तीसरे वर्ग को भी पढ़ा। यह मुद्रा लेख लिपि के दायें से बायें पढ़े जाने का यह महत्त्वपूर्ण प्रमाण लगता है।

लिपि की दिशा के निर्धारण में भी ब्रजवासी लाल के हाल ही के प्रयास बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। कालीबंगां की खुदाई से प्राप्त कुछ मिट्टी के बर्तनों पर उत्कीर्ण चिह्नों में कुछ चिह्न अपने पार्श्ववर्ती दाएं चिह्न को काटते हैं। लाल ने निष्कर्ष निकाला है कि इससे चिह्नों के लिखने के पूर्वापर संबंध को निश्चित किया जा सकता है। ध्यानपूर्वक निरीक्षण से, जो रेखा पहले लिखे अक्षर को काटेगी वह लगातार एकसार चलती दिखेगी जबकि जिस रेखा को काटा गया है वह काटे हुए स्थान पर एक सार न दिख कर कटी दिखेगी। अणुवीक्षण यंत्र से यह और भी स्पष्ट दिखेगा। इस संदर्भ में उन्होंने खरोष्ठी लिपि (जिसके दाएं से बाएं ओर लिखा जाना निश्चित रूप से ज्ञात है) के ऐसे लेख का उदाहरण दिया है जिसमें कालीबंगां के समान बाएं अक्षर की रेखा दाएं अक्षर की रेखा को काटती है। निश्चय ही श्री लाल का लिपि की दिशा के निर्धारण में यह वैज्ञानिक प्रयास अत्यंत महत्त्पूर्ण एवं सराहनीय है।

लेखों का अनुमानित स्वरूप

एक प्रकार के जानवर की आकृति अनेक मुद्राओं पर मिली है, पर उन पर लेखों में समानता नहीं है। ऐसा देखा गया है कि अनेकशः विभिन्न प्रकार के लेखों पर एक ही अभिप्राय मिलता है और समान लेख वाली मुद्राओं पर विभिन्न अभिप्राय। निश्चय ही एक ही तरह के अभिप्राय वाली मुद्राओं के लेख की विभिन्नताओं का कारण पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग नहीं माना जा सकता। इससे कम से कम इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि मुद्राओं पर अंकित लेख और अभिप्राय में परस्पर सामंजस्य नहीं है। अथक प्रयास के बाद अगर कभी विद्वान् इस लिपि को पढ़ने में सफल हो भी गये तो भी हमें इतिहास निर्माण के लिए कोई बहुत महत्त्वपूर्ण सामग्री शायद ही मिल सके, क्योंकि इन छोटे लेखों में अधिक अभिव्यक्ति की गुंजाइश नहीं हो सकती। शायद व्यक्तियों के नाम, और कुछ में उनके साथ शायद पद, पिता, संस्था या फर्म का नाम, या धार्मिक तंत्र-मंत्र[1]

---

1. इस सिलसिले में कालीबंगां के गढ़ी वाले टीले में (जिसके दक्षिण में अग्नि-वेदी युक्त चबूतरा है) सात एक जैसे लेख वाली मुद्राएं उल्लेखनीय हैं। लगता है कि इनमें धर्म संबंधी कुछ फार्मूले लिखे हैं। उनकी पीठ पर मुहर बंद करने के रस्सी के निशान नहीं हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बस ऐसा ही कुछ होने की संभावना लगती है। यह भी संभावना व्यक्त की गई है कि विभिन्न पशुओं की ये आकृतियां या तो समाज की विभिन्न वर्ग द्वारा प्रयुक्त किये जाने के द्योतक हैं (इस संभावना के अंतर्गत जिन जानवरों का मुद्राओं पर अल्प संख्या में चित्रण है यथा जेबु (zebu) और हाथी, वह उच्च वर्ग, यथा पुरोहित वर्ग, के द्योतक हैं) अथवा विभिन्न व्यापारियों ने अपनी श्रेणी के प्रतीक के रूप में इनका प्रयोग किया है। ऐसी भी संभावना व्यक्त की गई है कि हो सकता है कि कुछ जानवरों का कोई कर्मकाण्डी महत्त्व रहा हो और अन्यों का नहीं। यदि ऐसा था तो क्या लेख मंत्र माने जा सकते हैं? फतेह सिंह का कहना है कि सिंधु सभ्यता में मुद्राओं का प्रयोग धार्मिक पुस्तकों की छपाई के लिए होता था। यों तो वैसे भी इतने प्राचीन काल में छापेखाने के होने की संभावना कम ही लगती है, और यदि छपाई में इनका प्रयोग हुआ होता तो जहां पर छापेखाने रहे होंगे वहां पर बड़ी संख्या में मुद्राएं मिलनी चाहिए थीं। उत्खनन में ये मुद्राएं यत्र-तत्र, कम अधिक संख्या में, मिलीं। ईराक में कपड़े पर हड़प्पा सभ्यता की मुद्रा छाप का मिलना इस बात का द्योतक है कि इनका प्रयोग मुद्रा-छाप लगाने के लिए होता था। यों प्राचीन ऐतिहासिक काल के भारतीय एवं विदेशी साक्ष्यों से भी इनके मुद्रा के रूप में प्रयुक्त होने की संभावना लगती है। शायद मुद्रा बनाने वाले विभिन्न आकार की और विभिन्न अभिप्राय वाली मुद्राएं बना कर रखते थे और ग्राहक उनमें से किसी को पसंद कर उन पर मुद्रा-निर्माता से अपना नाम व पद आदि खुदवा लेते थे। यही कारण है कि कभी-कभी जगह की कमी के कारण लेख बराबर अक्षरों में ठीक तरह नहीं लिखे जा सके, और कभी लेखों के शेषांश के एक या दो अक्षरों को दूसरी पंक्ति में लिखना पड़ा। यदि ऐसी बात नहीं होती और मुद्रा बनाने वाले को पहले से ही मालूम होता कि लेख कितना बड़ा है तो वह अक्षरों को ठीक तरह लिखता और उसी हिसाब से जानवर की आकृति छोटी बना देता।

क्या सिंधु लिपि ब्राह्मी लिपि की मूल है?

हड़प्पा सभ्यता की खोज से पहले ही कनिंघम ने यह मत व्यक्त किया था कि ब्राह्मी लिपि का उद्भव किसी चित्रलिपि से हुआ है। भारत में ही इस तरह की लिपि हड़प्पा सभ्यता के अंतर्गत मिलने से कनिंघम के मत को बल मिला। इस मत के मानने वाले अन्य विद्वानों में स्मिथ, लैंग्डन गैड्ड, हंटर, सुधांशु कुमार राय आदि उल्लेखनीय हैं। उनका कहना है कि भारत की परंपरागत लिपियां और ब्राह्मी दोनों ही सिंधु लिपि से ली गई हैं। परंपरागत लिपियां सिंधु लिपि से सीधे ही ली गई हैं, जबकि ब्राह्मी मुख्य धारा से हटी हुई है। उनके अनुसार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्राह्मी को संभवतः बुद्ध ने ही अपने उपदेशों (जो कि ब्राह्मण धर्म के सिद्धांतों से भिन्न थे) के प्रचार के लिए प्रयोग किया था। अशोक भी बौद्ध धर्म का अनुयायी था और इसीलिए उसने भी ब्राह्मी लिपि का ही प्रयोग किया। किंतु चूंकि अशोक के पहले के ब्राह्मी लेख न के बराबर हैं अतः सिंधु लिपि के ब्राह्मी लिपि तक विकास होने के विभिन्न चरणों के लिए कोई साक्ष्य नहीं है, और साक्ष्यों के अभाव में इस मत को विशेष तूल नहीं दिया जा सकता। लेकिन जैसे ब्रजवासी लाल ने दिखाया है सिंधु सभ्यता के लिपि के चिह्नों से मिलते जुलते कुछ चिह्न मध्य भारतीय ताम्र-पाषाण संस्कृति, ताम्र-निधि संस्कृति, और बृहद् पाषाण संस्कृति के मृद्भाण्डों पर भी ग्रेफिटी के तौर पर अंकित मिलते हैं। इनसे कुछ ऐसा आभास लगता है कि सिंधु सभ्यता की लिपि इस सभ्यता के साथ ही नष्ट हो गई। कुछ विद्वान्, जिनमें सी० एल० फाब्री प्रमुख हैं, आहत सिक्कों (जिनका प्रचलन कम से कम छठी शताब्दी ई० पू० से अवश्य प्रारंभ हो गया था) पर अंकित चिह्नों और हड़प्पा लिपि-चिह्नों में कुछ साम्य पाते हैं। करीब 12 चिह्न पटना से प्राप्त एक ताम्रपट्टिका पर भी मिले हैं। किंतु कुछ समानता का यह साक्ष्य भी इतना पुष्ट नहीं कि इससे कोई निश्चित निष्कर्ष निकाला जा सके। दानी का कहना है कि उन्होंने सिंधु लिपि के सारे अक्षर चिह्नों (जो इनके अनुसार 537 हैं) और इन सिक्कों पर प्राप्त सभी चिह्नों (जिनकी संख्या उनके अनुसार लगभग उतनी ही हैं) का तुलनात्मक अध्ययन कर यह पाया कि केवल 15 ही चिह्न ऐसे हैं जो दोनों में मिलते हैं। दानी ने इस बात पर बल दिया है कि यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि सिंधु सभ्यता के चिह्न निश्चित रूप से लेखन शैली के अंग हैं जब कि सिक्कों के चिह्न चिह्न मात्र ही हैं, वे किसी लेख के द्योतक नहीं हैं। उनका यह भी कहना है कि कुछ चिह्नों को संदर्भ से अलग कर सिंधु सभ्यता से उनकी समानता दर्शाने से ही सिंधु लिपि की ऐतिहासिक काल तक निरंतरता सिद्ध नहीं हो पाती। तांत्रिक चिह्नों के बारे में वे कहते हैं कि ये ऐसे चिह्न हैं जिनमें तांत्रिक फार्मूला बहुत बाद को उस समय प्रयुक्त हुए जिसे भारतीय इतिहास का मध्य-काल कहते हैं। दोनों के बीच निरंतरता की कड़ी न मिलने से उसे सिंधु लिपि का उत्तरजीवी या अवशिष्ट मानना ठीक नहीं।

जो लोग यह मानते हैं कि ब्राह्मी सिंधु लिपि से ही विकसित हुई और साथ ही यह भी कि हड़प्पा लिपि, ब्राह्मी से भिन्न दिशा, अर्थात् दायें से बाएँ ओर को लिखी जाती थी, उनका यह कहना है कि ऐसा भी देखा गया है कि लिपि को दूसरे लोगों ने अपने लेखन का आधार बनाया, लेकिन उसमें इतने परिवर्तन ला दिये कि वह एक नयी लिपि का रूप ले बैठी। लैंग्डन ने बताया है कि ग्रीक लोगों ने फिनीशिया के अक्षरों को अपनाया, थोड़े दिनों तक तो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसके रुख (लिखने की दिशा)—दाएँ से बाएँ—को भी बनाये रखा, और फिर अपनी सुविधा के अनुसार उसके रुख को बाएं से दाएं बदल लिया। कुछ लोगों ने यह तर्क भी दिया है कि एरण से प्राप्त एक प्राचीन सिक्के पर अंकित ब्राह्मी लिपि के पाँच अक्षर दाएं से बाएं दिशा में लिखे हैं, जिससे ऐसा लगता है कि संभवतः मूलतः ब्राह्मी भी दाएं से बाएं लिखी जाती थी।

लैंग्डन ने बलपूर्वक कहा है कि ब्राह्मी के मूल के लिए ब्यूह्लर के फिनीशियन सिद्धांत की अपेक्षा सिंधु सभ्यता वाला सिद्धांत कहीं अधिक तर्कसंगत लगता है, क्योंकि तुलना करने पर इसके चिह्न फिनीशियन की अपेक्षा सिंधु लिपि के अक्षरों से कहीं अधिक मिलते-जुलते हैं। मार्शल का कहना है कि सिंधु लिपि को ब्राह्मी का मूल मानने की बात न केवल इसलिए तर्कपूर्ण लगती है कि ब्राह्मी लिपि के कुछ अक्षर हड़प्पा लिपि से मिलते-जुलते हैं, बल्कि इसलिए भी कि ब्राह्मी लिपि स्वर-मात्रा और एक अक्षर-चिह्न को दूसरे चिह्न से जोड़ने की परंपरा (संयुक्ताक्षर) के लिए विशेष विख्यात है, और हड़प्पा लिपि के चिह्नों में भी मात्राओं और संयुक्ताक्षरों का प्रयोग हुआ लगता है; अन्य किसी प्राचीन लिपि में इतने स्पष्ट रूप से और बड़े पैमाने पर इनका प्रयोग नहीं दिखता। किंतु उनका यह भी कहना है कि इससे कोई निश्चित निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता क्योंकि ऐसा संयोग मात्र भी हो सकता है। फिर यह भी तो नहीं कहा जा सकता कि ब्राह्मी लिपि और सिंधु लिपि के जो अक्षर समान लगते हैं उनके उच्चारण भी समान हैं। जब तक लगभग समान चिह्नों के उच्चारण भी समान होना निर्धारित नहीं किया जाता, ब्राह्मी के सिंधु लिपि से लिए जाने के विरुद्ध कुछ उसी तरह के तर्क दिये जा सकते हैं जैसे गौरीशंकर हीरानन्द ओझा ने ब्यूह्लर के ब्राह्मी को विदेशी मूल का मानने के विरुद्ध दिये थे।[1]

लेख पढ़े जाने की संभावनाएं

इस लिपि के पढ़े जाने की काफी संभावना होती यदि एक ऐसा लेख मिलता जिसमें वही बात दो लिपियों—हड़प्पा लिपि और एक ऐसी लिपि जो पढ़ी जा सकती हो—में लिखी होती और उसमें व्यक्तिवाचक शब्दों का प्रयोग अनेकशः हुआ होता। प्राचीन मिस्र की लिपि को इसी कारण पढ़ा जा सका कि वहां के सुप्रसिद्ध 'रोजेटा पाषाण' पर अंकित लेख प्राचीन मिस्री लिपि के साथ डेमोटिक

1. उन्होंने तर्क दिया था कि यदि बिना उच्चारण की समानता के केवल अक्षरों की बनावट ही ब्राह्मी लिपि के फिनीशिया की लिपि से लिए जाने की द्योतक है तो चूँकि ब्राह्मी के अनेक अक्षर अंग्रेजी के अक्षरों से भी मिलते हैं, तो क्या यह भी कहा जा सकता है कि ब्राह्मी अंग्रेजी लिपि से ली गई है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और यूनानी लिपियों में भी था; और चूंकि यूनानी लेख में ऐण्टोनी और क्लियोपाट्रा का नाम बार-बार आता था और यही नाम मिस्री लिपि में उसी प्रकार बार-बार होने के कारण प्राचीन मिस्री लिपि में भी इन दोनों के नाम के अक्षरों को पहचान लिया गया। यों माइकिल वेंट्रिस, जो पेशे से स्थापत्यशास्त्री हैं, ने 1952 में क्रीट की मिनोअन 'लिनियर बी' लिपि, दो लिपियों वाले लेख के अभाव में भी पढ़ ली। किंतु यह अब तक की प्राचीन लिपियों के पढ़े जाने के संदर्भ में इस तरह का एकमात्र सफल प्रयास है। ऐसी भी आशा व्यक्त की गई है कि अंततः विदेशी साक्ष्य, मुख्य रूप से सुमेरी साक्ष्य, ही हड़प्पा लिपि के उद्घाटन में काम आ सकें। उर में प्राप्त सिंधु सभ्यता की मुद्रा पर सुमेरी कीलाक्षरों में लेख है। यह लेख स्पष्ट नहीं है, किंतु उसे अनुमानतः सक्-कु-षि, या क-लु-षि पढ़ा गया है। ऐसी संभावना व्यक्त की गई है कि यह किसी व्यक्ति का नाम है। पर यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि यह हड़प्पा के ही किसी व्यक्ति का नाम है, और यदि है भी तो भी इस छोटे से लेख से न लिपि की समस्या हल होती दिखती है और न भाषा की ही, क्योंकि यह निश्चित नहीं किया जा सकता कि इस तरह के नाम को सिंधु लिपि में कैसे लिखा जाता रहा होगा। द्विभाषीय लेख न सही, एक बड़ा कई पंक्तियों का लेख ही मिल जाता तो भी इस लिपि के पढ़े जाने की संभावना कुछ बढ़ती। पर अभी तक जितने भी लेख मिले हैं वे तीन पंक्तियों से अधिक के नहीं हैं, और जो सबसे लम्बा लेख है उसमें भी सब मिला कर सत्रह से अधिक अक्षर नहीं।

सिंधु लिपि के उद्वाचन के संबंध में उचित यह होगा कि विभिन्न संभावनाओं को एक एक करके तर्क की कसौटी पर कस कर देखा जाय कि उनमें से कोई इसका हल प्रस्तुत करने में सहायक है। लिपि के स्वरूप के विषय में पहले से ही कोई निश्चित धारणा बना कर येन-केन-प्रकारेण उसे सही सिद्ध करने के प्रयास किसी के अहं की तुष्टि भले ही कर लें, वे सर्वमान्य हल प्रस्तुत नहीं करते।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 16

शवविसर्जन और कंकालों का जाति-निर्धारण

(अ) शव-विसर्जन

प्राचीन काल में भी शव-विसर्जन की विभिन्न विधियां प्रचलित थीं। अधिकांश लोगों का विश्वास था कि शरीर के नष्ट हो जाने पर भी आत्मा जीवित रहती है और इस तरह जीवित तथा मृतक के मध्य संबंधों की निरंतरता की कल्पना की गई। मृतकों की आत्माओं के संबंध में स्नेह एवं भय मिश्रित धारणाएं रहीं। मरने के बाद मनुष्य स्वर्ग अथवा नर्क में रहता है, ऐसी धारणा प्राचीन काल में अधिकांश लोगों में व्याप्त थी। शव के साथ रखी भोज्य सामग्री को देखने से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय यह भी धारणा थी कि मनुष्य को मरने के बाद भी, अपनी स्थिति के अनुरूप, जीवित अवस्था में उपभोग की जाने वाली वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है। विभिन्न संस्कृतियों एवं विभिन्न युगों के मृतक संस्कारों में तो अंतर मिलता ही है, कभी-कभी विभिन्न कारणों से एक ही संस्कृति में एक ही काल में भी अनेक प्रकार की शव-विसर्जन की प्रथायें मिलती हैं। आज भी अनेक ऐसे समाज हैं जिनमें दुश्चरित्रों, खास तरह के अपराधियों अथवा रोगियों इत्यादि के लिए साधारण से भिन्न शव-विसर्जन का विधान मिलता है। साधारणतः सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक अथवा राजनैतिक दृष्टि से प्रतिष्ठित व्यक्तियों के शव-विसर्जन के तरीके अधिकांशतः साधारण जनों के शव-विसर्जन के तरीकों से शानदार और विशिष्ट होने स्वाभाविक हैं। शव-विसर्जनों का वैज्ञानिक अध्ययन प्राचीन संस्कृति के अनेक पहलुओं पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालता है, और कुछ संस्कृतियों के बारे में जानकारी प्राप्त करने के एकमात्र साधन उनके कब्रिस्तान ही हैं। सिंधु सभ्यता के शव-विसर्जन भी उस सभ्यता पर रोचक प्रकाश डालते हैं।

विभिन्न स्थलों से प्राप्त सिंधु संस्कृति के संदिग्ध शवाधान

हड़प्पा संस्कृति के लोगों द्वारा प्रयुक्त शव-विसर्जन विधियों के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हुई है। कुछ उदाहरणों के बारे में निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि शवोत्सर्ग है, लेकिन कुछ इस तरह के भी अवशेष मिले हैं जिनके बारे में निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि वे शव-विसर्जन से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संबंधित हैं अथवा नहीं। दूसरी कोटि के अंतर्गत हम मोहेंजोदड़ो के अंतिम चरण में प्राप्त इक्कीस मानव कंकालों को रख सकते हैं (फ० XXVII, 1) इनमें से चौदह एक घर के कमरे में पाये गये। छः एक गली में और एक दूसरी गली में पाये गये। कुछ कंकालों पर पैने शस्त्रों के घाव के निशान हैं और अधिकांश कंकाल अस्त-व्यस्त दशा में पड़े पाये गये हैं। ये भयानक और आकस्मिक मृत्यु को प्राप्त हुए थे। इनके साथ बर्तन इत्यादि कुछ भी सामग्री नहीं मिलती। वे तत्कालीन परम्परा के अनुरूप गाड़े हुए नहीं लगते।[1] ह्वीलर का कहना है कि ये किसी बर्बर आक्रमण के शिकार हुए हड़प्पा सभ्यता के वासियों के हैं। उनका यह भी मत है कि ये आक्रमणकारी आर्य रहे होंगे। मार्शल ने मोहेंजोदड़ो में सिंधु सभ्यता के आंशिक शवोत्सर्ग का उल्लेख किया है। आंशिक शवोत्सर्ग का जो असंदिग्ध उदाहरण मिला है उसे पिगट हड़प्पा सभ्यता के बाद का मानते हैं। आंशिक शवोत्सर्ग के जो अन्य उदाहरण मार्शल ने दिये हैं वे संदिग्ध हैं क्योंकि एक को छोड़कर उनमें से किसी में भी मानव अस्थियां नहीं मिली हैं, केवल बहुत से बर्तन और कुछ आभूषण ही उनमें मिले हैं।

मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा से कुछ चौड़े मुंह के बड़े पात्र मिले हैं (फ० XXVII, 2) जिनमें मृण्मय पिंड, छोटे-छोटे मृद्भाण्ड, आभूषण, पशुओं, चिड़ियों तथा मछलियों की हड्डियां, कोयला और राख भी मिली है। हड़प्पा में तो ए बी टीले में 54 पात्र एक कतार में मिले जो 33.223 मीटर लम्बी जगह में थे। लेकिन इनमें से किसी किसी में मानव अस्थियां भी पायी गयी हैं। मार्शल और मैके के अनुसार इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि आजकल की हिंदू-प्रथा के अनुसार शव को दाह करके उसकी अस्थियां विसर्जित कर दी जाती थीं। किंतु वे लोग राख को मिट्टी के कलश में रख देते थे। आज की भांति वे लोग अस्थियों को जल में विसर्जित करते थे और बाद में राख कलशों

---

1. कुछ विद्वानों का मत था कि ये शव जहां पर लोग मरे थे वहीं पर ऐसे ही पड़े रह गये थे, किंतु मार्शल ने ठीक ही कहा है कि खुला छोड़ने से तो पशु और चिड़ियां इनका मांस नोचकर हड्डियों को अलग कर दिये होते। इन्हें गाड़ा तो गया था किंतु तत्कालीन परम्परा के अनुसार विधिपूर्वक नहीं। मार्शल ने, कुछ व्यक्तियों के इस मत का, कि ये अस्थि-पंजर सिंधु सभ्यता के लोगों के नहीं बल्कि इस सभ्यता के समाप्त होने के बाद किसी जंगली जाति के हैं, तर्कपूर्ण खण्डन किया है। उनका कहना है कि मानव विज्ञान के आधार पर कंकालों में प्रोटो आस्ट्रेलायड, भूमध्यसागरीय और अल्पाइन जाति के लोग मिले हैं और जंगली जाति में इन सभी का पाया जाना सम्भव नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में रख उन्हें गाड़ देते थे। उनका कहना है कि इसी कारण इनमें मानव अस्थियां नहीं मिलतीं। लेकिन ह्वीलर और पिगट के अनुसार इन पात्रों में मानव अस्थियों का न होना इस बात का द्योतक है कि इनका शवोत्सर्ग से कोई संबंध नहीं था। पिगट का तो यह मत है कि इनमें से कुछ का प्रयोग निकास नालियों के शोष गर्त के रूप में किया गया था क्योंकि इस तरह के कितने ही भाण्ड फर्श और सड़कों के नीचे दबे मिले हैं। जिस कारण इनके अंदर विभिन्न प्रकार की सामग्री कूड़ा-करकट की तरह भर गयी। मार्शल ने मोहेंजोदड़ो में एक स्थान पर प्राप्त (?) जली मानव अस्थियां मिलने का उल्लेख किया है जिनके साथ आभूषण, मृद्भाण्ड, राख, कोयला आदि भी रखे थे जिसे वे निश्चित रूप से शवाधान की प्रथा का प्रतीक मानते हैं। मोहेंजोदड़ो में कब्रिस्तान का न मिलना और अन्यत्र भी जहाँ कहीं कब्रिस्तान मिले हैं उनमें थोड़े ही लोगों के शव गाड़े मिलने से मार्शल की इस धारणा की पुष्टि होती है कि इस काल में दाहकर्म ही सामान्य प्रथा थी।

हड़प्पा में 'जी' क्षेत्र में एक साथ ही बीस संपूर्ण मानव खोपड़ियाँ और उनके साथ दस नीचे के जबड़े, रीढ़ की हड्डियाँ, हाथ और पाँव की हड्डियाँ, जानवरों की हड्डियाँ और सिंधु सभ्यता के बर्तन भी मिले हैं। इन खोपड़ियों के अध्ययन से गुहा ने निष्कर्ष निकाला है कि इनमें कुछ खोपड़ियाँ पुरुषों की, 36 बच्चों की और कुछ शायद औरतों की हैं। केवल एक ही खोपड़ी ऐसी थी जिसका धड़ भी समीप ही था, दूसरी अस्थियों से कोई संबंध नहीं था। इन अस्थियों के साथ आभूषण नहीं मिले। ये सतह से 1·28 मीटर से 1·77 मी० गहराई पर मिले हैं। स्पष्ट है कि पहले शवों को अन्यत्र खुला छोड़कर विसर्जित किया गया था और फिर उनकी कुछ अस्थियाँ एकत्रित करके दफनायी गयी थीं यह अनुमान लगाया जा सकता है कि किसी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति के शव विसर्जन के संदर्भ में कई व्यक्तियों की वलि दी गयी हो। लेकिन जैसे वत्स ने बताया है कोई भी ऐसा कंकाल नहीं मिला जिसे अन्य कंकालों से विशिष्ट माना जा सकता हो। एक खोपड़ी अन्य खोपड़ियों से कुछ अलग अवश्य मिली लेकिन केवल इसी कारण उसे विशिष्ट व्यक्ति की खोपड़ी मानना और उसके शव विसर्जन के संदर्भ में शेष लोगों की वलि की कल्पना करना, समीचीन नहीं लगता। शायद ये उन लोगों की अस्थियाँ हैं जो किसी कत्ल के शिकार हुए हों या किसी महामारी के। कुछ भी हो इन अस्थियों को निश्चय ही विधिवत् दफनाया गया था। इनके साथ पाये गये मृद्भांड इसका प्रमाण हैं। चन्हुदड़ो के उत्खनन से एक पात्र के भीतर जला हुआ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एक कपाल पाया गया है । इसी पात्र में एक बड़ा शंख, तांबे और कांसे के उपकरण भी मिले हैं । शव-विसर्जन के संदर्भ में इनका महत्त्व संदेहास्पद है ।

हड़प्पा के शवाधान

हड़प्पा नगर की गढ़ी के अवशेषों के बाहर, दक्षिण दिशा में 'एच कब्रिस्तान' (जो सिंधु सभ्यता के बाद के काल का है) के समीप ही सिंधु सभ्यता के काल का एक कब्रिस्तात मिला है, उसे 'कब्रिस्तान आर-37' नाम दिया गया है । यहाँ पर पहले वत्स के निदेशन में खोदाई हुई और फिर 1946 में ह्वीलर के निदेशन में । दोनों खुदाइयों में कुल मिलाकर सत्तावन कब्रें प्रकाश में आयी हैं ।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस कब्रिस्तान का प्रयोग एक लंबी अवधि तक होता रहा था । लगभग 18 कब्रें ऐसी मिली हैं जिनसे यह प्रकट होता है कि उनकी खोदाई के दौरान उस काल से पूर्वकाल की कब्रें कट गई थीं और 8 बाद की ऐसी कब्रें मिली हैं जो इन बाद की कब्रों को भी काट कर खोदी गई थीं । इस तरह कुछ कब्रों का सापेक्ष काल-क्रम निर्धारित किया जा सकता है । किंतु इन सभी कब्रों के साथ जो सामग्री मिली है वह सिंधु संस्कृति की ही है, जिससे यह स्पष्ट है कि ये सभी उसी संस्कृति के काल की ही हैं ।

साधारण कब्र की माप 3 × 1 मीटर से 1.3 × .75 मीटर तक की हैं । लेकिन कब्रों की माप में भिन्नता पाई गई है । वे 4.5 मीटर लंबी, 3 मीटर चौड़ी और 1 मीटर गहरी भी मिली हैं । कब्रों में पूरा पूरा शव गाड़ा गया था । कब्रें पांव की ओर की अपेक्षा सिर की ओर अधिक चौड़ी हैं, जिसका उद्देश्य अधिक बर्तनों के लिए स्थान बनाना लगता है क्योंकि सिर की ओर पैर की अपेक्षा अधिक बर्तन रखे मिले हैं ।

साधारणतः कब्रों में शव को पूरा लंबा लिटाया गया है, किंतु कुछ में उसे मुड़ा हुआ भी रखा गया है । कभी-कभी सर एक तरफ को मुड़ा है । शव प्रायः उत्तर-दक्षिण दिशा में लिटाये गये थे—सिर उत्तर की ओर और पैर दक्षिण की ओर । शव-दाह करते समय आज भी हिंदुओं में सिर को उत्तर की ओर रखने की प्रथा है । केवल एक उदाहरण ही ऐसा मिला है जिसमें शव के सर को दक्षिण की ओर रख कर दफनाया गया था ।

कुछ ही कब्रें ऐसी मिली हैं जिनमें किनारों पर कच्ची ईंटें लगाई गई हैं या जिनमें एक या दो रद्दों की वर्गाकार या आयताकार दीवार बनी है । बाकी सब सादी हैं । शव को गड्ढे में लिटाने के बाद आस-पास खाली जगह में बर्तन रख दिये जाते थे, अधिकांश कब्रों में 15 से 20 तक मिट्टी के बर्तन मिले हैं । यों विभिन्न कब्रों में रखी बर्तनों की संख्या में काफी अंतर मिलता है । कम से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कम दो और अधिक से अधिक चालीस बर्तन पाये गये हैं। ये बर्तन 'आवास' क्षेत्र में प्राप्त बर्तनों से मिलते-जुलते हैं। एक उदाहरण में शव के पाँव के पास हत्थेदार दीपक मिला है (?) जो कदाचित् उस काल के लोगों में प्रचलित मानव की मृत्यु के उपरांत भी जीवन होने की धारण के कारण मृतक के साथ किसी विशेष प्रयोजन से रखा गया होगा।

कुछ उदाहरणों में मृतक के साथ व्यक्तिगत आभूषण भी मिले हैं। इनमें शंख की चूड़ी, हार (कंठमाला), पांवों के कड़े, सेलखड़ी और पेस्ट के मनके हैं। कुछ शवों के साथ आभूषण—यथा ताम्र की अगूंठी और ताम्र के पतले कर्ण-वलय भी मिले हैं। प्रसाधन की सामग्री में तांबे के बने दर्पण हैं जो बारह कब्रों में एक एक मिले हैं। खूब पालिश किये जाने के कारण ये परावर्ती रहे होंगे जिनमें लोग अपना प्रतिबिम्ब देख सकते थे। एक कब्र में अंजन लगाने की शलाका और एक अन्य में शंख का एक बड़ा चम्मच भी पाया गया है। कुछ में किसी पक्षी की हड्डियां मिली हैं जो मृतक के लिए रक्खे गये भोजन सामग्री के द्योतक हैं। कुछ में पत्थर की छुरियां भी मिली हैं। एक दीपक भी मिला। साधारणतः कब्रों में मिली वस्तुएं विशेष आकर्षक और मूल्यवान नहीं हैं, अतः ये कब्रें साधारण-जनों का ही प्रतीत होती हैं। कुछ ऐसे उदाहरण भी मिले हैं जिनसे यह प्रकट होता है कि कभी-कभी कब्रों को पाट कर उनके ऊपर मिट्टी ढेर कर दी जाती थी। हड़प्पा के एक उदाहरण में कच्ची ईंटों का चबूतरा बनाये जाने के भी प्रमाण हैं।

हड़प्पा के कब्रिस्तान की दो कब्रें विशेष महत्त्व की हैं। एक कब्र के किनारों पर चारों ओर कच्ची ईंटें लगाई गई थीं। (फ० XXVIII, 2) लोथल में (फ० XXIX,2) हड़प्पा संस्कृति के संदर्भ में और नाल (बलूचिस्तान) में नाल संस्कृति के संक्रदर्भ में भी इस तरह की कब्रें पाई गई हैं। दूसरी कब्र में शव को लकड़ी की पेटी में रखकर दफनाया गया था (फ० XXVIII, 1)। काठ की होने के कारण यह पेटी अब नष्ट हो गयी है किंतु उत्खनन में इसके चिह्न मिट्टी पर धब्बे के रूप में स्पष्ट दिखाई दिये जिससे उसके आकार का भी ज्ञान होता है। इस पेटी की लम्बाई 2·13 मीटर, चौड़ाई ·762 मीटर और ऊँचाई ·457 मीटर थी। इस पेटी के ढक्कन की लकड़ी के बारे में यह अनुमान है कि वह देवदारु की थीं। देवदारु हिमालय की पहाड़ियों पर उगता है और सम्भवतः नदी-मार्ग द्वारा हड़प्पा में लाया गया होगा। इसके अतिरिक्त शव के चारों ओर राख जैसे पाउडर की तह पायी गयी है। दफनाने से पूर्व शवों को सरकंडे से लपेटने की प्रथा सुमेर के प्रारंभिक राजवंश और अक्कादी काल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में प्रचलित थी। अक्कादीकाल तो सिंधु सभ्यता के काल का समकालीन है ही और प्रारम्भिक राजवंश का अंतिम चरण सिंधु संस्कृति के प्रारंभिक चरण का समकालीन हो सकता था। अनुमानतः यह पाउडर इसी तरह प्रयुक्त किये गये सरकंडों का होगा। हो सकता है कि यह शव किसी सुमेरीय का रहा हो जिसका दाह संस्कार उसके देश की परंपरा के अनुसार ही हड़प्पा में किया गया हो। इस तरह यह दोनों संस्कृतियों के मध्य सम्पर्क का द्योतक लगता है। विद्वानों की धारणा है कि सम्भवतः यह शव किसी नारी का है। उसके दाहिने हाथ था है। उसके दाहिने हाथ की बीच अंगुली में एक ताम्र-अंगूठी मिली है, सिर और कंधे के समीप शंख के तीन वलय पाये गये हैं। इस कब्र से प्राप्त मृद्भाण्डों की संख्या 37 हैं जो अधिकांशतः सिर के आस पास रखे गये हैं। शव-पेटी के भीतर केवल एक ही बर्तन रखा गया था।

कुछ मानव-शास्त्रियों ने इन अस्थियों का अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला है कि जिन लोगों के ये नर कंकाल हैं वे शारीरिक गठन में उस क्षेत्र के वर्तमान निवासियों से विशेष भिन्न नहीं थे। यदि यह सही है तो इस क्षेत्र में विभिन्न जातियों के समय समय पर आक्रमणकारी अथवा किसी अन्य रूप में आने के बावजूद हड़प्पा सभ्यता के लोगों और आज के लोगों में शारीरिक समानता काफी कौतूहलवर्धक है। कुछ भी हो, यह मानना पड़ेगा कि अभी तक हड़प्पा सभ्यता के नर कंकालों का उनके महत्त्व के अनुरूप अध्ययन नहीं हुआ है, और इसलिए निष्कर्षों के सम्बंध में मत-मतांतरों की काफी गुंजाइश है।

रोपड़ के शवाधान

रोपड़ में कब्रिस्तान आवासित टीले के पश्चिमी छोर की ओर लगभग 53 मीटर की दूरी पर है। रोपड़ का हड़प्पा-कालीन कब्रिस्तान काफी क्षतिग्रस्त दशा में मिला है। यह भी हड़प्पा के कब्रिस्तान की भांति मुख्य आवास स्थल से कुछ दूरी पर स्थित है। यह कब्रिस्तान बाद में वहां बसे चित्रित धूसर-भाण्ड का प्रयोग करने वाले लोगों द्वारा गड्ढे खोदने से काफी तोड़ फोड़ दिया गया है। इन कब्रों के अस्थिपंजर खण्डित एवं टूटे फूटे हैं। कभी तो लगभग समूचा अस्थिपंजर ही खोद कर फेंक दिया गया। फलतः पुरातात्विक उत्खनन में कुछ ही कब्रों में अस्थिपंजर मिले।

सबसे प्राचीन जो कब्रें मिली हैं वे अक्षत भूमि में खोदी गयी थीं। ये सभी एक ही आकार की नहीं हैं। अधिकांश अंडाकार हैं। केवल एक कब्र में कच्ची ईंटों के एक रद्दे से कब्र को आयताकार रूप दे दिया गया है। औसतन कब्रें 2·54 × ·91 × ·61 मी० की है। एक कब्र में केवल एक ही शव दफनाया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गया था। साधारणतया सिर उत्तर या पश्चिम की ओर रखकर दफनाया गया था। थोड़ी सी कब्रों को छोड़कर सभी में मृद्‌भाण्ड मिले हैं। इन कब्रों में भी अस्थिपंजर के शीर्ष, मध्य-भाग और पैरों की ओर वर्तन पाये गये हैं। ये वर्तन गाड़े गये शव के स्तर सतह पर ही रखे मिले हैं। वर्तनों की संख्या 2 से 26 तक है। मृद्‌भाण्ड रख दिये जाने के बाद शव को मिट्टी से ढक दिया जाता था। एक ऐसी कब्र भी मिली है जिससे यह पता चलता है कि पहले कब्र खोद कर उसमें वर्तन रख दिये गये थे फिर उसे मिट्टी से ढक दिया गया और तब फिर शव को रखकर गड्ढा पाट दिया गया था। व्यक्तिगत आभूषणों में शंख की चूड़ियां, ताम्र-वलय और मनके विशेषकर पाये गये हैं। केवल दो उदाहरणों को छोड़कर ये आभूषण शवों के शरीर पर नहीं मिले हैं। इन दो में से एक में कांचली मिट्टी की चूड़ी मृतक की बायीं कलाई में तथा दूसरे में तांबे की अंगूठी दाहिने हाथ की बीच की अंगुली में पहनी हुई मिली। हड़प्पा से मिली पेटिका के अन्दर दफनाए शव के कंकाल में भी दाहिने हाथ की इसी (मध्यमा) अंगुली में तांबे की अगूंठी मिलने का उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। एक उदाहरण में मानव कंकाल के नीचे कुत्ते का कंकाल मिला है। या तो कुत्ता स्वामी की मृत्यु के बाद दुखी होकर मर गया और लोगों ने उसे भी उसके स्वामी के साथ गाड़ दिया, या फिर स्वामी का अतिप्रिय होने के कारण उसे भी, जीवित अवस्था में या मार कर, स्वामी की ही कब्र में गाड़ दिया गया होगा। मृतक के साथ प्रिय जनों और प्रिय पशुओं को भी दफनाने की प्रथा प्राचीन मिस्र और मेसोपोटामिया में बहुत प्रचलित थी। कश्मीर के बुर्जाहोम नामक स्थल से भी नव-पाषाण कालीन शवोत्सर्ग में मृतक के शव के साथ पशु के भी गाड़े जाने का उदाहरण मिलता है।

लोथल के शवाधान

लोथल के उत्खननों से हड़प्पा संस्कृति की शवोत्सर्ग प्रणाली पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ा है। यहां कब्रिस्तान टीले के उत्तर-पश्चिमी छोर पर है। यहां पर कुल मिलाकर बीस कब्रें मिली हैं। चार कब्रों में तो केवल गड्ढे भर मिले हैं उनमें विशेष अस्थ्यवशेष नहीं मिले। शेष कब्रों में मानव कंकाल मिले, और ये मानव कंकाल वाली कब्रें दो प्रकार की हैं :—(1) जिनमें केवल एक शव को दफनाया गया है। (2) जिनमें दो-दो शवों को एक साथ ही गाड़ा गया है।

एक शव वाली कब्रें—लोथल से प्राप्त ये सभी कब्रें तृतीय से पंचम काल की हैं। प्रथम-द्वितीय काल की कब्रों का अभी तक पता नहीं चल पाया है। पंचम काल की कब्रें आधुनिक काल में उस क्षेत्र में कृषि किये जाने के परिणाम-स्वरूप कुछ टूट-फूट गई हैं। कुछ कब्रें ऐसी भी हैं जो बाद की कब्रों को खोदते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समय खण्डित हो गई थीं। एक शव वाली कब्रें लगभग 3.2 × 0.75 मीटर है और 0.3 से 0.5 मीटर गहरी खुदी है। दो शवों वाली कब्रें कुछ अधिक चौड़ी हैं, लगभग एक मीटर उनकी चौड़ाई है। कुछ एक शव वाली कब्रें उत्तर दिशा में दक्षिण से अधिक चौड़ी हैं। लोथल की इन कब्रों में भी अधिकतर शवों को, सिर उत्तर और पैर दक्षिण की ओर रखकर ही पीठ के बल लिटाया गया है, केवल एक उदाहरण में ही शव का सिर पूर्व की ओर और उसके पैर पश्चिम की ओर हैं। हाथ शरीर से चिपके हैं और शरीर को करवट लिटाया गया था। इन एक-एक शव वाली सभी कब्रों में मृद्भाण्ड मिलते हैं जो कि आवास के क्षेत्र में प्राप्त मिट्टी के बर्तनों के समान ही हैं। एक कब्र में तांबे की अगूंठी और शंख के मनके भी मिले। दूसरी में बकरी के सींग और हड्डियां मिलीं। सम्भवतः इस बकरी का मृतक के लिए बलिदान किया गया था। एक कब्र की सतह पर कच्ची ईंटें और कुछ की सतह पर कंकड़ मिले। एक कब्र में मानव अस्थियों के साथ ही बकरे की अस्थियां मिलीं इससे लगता है कि मृतक के लिए बकरी का बलिदान किया गया था।[1]

दो शवों वाली कब्रें—जहां लोथल की कए-एक शव वाली कब्रें तृतीय से पंचम काल तक की हैं, वहां दो शवों वाली तीनों कब्रें तृतीय काल की हैं। इनमें से एक कब्र के किनारे-किनारे कच्ची ईटों की चिनाई की गई है। लेकिन इसमें न लकड़ी के तावूत और न आच्छादन होने के ही साक्ष्य मिलते हैं (तुलना कीजिए हड़प्पा के उदाहरण से)। एक कब्र में तो दोनों कंकाल अलग-अलग रखकर दफनाये गये थे। शेष दो उदाहरणों में शवों को एक दूसरे से लिपटा हुआ गाड़ा गया है (फ० XXIX, 1, 2)। इन दोनों उदाहरणों में शवों के लिंग के बारे में मतभेद है। कुछ का मत है कि दोनों ही पुरुषों के शव हैं, जबकि कुछ का कहना है कि एक स्त्री और एक पुरुष का है।[2] यदि यह दूसरा वाला मत सही है तो यह पति के मरने के पश्चात् पत्नी द्वारा अपने प्राण त्याग करने की प्रथा का द्योतक हो सकता है। राव ने इसे 'सती' प्रथा का द्योतक होना सुझाया है किंतु, जैसे सांकलिया ने कहा है, सती एक खास प्रकार की रीति का द्योतक है,

1. श्री राव ने इस संदर्भ में ऋग्वेद के मंत्र का उद्धरण दिया है जिसमें मृतक के लिए बकरे की बलि का उल्लेख है।

2. नृतत्व शास्त्री (Physical Anthropologist) प्रोफेसर सर्कार का कहना है कि एक शवाधान में भी किसी शव की स्त्री के रूप में पहिचान करना कठिन है, लेकिन इसी शास्त्र के अन्य दो विद्वानों बी० के० चटर्जी और आर० डी० कुमार ने दो दो शवों वाली कब्रों में एक-एक कंकाल को स्त्री का माना है।

CC-0. Agamnigam Digital Preseyation Foundation, Chandigarh

जिसमें पत्नी अपने पति की चिता में स्वेच्छा से प्रविष्ट होकर प्राण त्यागती है। सती प्रथा में पति के साथ गाड़े जाने का प्रश्न ही नहीं उठता। साथ ही सती की प्रथा वैदिक काल में प्रचलित नहीं थी और अपेक्षाकृत बाद के काल में इसका चलन हुआ। प्राचीन मेसोपोटामिया और मिस्र में मृतक के साथ उसकी पत्नी और अन्य लोगों के गाड़े जाने के अनेक उदाहरण हैं। हो सकता है कि लोथल में भी इन दो शवों वाली कब्रों के संदर्भ में इसी तरह की प्रथा का निर्वाह किया गया हो। इन दो शवों वाली कब्रों में कोई सामान—मिट्टी के बर्तन, गहने इत्यादि नहीं मिला। कब्रों में सामान का न होना या तो एक शव वाली कब्रों से भिन्न परम्परा के द्योतक हैं या फिर दो शव दफनाये जाने के कारण जगह का अभाव इसका कारण हो सकता है। युगल शवाधान के कुछ अन्य उदाहरण ज्ञात हैं। सिंध के दम्ब बूघी में भी दो शवों को साथ-साथ गाड़ा पाया गया, मेसोपोटामिया के किश नामक स्थल में भी युगल शवाधान के साक्ष्य मिले हैं। दक्षिणी भारत में नागार्जुनीकोण्ड में भी इस तरह से दो शवों को साथ गाड़ा गया था। लेकिन यह निष्कर्ष निकालना कठिन है कि उपर्युक्त सभी उदाहरण एक ही परंपरा के द्योतक हैं।

लोथल से प्राप्त अधिकांश शवों की खोपड़ियां मध्यमशिरस्क है जो कि आधुनिक काल में गुजरात के मनुष्यों में सामान्य हैं।

कालीबंगां

कालीबंगां में कब्रिस्तान गढ़ी वाले टीले के पश्चिम-दक्षिण-पश्चिम में लगभग 300 मीटर की दूरी पर स्थित है। घग्गर नदी में बाढ़ के समय उसका पानी कब्रिस्तान के क्षेत्र में भी आ जाता है जिससे कुछ कब्रें क्षतिग्रस्त हो गईं।

कब्रें अलग-अलग गहराई पर मिली हैं और इस से यह प्रमाणित होता है कि कब्रिस्तान का प्रयोग एक लम्बी अवधि तक चलता रहा और ये कब्रें कई प्रकालों की हैं। लेकिन इन कब्रों में जो मृद्भाण्ड एवं अन्य सामग्री मिली है उससे स्पष्ट है कि ये सभी हड़प्पा काल की हैं। दो ऐसे भी उदाहरण मिले हैं जिनमें नई कब्रें खोदने के दौरान पहले की कब्रें कट गई हैं। कब्रिस्तान में तीन प्रकार के शव-विसर्जन मिले हैं :—

(1) आयताकार या अण्डाकार गड्ढे जिनमें अस्थिपंजर एवं मृद्भाण्ड इत्यादि सामग्री है।

(2) आयताकार गड्ढे जिनमें सामग्री तो है किन्तु अस्थि अवशेष नहीं हैं।

(3) गोल-अण्डाकार (round oval) गड्ढे जिनमें केवल सामग्री हैं, अस्थि अवशेष नहीं।

कुल मिलाकर 37 शव-विसर्जन के उदाहरण मिले हैं 15 प्रथम प्रकार के,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

5 द्वितीय प्रकार के और 17 तृतीय प्रकार के। उपर्युक्त सभी प्रकार के शव-विसर्जन एक ही काल के हैं, किंतु कब्रिस्तान में उनके क्षेत्र लगभग अलग-अलग हैं। लगता है कि किन्हीं कारणों से जान-बूझकर ही इन तीनों प्रकारों के लिए अलग-अलग क्षेत्र निर्धारित किए गये थे। यही नहीं पहले और तीसरे प्रकार में 6 से 7 शव-विसर्जन के अलग-अलग समूह हैं। इस तरह के भेद का निश्चित कारण तो ढूढ़ना कठिन है किंतु, यह किसी परिवार विशेष की विशिष्टता, या किसी सामाजिक, आर्थिक अथवा राजनैतिक वर्ग विशेष का द्योतक हो सकता है।

पूर्ण शव-विसर्जन में शव को पीठ के बल लिटा कर सिर उत्तर की ओर रखा गया था। मृतक के साथ मिट्टी के बर्तन एवं अन्य वस्तुएं भी रखी गई थीं जो सिर की ओर अधिक और पैरों की ओर कम मिली हैं। एक उदाहरण में शव को पेट के बल लिटाया गया था और सिर दक्षिण की ओर रखा गया था जो साधारण से भिन्न परम्परा का द्योतक है। इस शव के हाथ और पांव मिले हुए हैं। शव गड्ढे के उत्तरी आधे भाग में रखा गया था। एक आयताकार कब्र में गड्ढे के चारों ओर कच्ची ईंटों की चिनाई की गई थी और ईंटों के ऊपर अंदर की ओर पलस्तर लगा था। इस शव के साथ 72 बर्तन रखे थे, 37 उत्तर की ओर और 35 बीच के भाग में। इसमें शव का सिर उत्तर की ओर रख कर उसे ऊर्ध्वमुख लिटाया गया था। बर्तनों की इतनी अधिक संख्या उस व्यक्ति के महत्त्व का प्रतीक है, यह कहना कठिन है। एक अन्य कब्र में दफनाये गये शव के परीक्षण से उसके शारीरिक दोष का पता चला। उसके बाएं हाथ की कलाई की हड्डियां दाएं हाथ की हड्डियों की अपेक्षा छोटी थीं। उसके बाएं कान के समीप एक सीप का कुंडल मिला। एक अन्य कब्र में शव का केवल ऊर्ध्व भाग ही प्राप्त हुआ। नीचे का भाग शायद बाद में गड्ढे खोदने के दौरान खुद गया। इस कब्र में बर्तन एवं मनके भी मिले-तीन मनके सोने के, तीन जैस्पर के, तीन गोमेद के और दो-दो कार्नीलियन और सेलखड़ी के। एक बच्चे की खोपड़ी में 6 गोल छेद हैं जो शल्य चिकित्सा के उदाहरण लगते हैं (देखिए परिशिष्ट) एक अस्थिपंजर पर जलाये जाने के निशान हैं। चूंकि यह जले शव का एक मात्र उदाहरण है, अतः शव का जलना आकस्मिक भी हो सकता है। एक कब्र में तांबे का दर्पण भी मिला है। शंख, सेलखड़ी और कीमती पत्थरों के आभूषण अनेक कब्रों में मिले हैं।

दूसरा प्रकार

आकार-प्राकार में ये गड्ढे प्रथम प्रकार के समान हैं, किंतु उनमें अस्थि अवशेष नहीं मिले हैं। इन गड्ढों में मिट्टी के बर्तन ही मुख्य रूप में कब्र के तौरपर मिले हैं। केवल एक ही उदाहरण में सीप की चूड़ियों के कुछ टुकड़े,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सेलखड़ी के अनेक मनके और एक कार्नीलियन का मनका मिला। इन गड्ढों में बालू और मिट्टी की एक के बाद दूसरी कई एकान्तरिक परतें मिली हैं। अनुमानतः गड्ढे में बर्तनों को रखने के बाद गड्ढा या तो भरा नहीं गया या कुछ अंश तक ही भरा गया और वर्षा में भी खुला रहा। बाद में शेष गड्ढा कच्ची ईंटों के टुकड़ों से भर दिया गया। मानव अस्थियों के अभाव में ऐसा सुझाया गया है कि या तो ये मृतकों के मात्र प्रतीक शव विसर्जन (Symbolic burial) थे, या ये उनकी यादगार के लिए बनाये गये थे जो अन्यत्र मरे और जिनका शव दफनाने के लिए नहीं लाया जा सका था। यह भी हो सकता है कि पहले मृतक के शव को जलाकर राख संचय किया गया हो फिर राख भी नदी में विसर्जित कर दी गयी हो।

तीसरा प्रकार

इस प्रकार के गड्ढे पहले और दूसरे प्रकार की अपेक्षा काफी उथले थे। ये गड्ढे मुश्किल से एक मीटर गहरे थे और अधिकांश तो इससे भी काफी कम गहरे थे। उनका आकार भी अपेक्षीकृत छोटा था। इनमें से कुछ गड्ढे अण्डाकार थे।

गड्ढे में साधारणतः बीच में या केन्द्र से थोड़ा उत्तर या पूर्व की ओर एक बड़ा बर्तन और उसके आस पास 2 से लेकर 29 तक बर्तन रखे मिले हैं। केवल कुछ ही गड्ढे ऐसे हैं जिनमें बर्तनों के साथ मनके, सीप की चूड़ियां और सेलखड़ी की बनी वस्तुएं भी मिली हैं। एक में एक बर्तन की ग्रीवा में सेलखड़ी के छोटे मनकों की तीन लड़ियां पड़ी थीं। ये भी प्रतीक शव-विसर्जन के उदाहरण हो सकते हैं। शव-विसर्जन का यह प्रकार सिंधु सभ्यता के संदर्भ में प्रथम बार प्राप्त हुआ है।

शव-विसर्जन के उपर्युक्त प्रकारों का सापेक्ष कालक्रम निर्धारण कठिन है। एक सोपानित शवाधान का उदाहरण ऐसा मिला है जिसमें दूसरे प्रकार का शव-विसर्जन काल-क्रम की दृष्टि से पहले का है, और पहला प्रकार बाद का। इसी तरह एक उदाहरण में दूसरे प्रकार के शवाधान के गर्त को तीसरे प्रकार के शवाधान के गर्त द्वारा काटा गया है। किंतु इन एक-एक उदाहरणों से ही हम इन तीनों प्रकारों की सापेक्ष तिथि के संबंध में कोई सामान्य निष्कर्ष नहीं निकाल सकते।

स्वराज्य प्रकाश गुप्त के अनुसार आवास की दृष्टि से कालीबंगां के लोगों को तीन वर्गों में रखा जा सकता है :—

1. गढ़ी में रहने वाले,
2. गढ़ी के पार्श्व में रहने वाले, और
3. निम्न नगर में रहने वाले।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उनका कहना है कि शायद ये समाज के तीन भिन्न वर्गों के द्योतक हो सकते हैं, और हो सकता है कि जिन तीन प्रकार के शव-विसर्जनों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, इन्हीं तीन वर्गों से अलग-अलग रूप से संबंधित हों।

चण्डीगढ़

चण्डीगढ़ नगर के क्षेत्र में ही फरवरी 1970 में एक भवन की नींव खोदते समय हड़प्पा संस्कृति के अवशेष मिले। चण्डीगढ़ विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग द्वारा की गई खोदाई में वहां पर पांच शव-कंकाल खोदे गये। केवल एक ही शव को मुड़ा हुआ रखकर दफनाया गया था बाकी सभी पूरे के पूरे लंबाई में गाड़े गये थे। एक कब्र में शव का सिर दक्षिण की ओर था और शेष सभी में उत्तर की ओर। कब्रों में सादे और चित्रित मृद्भाण्ड भी रखे मिले हैं।

रण्डल हड़वा

मध्य सौराष्ट्र में स्थित रण्डल हड़वा में सर्वेक्षण करते समय एक अण्डाकार गड्ढे में अन्य वस्तुओं के साथ एक वयस्क का अस्थिपंजर मिला है जो लम्बा लिटाया गया था और जिसका सिर एक तराशे तत्थर के ऊपर रखा था।

तरखानेवाला डेरा

राजस्थान के गंगानगर जिले में तरखाने वाला डेरा नामक स्थल पर परीक्षण गर्त लगाते समय श्री अमलानन्द घोष को अन्य वस्तुओं के साथ एक चबूतरा मिला जिस पर शवदाह किये जाने के साक्ष्य मिले। इस चबूतरे पर कुछ कच्ची ईंटें चपटी बिछी थीं। उस पर कम से कम पांच बार शव दाह दिये जाने के प्रमाण थे। प्रत्येक शव-दाह के बाद राख और जली अस्थियों की सतह के ऊपर मिट्टी या कच्ची ईंट की तह बिछाई जाती थी और उस पर दूसरा शव दाह किया जाता रहा। यह सिंधु सभ्यता के अधिकांश स्थलों में कब्रिस्तान में शव गाड़ने के साक्ष्यों से भिन्न प्रकार के शव-विसर्जन का साक्ष्य प्रस्तुत करता है।

सुरकोटड़ा

इस स्थल पर कब्रिस्तान में सीमित क्षेत्र में ही उत्खनन किया गया। इसमें केवल चार कलश-शवाधान के उदाहरण मिले। वे लोग अण्डाकार गड्ढ़ा खोदते थे और उसमें कुछ बर्तन रखते थे, इन बर्तनों में कुछ में हड्डियां मिलीं, कुछ में नहीं। बर्तनों को मिट्टी से भर दिया गया और उसे कंकड़-पत्थर (rubble) से आच्छादित कर दिया गया। पश्चिम की ओर एक शिला को लंबाकार रखा गया दूसरे प्रकार के शव विसर्जन में बर्तनों से युक्त अण्डाकार गर्त को एक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विशाल शिलाखण्ड से ढक देते थे। यह विधि सिंधु सभ्यता के शव-विसर्जन की अबतक ज्ञात विधियों से भिन्न होने के कारण विशिष्ट है।

सुत्कगेंडोर

सुत्कगेंडोर में रक्षा प्राचीर के उत्तरी क्षेत्र में एक बड़ा मिट्टी का वर्तन मिला जिसमें राख थी। यह राख मृतक के शवदाह के बाद रखी भस्म हो सकती है। जली हुई अस्थ्यवशेषों से युक्त तीन वर्तन पूर्वी रक्षा-प्राचीर के पास भी पाये गये। इनके साथ ही एक सीप या शंख की चूड़ी, एक गोल चपटा आभूषण और कुछ छोटे-छोटे मृद्भाण्ड मिले। विशिष्ट हड़प्पा संस्कृति की साधार तश्तरी मिलने के कारण इनका हड़प्पा संस्कृति के काल का होना निर्विवाद लगता है।

सिंधु सभ्यता में मेसोपोटामिया और मिस्र के समान भव्य कब्रें नहीं मिली हैं, और न ही सिंधु सभ्यता के लोगों ने प्राचीन मिस्र की तरह शव को मसाले में रखकर उसे सुरक्षित ही किया है। कब्रों के साथ जो सामग्री मिली है वह साधारण कोटि की है और मिस्र एवं मेसोपोटामिया की कुछ स्वर्ण, कीमती धातुएं और रत्नों से युक्त सम्पन्न कब्रों की अपेक्षा अत्यन्त साधारण हैं। या तो सिंधु सभ्यता में कब्र-सामग्री के रूप में बहुमूल्य वस्तुओं को रखने की प्रथा ही नहीं थी या जो कब्रें हमें मिली हैं वे साधारण जनों की हैं और शासकों और अन्य सम्पन्न एवं महत्त्वपूर्ण शासकों की कब्रें किसी ऐसे स्थल में हैं जिस पर अभी पुरातत्व की कुदाली नहीं चली। यों उस समय की अनुमानित काफी जनसंख्या और लम्बी अवधि तक सिंधु संस्कृति के बने रहने पर भी अभी तक ज्ञात कब्रों की संख्या वहुत कम है। और यह अनुमान लगाना स्वाभाविक है कि शवाधान के अतिरिक्त शव-विसर्जन की अन्य विधियां भी प्रचलित थीं।

(आ) जाति निर्धारण

मोहेंजोदड़ो से प्राप्त कंकालों की शारीरिक रचना के विचार से यहां के कुछ कंकालों के अध्ययन से जाति संबंधी निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले गये हैं। प्रारंभिक रिपोर्टों के अनुसार निम्न चार समूहों में वर्गीकृत किया गया है :—

1. आद्य-आस्ट्रेलायड—इसके तीन उदाहरण मिले।
2. भूमध्य-सागरीय—इसके छह उदाहरण मिले।
3. मंगोलीय—इसका एक ही उदाहरण मिला।
4. अल्पाइन—इसका एक निश्चित और तीन संभावित उदाहरण मिले।

आद्य-आस्ट्रेलायड जाति के लोग नाटे होते हैं उनकी खोपड़ियां संकरी तथा लम्बी नाक कुछ चौड़ी तथा चपटी और ठुड्डी बाहर की ओर निकली होती है। इनका रंग काला तथा बाल घुंघराले होते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि ये

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लोग आदिवासी थे। ऐसे सिरों वाले कुछ लोग आजकल लंका और दक्षिणी भारत में हैं। लंका के वेद्दा जाति के लोग इसी वर्ग के हैं। दूसरे भूमध्य-सागरीय प्रकार के उदाहरणों में खोपड़ियां कुछ लम्बी हैं, नाक छोटी लेकिन नुकीली है। इस तरह के कपाल बलूचिस्तान में नाल (एक) और अनु (दो) मिले हैं। ये इस सभ्यता के मूल निर्माताओं में से थे। मंगोलीय जाति सिंध प्रदेश की मूल निवासी नहीं थी। पिगट के अनुसार मंगोलीय जाति का जो एक मात्र उदाहरण मिला है वह शायद कोई सैनिक था जो पर्वतीय क्षेत्र से आया था। मैके के अनुसार यह जाति सिंध प्रदेश में ईरान के पठार से आयी। चौथे प्रकार के सिर अल्पाइन जाति के हैं। इनके केवल एक निश्चित तथा तीन संभावित उदाहरण हैं। पिगट ने उल्लेख किया है कि ईरान के सियाल्क में चतुर्थ सहस्राब्दी ई० पू० के संदर्भ में अल्पाइन प्रकार के कंकाल मिले हैं।

उपरोक्त कंकालों के अध्ययन से जो निष्कर्ष सेवेल और गुहा ने निकाले हैं वे सहज बोधगम्य हैं। सिंधु नदी के किनारे पर बसे होने के कारण मोहेंजोदड़ो नगर थलमार्ग द्वारा उत्तर-पश्चिमी एशिया से संबद्ध था। उस अतीत काल में यह नगर इन प्रदेशों की जातियों के लोगों का संगम स्थल रहा होगा। अतः इस स्थान पर विभिन्न जातियों के शवों का पाया जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

कपालों के अध्ययन से प्राप्त उक्त निष्कर्ष अब तक प्राप्त मूर्तियों के चेहरो से कुछ हद तक अनुमोदित लगते हैं। कांस्य नर्तकी के नाक-नक्श आद्य-आस्ट्रेलायड लगते हैं। कुछ सिर चौड़े और कुछ लम्बे लगते हैं। किंतु मूर्तिकार मानव शास्त्र के विशेषज्ञों के लिए मूर्ति निर्माण नहीं कर रहे थे। अतः तत्कालीन मानव जातियों के ठीक-ठीक जानकारी के लिए इन्हें विशेष महत्त्व नहीं दिया का सकता।

हाल ने द्रविड़ तथा सुमेरवासियों को एक ही जाति का स्वीकार किया है। उनके मतानुसार वे पहले दक्षिण ही नहीं पंजाब, सिंध और बलूचिस्तान में भी फैले थे। ब्राहुई भाषा आज भी बलूचिस्तान के कुछ भाग में बोली जाती है। किन्तु सुमेरी लोगों की शारीरिक रचना के विषय में विद्वानों में मतभेद है और प्राचीन द्रविड़ भाषा के स्वरूप के विषय में भी। यदि आदि द्रविड़ों को पश्चिम से आया माना जाय तो संभावना यही है कि वह आक्रांता के रूप में भारत में प्रविष्ट हुए। भूमध्य-सागरीय लोगों के कंकाल किश, अनु, नाल और मोहेंजोदड़ो में पाये गये हैं। वे अन्ततः आद्य-आस्ट्रेलायड आदि जातियों से वैवाहिक संबंध स्थापित कर परिवर्तित हो गये। एस० के० चटर्जी के मतानुसार ब्राहुई में द्रविड़ भाषा का एक लघु क्षेत्र होना इस बात का द्योतक है कि पहले द्रविड़ दक्षिण से लेकर उत्तर तक फैले थे। लेकिन बुद्ध प्रकाश का मत है कि कुषाण-काल में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किहीं परिस्थितियों के कारण दक्षिण से द्रविड़-भाषी उत्तर की ओर गये और इन्हीं की संतति ब्राहुई-भाषी लोग हैं।

हड़प्पा के मानव-अस्थि अवशेषों का एन० के० बोस और उनके सहयोगियों ने विस्तृत विवरण दिया है। आर-37 से 36 खोपड़ी और जबड़े अच्छी दशा में मिले। उनमें पन्द्रह वयस्क पुरुष, 19 वयस्क नारी और दो छोटी आयु के थे। इन्हें दो वर्गों में बाँटा गया है। पहले वर्ग (अ) में 21 वयस्क खोपड़ी और दूसरे (अ 1) में 10 वयस्क खोपड़ी हैं। चार की ठीक पहचान नहीं हो पाई है और एक असामान्य है। बाकी सब लम्बे सिरवाले हैं। 'अ 1' वर्ग की खोपड़ियां 'अ' वर्ग की खोपड़ियों से कुछ अधिक लम्बी हैं। 'अ' वर्ग की खोपड़ियों की तुलना उस जाति प्रकार से की गई है जिसे प्रोटो-आस्ट्रेलायड, काकेशिक या यूरेफ्रिकन नाम दिया जाता है। 'अ 1' वर्ग जो कुछ हल्की बनावट का है, उस प्रकार से मिलता-जुलता है जिसे भूमध्यसागरीय या इण्डोयूरोपियन या कैस्पियन नाम दिया गया है। 'अ' वर्ग के लोगों की औसत ऊँचाई 1 मीटर 70-72·5 सेमी थी जबकि 'अ 1' की ऊँचाई 5-7·5 सेमी कम थी। इन वयस्कों की आयु 20 और 40 वर्ष के बीच थी।

गुजरात में लोथल से प्राप्त कपालों के अध्ययन से चटर्जी तथा कुमार ने कुछ निष्कर्ष निकाल कर तीन प्रजातियों में परिगणन किया है :—

1. आद्य-नार्दिक—(बड़े, खुरदरे और लम्बे सिरवाले),
2. आद्य-भूमध्यसागरीय (मध्य आकार के सिरवाले),
3. अल्पाइन आर्मेनियन (चौड़े सिरवाले)।

सरकार ने लोथल के कंकालों को दो मुख्य वर्गों में बाँटा है—दीर्घशिरस्क और लघुशिरस्क। लोथल के दीर्घशिरस्क और लघुशिरस्क की तुलना सियाल्क से प्राप्त क्रमशः इसी प्रकार के दो प्रकार के खोपड़ियों से की है। कुछ विद्वानों ने दीर्घशिरस्क को आर्य तथा लघुशिरस्कों को आर्मेनियन बताया है। लोथल में एक कंकाल को आस्ट्रेलायड समूह का पहचाना गया है। कंकालों के अध्ययन से प्राप्त साक्ष्यों का राव ने इस प्रकार अर्थ निकाला है। सिंधु घाटी में अति-लम्बे सिरवाल आदिवासी का साक्ष्य मिलता है, जिसकी वेद्दा या आस्ट्रेलायड प्रजाति समूह से पहिचान की गयी है। उन्नत सिंधु-सभ्यता प्रकाल में, जिसका प्रतिनिधित्व हड़प्पा, मोहेंजोदड़ो और चन्हुदड़ो करते हैं, इंडो-कैस्पियन की प्रमुखता रही। सिंधु-सभ्यता के मध्य प्रकाल में हड़प्पा के 'जी' क्षेत्र में मध्यम आकार खोपड़ीवाले अल्पाइन प्रकार के कुछ लोग आकर बसे जिनकी संख्या आगे चल कर सबसे अधिक हो गयी। इनके कंकाल कब्रिस्तान 'एच' के प्रथम स्तर में पाये गये हैं। हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो में कुछ संख्या छोटे सिरवालों की थी। लोथल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में सभ्यता के उन्नत युग (प्रकाल 'ए') से 4 दीर्घशिरस्क तथा 2 लघुशिरस्क लोगों के उदाहरण मिले हैं। लघुशिरस्क का उदाहरण अन्तिम प्रकाल 'बी' से भी मिला है। प्रकाल 'ए' से आस्ट्रेलायड समूह का एक कंकाल भी मिला। स्पष्ट है कि लोथल में उन्नत सिंधु सभ्यता युग में वहाँ की जनसंख्या में दीर्घशिरस्क और लघुशिरस्क दोनों सम्मिलित थे। किंतु अधिक संख्या दीर्घशिरस्कों की रही। इनकी पहिचान सियाल्क (ग्रुप-II) से की गयी है। कुछ विद्वान सियाल्क II के कंकालों को आर्यों से जोड़ते हैं, और इसलिए राव का मत है कि 'ए' काल में लोथल की जनसंख्या में आर्यों की बहुलता रही। किंतु इन अल्प साक्ष्यों से निश्चित निष्कर्ष निकालना कठिन है।

इतना निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि बाद के काल की तरह ही सिंधु सभ्यता के काल में मिश्रित जनसंख्या थी। हाल ही में हड़प्पा के नरकंकालों के पुनर्परीक्षण के पश्चात् कुछ मानवशास्त्रियों ने यह मत व्यक्त किया है कि हड़प्पा और लोथल में सिंधु सभ्यता काल के लोग इस क्षेत्र में बसे आज के इन वासियों से बहुत मिलते-जुलते थे। इन निष्कर्षों का अर्थ होगा कि इस क्षेत्र में जो अनेकशः विदेशी आक्रमण हुए उनका यद्यपि भारतीय संस्कृति के विकास में महत्वपूर्ण हाथ था तथापि बाहरी आक्रमणकारियों की संख्या इतनी कम थी कि भारतीयों के साथ उनके वैवाहिक संबंध स्थापित होने पर भी मूल जातियों के आधारभूत गुणों में आज भी अधिक परिवर्तन नहीं हुआ।

●

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 17

तिथि

किसी संस्कृति की उपलब्धियों के सही मूल्यांकन के लिए उसका तिथि-निर्धारण आवश्यक है। सिंधु सभ्यता की तिथि के बारे में पुराविदों में मतभेद है। सिंधु सभ्यता के लोगों के जो लघु लेख (देखिए पृष्ठ 197) मिले हैं, उन्हें अब तक सर्वमान्य रूप से पढ़ा नहीं जा सका है। इसलिए तिथि-निर्धारण के लिए साहित्यिक साक्ष्य का प्रश्न ही नहीं उठता। जब मार्शल ने हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो का उत्खनन कराया था उस समय भारतीय पुरातत्त्व में काल-निर्धारण के लिए उत्खात सामग्री का अध्ययन मुख्यतः गहराई के आधार पर ही किया जाता था, अर्थात् जितनी गहराई पर वस्तु मिले उसे उतना ही प्राचीन माना जाता था। किन्तु यह विधि दोषमुक्त नहीं है। इस पर आधारित निष्कर्ष संदिग्ध होते हैं। अब उत्खात सांस्कृतिक अवशेषों का तिथि-निर्धारण मुख्यतः स्तरीकरण के आधार पर होता है। अनेकशः किसी संस्कृति के संदर्भ में प्राप्त सामग्री का किसी अन्य संस्कृति के संदर्भ में प्राप्त हुई उससे मिलती-जुलती सामग्री से तुलना करना भी तिथि-निर्धारण में सहायक होता है। अन्य देशों, विशेषतः मेसोपोटामिया, ईरान, बहरीन द्वीप आदि से सिंधु सभ्यता के संपर्क थे। सिंधु सभ्यता के स्थलों में निर्मित वस्तुएं वहाँ पर मिली हैं। भाग्यवश मेसोपोटामिया की प्राचीन संस्कृतियों द्वारा प्रयुक्त लिपि का पढ़ना संभव हो गया है जिससे उनके संदर्भ में महत्वपूर्ण अभिलेखीय सामग्री उपलब्ध हुई है; उनके साक्ष्य के उपयोग से वहां की संस्कृतियों की लगभग निश्चित तिथियां निर्धारित की जा चुकी हैं। इस संदर्भ में अक्कादी सम्राट् सारगन का राज्यकाल (2730 ई० पू०-2284 ई० पू०) की तिथि महत्वपूर्ण काल-मापी आधार सिद्ध हुआ है। हाल ही से खोदाइयों में प्राप्त जैविक अवशेष यथा कोयला, हड्डी या लकडी, का रेडियो कार्बन या कार्बन-14 विधि से परीक्षण करके तिथि निर्धारित की जाने लगी है। इस विधि से अब तक हड़प्पा-संस्कृति के कई स्थलों से प्राप्त हुई इस तरह की सामग्री की तिथि निर्धारित की जा चुकी है।

यह सर्व-विदित है कि बेबीलोनी और सुमेरी सभ्यताओं की तरह हड़प्पा-संस्कृति भी ताम्राश्म संस्कृति थी। इसका तात्पर्य यह है कि उस समय अश्म-युगीन परंपरा के साथ-साथ कुछ धातुओं, यथा सोना, चांदी, तांबा और कांसा, का प्रचलन आरंभ हो गया था। किन्तु लोहे के प्रयोग से वे अपरिचित थे। अतः

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिंधु संस्कृति का विकास पाषाण काल के अंतिम चरण के पश्चात् तथा लौह युग के आविर्भाव से पूर्व हुआ था । जहां तक भारत में पाषाण-युग के अंतिम चरण के काल निर्धारण का प्रश्न है, भारत जैसे विशाल एवं अत्यधिक भौगोलिक भिन्नता लिए देश में पाषाण-युग के अन्त का काल विभिन्न क्षेत्रों में एक ही न होकर अलग-अलग रहा, और किसी क्षेत्र विशेष के लिए भी पाषाण-युग के अन्त का कोई निश्चित काल निर्धारण करना अत्यन्त कठिन है । भारत में लौह युग का प्रारंभ कब हुआ, यह भी विवादास्पद विषय है । वैसे अनेक प्राचीन स्थलों पर पिछले कुछ वर्षों में किये गये उत्खननों से जो साक्ष्य प्राप्त हुए हैं उनके आधार पर भारत में विभिन्न उपकरणों के निर्माण के लिए लोहे के सर्वप्रथम प्रयोग की तिथि 1000 ई० पू० के आस-पास निर्धारित करना समीचीन लगता है । किन्तु यह तिथि भी भारत के विभिन्न क्षेत्रों के लिए सही नहीं हो सकती, क्योंकि कुछ क्षेत्रों में कई शताब्दियों के बाद ही लौह का प्रयोग प्रारंभ हुआ । सिंधु सभ्यता के अवतक कई स्थानों—हड़प्पा, मोहेंजोदड़ो, चन्हुदड़ो, रोपड़, लोथल, रंगपुर, कालीबंगां और सुरकोटड़ा इत्यादि में खोदाई हो चुकी है । इन सभी स्थानों पर सिंधु सभ्यता का कालावधि एकदम एक ही हो ऐसा असंभव है । सिंधु सभ्यता का समग्र प्रवर्तन-काल जानने के लिएं इन विभिन्न स्थलों में इस संस्कृति के प्रारंभ और अंत की जानकारी आवश्यक है ।

जहां तक स्तर-विन्यास का प्रश्न है यह भी सभ्यता के तिथि-निर्धारण में विशेष सहायक नहीं । मार्शल के निदेशन में मोहेंजोदड़ो में किये गये उत्खननों में परतों के आधार पर उत्खनन नहीं हुए थे लेकिन उन्होंने वहां के अवशेषों को प्रारंभिक, मध्य और अंतिम तीन प्रकालों में बांटा है । मोहेंजोदड़ो के प्रारंभिक चरण में एक और मध्य और अंतिम प्रकाल में तीन मुख्य निर्माण-चरणों का उल्लेख किया गया है । हड़प्पा में 6 निर्माण-चरण मिले जिनमें अंतिम 'कब्रिस्तान एच' संस्कृति का है । कोटदीजी में सिंधु सभ्यता के 6 निर्माण-चरण और कालीबंगां में इसी सभ्यता के 9 निर्माण-चरण मिले । लगभग सभी स्थलों में अंतिम चरण में ह्रास के चिह्न मिलते हैं । हड़प्पा में सिंधु सभ्यता और 'कब्रिस्तान एच' संस्कृति के मध्य व्यवधान है ।[1] चन्हुदड़ो में सिंधु सभ्यता और बाद की (झूकर) संस्कृति के बीच निरंतरता नहीं । रोपड़ और आलमगीरपुर में सिंधु सभ्यता के अंत के कुछ काल पश्चात् चित्रित धूसरभाण्ड संस्कृति के लोग उन

---

1. ह्वीलर व्यवधान के पक्ष में दिये तर्कों के औचित्य को स्वीकार करते हुए भी सिंधु सभ्यता और 'कब्रिस्तान एच' की संस्कृतियों के एक दूसरे के संपर्क में आने की संभावना को नकारते नहीं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्थानों पर बसे। किंतु इन परवर्ती संस्कृतियों की निश्चित तिथि भी तो ज्ञात नहीं। अनुमानतः 'कब्रिस्तान एच' और 'झूकर' संस्कृतियां लगभग द्वितीय सहस्राब्दि के मध्य की हैं जबकि चित्रित धूसरभाण्ड का प्रारंभ 1000 ई० पू० के लगभग या उसके कुछ बाद हुआ लगता है। फिर स्तर-प्रमाण इतना तो स्पष्ट करता है कि सिंधु सभ्यता इन संस्कृतियों 'कब्रिस्तान एच', 'झूकर' और 'चित्रित धूसर-भाण्ड' से पहले की है; किंतु कितनी पहले की है यह अब तक अनुमान का विषय बना है।

मार्शल द्वारा किये उत्खनन के विवरण के अनुसार मोहेंजोदड़ो में सात बार एक के बाद दूसरी नगरी बसी और उजड़ी। जहां तक खोदा जा सका है संस्कृति के अवशेष हैं जो अब जल-स्तर ऊंचा होने से खोदे नहीं जा सके। यह अनुमान नहीं लगाया जा सका कि अवशेषों की कितनी मोटी तह अभी जलमग्न है। यों टीले में अवशेषों का बहुत गहराई तक मिलना और अनेक बार नगर का निर्माण, पुनर्निर्माण जिस तरह मोहेंजोदड़ो में हुआ है उसका ट्राय, एथेन्स आदि दूसरे प्राचीन नगरों के साक्ष्य से तुलना करने पर ऐसा सोचना स्वाभाविक है कि यहां पर संस्कृति दीर्घकाल तक रही। किंतु मार्शल ने मत व्यक्त किया कि निरंतर बाढ़ के प्रकोप के कारण निर्माण और पुननिर्माण काफी जल्दी-जल्दी हुआ होगा और संस्कृति में प्रारंभ से लेकर अन्त तक जो मूल-भूत एकरूपता भवनों के निर्माण, मुद्राएं, मृद्भाण्ड आदि अनेक प्रकार के उपकरणों में द्रष्टव्य हैं वह भी एक अपेक्षाकृत लघु-काल में ही अधिक संभव हो सकती थी। इन दो बातों को ध्यान में रखकर इसके लिए बहुत लंबी अवधि का अनुमान लगाना ठीक नहीं। उन्होंने यह धारणा व्यक्त की कि दूसरे स्थलों में यह सभ्यता मोहेंजोदड़ो के समाप्त होने के बाद भी चलती रही। मार्शल ने मोहेंजोदड़ो नगर की कालावधि 500 साल आंकी। इस तिथि-निर्धारण में सिंधु सभ्यता का बेबीलोनी-सुमेरी संस्कृति के संदर्भ में बेबोलोनी-सुमेरी संस्कृति की सिंधु सभ्यता के संदर्भ में प्राप्त सामग्री को ध्यान में रखकर उन्होंने इस सभ्यता का समय 3250-2750 ई० पू० प्रस्तावित किया। यह उल्लेखनीय है कि जब मार्शल ने यह तिथि निर्धारित की उस समय मेसोपोटामिया के इतिहास के विभिन्न कालों की तिथियां आज की अपेक्षा काफी पुरानी आंकी गयी थीं। उदाहरण के लिए अक्काद में सम्राट् सारगन का काल उस समय लगभग 2800 ई० पू० माना जाता था जबकि आज वह लगभग 2370-2284 ई० पू० माना जाता है। मार्शल द्वारा निर्धारित यह तिथि उस समय के साक्ष्यों को देखते हुए तर्कपूर्ण थी, किंतु अब नये साक्ष्यों के संदर्भ में इसका पुनरीक्षण आवश्यक है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मैके ने फ्रैंकफर्ट द्वारा टेल अस्मर में की गयी खोदाइयों से उद्घाटित अक्काद काल (जिसे फ्रैंकफोर्ट ने 2500 ई० पू० रखा था) और मोहेंजोदड़ो के अंतिम काल की संस्कृतियों में समानता देखी और इसलिए उन्होंने मोहेंजोदड़ो के अंतिम चरण को 2500 ई० पू० रखा। अन्य साक्ष्यों के आधार पर मैके ने सिंधु सभ्यता के प्रारम्भ की तिथि 2800 ई० पू० आंकी। उनका कहना है कि ईंटें लवण के प्रभाव से जल्दी-जल्दी नष्ट हुई होंगी। आज भी ऐसा होते देखा गया है। अतः इस सभ्यता की पूरी अवधि लगभग 300 साल उन्होंने आंकी।

1921 से 1934 के बीच हड़प्पा की खोदाई के दौरान माधो सरूप वत्स को यहाँ पर निम्नतम स्तरों से जो सामग्री प्राप्त हुई थी वह उन्हें मोहेंजोदड़ो से प्राप्त निम्नतम स्तरों की सामग्री से भी प्राचीन लगी और उसके आधार पर यह अनुमान लगाया गया कि हड़प्पा नगर के शिलान्यास की तिथि मोहेंजोदड़ो से भी पीछे होनी चाहिए। एक टीले के मध्य प्रकाल की चौथी परत में और उससे नीचे भी कुछ ऐसी मुद्राएं मिलीं जो छोटी थीं; मोहेंजोदड़ो में इस तरह की मुद्राओं का अभाव है। उसके नीचे भी काफी गहराई तक अवशेष थे। वत्स ने इस चौथी परत के प्रारंभ की तिथि मोहेंजोदड़ो के निम्नतम स्तरों से पूर्व का माना और चूंकि मार्शल ने मोहेंजोदड़ो में संस्कृति के प्रारंभ के लिए 3200 ई० पू० तिथि प्रस्तावित की थी वत्स, ने इसे 3500 ई० पू० का आंका और उससे पहले, जिसे वे प्रारंभिक प्रकाल की संज्ञा देते हैं, की तिथि चतुर्थ सहस्राब्दी का प्रथमार्द्ध मानते हैं। वह सिंधु सभ्यता के अन्तिम चरण की अन्तिम तिथि 2700 ई० पू० मानते हैं। 'एच कब्रिस्तान' की तिथि उन्होंने 2500-2000 ई० पू० मानी है। साथ ही उन्होंने यह विशेष रूप से स्पष्ट किया कि यह तिथि उन्होंने उस संस्कृति के अव तक उपलब्ध अवशेषों के लिए प्रस्तावित की है जो कि हमें विकसित रूप में मिलती है। उनके अनुसार विकास की इस स्थिति तक पहुँचने में जो समय लगा होगा उसका ठीक अनुमान लगाना कठिन है। केदारनाथ शास्त्री भी वत्स की तरह हड़प्पा में सिंधु सभ्यता का प्रारंभ चतुर्थ सहस्राब्दी के प्रथम चरण से मानते हैं।

व्हीलर ने, अक्काद के सम्राट् सारगन की संशोधित तिथि (लगभग 2370-2284 ई० पू०) के परिप्रेक्ष्य में मेसोपोटामिया में प्राप्त सिंधु सभ्यता की मुद्राओं के स्तर-संदर्भ की पुनर्विवेचना कर (देखिये नीचे पृष्ठ 236) सिंधु सभ्यता का प्रारंभ 2500 ई० पू० के लगभग और उसका अन्त 1500 ई० पू० के आस-पास माना है। वे इस सभ्यता का अंत आर्य आक्रमण के फलस्वरूप मानने के पक्ष में हैं जो उनके मतानुसार लगभग 1500 ई० पू० में हुआ था। सिंधु सभ्यता की तिथि संवंधी व्हीलर का यह मत काफी समय तक अधिकांश विद्वानों को मान्य रहा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर कुछ विद्वानों ने प्रारंभ से ही उनके इस मत पर संदेह व्यक्त किया था। संदेह का एक मुख्य कारण हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो में प्रारंभिक चरण से अंत तक संस्कृति की लगभग समरूपता थी। यह कुछ आसानी से स्वीकार करने वाली बात नहीं कि हजार साल तक किसी सभ्यता, विशेषतः सिंधु जैसी विकसित सभ्यता के भौतिक उपकरणों में विशेष परिवर्तन न हुए हों। संदेह करने का दूसरा कारण यह था कि नदियों में बाढ़ों के कारण बस्तियों का उजड़ जाना और मोटी बलुई परतों का जमाव और एक ही स्थान पर बार-बार निर्माण और पुर्ननिर्माण होने से टीलों का काफी ऊंचा होना स्वाभाविक है। इसलिए इन विद्वानों का कहना है कि मात्र टीलों की ऊंचाई के, आधार पर यह अनुमान लगाना समीचीन न होगा कि सिंधु सभ्यता लंबी अवधि तक पनपती रही।

1955 में अलब्राइट (Albright) ने मत व्यक्त किया कि मेसोपोटामिया के साक्ष्यों के आधार पर इस सभ्यता का अंत ई० पू० 1750 के लगभग हुआ था। 1956 में फेयरसर्विस को क्वेटा घाटी में महत्त्वपूर्ण उत्खनन कराने का अवसर मिला। उत्खनन में प्राप्त सामग्री के अध्ययन के बाद उन्होंने सिंधु सभ्यता की कालावधि 500 वर्ष लगभग 2000 से 1500 ई० पू० के मध्य निर्धारित की। इस सभ्यता के प्रारंभ के लिए फेयरसर्विस द्वारा प्रस्तावित तिथि (2000 ई० पू०) इसके लिए व्हीलर द्वारा प्रस्तावित तिथि (2500 ई० पू०) से काफी बाद में पड़ती है।

सन् 1964 में धर्मपाल अग्रवाल ने सिंधु सभ्यता के विभिन्न स्तरों से प्राप्त कुछ जैविक सामग्री की तिथियाँ कार्बन–14 पद्धति द्वारा निर्धारित की गयी तिथियों के समग्र अध्ययन के बाद इस सभ्यता का जीवन काल 2300-1750 ई० पू० स्वीकार करने का सुझाव दिया। इस मत से इस सभ्यता की कुल अवधि साढ़े पाँच सौ वर्ष ठहरती है। यह एक रोचक तथ्य है कि यद्यपि इस सभ्यता के प्रारंभ और अंत की मार्शल द्वारा निर्धारित की गयी तिथि (3250 ई० पू०–2750 ई० पू०) कार्बन 14 विधि से निर्धारित तिथि से कहीं पहले पड़ती है तथापि मार्शल का यह अनुमान कि मोहेंजोदड़ो में सभ्यता की कुल अवधि 500 वर्ष है, जो कार्बन 14 विधि से ज्ञात इस सभ्यता की कुल अवधि के साक्ष्य के अत्यंत निकट है।

1968 में आल्चिन और श्रीमती आल्चिन ने कोटदीजी और कालीबंगां की सिंधु सभ्यता की तिथियों का विश्लेषण कर यह निष्कर्ष निकाला कि इन स्थलों पर सिंधु सभ्यता चार शताब्दियों 2150 ई० पू० से 1750 ई० पू० तक विद्यमान रही यद्यपि अन्य स्थलों में इसमें कुछ अंतर हो सकता है। वे कहते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं कि सभ्यता के प्रारंभ के लिए यदि इस तिथि में 100 साल का अंतर भी मान लिया जाय तो सिंधु सभ्यता के आरंभ की तिथि 2250 ई० पू० स्वीकार की जा सकती है। वे यह सुझाते हैं कि 2150 ई० पू० के पहले के मेसोपोटामिया के साथ भारतीय क्षेत्र के व्यापारिक संबंधों का उल्लेख है उनका तात्पर्य कदाचित् आमरी संस्कृति के साथ व्यापारिक संबंधों से है न कि सिंधु सभ्यता के साथ।

बुख्नन (Buchanan) के अनुसार सिंधु सभ्यता की मेसोपोटामिया की आयातित मुद्राओं तथा अन्य वस्तुओं का प्राचीनतम उपलब्ध साक्ष्य (देखिये आगे पृष्ठ 236) भी 23 वीं शती ई० पू० से पहले का नहीं है। अतः विकसित सिंधु सभ्यता के मेसोपोटामिया से संपर्क के साक्ष्य (देखिए आगे) 23 वीं शती ई० पू० से बहुत पहले के नहीं हैं। उनका यह भी कहना है कि सिंधु सभ्यता के प्रौढ़ (विकसित—mature) चरण की अवधि लगभग 300 वर्ष की है और इसका अंत 2000 ई० पू० में हो गया। कुतूहल का विषय है कि इवार लिस्सनर (Ivar Lissner) ने इस सभ्यता की कालावधि 1700-1500 ई० पू०[1] आंकी लेकिन लिस्सनर महोदय ही कुषाण स्तूप के नीचे के अवशेषों के लिए आज से 4000 वर्ष पहले की तिथि होने की सम्भावना मानते हैं,[2] और इस आधार पर तो 2000 ई० पू० से कुछ पहले ही सिंधु सभ्यता की तिथि होनी चाहिए। फिर वह इस सभ्यता को मिस्र के राजा अखनेतन का समकालीन मानते हैं।[3]

तिथि के संबंध में विभिन्न विद्वानों का उल्लेख करने के पश्चात् अब हम उस सामग्री का विवेचन करेंगे जिस पर अधिकांश मत आधारित हैं। यों आकार-प्रकार में किंन्चित समानता तो आकस्मिक हो सकती है और इसलिए इसे तिथि-निर्धारण के लिए निचित प्रमाण नहीं माना जा सकता। सिंधु सभ्यता और मेसोपोटामिया के सारगन और उससे पूर्व की संस्कृति के संदर्भ में कार्नीलियन के रेखांकित मन के मिले हैं। मोहेंजोदड़ों तथा लोथल से प्राप्त सोने की अक्षीय नली वाले बिम्ब (disc) मनके की तरह के मनके मेसोपोटामिया के अनेक स्थलों में प्रारंभिक राजवंश III अक्काद संस्कृति के संदर्भ में और ट्राय के II 'जी' स्तर में (जिसकी तिथि लगभग 2300 ई० पू० आंकी गयी है), पाये गये

---

1. Ivar Lissner, *The Living Past*, Translated from German by J. M. Brownjohn (1957) p. 146.

2. वही, पृ० 148

3. वही, पृ० 151

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं । मोहेंजोदड़ो से प्राप्त चांदी की अगूंठी (ring) पर एक तिरछा सलीबनुमा डिजाइन है । यदि यह समानता केवल आकस्मिक न होकर परस्पर संबंधों की द्योतक है तो कुछ विद्वानों के अनुसार इस साक्ष्य के आधार पर सिंधु-सभ्यता के मनकों के लिए 2300 ई० पू० से कुछ पहले की तिथि ज्ञात होती है ।

यह उल्लेखनीय है कि मेसोपोटामिया से सम्पर्क के लगभग सभी साक्ष्य उन उत्खननों से उपलब्ध हैं जिनमें वस्तुओं की तिथि वैज्ञानिक विधि से परतों के आधार पर निर्धारित न कर गहराई के आधार पर निर्धारित की गयी । यह स्वाभाविक ही है कि अब पुरातत्त्ववेत्ता इस विधि के आधार पर किये गये वस्तुओं के काल-निर्धारण को संदेह की दृष्टि से देखते हैं ।

हरिताभ लिए क्लोराइट सिस्ट का जो टुकड़ा मोहेंजोदड़ो के निम्न स्तरों में पाया गया है, उस पर बुनी चटाई का सा डिजाइन बना है । यह टुकड़ा ऐसे बर्तन का है जो द्वार तथा खिड़की सहित वृत्ताकार कुटिया की आकृति से मिलता-जुलता है । ऐसे पत्थर के बर्तन मेसोपोटामिया में प्रारम्भिक राजवंश के संदर्भ में खफजे, उर (रानी की कब्र में) किश, लगश, अदब और द्वारी में मिले हैं और सूसा (II) में भी । इनकी तिथि लगभग 2500 ई० पू० आंकी गयी है । पिगट के अनुसार ये बर्तन मकरान और सीस्तान में बनाये गये थे जहां इस तरह के बर्तन मिले हैं और वहीं से इन्हें एक ओर सिंधु सभ्यता के क्षेत्र में और दूसरी ओर मेसोपोटामिया में ले जाया गया । इनके प्रयोग के विषय में उनका मत है कि इनमें शरीर पर लेप के लिए प्रसाधन सामग्री रखी गयी होंगी ।[1]

दूसरे प्रकार के पत्थर के बर्तन और उनकी अनुकृति में बने वर्गाकार या बेलनाकार मजबूत मिट्टी के बर्तन मिले हैं । इन पर खाने बने हैं । ये मेही (बलूचिस्तान) और मोहेंजोदड़ो की ऊपरी सतह पर पाये गये हैं । मेसोपोटामिया में ये बर्तन ऊपर वर्णित पत्थर के बर्तनों के समकालीन भी हैं और कुछ बाद तक भी प्रयुक्त होते रहे हैं ।

तेल अस्मर से अक्कादी स्तरों में सिंधु सभ्यता के वृक्क (Kidney) के आकार के हांथी दांत के उत्खचन मिले हैं जो शंख के अनुप्रस्थच्छेद पर आधा-

---

1. इस तरह के बर्तनों की तिथि भारतेतर संदर्भ में सी. जे. गैड्ड ने 3000 ई० पू० से 2600 ई० पू०, एम० डी० मैक्वेनम ने 2700 ई० पू० तथा एम० कांटेनन ने 3000 ई० पू० – 2800 ई० पू० आंकी है किंतु कुछ विद्वानों के अनुसार इनकी तिथि के बारे में निश्चित रूप से इतना ही कहा जा सकता है कि वे 2400 ई० पू० से पहले के हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रित हैं। हड़प्पा तथा मोहेंजोदड़ो के कुछ बर्तनों पर उभार लिये दाने हैं जो तेल अस्मर में अकादी स्तरों में मिले हैं।

सांड की कुछ मृण्मय आकृतियां और चित्रों को भी कुछ विद्वानों ने परस्पर सम्पर्क का द्योतक माना है। इस तरह के साक्ष्य निम्नलिखित हैं :—

(1) दियाला घाटी में लोहित भाण्ड (scarlet ware) पर चित्रित आकृतियां।

(2) पूर्व राजवंश I–II काल में एक सेलखड़ी के बर्तन पर चित्रित आकृतियां।

(3) तेल अस्मर से सारगन काल में प्राप्त मिट्टी पर-उत्कीर्ण आकृति।

(4) तेल बिल्ला के सूसा 'डी' काल के संदर्भ में प्राप्त आकृति। चूंकि सिंधु सभ्यता से कहीं पहले मुण्डीगाक (अफगानिस्तान) I में सांड ज्ञात था अतः इस पशु की मेसोपोटामिया के स्थलों पर मूर्त अंकन अथवा चित्रण को सिंधु सभ्यता और प्राचीन मेसोपोटामिया की सभ्यताओं के पारस्परिक सम्पर्क का प्रमाण मानना कठिन है।

हिसार III बी में एक तांबे का चाकू मिला है जिसके फल की नोक हड़प्पा सभ्यता के संदर्भ में प्राप्त चाकुओं की तरह कुछ मुड़ी है। मोहेंजोदड़ो से प्राप्त कांसे के छेदवाला कुल्हाड़ी वसूला की तरह के उपकरण फारस में तृतीय सहस्राब्दी के अंत या द्वितीय सहस्राब्दी की तिथि वाले स्तरों में मिले हैं। मेसोपोटामिया और फारस की छेदवाली कुल्हाड़ियों से मिलती-जुलती कुल्हाड़ियां चन्हुदड़ो में सिंधु सभ्यता के अंतिम चरण या झूकर संस्कृति में शाही तम्प (दक्षिणी बलूचिस्तान) में पायी गयी हैं। मोहेंजोदड़ो में इस तरह की कुल्हाड़ियों के बने मिट्टी के दो माडल मिले हैं। ह्वीलर के अनुसार इनकी तिथि 2000 ई० पू० के लगभग हो सकती है लेकिन जैसा—मैलोवन का कथन है सुमेर में इस तरह की माडल कुल्हाड़ियां अल उवेद काल में भी मिलती हैं। चन्हुदड़ो के परवर्ती हड़प्पा या झूकर चरण में तांबे के गदा-सिर की तुलना पिगट ने लुरिस्तान में प्राप्त हुए इसी तरह के गदा सिर से की है और उनका अनुमान है कि लुरिस्तान से प्राप्त हुआ गदा सिर 1400 ई० पू० या कुछ बाद का है। किंतु इस धातु उपकरण के साम्य को भी अधिकांश विद्वान् तिथि-निर्धारण के लिये विश्वसनीय नहीं मानते क्योंकि तृतीय सहस्राब्दी ई० पू० में इस क्षेत्र में अनेक जातियों का आगमन निर्गमन हुआ। ह्वीलर ने तिथि निर्धारण के संदर्भ में व्यापारिक साक्ष्य का उल्लेख किया है। उनके अनुसार प्रारंभिक राजवंश

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(Early Dynastic) काल में लाजवर्द का पर्याप्त प्रयोग होता रहा है और सारगन काल में इसका प्रयोग कम हो जाता है। मोहेंजोदड़ो हड़प्पा और चुन्हु-दड़ो में भी इसका प्रयोग बहुतायत में किया गया है (देखिए अध्याय 'आर्थिक जीवन' पृष्ठ 158) उनका कहना है कि लाजवर्द की लोकप्रियता अथवा उसकी प्राप्ति में कमी दोनों क्षेत्रों—'सिंधु' एवं 'मेसोपोटामिया'—में एक ही कारण से हो सकती थी और यह भी दोनों की समकालीनता सिद्ध करता है।

मोहेंजोदड़ो और चन्हुदड़ो की आवर्त शीर्ष वाली पिनों से मिलती-जुलती पिनें सियाल्क (ईरान) में चतुर्थ सहस्रादी ई० पू० और इटली में 1300 ई० पू० में पाई जाने से उनका साक्ष्य तिथि निर्धारण में सहायक नहीं। मोहेंजोदड़ो से प्राप्त पशु-शीर्ष वाली पिनों का साक्ष्य भी तिथि निर्धारण में विशेष सहायक नहीं क्योंकि इस तरह की पिनें मेसोपोटामिया और एलम में प्रारम्भिक राजवंश के संदर्भ में, अनातोलिया में लगभग 2000 ई० पू०, ईरान के लुरिस्तान में लग-भग 1400 ई० पू० और कोबन कब्रिस्तानों में लगभग 1300 में मिली हैं।

सिंधु सभ्यता के विभक्त मनकों का साक्ष्य भी निश्चित नहीं है, हड़प्पा और क्नोसास से प्राप्त एक एक मनके का वर्णक्रम लेखी विश्लेषण करने पर दोनों की संरचना में पूर्ण एकरूपता पाई गई जिससे ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि दोनों का निर्माण स्रोत एक ही है। व्हीलर ने क्नोसास में इस तरह के मनकों की तिथि लगभग 1600 ई० पू० सुझाई है लेकिन यह अनुमान पर ही आधारित है निश्चित साक्ष्य पर नहीं। सेलखड़ी के विभक्त मनके टेलब्राक (उत्तरी सीरिया) में 3200 ई० पू० के संदर्भ में मिलते हैं। यों भी दोनों क्षेत्रों के एक एक मनके की संरचना में समानता आकस्मिक भी हो सकती है और जबतक दोनों क्षेत्रों से प्राप्त अनेक मनकों का विश्लेषण नहीं किया जाता, इस उपर्युक्त समानता के तिथि निर्धारण के संदर्भ में विशेष महत्त्व नहीं दिया जा सकता। कम से कम 1600 ई० पू० के लगभग की तिथि सिंधु सभ्यता के परिप्रेक्ष्य में बहुत बाद की लगती है।

लोथल बी के संदर्भ में प्राप्त ऊँची गर्दन वाले (high necked) अण्डाकार मृद्-भाण्ड आहाड़ I बी में भी मिलता है। आहाड़ I ए की कार्बन 14 विधि से उपलब्ध तिथि 1727±140 और आहाड़ I सी के मध्य परतों की तिथि 1552±108 आती है। I बी के लिए लगभग 1600 ई० पू० तिथि मानी जा सकती है और यही तिथि लोथल बी (पांचवा चरण) की भी मानी जा सकती है। मोहेंजोदड़ो और लोथल में रिजर्ण्ड लेप वाले बर्तन भिन्न हैं जो इन्हें प्राचीन सिद्ध करता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लोथल और टेलब्राक की मुद्राओं पर प्राप्त अनेक रेखाओं से बनाया गया स्वस्तिक अभिप्राय का उल्लेख भी तिथि संबंधी साक्ष्य के तौर पर किया गया है। लेकिन यह एक सामान्य प्रकार का अभिप्राय है और इसका साक्ष्य तिथि निर्धारण के संदर्भ में सर्वमान्य नहीं हो सकता। फिर टेलब्राक के इस तरह के अभिप्राय के प्रयोग की तिथि लगभग 3200 ई० पू० आंकी गयी है जो अद्यतन उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर सिंधु सभ्यता के अधिक से अधिक अनुमानित तिथि से भी पहले की है।

मुद्राओं का साक्ष्य

सिंधु सभ्यता की तिथि ज्ञात करने के लिए भारतेतर देशों में प्राप्त कुछ ऐसी मुद्रायें जो अभिप्राय अथवा आकार प्रकार से सिंधु सभ्यता में निर्मित अथवा सिधु शैली की नकलें लगती हैं, अत्यन्त महत्वपूर्ण साक्ष्य प्रस्तुत करती हैं। यह सही है कि इन भारतेतर स्थलों में उनकी तिथि निर्धारित करने के स्तरीय साक्ष्य हमारी सहायता करते हैं किंतु मेसोपोटामिया की वे खोदाइयां भी जिनमें ये मिली थीं आधुनिक वैज्ञानिक ढंग से नहीं की गई थीं और इसलिए आधुनिक पुरातत्त्ववेता उनके साक्ष्य को निस्सकोच स्वीकार नहीं करते और मतभेद होना स्वाभाविक है। फिर यह समस्या भी रह जाती है कि वे सिंधु सभ्यता के किस स्थल और किस स्तर (प्रारम्भिक, मध्य अथवा अन्त) की है क्योंकि साधारणतः सिंधु सभ्यता के अधिकांश उपकरणों में प्रारम्भिक काल से लेकर अन्त तक कोई विशेष अंतर नहीं दिखता और जहां तक शंका उठाने का प्रश्न है सिद्धांत रूप में यह भी कहा जा सकता है कि यह भी सम्भव है कि ये मुद्रायें सिंधु सभ्यता के अबतक ज्ञात काल से भी पूर्व के काल की हों, अथवा अंतिम ज्ञात स्तरों के काल से भी बाद की हों। यों सम्भावना यही है कि ये मुद्रायें इन नगरों के विकसित काल की हैं। अब हम मुद्राओं के साक्ष्य की विवेचना करेंगे।

सी० जे० गैड्ड ने इन मुद्राओं का सर्वप्रथम गहन अध्ययन एवं विश्लेषण किया था। व्हीलर ने इनका पुनर्विवेचन किया और नीचे दिया गया विवरण उन्हीं के पुनर्विवेचन पर आधारित है। कुल मिलाकर 21 इस प्रकार की मुद्राएं हैं। कुछ (कम से कम सोलह) ऐसी हैं जिनके प्राप्तिस्थल किश, लगश, उम्मा, तेल अस्मर, टेपे गौरा और हम्मा (सीरिया) आदि ज्ञात हैं। इन 29 मुद्राओं में से केवल 12 या 13 ही ऐसी है जिनका प्राप्ति स्थल ज्ञात है और इसमें से भी कुछ को ही ज्ञात तिथि वाले स्तरों से कुछ हद तक सम्बद्ध कर सकते हैं। लेकिन यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि इनकी तिथि के बारे में भी विद्वान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पूर्णतः एकमत नहीं हैं । यही नहीं कुछ तो उपर्युक्त मुद्राओं में से कतिपय सिंधु सभ्यता की होने अथवा उनकी नकल पर बनी होने के संबंध्र में भी संदेह व्यक्त करते हैं । जिन मुद्राओं की तिथि के बारे में थोड़ी बहुत जानकारी हुई उनका विवरण व्हीलर के दिये क्रम में नीचे प्रस्तुत है—

1. सेलखड़ी की वर्गाकार मुद्रा जिसके किनारे गोलाई लिए हैं और पृष्ठभाग सिंधु सभ्यता के बटन प्रकार की मुद्रा की तरह है । इसके अग्रभाग पर सिंधु सभ्यता की तरह बैल अंकित है किंतु कला की दृष्टि से कुछ सिंधु सभ्यता की मुद्राओं पर अंकित बैल से निम्न कोटि का है । इसके प्राप्ति स्तर का ज्ञान नहीं किंतु इस पर पुरा कीलाकार लेख है जिसे कुछ विद्वानों ने सारगन से पूर्व काल का माना है, किंतु लिपि के आधार पर निश्चिततिथि निर्धारण में कठिनाई स्वाभाविक है और अतः यह निश्चित नहीं है (गैड्ड नं० 1) ।

2. उर से प्राप्त सेलखड़ी की वृत्ताकार मुद्रा जिसकी बटन की तरह पीठ है और जिस पर वृषभ और सिंधु लिपि के कुछ चिह्न अंकित है। कुछ के अनुसार अक्काद से पूर्व के स्तरों में पाई गई किंतु कुछ के अनुसार यह अक्कदीय स्तर की है (गैड्ड नं० 16) ।

3. उर से प्राप्त मुद्रा जिस पर वृषभ अंकित है; लेख में कुछ सिंधु सभ्यता की लिपि से कुछ भिन्न लिपि के चिह्न हैं । साथ में प्राप्त वस्तुएं सारगन काल की तिथि सूचित करते हैं (गैड्ड नं० 15) ।

4. किश से प्राप्त सारगन कालीन सेलखड़ी की वर्गाकार मुद्रा जिस पर एकशृंगी पशु और सिंधु लिपि के अक्षर अंकित है ।

5. टेल अस्मर से अक्कदकालीन बिना लेख वाली बेलनाकार मुद्रा (सम्भवतः ग्लेज की हुई सेलखड़ी की) जिसपर हाथी गैंडा और घड़ियाल अंकित है ।

6. टेल अस्मर से प्राप्त सारगन काल की अलाबास्टर की वर्गाकार बटन की तरह की मुद्रा जिसके मुखभाग पर वर्ग के भीतर वर्ग का डिजाइन है और सबसे बाहरी वर्ग में मनके का डिजाइन है ।

7. टेपे गौरा से प्राप्त पकी मिट्टी की वर्गाकार मुद्रा जिस पर वर्ग के भीतर वर्ग का डिजाइन बना है । यह या तो सारगन काल की है या कुछ पहले की ।

8. किश से प्राप्त सारगन कालीन सैंधव प्रकार की सेलखड़ी की वर्गाकार मुद्रा जिस पर एकशृंगी पशु और सिंधु लिपि के चिह्न हैं ।

9. लगश से प्राप्त लार्सा कालीन सिंधु लिपि चिह्नों वाली मुद्रा ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

10. उर में प्राप्त लार्सा कालीन पत्थर की बेलनदार मुद्रा, जिस पर ताड़ वृक्ष के सम्मुख कूबड़ वाला बैल अंकित है। बैल के पीछे एक बिच्छू और दो सांप और एक मानवाकृति दिखाई गई हैं।

11. उर से प्राप्त वृत्ताकार मुद्रा जिसका पृष्ठ भाग बटन की तरह है। मुद्रा पर मानवाकृति ऐसी वंहगी (yoke) लिए है जिससे दो वर्तन या मछली पकड़ने का जाल लटक रहा है। कुछ इसे (1500 ई० पू० या बाद) की मानते हैं, लेकिन व्हीलर ने इसे लार्सा काल (1900 ई० पू० के लगभग) की माना है।

12. हमा (सीरिया) से प्राप्त 'श्वेत' पत्थर की बेलनाकार मुद्रा का टुकड़ा जिस पर सैंधव प्रकार के बैल का सिर बना है। इसे लगभग 2000-1750 ई० पू० का माना है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त कुछ अन्य मुद्रा साक्ष्य का उल्लेख भी समीचीन होगा। एक हीराकृति प्रकार की मुद्रा और चन्हुदड़ो से एक वृत्ताकार मुद्रा मिली है जिस पर गरुड़ का चिह्न है। इस तरह का अभिप्राय सूसा में लगभग 2400 ई० पू० और टेलब्राक (उत्तरी सीरिया) में 2400 ई० पूर्व में मिलता है। यह भी तिथि निर्धारण के लिए सारगन और थोड़े बाद के काल का साक्ष्य प्रस्तुत करता है।

हाल ही में लैम्बर्ग कार्लोव्सकी ने टेपे याह्या (Tepe yahya) दक्षिण पूर्वी ईरान) के उत्खनन के दौरान एक मृद्भाण्ड का टुकड़ा पाया जिस पर सिंधु सभ्यता की मुहर छाप है। उसी तरह से प्राप्त कोयले की रेडियो कार्बन तिथि 2350 ई० पू० है। यदि इस रेडियो कार्बन तिथि को मान्यता दी जाय तो सिंधु सभ्यता के प्रारंभ के लिए इससे कुछ पहले की तिथि स्वीकार करनी पड़ेगी।

इस संदर्भ में लोथल से प्राप्त 'फारस की खाड़ी' प्रकार की मुद्रा का उल्लेख महत्त्वपूर्ण होगा। हाल ही में डेन पुरातत्वविदों द्वारा बहरीन और फैयल्का (Failaka) में किये गये उत्खननों से महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हुई है जिसमें विशिष्ट प्रकार के वृत्ताकार मुद्राएं कोष उल्लेखनीय हैं। इन मुद्राओं के बारे में अबतक जो थोड़ी बहुत सामग्री प्रकाशित हुई है उसके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि यद्यपि ये सिंधु सभ्यता के मुद्राओं के पूर्णतया अनुरूप नहीं है तथापि उनसे संबद्ध अवश्य हैं। कुछ तो सिंधु मूल की ही लगती हैं जो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यापार के संदर्भ में वहाँ पहुँची । हाल ही में बुख्नन ने मेसोपोटामिया के किसी स्थल (संभवतः उर) से प्राप्त कीलाक्षर पट्टिका प्रकाशित की है जो लार्सा के राजा गुनगुनम के दसवें वर्ष (अर्थात् 1923 ई० पू०) की है। इस पट्टिका पर फारस की खाड़ी के प्रकार की एक प्रकार (बुख्नन का तीसरा प्रकार) की मुद्रा की छाप है । इससे 'फारस की खाड़ी' प्रकार की मुद्रा की तिथि निर्धारित की जा सकती है। चूंकि लोथल में भी इसी तरह की एक मुद्रा टीले की सतह से मिली है अतः लोथल की मुद्रा की तिथि भी 1923 ई० पू० के लगभग होगी ।[1]

उपर्युक्त साक्ष्य इस बात के द्योतक हैं कि प्रारंभिक राजवंश III के अंत के बाद और अक्काद काल (अर्थात् लगभग 2400 ई० पू०) से कुछ समय पहले से मेसोपोटामिया और सिंधु सभ्यता के मध्य संपर्क था । ऊपर ह्वीलर के वर्णन के आधार पर जिन बारह मुद्राओं का संक्षिप्त विवरण दिया गया है उनमें से तीन के बारे में मतभेद है । कुछ विद्वान इन्हें सारगन काल से पूर्व की और कुछ सारगन काल की मानते हैं । ह्वीलर ने केवल एक को ही सारगन काल से पूर्व की माना है, उनके अनुसार शेष बारह मुद्राओं में से छह सारगन काल की, बाकी लार्सा काल और इससे भी बाद के काल की हैं ।

सिंधु सभ्यता के काल-निर्धारण के संबंध में मेसोपोटामिया के उस अभिलिखित साक्ष्य का उल्लेख भी समीचीन होगा जिसमें मेलुहह दिल्मुन और मगन (या मकन) नामक तीन देशों का उल्लेख है जिनके साथ मेसोपोटामिया का व्यापार होता था । इन तीनों नामों की पहचान पर विद्वान एकमत नहीं हैं । हमने विभिन्न मतों का उल्लेख परिशिष्ट में दिया है, यहाँ इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि इन स्थलों से मेसोपोटामिया को लकड़ी, हाथीदांत, कार्नीलियन आदि के निर्यात का उल्लेख है । ये वस्तुएं सिंधु सभ्यता के क्षेत्र की ओर इंगित करती हैं । जहां वे सुलभ रही थीं । उक्त अभिलेखीय सामग्री उर के तृतीय राजवंश कालीन (अर्थात् 2130-2030 ई० पू०) अथवा लार्सा राजवंश (अर्थात् 2030-1700 ई० पू०) कालीन हैं ।

---

1. राव का कहना है कि यह मुद्रा 1900 ई० पू० से काफी पहले की होनी चाहिए क्योंकि 1900 ई० पू० के लगभग तो लोथल का बहरीन द्वीप और अन्य विदेशी क्षेत्रों से व्यापार बहुत कम हो गया था दूसरी ओर सारगन काल (लगभग 2300 ई० पू०) में इस तरह का व्यापार अपनी चरम सीमा पर था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यद्यपि परतों अथवा सांस्कृतिक अवशेषों की मोटाई तिथि निर्धारण का कोई निश्चित पैमाना नहीं है, तथापि तिथि निर्धारण के संबंध में इनके साक्ष्य की एकदम अवहेलना भी नहीं की जा सकती । स्वयं ह्वीलर, जिन्होंने गहराई के आधार पर तिथि निर्धारण की कटु आलोचना की है और भारतीय पुरातत्व में परतों को आधार बनाकर खोदाई की विधि की शुरुआत कराई, मोहेंजोदड़ो के अत्यन्त गहरे निक्षेपों को तिथि निर्धारण के लिए साक्ष्य के रूप में स्वीकार करने के लिये प्रेरित हुये हैं । 1964 में डेल्स ने मोहेंजोदड़ो में टीले की निचली सतह से बेधन (बोरिंग) द्वारा खोदाई की । इसमें सतहके नीचे 11.88 मीटर की गहराई तक इस संस्कृति के अवशेष मिले । उस तल से जहां से डेल्स ने बेधन शुरू किया था टीला लगभग 9.14 मीटर ऊंचा है । यानी टीले की उपरी सतह से 9.14 + 11.88 लगभग 21 मीटर की गहराई तक की परतों में इस सभ्यता के अवशेष मिले हैं । स्वयं ह्वीलर ने 1950 में मोहेंजोदड़ो के बाढ़ जनित मैदानी सतह (flood plain) से 7.92 मीटर (जिसमें तीन मीटर से कुछ अधिक पानी के अंदर की खोदाई भी शामिल है) नीचे तक खोदा और उन्हें इस सतह तक अन्नागार भवन के नींव की निचली सीमा मिली । यह संभव है कि बाढ़ आदि के कारण अल्प काल में ही बालू तथा कुछ अन्य प्रकार के निक्षेप की काफी मोटी तहें जमा हो गयी हों, और ऐसी दशा में निक्षेप के कारण ही लंबी अवधि निर्धारित करने के तर्क का वजन कम हो जाता है । डेल्स के बेधन से बहुत थोड़ी ही सामग्री प्राप्त हो सकी है अतः इस संभावना को पूर्णतः नकारा नहीं जा सकता कि निम्नतम स्तरों की वस्तुएं सिंधु सभ्यता से भिन्न हों । लेकिन यदि निम्नतम स्तरों के अवशेष भी सिंधु सभ्यता के ही हैं, जिसकी कि अधिक संभावना है, तो इस सभ्यता के प्रारंभ की तिथि 2400 ई० पू० से कुछ पहले निर्धारित की जा सकती है । ह्वीलर तो कहते हैं कि इससे कहीं पहले की तिथि स्वीकार करने के लिए भी हमें तैयार रहना चाहिए ।[1]

रेडियो कार्बन (कार्बन-14) विधि के अनुसार रेडियोधर्मी कार्बन-14 का अर्ध-जीवन अर्थात् मूल के आधे क्षय हो जाने का समय 5730 + 40 वर्ष आंका गया है । अब कार्बन-14 विधि का महत्त्व स्वीकार करते हुए भी प्रत्येक स्थिति में इस विधि द्वारा निर्धारित तिथि के एकदम सही होने के बारे में विद्वानों ने

---

1. "We have to be prepared to find that the Indus Civilization was a going concern well before 2400 B.C."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संदेह व्यक्त किया है (देखिए परिशिष्ट)। अब हम कुछ रेडियो कार्बन तिथियों के साक्ष्य की विवेचना करेंगे ।

कोटदीजी में सिंधु सभ्यता से पहले की (कोटदीजी) संस्कृति के लिए रेडियो कार्बन तिथियां 2600±145 ई० पू० और 2100±140 ई० पू० के बीच है। कालीबंगां प्रथम (सिंधु सभ्यता से पूर्व की संस्कृति) के लिए ज्ञात रेडियो कार्बन तिथियां 2370±120 ई० पू० से 1765±115 ई० पू० के बीच हैं और इसी स्थल पर सिंधु सभ्यता के काल के लिए रेडियो कार्बन तिथियां 2230±105 और 1665±110 के बीच हैं। अग्रवाल ने कुछ प्रतिदर्शों में दूषण की संभावना व्यक्त की है। उनके अनुसार 1605±110 की तिथि अन्य तिथियों से एकदम अलग है और 1700 से 1800 ई० पू० के बीच की तिथियोंवाले प्रतिदर्शों की संख्या अत्यल्प है। लाल और थापर ने कालीबंगां में सिंधु सभ्यता के लिए 2300 ई० पू० से 1800 ई० पू० की तिथि आंकी है। मोहेंजोदड़ो से प्राप्त रेडियो कार्बन तिथि के लिए जिन प्रतिदर्शों का परीक्षण किया गया है वे सभी डेल्स द्वारा की गयी खोदाइयों में मिले और सिंधु सभ्यता के अंतिम चरण के स्तरों से हैं। इनकी रेडियो कार्बन तिथियां 2155±65 से 1865±65 के बीच हैं। अतः प्रारंभ के चरणों के लिए कुछ पहले की तिथि होनी चाहिए। अग्रवाल का सुझाव है कि मोहेंजोदड़ो में सिंधु सभ्यता का प्रारंभ लगभग 2300 ई० पू० मानना ठीक होगा। वे यहां पर इस सभ्यता का अंत 2000 ई० पू० के आस-पास होना मानते हैं। इस सिलसिले में यह उल्लेख समीचीन होगा कि मोहेंजोदड़ो से काफी पहले के उत्खननों से प्राप्त और संग्रहालय में संग्रहीत गेहूँ के दानों की रेडियो कार्बन तिथि परीक्षण से ज्ञात तिथि 1755 को प्रतिदर्श के दूषित होने की पूरी संभावना के कारण स्वीकार नहीं किया गया ।

लोथल के लिए उपलब्ध कार्बन–14 तिथियां 2080±135 और 1800±140 के बीच की हैं। अग्रवाल ने लोथल के लिए ज्ञात विभिन्न तिथियों का विश्लेषण कर 2200—1700 तिथि प्रस्तावित की और यह माना कि विकसित सिंधु सभ्यता का काल 1900 ई०पू० तक रहा और उसके बाद उप-सिंधु सभ्यता का काल रहा। राव ने रेडियो कार्बन के अतिरिक्त लोथल में प्राप्त कुछ सामग्री यथा अक्षीय नली वाले सोने के बिंब मनके, मृद्भाण्ड के ढक्कन पर स्वस्तिक का चिह्न, सीमित लेप वाले भाण्ड आदि को मेसोपोटामिया के साक्ष्य से समानता और समकालीनता स्थापित करने का प्रयास किया और वहां पर सिंधु सभ्यता के प्रारंभ के लिए 2450 ई० पू० तिथि सुझाई। वे भी इस बात से सहमत हैं कि विकसित सिंधु सभ्यता का काल, जिसमें उनके अनुसार चार चरण हैं, का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अंत 1900 ई० पू० के आसपास हो गया था। रोजदी के लिए दो कार्बन-14 तिथियां उपलब्ध हैं—एक 1745±105 और दूसरी 1970±115. बाड़ा की तीन कार्बन तिथियां प्राप्त हैं, एक 1890±95, दूसरी 1845±155 और तीसरी 1645±90. निश्चय ही दोनों विकसित सिंधु सभ्यता के अंत या बाद के काल के हैं।

कार्बन तिथियों का साक्ष्य इस बारे में स्पष्ट है कि मोहेंजोदड़ो में जब नगर-निर्माण हो चुका था तब भी उससे लगभग 25 मील की दूरी पर स्थित कोट-दीजी में ग्रामीण संस्कृति ही पनप रही थी जो काफी समय तक मोहेंजोदड़ो की विकसित नागरिक संस्कृति की समकालीन रही। कालीबंगां में भी प्राग्-हड़प्पा संस्कृति और सिंधु संस्कृति के कुछ समय तक साथ-साथ पनपने के साक्ष्य हैं। ऊपर से देखने में यह कुछ अस्वाभाविक लगता है किंतु ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं दिखती। जैसे व्हीलर का कहना है कि उस युग के ग्रामीण और नागरिक तकनीकों में आज के नगर और ग्राम की तकनीकों जैसा कोई अंतर नहीं था और कुछ क्षेत्रों (यथा भाण्ड-निर्माण) में तो दोनों ही संस्कृतियों के लोगों की तकनीक लगभग समान रूप से विकसित थी।

विभिन्न साक्ष्यों का विश्लेषण करने के पश्चात् व्हीलर इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि उन नगरों की, जो सिंधु सभ्यता के केन्द्र विन्दु थे, नींव लगभग 2400 ई० पू० के कुछ पहले डाली गयी होगी और वे 18 वीं शताब्दी ई० पू० तक विद्यमान रहे। किंतु इसकी संभावना है कुछ स्थलों पर नगरों की नींव अपेक्षाकृत देर में पड़ी हो; कुछ नगर मोहेंजोदड़ो के निर्जन होने से पहले ही उजड़ गये हों और कुछ मोहेंजोदड़ो के अंत के पश्चात् भी किंचित् समय तक विद्यमान रहे हों। निश्चय ही सारे स्थलों के लिए एक ही तिथि निर्धारित करना पूर्णतः अवैज्ञानिक होगा। केन्द्रीय स्थलों से दूरी और परिस्थिति ने विभिन्न स्थलों के नगरों की नींव और अंत पर पर्याप्त प्रभाव डाला था। व्हीलर ने मिस्र की संस्कृतियों की कुछ कार्बन-14 तिथियों का उल्लेख किया है जिनके अनुसार एक राजा के काल के स्तरों की कार्बन तिथि उसके पौत्र के काल के कई शताब्दियों बाद की आती है। उन्होंने संकेत किया है कि तृतीय सहस्राब्दी ई० पू० के स्तरों की अधिकांश रेडियो कार्बन तिथियां वास्तविक तिथियों से काफी बाद की लगती हैं जो संभवतः किन्हीं विशेष कारणों से वातावरण में कार्बन को प्रभावित किये जाने से हुआ। सांकलिया ने अपनी पुस्तक **प्रीहिस्ट्री ऐंड प्रोटोहिस्ट्री आफ इण्डिया ऐंड पाकिस्तान** के नवीन (द्वितीय) संस्करण में सिंधु सभ्यता की तिथि संबंधी दो अत्यंत भिन्न आधुनिक मतों का उल्लेख किया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है—पहला जिसके अनुसार हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो में 2300 ई० पू० और प्रान्तों में 2000-1800-1700 ई० पू० और दूसरा मुगल तथा लैम्बर्ग कार्लोव्सकी का मत जिसके अनुसार सिंधु सभ्यता के प्रारंभ की तिथि 3000 ई० पू० माननी चाहिए (क्योंकि दक्षिणी ईरान के टेपे याह्या से उनके संबंध थे)। किन्तु उन्होंने स्वयं ह्वीलर द्वारा प्रस्तावित 2500-1500 ई० पू० तिथि को ही अधिक समीचीन माना है, वैसे वे इससे भी पहले की तिथि स्वीकार करने के पक्ष में हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 18

इतर संस्कृतियों से संपर्क

सिंधु सभ्यता के लोगों का अन्य सभ्यताओं से संपर्क व्यापारिक तथा सांस्कृतिक दोनों ही प्रकार का था। कुछ साक्ष्य सीधे और स्पष्ट संपर्क के द्योतक हैं और दूसरे अप्रत्यक्ष संपर्क के। कुछ ऐसी भी वस्तुएं हैं जिनके संपर्क-सूचक होने के बारे में निश्चित रूप से कहना कठिन है।

'आर्थिक-जीवन' अध्याय में हमने विभिन्न धातुओं, कीमती पत्थरों आदि के आयात के सिलसिले में कई क्षेत्रों, यथा मध्य एशिया, अफगानिस्तान, ईरान, दक्षिण भारत आदि का उल्लेख किया है। मेसोपोटामिया के विभिन्न स्थलों से सिंधु सभ्यता में निर्मित अथवा उनकी नकल वाली लगभग तीस मुद्राएं मिली हैं।[1] इतनी मुद्राएं न केवल परस्पर संपर्क अपितु मेसोपोटामिया में सिंधु सभ्यता के लोगों की बस्ती बसे होने की द्योतक लगतो हैं।[2] सिंधु सभ्यताएं में प्राप्त बेलनकार मुद्राएं मेसोपोटामिया में निर्मित अथवा उससे प्रेरित लगती हैं। बहरीन द्वीप से प्राप्त कुछ मुद्राओं पर सिंधु लिपि के चिह्न हैं। इस द्वीप में प्राप्त अन्य मुद्राओं के तरह की कुछ मुद्राएं दक्षिणी मेसोपोटामिया और एक लोथल में मिली हैं। बहरीन ने भारत मेसोपोटामिया के मध्य व्यापार में मध्यस्थ की भूमिका अदा की होगी और लोथल, जहां पर गोदी के अवशेष मिले हैं, का इस व्यापार में महत्त्वपूर्ण भाग रहा होगा। सुमेरी लेखों में व्यापार

---

1. इस संदर्भ में हाथी की सूंड वाले बैल की आकृति युक्त वर्तुलाकार मुद्रा विशेष उल्लेखनीय है। यह अभिप्राय सिंधु सभ्यता की कई मुद्राओं पर मिलता है। इस प्रकार के मिश्र पशु की एक पाषाण मूर्ति भी उपलब्ध है। यह अंकन सिंधु सभ्यता की अपनी विशिष्टता लगते हैं।

2. लैम्बर्ग कार्लोव्स्की इस मत से सहमत नहीं कि मुद्राओं का साक्ष्य मेसोपोटामिया में सिंधु सभ्यता के व्यापारियों की बस्ती होने का प्रमाण है। उनका कहना है कि न तो वहां पर भारतीय वास्तु शैली पर आधारित कोई इमारत मिली है और न किसी इमारत (या इमारतों) में पर्याप्त भारतीय मूल की वस्तुएं मिली हैं। उनका यह भी मत है कि सिंधु सभ्यता में प्राप्त साक्ष्य भी इसके पक्ष में नहीं कि सिंधु सभ्यता के किसी स्थल में मेसोपोटामिया के लोगों की बस्ती थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के संदर्भ में उल्लिखित मेलुह्ह, मगन और दिल्मुन में शायद अंतिम का सिंधु सभ्यता से तात्पर्य था (देखिये परिशिष्ट 4)।

मोहेंजोदड़ो की कुछ मुद्राओं (मैके फ० ए० नं० 75, 86, 122 और 454) पर दो बाघों से लड़ते हुए मानव का अंकन संभवतः सुमेरी गिल्गामेश और उनके मित्र इंकिडू के सिंहों से लड़ने के कथानक पर आधारित लगता है।[1] मैके ने मोहेंजोदड़ों की मुद्राओं को निर्माणशैली के आधार पर मेसोपोटामिया के अनुकरण पर भारत में निर्मित माना है।

इसी तरह एक मुद्रा पर अंकित सींगयुक्त बाघ से लड़ती एक सींग वाली आकृति की पहचान सुमेरी गाथा के इंकिडू से की गयी है। क्रीट की कला के समान सिंधु सभ्यता की मुद्रा पर मानव का बैलों से युद्ध का अंकन है। पशु को कई सिरवाला दिखाने की परंपरा का विकास कुछ विद्वानों के अनुसार सिंधु सभ्यता में हुआ जहां पर इस तरह के अनेक उदाहरण हैं। सीरिया और क्रीट से इस तरह के अंकन अल्प संख्या में मिले हैं। क्रीट और सिंधु सभ्यता की बंदर की मूर्तियों में भी पर्याप्त सादृश्य है।

मोहेंजोदड़ो की कुछ मुद्राओं (मैके फ० ए० फलक LXXXIII, 1; LXXXVI, 156) में 'ग्रीक क्रास' मिला है जो कि सुमेर और एलम में काफी प्राचीन संस्कृतियों के संदर्भ में कई उपकरणों पर मिलता है। मशकबीन का अभिप्राय मोहेंजोदड़ो की एक मुद्रा [मैके फ० ए० XCVIII, 641 (g)] पर मिला है। यही अभिप्राय शाही तम्प के बर्तनों पर भी मिलता है। मैके का मत है कि आधुनिक काल में भी भारत के कुछ क्षेत्रों में इस अभिप्राय को दुष्ट आत्माओं से रक्षा करने में समर्थ माना जाता है।

मैके (फ० ए० पृ० 362) के अनुसार मोहेंजोदड़ो की एक मुद्रा पर बैल या भैंसे द्वारा मनुष्य को उछाले जाते हुए दृश्य को क्रीट की कला में अंकित जानवरों के ऊपर से उछल कर कूद कर निकलनेवाले खेल का चित्रण हो सकता है। नाल के कब्रिस्तान क्षेत्र से प्राप्त एक सेलखड़ी मुद्रा पर सांप को पकड़े गरुड़ दिखाया गया है। इस तरह का अभिप्राय सूसा से प्राप्त एक मुद्रा पर भी मिला है जिनकी तिथि लगभग 2400 ई० पू० आंकी गयी है। मैके ने मोहेंजोदड़ो की एक मुद्रा (फ० ए० फलक C चित्र b और c) को मुख्यतः निम्न कारणों से उस स्थल पर निर्मित न मान कर बाहर से लायी गयी माना है—(1) जानवर को उल्टी दशा में दिखाना, जो सिंधु शैली की अन्य मुद्राओं पर नहीं मिलता; (2) मुद्रा का संगमरमर का बना होना, यह पत्थर सिंधु सभ्यता में मुद्रा-निर्माण के

1. दूसरी और मोडे इसे सुमेरी कथानक का अंकन नहीं मानते।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिए प्रयुक्त नहीं होता था; (3) मुद्रा की पीठ पर सिंधु सभ्यता की मुद्राओं से भिन्न प्रकार की घुंडी का होना। मोहेंजोदड़ो की चार मुद्राओं और दो तावीजों (?) पर गरुड़ का अंकन मिलता है। हड़प्पा से प्राप्त सेलखड़ी के एक लोलक पर भी गरुड़ का चित्रण है। कुछ विद्वानों के अनुसार इस अभिप्राय का मूल ईरान में है और बाद में सुमेर और भारत में भी इसका प्रचलन हुआ।

कुछ आभूषण भी सिंधु सभ्यता और पश्चिमी एशिया के मध्य संपर्क के द्योतक हैं। हड़प्पा संस्कृति की तरह के रेखांकित मनके किश, शाह टेपे, टेल अस्मर, हिसार आदि से मिलते हैं। इसी तरह सिंधु सभ्यता जैसे कांचली मिट्टी के विभक्त मनके निनेवेह, हिसार और क्रीट से भी प्राप्त हुए हैं। उर तथा किश से सिंधु सभ्यता के जैसे लम्बे ढोलाकार मनके मिले हैं। मोहेंजोदड़ो से पकाई मिट्टी के नालीदार मनके मिस्र के पत्थर के इस तरह के मनकों के अनुरूप हैं। हड़प्पा से एक मक्खी की आकृति जैसा मनका मिला है जिससे मिलते-जुलते मनके प्राचीन मिस्र और सुमेर में मिले हैं।

उर के राजकीय कब्रिस्तान में प्राप्त 'बिंब' मनकों की तरह के मनके मोहेंजोदड़ो से भी पाये गये हैं (मार्शल मो० इं० सि० पृ० 515, फलक CXLIX, 7)। लेकिन यह प्रकार सरल है और इसलिए संपर्क का द्योतक हो भी सकता है और नहीं भी। उर से प्राप्त गहरे हरे रंग के लम्बे ढोल-बेलनकार (long barrel cylinder) मनके इस तरह के मोहेंजोदड़ो से प्राप्त मनकों से मिलते-जुलते हैं। जिस तरह के पत्थर के ये बने हैं वह या तो ईरान या भारत में उपलब्ध हैं। मैके का अनुमान है कि ऐसे मनकों का निर्माण एक ही स्थान पर हुआ जहां से ये अन्यत्र ले जाये गये और अधिक संभावना यही लगती है कि इनका निर्माण भारत में हुआ होगा।

मोहेंजोदड़ो से सेलखड़ी की V आकृति का एक मनका मिला है (मैके फ. ए. फलक CXI, 8)। इसी से मिलते-जुलते मनके उर और मिस्र में बारहवें राजवंश के संदर्भ में मिले हैं। मैके का मत है कि इस तरह के मनके बनाना भारतीयों ने पश्चिम से सीखा होगा।

मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा से कुछ अंतरक और अंतक मिले हैं जिनसे मिलते-जुलते उदाहरण मिस्र के प्राचीन साम्राज्य के समय के अवशेषों से प्राप्त हुए हैं। हाल ही में बहरीन में की गयी खोदाइयों में कार्नीलियन के मनके मिले हैं जो सिंधु सभ्यता के ही किसी स्थल (या किन्हीं स्थलों) से लाये गये होंगे। केशपट्ट पर छोटे-छोटे छेदों का अलंकरण पश्चिमी एशिया में बहुत लोकप्रिय था। ऐसे अनेक उदाहरण किश, उर, समर्रा, सियाल्क आदि स्थानों पर मिले हैं। मोहें-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जोदड़ो की खोदाइयों में भी एक इस तरह का उदाहरण उपलब्ध हुआ है। हड़प्पा तथा मोहेंजोदड़ो से कुंडलाकार (coiled) कंगन सदृश उदाहरण मिस्र, शाह टेपे, हिसार, किश तथा सूसा से भी मिले हैं।

मोहेंजोदड़ो और लोथल से सीमित लेप (रिजर्व्ड स्लिप) वाले बर्तन मिले हैं। इस तकनीक से बने बर्तन उर और कार्केमिश में भी मिलते हैं। वूली के अनुसार संभवतः इस तरह के बर्तनों का बनाना अनातोलिया से प्रारंभ हुआ। सिंधु सभ्यता के कुछ मृद्भाण्डों पर प्राप्त घुंडीदार अलंकरण टेल अस्मर के मृद्भाण्ड पर भी प्राप्त हैं। प्रतिच्छेदी-वृत्त डिजाइन सिंधु सभ्यता में अत्यंत लोकप्रिय अभिप्राय है। लेकिन यह अभिप्राय टेल हलफ में चतुर्थ सहस्राब्दी (?) की संस्कृति तथा क्रीट की कला में भी मिलता है। बलूचिस्तान में नाल संस्कृति के वर्तनों पर भी यह दिखता है और कोटदीजी में प्राक्-हड़प्पा संस्कृति के संदर्भ में भी। यह कहना कठिन है कि इस डिजाइन का सबसे पहले प्रयोग कहां हुआ, यह एक दूसरे के प्रभाव की द्योतक है अथवा स्वतंत्र रूप से इसका प्रयोग कई संस्कृतियों में हुआ।

सिंधु सभ्यता के वर्तनों की तरह पीपल के पत्ते का डिजाइन पेरियानो, घुंडई, कुल्ली और मेही में भी मिलता है। कुल्ली में हड़प्पा प्रकार के बेलनकार छिद्रित भाण्ड बर्तन का प्रकार मिला है। आमरी में हाल ही में किये उत्खननों के साक्ष्य के अनुसार वहां पर प्रथम काल का मत्स्य शल्क का अलंकरण हड़प्पा प्रकार का है। तृतीय काल के प्रारंभ तक यह स्थल पूर्णतः सिंधु सभ्यता के लोगों द्वारा आवासित था। मोहेंजोदड़ो से मेढ़े की आकृति का बर्तन मिला है जो पीछे से खोखला है। यह सिंधु सभ्यता में अपनी तरह का एक ही उदाहरण है, किंतु मिस्र, सुमेर, क्रीट और एलम की सभ्यताओं में जानवरों की आकृतिवाले कई भाण्ड मिले हैं और इसलिए सिंधु सभ्यता का यह पात्र उन्हीं के प्रभाव से प्रेरित होकर निर्मित किया गया लगता है।

सिंधु सभ्यता में कुछ मिट्टी के खिलौने स्टूल मिले हैं जिनके पाये बैल के पांव की तरह हैं। इस तरह के पायेवाले स्टूल मिस्र और सुमेर की संस्कृतियों में भी मिलते हैं। उपर्युक्त तीनों ही संस्कृतियों में खिलौने चारपाइयां भी मिली हैं जिन पर नारी को लेटा दिखाया गया है। ये स्टूल और चारपाइयां परस्पर संपर्क की द्योतक लगती हैं। सिंधु सभ्यता के ताम्र-पट्ट पर अंकित रस्सी सदृश चिह्न मिस्र के तेरहवें-अट्ठारहवें राजवंश की कुछ मुद्राओं पर भी हैं। मैके इस अभिप्राय के अंकन को परस्पर संपर्क के महत्त्वपूर्ण साक्ष्य मानते हैं। मोहेंजोदड़ो से शंख से बने हृदय की आकृति के उत्खचन पाये गये हैं (मैके फ० ए० पृ० 588, फलक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CVII, 5, 15)। ये टेल अस्मर में हड्डी के इसी तरह के उदाहरणों से मिलते जुलते हैं। मोहेंजोदड़ो से प्राप्त योगी (?) की मूर्ति के शाल पर तिपतिया डिजाइन है। इस तरह का अलंकरण मोहेंजोदड़ो से प्राप्त कई मनकों पर भी है (मैके फ० ए० C, 12; CVI,6 5; CVII, 14)। मोहेंजोदड़ो के कुछ मनकों पर अंग्रेजी अंक 8 की तरह का अलंकरण भी है। दोनों डिजाइन धार्मिक महत्त्व के लगते हैं और मेसोपोटामिया से लिये गये लगते हैं जहाँ इस तरह के डिजाइन का काफी प्रचार था।

मातृदेवी की उपासना सिंधु सभ्यता और पश्चिमी एशिया तथा मिस्र में प्रचलित थी। सिंधु संस्कृति की कुछ मातृदेवी की मूर्तियों के सिर पर फाख्ता पक्षी दिखाया गया है जो कि सीरियाई-क्रीट (Syrio-Cretan) संस्कृति की मूर्तियों की विशेषता है।

मोहेंजोदड़ो में घिया पत्थर के छोटे-छोटे किंतु आकर्षक खानेदार वर्तन मिले हैं। इस तरह के वर्तन किश, लगश, अदव, उर, खफजे और मारी में काफी संख्या में तृतीय सहस्राब्दी ई० पू० के संदर्भ में पाये गये हैं। कुछ ऐसे वर्तन बलूचिस्तान तथा फारस में भी पाये गये हैं जिनके अनुकरण में कुछ मिट्टी के वर्तन भी बने। पिगट का सुझाव है कि इस तरह के बर्तन मकरान (पूर्वी ईरान) में प्रयुक्त हुए थे। मोडे के अनुसार इस तरह के वर्तनों का प्रेरणा स्रोत मेसो-पोटामिया हो सकता है जहां पर समूचे पात्र मिले हैं।

मोहेंजोदड़ो में हरिताभ-धूसर सेलखड़ी के बर्तन (फ० ए० फलक CXLII, 45) पर चटाई का डिजाइन है। इस तरह के डिजाइन वाले बर्तन सुमेर तथा एलम में मिले हैं। मोहेंजोदड़ो के शौचालय टेल अस्मर में अक्कादी स्तरों में प्राप्त शौचालयों से मिलते हैं। मोहेंजोदड़ो से प्राप्त कुल्हाड़ा-बसूला सिंधु सभ्यता में अपनी तरह का एकमात्र उपकरण है। टेपे हिसार में भी इसी तरह का उपकरण मिला है।

बहरीन द्वीप से सिंधु सभ्यता में निर्मित पालिश किये फ्लिट का एक बाट मिला है। बिब्बी के अनुसार बहरीन में इस बाट के होने के दो कारण हो सकते हैं—(1) व्यापार के संबंध में बहरीन को प्रारंभिक प्रेरणा सिंधु सभ्यता से मिली न कि मेसोपोटामिया से, और (2) बहरीन के लोगों का भारत के साथ मेसोपोटामिया से कहीं अधिक व्यापारिक संपर्क था।

सोवियत मध्य-एशिया के तुर्कमेनिया रिपब्लिक में कैस्पियन सागर के निकट कई स्थानों-आल्तिन डेपे, नाभज्गा डेपे, ताहिरबाई डेपे और अनाउ की खोदाइयों से इस क्षेत्र में सिंधु सभ्यता के प्रभाव पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ा। उक्त स्थलों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के उत्खननों से सिंधु सभ्यता के आकार-प्रकार वाले कई बर्तन तथा कुछ अन्य वस्तुएं यथा एक मुद्रा, मृण्मय बैल, मनके, नग्न पुरुष आकृतियां और खिलौना गाड़ी के पहिये तथा तांबे के पात्र आदि मिले हैं। मिट्टी की बनी खिलौना गाड़ियां, बैल की आकृकियां एकदम सिंधु सभ्यता से प्रभावित हैं। आल्तिन डेपे की एक कब्र से मिली एक रजत मुद्रा पर एक बाघ का अंकन है जिसके तीन सिर हैं। इस तरह का अभिप्राय सिंधु सभ्यता की मुद्राओं पर भी मिलता है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि हड़प्पा संस्कृति के लोग छोटे-छोटे समूहों में हिंदूकुश पार कर अक्षु घाटी पहुँचे और फिर उत्तरी ईरान से होकर आल्तिन डेपे, अनाउ और नामज्गा में विकसित ताम्राश्म सभ्यताओं के सम्पर्क में आये। वहां पर धीरे-धीरे शांतिपूर्वक स्थानीय संस्कृति की धारा में मिल गये। स्वराज्य प्रकाश गुप्त का विचार है कि ये संबंध 2000 ई० पू० के आसपास रहे होंगे जबकि सिंधु सभ्यता अपने चरम विकास पर थी।

मोहेंजोदड़ो, हड़प्पा, लोथल, देसालपुर और कालीबंगां से सभ्यता के उन्नत युग के द्योतक स्तरों से नवपाषाण संस्कृति के पत्थर की कुल्हाड़ियां उपलब्ध हुई हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार पत्थर के फलक बनाने की तकनीक को सिंधु सभ्यता वालों ने नवाश्म संस्कृति के धारकों से अपनाया था।

राव के अनुसार गुजरात के सिंधु सभ्यता के उत्तराधिकारी चमकीले लाल रंग के भाण्ड वाले लोगों के मालवा और मेवाड़ के साथ संबंध थे। एरण में रंगपुर IIC और III प्रकार के कुन्द या प्रखर नौतली कटोरे मिले हैं जिन पर एकदम सौराष्ट्र की परंपरा में चित्रकारी की गयी है। इनके साथ ही कैल्सेडोनी के फलक और चपटी तांबे की कुल्हाड़ियां भी मिली हैं।

मेवाड़ पठार में हमें आहाड़ में ह्रासोन्मुखी लाल रंग के हड़प्पा भाण्ड और चपटी कुल्हाड़ियां लगभग 1800 ई० पू० के और चमकीले लाल भाण्ड लगभग 1500 ई० पू० के तिथि वाले सतहों में मिले हैं। और उत्तर में बणास घाटी में गिलूँद और कुछ अन्य स्थलों में चर्ट फलक और सिंधु प्रकार के विकसित भाण्ड काले-लाल भाण्ड के साथ मिले हैं। कुछ हड़प्पा प्रकार के आकार वाले बर्तन भी मिले हैं। उज्जैन के समीप कायथा में रंगपुर IIC प्रकार के भाण्ड मिले हैं। उज्जैन जिले में ही मनोति (Manoti) में परवर्ती हड़प्पा भाण्ड के नीचे सोथी प्रकार से मिलते-जुलते बर्तन पाये गये हैं। इसका अर्थ हुआ कि प्रारंभिक हड़प्पा सभ्यता के लोगों ने वहां बस्ती नहीं बसायी। एस० ए० साली ने कई परवर्ती सिंधु सभ्यता कालीन कुछ उपकरण प्रकार महाराष्ट्र के धूलिया जिले में सावल्दा, काओठा (Kaotha) और धूलिया आदि स्थलों में पाये हैं जो इस बात के द्योतक हैं कि उनका परवर्ती सिंधु सभ्यता के लोगों से संबंध था।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दक्षिण की ओर प्रवरा नदी के तट पर स्थित नेवासा और भीमा नदी के तट स्थित चांदोली में सौराष्ट्र के सिंधु सभ्यता के बाद के चमकीले लाल भाण्ड के प्रयोग-कर्ताओं के साथ संपर्क के सक्ष्य हैं। गोदावरी पर स्थित नासिक और जोर्वे में प्रथम सहस्राब्दी के प्रारंभ में चपटी ताम्र-कुल्हाड़ियां मिली हैं।

गोदावरी घाटी में नेवासा और दाइमाबाद और बेलारी जिले में टेक्कल-कोटा में सिंधु प्रकार की तकनीक से पत्थर के फलक बनाने के साक्ष्य मिलते हैं। दक्षिणी कृष्णा और पेन्नार की घाटी में सिंगनपल्ली, रामपुरम, शिववरम्, पतपट्टु और पुसलपादु में नवपाषाण-युगीन लोगों द्वारा अल्पमात्रा में ही सही, परवर्ती हड़प्पा टेक्नीक में बने और रंगे वर्तन मिले हैं। सिगनपल्ली में सेलखड़ी और शंख के बने 'बिंब' मनके हड़प्पा प्रकार के हैं। ब्रह्मगिरि, मास्की, पिक्लहाल, हल्लूर के प्रारंभिक चरण में भी सिंधु सभ्यता प्रकार के अवशेष मिले हैं।

ह्वीलर, जोर्वे और नावडाटोली में प्राप्त चपटी कुल्हाड़ियों को हड़प्पा संस्कृति के संपर्क का द्योतक मानते हैं। नावडाटोली की कुल्हाड़ियों पर ताम्रसंचय की कुल्हाड़ियों के समान ही वृत्ताकार गड्ढे मिलते हैं जिस कारण हमको वे ताम्र संचय संस्कृति के किसी क्षेत्र से आयातित लगती हैं। लोथल की ताम्र मानवाकृति (आ० 16, 13) हमें सिंधु सभ्यता में ताम्र संचय संस्कृति से आयातित मालूम पड़ती है क्योंकि उस संस्कृति में इस तरह के बहुत से अवशेष प्राप्त हैं। कायथा के प्रथमकाल (कायथा संस्कृति) में प्राप्त तांबे की कुल्हाड़ियों पर भी हमें इसी तरह के वृत्ताकार गड्ढे मिलते हैं और ये भी ताम्रसंचय संस्कृति की लगती हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 19

अंत

संस्कृति के उद्भव और अंत, दोनों के कारणों का निर्धारण करना अधिकांशतः कठिन कार्य होता है। ऐतिहासिक काल की संस्कृतियों के ही बारे में सर्वमान्य तो अलग बात रही बहुमान्य निष्कर्ष पर पहुँचना भी कठिन होता है। प्रागैतिहासिक और पूर्व ऐतिहासिक काल के लिए तो यह समस्या और भी जटिल हो जाती है। साधारणतया किसी संस्कृति का अंत एक नहीं अपितु अनेक कारणों से होता है, और जहां तक सिंधु संस्कृति का प्रश्न है, यह सोचना कि इतने विशाल और विभिन्न प्रकार के भौगोलिक क्षेत्र में फैली और अनेक महत्वपूर्ण नगरों वाली इस दीर्घजीवी सभ्यता का अंत सभी क्षेत्रों में एक ही कारण से हुआ होगा, नितांत अनुपयुक्त होगा। यही नहीं, संभवतः एक स्थल पर भी इसके अंत के अनेक कारण रहे होंगे। निश्चित साक्ष्यों के अभाव में इस सभ्यता के अंत के लिए विभिन्न प्रकार के अनुमान विद्वानों ने लगाये हैं। इन विभिन्न अनुमानों में कौन सही है और कौन गलत यह निर्धारण करना सरल नहीं, और न यह ही बताना संभव है कि इनमें से कौन कितनी मात्रा में उत्तरदायी था।

जैसा फेयरसर्विस ने लिखा है, नागरिक समाज एक जटिल समाज है जिसमें यथास्थिति बनाये रखने के लिए संतुलन आवश्यक है। किंतु स्वयं की जटिलता एवं परिस्थितियों में परिवर्तन के कारण यह संतुलन बनाये रखना कठिन होता है और जब संतुलन बहुत बिगड़ जाता है तो ह्रास के लक्षण स्पष्ट होने लगते हैं। व्हीलर ने मोहेंजोदड़ो के अंतिम प्रकाल के स्तरों में ह्रास के लक्षणों को भलीभांति दर्शाया है। उस काल के भवनों की परियोजना और उनका आकार-प्रकार, दीवारों के निर्माण-कार्य, चबूतरों के निर्माण आदि सभी में ह्रास के चिह्न नजर आते हैं। अंतिम चरण में टीले पर और विस्तार के लिए जगह नहीं रह गयी थी और निम्न तल पर मकान बनाना बाढ़ के खतरे को मोल लेना था। जनसंख्या बढ़ने के कारण टीले पर विस्तार की संभावना समाप्त होने पर लोगों ने पहले की बनी इमारतों को छोटे-छोटे कमरों में बांटना आरंभ कर दिया था और वह भी अधिकांशतः लापरवाही से। नये मकानों के निर्माण में पुराने मकानों की ईंटों का प्रयोग करना शुरू हो गया था। वे लोग पूर्वजों के खंडहरों में मकान बनाने लगे थे। यहां (मोहेंजोदड़ो में) विशाल अन्नागार के समीप लग-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भग 9.15 मीटर या उससे अधिक ऊंचाई पर निम्नकोटि की इमारतें बनायी गयी। 'डी के' टीले के 'जी' क्षेत्र के दक्षिणी भाग में श्रमजीवियों की बस्ती बस गयी थी जिनमें से अधिकांश कुम्हार थे और उनके छह भट्ठे वहीं पर बना दिये गये थे। पहले नगर के समृद्ध काल में कुम्हारों ने नगर से बाहर ही भट्ठे बनाये थे। इस प्रकार के निर्माण से स्पष्ट है कि अब नागरिक जीवन, जिसके लिए सिंधु सभ्यता विख्यात है, के स्थान पर देहातीपन पनपने लगा था। और, यह सभी लक्षण वहाँ के निवासियों के रहन-सहन के स्तर की गिरावट के द्योतक हैं। अतः मोहेंजोदड़ो में इस सभ्यता के पूर्ण अंत से पूर्व इसके शनैः-शनैः अंत की ओर अग्रसर होने के साक्ष्य उपलब्ध हैं। मोहेंजोदड़ो के अलावा हड़प्पा संस्कृति के कुछ अन्य स्थलों हड़प्पा, लोथल, कालीबंगां इत्यादि—के अन्तिम चरण में भी ह्रास के चिह्न दिखायी देते हैं।

सिंधु सभ्यता तथा मेसोपोटामिया से प्राप्त साक्ष्य इस बात के द्योतक हैं कि अंतिम चरण में सिंधु सभ्यता का विदेशों से व्यापार एकदम कम हो गया था। यह इस बात का द्योतक है कि सिंधु सभ्यता का समाज अब कुशल नेतृत्व से वंचित था। सिंधु सभ्यता की समृद्धि का एक महत्वपूर्ण कारण विदेशी व्यापार था और इसमें कमी होने से इस सभ्यता के वासियों पर दुष्प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। विदेशी संपर्क के कम होने से विचारों और उपकरणों के पारस्परिक आदान-प्रदान का अभाव रहा और परिणामस्वरूप सभ्यता में कूपमंडूकता आ गयी होगी और दूसरी सभ्यता की उपलब्धियों, उसके अविष्कारों और खोजों को अपनी सभ्यता में प्रयुक्त करने के महान् लाभ से वे वंचित हो गये होंगे।

जातीय चरित्र के पतन और नैतिक मूल्यों में अत्यधिक ह्रास की कल्पना इस संबंध में कुछ विद्वानों ने की है। कुछ ने संस्कृति के लोगों द्वारा निरंतर बाह्य आक्रमणकारियों से जूझे रहने के कारण अंततः शक्तिहीन होने की बात कही है, तो कुछ के अनुसार राजपरिवार और राजदरबार के षड्यंत्रों ने भी इसको क्षीण करने में सहायता दी होगी। शासकों की निरंकुशता के विरुद्ध जनता द्वारा विद्रोह की संभावना तथा पूंजीपतियों और सूदखोरों के शोषण के विरुद्ध मजदूरों तथा साधारण वर्ग द्वारा विद्रोह किये जाने की संभावना का भी उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त जनसंख्या की अनपेक्षित वृद्धि से भी सामाजिक और आर्थिक स्तर में गिरावट आने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता। कुछ ने मलेरिया जैसे रोग के बड़े पैमाने पर फैलने पर लोगों का स्वास्थ्य गिर जाने की संभावना भी व्यक्त की है। ऐतिहासिक काल में ऐसे निश्चित साक्ष्य ज्ञात हैं जब पूरी-पूरी बस्ती मलेरिया के रोग के दुष्प्रभाव से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उजड़ गयी । संस्कृति के तीव्र विकास हेतु जो कार्य लोगों ने किये वे भी कुछ हद तक इसका वातावरण बदलने और अंततः ह्रास के लिए उत्तरदायी बने ।

मोहेंजोदड़ो, हड़प्पा जैसे नगरों की इमारतों के निर्माण एवं पुनर्निर्माण में करोड़ों ईंटें खपी होंगी । इन ईंटों के पकाने में लाखों मन लकड़ी जलायी गयी होगी, जिससे समीपवर्ती क्षेत्र का जंगल तथा वनस्पति विनष्ट हुई और भूमि में नमी की कमी हुई । चारागाहों का अत्यधिक उपयोग भी हानिकारक सिद्ध हुआ । मवेशियों, विशेषतः बकरियों के शताब्दियों तक चरने से हरियाली नष्ट हो गयी । इन बातों से वातावरण पर प्रभाव पड़ा होगा और वर्षा में भी थोड़ी बहुत कमी आयी होगी । नगर के समीपवर्ती क्षेत्र की भूमि में हर साल में अधिक से अधिक उपज लेने के प्रयास से भूमि की उर्वरता में ह्रास हुआ होगा । शायद प्रकृति ने इस सभ्यता के ह्रास में योगदान दिया । कुछ विद्वानों की धारणा है कि मानसूनी हवाओं के बदलने से भी सिंधु के क्षेत्र में वर्षा में कमी आयी ।[1]

मोहेंजोदड़ो में हड़प्पा संस्कृति के दौर में ही धीरे-धीरे हरियाली कम होती जा रही थी । व्हीलर का यह मत, कि मोहेंजोदड़ो के लोग अपने वातावरण को धीरे-धीरे अतिशय उपयोग से सूखा बना रहे थे और यह परिवर्तित वातावरण स्वयं मोहेंजोदड़ो नगर पर दुष्प्रभाव डाल रहा था, काफी समीचीन लगता है ।

घोष का मत है कि कुछ स्थलों पर आर्द्रता का ह्रास और फलतः भूमि की शुष्कता का विस्तार सभ्यता के अंत के लिए महत्वपूर्ण कारण रहा । इस संदर्भ में वे बताते हैं कि सरस्वती नदी के क्षेत्र में हड़प्पा संस्कृति के स्थल, जिसके जीवनकाल में यह नदी निश्चित रूप से जीवंत थी, नदी के तट पर पाये गये; किंतु उनके बाद की संस्कृति–चित्रित धूसर–भाण्ड संस्कृति वाले लोगों के आवास उस स्थल मिले हैं, जो पहले नदी का तल था । यह इस बात का द्योतक है कि इनके इस स्थल पर आने तक नदी सूख चुकी थी । नदी के सूखने का भी उस क्षेत्र में सूखापन बढ़ाने में योगदान रहा होगा । उनका कहना है कि सिंधु में भी कुछ स्थल ऐसे हैं जहां हड़प्पा सभ्यता के अंत के बाद भी अन्य संस्कृतियों ने अपनी बस्ती बसायी, किंतु किरथर पर्वत श्रेणियों के समानान्तर जो हड़प्पा संस्कृति के स्थल हैं, उनमें इस तरह के सिंधु सभ्यता के बाद बस्ती बसाने के साक्ष्य नहीं मिलते । इससे यह सिद्ध होता है कि जलवायु में प्रतिकूलता आ रही थी । इस संदर्भ में बीरबल साहनी पुरावनस्पति संस्थान लखनऊ के गुरूदीप सिंह द्वारा की गयी राजस्थान की झीलों के तट से प्राप्त पराग परीक्षणों से

1. विस्तार के लिए देखिए परिशिष्ट 'सिंधु सभ्यता के काल में मोहेंजोदड़ो के क्षेत्र की जलवायु' ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राचीन जलवायु के साक्ष्य प्रस्तुत करना समीचीन होगा। इसके अनुसार लगभग 3000-1800 ई० पू० में राजस्थान के क्षेत्र में पर्याप्त आर्द्रता तथा हरियाली थी और 1800 ई० पू० के लगभग शुष्क जलवायु आरंभ हुई। तो क्या यह जलवायु परिवर्तन कालीबंगां में हड़प्पा सभ्यता के विनाश के लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी था ?

नदियों ने भी अनेक बार मार्ग बदला होगा, जिससे कुछ बस्तियां उजड़ गयी होंगी। ऐतिहासिक काल में सिंधु के अनेक बार मार्ग बदलने के लिखित साक्ष्य उपलब्ध हैं। भूकम्प के प्रकोप भी नदियों का मार्ग बदलने में सहायक रहे होंगे। माधोस्वरूप वत्स तो हड़प्पा नगर के विनाश के लिए रावी नदी के मार्ग-परिवर्तन को उत्तरदायी मानते हैं। रावी जो हड़प्पा के बिल्कुल समीप थी दूर हट गयी और आज यह लगभग 6 मील की दूरी पर है। जल के स्रोत का इतनी दूर होना हड़प्पावासियों के समृद्धि पर घातक प्रभाव डालने वाला सिद्ध हुआ होगा। नागरिकों का यातायात और व्यापार बहुत कुछ नदी के माध्यम से ही होता था और नदी के दूर हो जाने पर यह कठिन हो गया होगा।

कालीबंगां में सिंधु सभ्यता के अवशेषों के ऊपर किसी अन्य संस्कृति के अवशेष नहीं, अर्थात् सिंधु सभ्यता के बाद यह स्थल हमेशा के लिए निर्जन हो गया। बालकृष्ण थापर के अनुसार यहां पर न तो विदेशी आक्रमण, न बाढ़ और न ही लोथल और रंगपुर के समान संस्कृति के परिवर्तन से उप-सिंधु सभ्यता के होने के साक्ष्य ही मिलते हैं। डेल्स, जिन्होंने 1968 में कालीबंगां के क्षेत्र का सर्वेक्षण किया, का कहना है कि घग्गर और उसकी सहायक नदियों का रुख-परिवर्तन और फलस्वरूप उनका गंगा और उसकी सहायक नदियों में मिलना उस क्षेत्र में संस्कृति के अंत का मुख्य कारण लगता है। उनका मत है कि 1750 ई० के आस-पास नदियों के इस तरह के मार्ग परिवर्तन के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। लगभग यही तिथि कार्बन–14 विधि से भी कालीबंगां के अंत के लिए ज्ञात है। निश्चय ही नदियों के रुख के परिवर्तन के कारण बस्तियों में पीने और सिंचाई के लिए जल का अभाव हो गया होगा। इस कारण इस क्षेत्र में अनाच्छादन हो गया होगा।[1] इस प्रक्रिया में कुछ समय लगा होगा और

---

1. सूरज भान के द्वारा किये सर्वेक्षणों से भी हड़प्पा से पूर्व की संस्कृति, हड़प्पा संस्कृति और हड़प्पा से संबद्ध संस्कृतियों की बस्तियां उन स्थलों पर मिली हैं जिनके समीप से पहले जमुना बहती थी किंतु उस नदी के मार्ग बदलने के कारण जो धीरे-धीरे निर्जन हो गये।

लैम्ब्रिक ने तो सुझाया है कि कदाचित् मोहेंजोदड़ो से ऊपर (above)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कालीबंगां का साक्ष्य भी इसकी पुष्टि करता है । यहां पर अंतिम चरण में बस्ती का क्षेत्र पहले से कम हो गया था और गढ़ी वाले टीले और निचले टीले दोनों में ही रक्षा-प्राचीर का उपयोग नहीं रह गया था ।

नदियों में वार्षिक बाढ़ का आना हड़प्पा संस्कृति के लोगों के लिए एक सामान्य विभीषिका बन चुका था । आधुनिक काल में भी सिंधु में भयानक बाढ़ आने के निश्चित साक्ष्य उपलब्ध हैं । एक ऐसी बाढ़ 1929 में आयी और बाढ़ का जल टीले (जिससे कि प्राचीन काल की अपेक्षा अब नदी काफी दूर है) तक पहुँच गया था । और अभी हाल ही में इस तरह की बाढ़ आयी । मार्शल के निदेशन में किये गये उत्खान में मोहेंजोदड़ो की विभिन्न सतहों से बालू के रूप में बाढ़ के प्रकोप के प्रमाण मिले हैं । मोहेंजोदड़ो में विशेष रूप से स्पष्ट है कि पुर्ननिर्माण के दौर में इमारतों को ऊँचे धरातल पर बनाया जा रहा था । यद्यपि इन बाढ़ों से पूरे नगर का डूबना तो कठिन था, क्योंकि भवन निरंतर ऊँची सतह पर बनाये जा रहे थे, तथापि नगर के एक बड़े भाग का जलमग्न होना साधारण सी बात रही होगी । इससे वहां के लोगों के नैतिक बल में ह्रास आया होगा । उनके रहन-सहन के स्तर में गिरावट आना आवश्यम्भावी था । साधारण लोग तो बाढ़ के बावजूद नगर नहीं छोड़े होंगे किंतु संपन्न लोग बाढ़ से उत्पन्न कठिनाइयों और असुविधाओं के कारण मोहेंजोदड़ो छोड़ कर अन्यत्र चले गये होंगे । छोटी-मोटी बाढ़ के बाद तो नगर छोड़ कर गये लोग शीघ्र लौट आते रहे होंगे, किंतु भयंकर बाढ़ के पश्चात तोकुछ क्षेत्र के लोगों को काफी समय तक लौटना कठिन हो जाता रहा होगा । मैके के अनुसार चंहुदड़ो में भी सिंधु सभ्यता के लोगों का उस स्थल को छोड़ने के लिए बहुत कुछ बाढ़ ही उत्तरदायी थी । वहां पर अंतिम चरण में भयंकर बाढ़ के साक्ष्य रेत की तह से स्पष्ट हैं । चन्हुदड़ो के एक टीले के बारे में मैके का कहना है कि वहां पर सिंधु सभ्यता के लोग किसी तरह कुछ समय तक बने रहे और बाद में शनैः-शनैः नष्ट हो गये या उस स्थान को छोड़ कर अन्यत्र अधिक समृद्ध स्थलों की ओर चले गये । मैके तो यह भी सुझाते हैं कि शायद सिंधु नदी में बाढ़ इतने विशाल पैमाने पर इतनी अधिक बार और इतने लम्बे समय तक रही हो कि चन्हुदड़ो के लोग बाढ़ से रक्षा के लिए ऊँचे स्थलों की ओर गये और शनैः-शनै उनकी संस्कृति की विशिष्टता समाप्त हो

सिंधु नदी में अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण व्यपवर्तन से अन्य शोषित स्थानों के लोगों को मोहेंजोदड़ो आने को विवश किया हो और मोहेंजोदड़ो की जनसंख्या का संतुलन बिगड़ गया हो, और उनकी समृद्धि और शक्ति का अत्यधिक क्षय हो गया हो ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गयी । स्तरीय साक्ष्य इस बात के द्योतक हैं कि जब झूकर संस्कृति के लोग चन्हुदड़ो आये तो वहां पर सिंधु सभ्यता के लोग नहीं थे ।

राव को लोथल और भगत्राव (दक्षिण गुजरात) में कम से कम दो शोषण बाढ़ों के आने के प्रमाण मिले हैं । उनके अनुसार एक बाढ़ लगभग 2000 ई० पू० और दूसरी उसके लगभग एक शताब्दी बाद आयी थी । राव का अनुमान है कि हड़प्पा मोहेंजोदड़ो में भी भीषण बाढ़ इसी समय आयी होगी । इमारतों को बाढ़ से बचाने के लिए चारों ओर रक्षा दीवार का निर्माण भी किया गया था । भीषण बाढ़ से खेती भी नष्ट हो जाती रही होगी और नहरें बालू से पट जाती रही होंगी । राव का कहना है कि ऐसे अवसरों पर सिंधु घाटी से सिंधु सभ्यता के कुछ लोग घग्गर की घाटी और कुछ सतलज की ओर गये । कालीबंगां में ये लोग पहले से ही आवासित क्षेत्र में भी पहुँचे । रोपड़ और कुछ अन्य सतलज के समीपवर्ती बस्तियां शायद इन्हीं बाढ़पीड़ित लोगों ने बसायी थीं । मोहेंजोदड़ो लोथल और अन्य नगरों का क्षेत्र पहले से कम हो गया और वहां पर हर क्षेत्र में ह्रास दिखने लगता है ।

कुछ स्थलों पर इस बात के प्रमाण मिले हैं कि भूमिगत जल-तल कुछ ऊंचा हो गया था । सिंधु नदी अपने साथ जो मिट्टी बहा कर लाती थी उसके जमाव के कारण नदी का तल ऊपर उठता गया और उसके साथ ही उसके इर्द-गिर्द का मैदानी क्षेत्र भी । यह प्रक्रिया धीमी किंतु निरंतर रही और कई पीढ़ियों के अंतर में भूमि का तल काफी ऊँचा हो गया होगा तथा नगरों को बाढ़ का खतरा और बढ़ गया होगा । जैसा कि व्हीलर ने लिखा है, यदि मानवी अनुशासन में भी कमी आ गयी हो और सिंचाई के लिए बनायी गयी नहरों तथा बांधों के प्रबंध में अनियमितता रही हो तो उससे एक ओर उपज में कमी आयी होगी दूसरी ओर जलप्लावन के कारण सभ्यता के ह्रास में और भी तेजी आयी होगी ।

डेल्स को अपनी पुरातात्विक खोजों के संदर्भ में मकरान के आज के समुद्र तट से कई मील भीतर की भूमि में प्राचीन समुद्र तट के चिह्न मिले हैं । हड़प्पा संस्कृति के तीन महत्वपूर्ण नगर सुत्कगेंडोर, सोत्काकोई (परनी नदी के तट पर) और बालाकोट (कराची के उत्तर-पश्चिम लगभग 45 मील की दूरी पर सोनमपनी के समीप, जिसकी खोज राइक्स ने की है) की प्राचीन स्थिति के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हुई है । आज तो सुत्कगेंडोर समुद्र तट से लगभग 56 किमी०, सुत्काकोह 13 किमी० और बालाकोट लगभग 19 किमी० हैं, किंतु यहां पर किये सर्वेक्षण से उपलब्ध साक्ष्यों से ऐसा अनुमान लगाया गया है कि वे समुद्र तट पर ही अवस्थित रहे होंगे और जलमार्ग द्वारा व्यापार के लिए

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महत्वपूर्ण पड़ाव रहे होंगे। डेल्स के अनुसार, संक्षेप में तीन प्राकृतिक शक्तियों ने इन नगरों को समुद्र तट से दूर करने में योगदान किया, वे समुद्र तट की भूमि का सतत रूप से ऊपर उठना, नदियों (दास्त और सादि कौर) की लायी हुई मिट्टी के जमाव से उनके मुहानों का अवरुद्ध होना और स्थान-स्थान पर हवाओं द्वारा रेत का जमा किया जाना। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि समुद्र तल का यह ऊपर उठना लगभग 480 किमी० के मकरान तट तक ही सीमित नहीं रहा होगा, बल्कि इस प्रक्रिया ने शनैः-शनैः समीपवर्ती क्षेत्र, यहाँ तक कि सिंधु के निचले भाग को भी प्रभावित किया होगा।

मोहेंजोदड़ो और अन्य नदी तटवर्ती नगरों के लिए बाढ़ ही पर्याप्त परेशानी का कारण थी, किंतु इसके साक्ष्य हैं कि आमरी, मोहेंजोदड़ो और कुछ अन्य स्थल एक दूसरे प्रकार के जलप्लावन के भी शिकार हुए। मोहेंजोदड़ो में जो बारीक बलुई मिट्टी (silty clay) मिली है वह बाढ़ के बहते हुए पानी का परिणाम न होकर रुके हुए पानी का परिणाम लगता है। इनसे ऐसा लगता है कि ये स्थल सामान्य वार्षिकी बाढ़ के अतिरिक्त किसी दूसरे प्रकार के जलप्लावन से भी प्रभावित हुए।

प्रसिद्ध भारतीय भूगर्भ-शास्त्री एम० आर० साहनी ने काफी साल पहले यह धारणा व्यक्त की थी कि सिंधु सभ्यता के अंत का मुख्य कारण विशाल पैमाने पर, बाढ से भिन्न, जलप्लावन था। उस समय यह मत विशेष चर्चा का विषय नहीं बना था। लेकिन अब हाल की खोजों से इस मत को काफी बल मिला है। अमेरिका के जल वैज्ञानिक आर० एस० राइक्स ने मोहेंजोदड़ो में वेधन कर उससे प्राप्त सामग्री का अध्ययन किया। साथ ही उन्होंने अन्य स्थानों का भी परीक्षण कर यह निष्कर्ष निकाला है कि अरब सागर के उत्तरी छोर पर, सिंधु सभ्यता के काल में विवर्तनिक हलचल के कारण भी कुछ स्तर ऊपर उठता गया और नदियों के मुहाने पर रेत जमा हो गयी थी। पानी समुद्र में गिरने के बजाय रुकता गया और इस तरह एक झील सी बन गयी। पानी तो फिर भी इस उठे हुए क्षेत्र से काफी मात्रा में रिस कर निकल जाता रहा होगा, पर कीचड़ और दल-दल बढ़ती चली गयी होगी। कल्पना यह की गयी है कि ऐसी स्थिति एक से अधिक बार आयी होगी। इससे और बाढ़ों से भी साधारण यातायात में बड़ी बाधा पड़ी होगी। ये नगर व्यापार के केन्द्र थे और देशीय तथा अन्तर्देशीय व्यापार पर इस तरह के पानी और कीचड़ के जमाव का दुष्प्रभाव पड़ना और लोगों के आत्मबल का ह्रास होना स्वाभाविक था।

यह मत अपेक्षाकृत कुछ सनसनीपूर्ण और विषय के विशेषज्ञों द्वारा विस्तृत सर्वेक्षण पर आधारित होने के कारण अच्छा खासा चर्चा का विषय बना हुआ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। लेकिन जितने प्रभावपूर्ण और नाटकीय ढंग से इसका प्रचार हुआ उतने ही तर्कपूर्ण ढंग से इसका खंडन भी हो रहा है। इस मत के खंडन के सिलसिले में लैम्ब्रिक का नाम मुख्य रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने इस तरह की झील के निर्माण के संबंध में कुछ तकनीकी शंकाएं उठायी हैं। इस प्रक्रिया में बने बांध के चिह्नों का आज बिल्कुल भी न मिलना निश्चय ही कुछ संदेह उत्पन्न करता है। फिर इस झील के पानी, उसकी कीचड़ से बने दलदल के बावजूद लोग नगर में कैसे रह सकते थे, जबकि भोज्य सामग्री प्राप्त करना दुष्कर हो गया होगा और यातायात ठप्प होने से अन्यत्र से संपर्क टूट गया होगा। अगर वे जीवट के होते तो सामूहिक प्रयास से बांध तोड़ कर मुक्ति पा जाते, अन्यथा स्थल छोड़ अन्यत्र चला जाना ही एकमात्र चारा उनके पास था। निश्चय ही इस मत के सर्वमान्य ही नहीं बहुमान्य रूप में भी स्वीकृत होने में संदेह है। कीचड़ और दलदल से निरंतर जूझते हुए लोग मोहेंजोदड़ो जैसे विकसित नागरिक संस्कृति के निर्माता हो सकते थे, ऐसा विश्वास करना कठिन है।

अनेक महान् संस्कृतियों के अंत का कारण बाहरी आक्रमण भी रहा है। टॉइनबी ने भी लिखा है कि जब सभ्यता में संपन्नता आती है और आसानी से लोगों की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है तो वे आरामतलब और विलासी हो जाते हैं। उनके पौरुष में कमी आ जाती है। उनमें नये सृजनात्मक कार्य करने का उत्साह क्षीण हो जाता है और वे पुरानी लीक पर ही चलते रहते हैं। वह वर्ग जो संस्कृति के विकास के समय जनता को कुशल नेतृत्व देते रहे थे, अब नेतृत्व के गुणों से रहित हो जाते हैं और जनता की श्रद्धा उन पर कम हो जाती है तथा जनता के अनुशासित सहयोग के बिना किसी भी शक्ति के लिए अधिक अवधि तक महान् समस्याओं का समाधान करना संभव नहीं होता। दूसरी ओर लुटेरों और अन्य शत्रुओं की आंखें इन सभ्यताओं की संपन्नता को प्राप्त करने की ओर लगी रहती हैं। और, जब वे इनकी शक्ति क्षीण देखते हैं तो आक्रमण कर देते हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार शायद यही बात हड़प्पा सभ्यता के संबंध में भी कुछ हद तक सत्य हो, और ह्रासोन्मुखी इस सभ्यता को बाहरी आक्रमण से अत्यंत हानि पहुँची हो। जो विद्वान हड़प्पा सभ्यता के अंत के संदर्भ में आक्रमण की बात करते हैं, वे इस संदर्भ में बलूचिस्तान के तीन स्थलों - राना घुंडई (तृतीय चरण की समाप्ति पर), नाल (झोब संस्कृति के आवास) और डाबरकोट (ऊपरी स्तर)—पर सिंधु सभ्यता के अंतिम काल के लगभग समकालीन संस्कृतियों के संदर्भ में अग्निकाण्ड के साक्ष्य की चर्चा करते हैं और इससे यह निष्कर्ष निकालते हैं कि ये उस समय कुछ आक्रमणकारियों के सक्रिय होने और लूटपाट तहस नहस करने के साक्ष्य लगते हैं। इस संदर्भ में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस बात का भी उल्लेख किया जा सकता है कि मोहेंजोदड़ो में जो आभूषण निधियां खुदाई में मिली हैं वे इस बात की द्योतक हैं कि आक्रमणकारियों से भयभीत होकर लोगों ने अपने स्थान त्यागने से पूर्व आभूषणों को सुरक्षा की दृष्टि से भूमि में गाड़ दिया ताकि भविष्य में लौटकर उन्हें प्राप्त कर सकें। लेकिन दूसरे विद्वानों का यह कहना है कि उस समय अगणित आवासित स्थल थे उनमें से केवल तीन स्थलों पर छोटे-मोटे अग्निकाण्ड से सिंधु सभ्यता को भी आक्रमणकारियों से नष्ट होने का साक्ष्य मानना ठीक नहीं। जो आक्रमणकारियों को इस सभ्यता के विनाश के लिए उत्तरदायी मानते हैं वे भी आक्रमणकारियों की पहिचान के बारे में एकमत नहीं हैं।

कई विद्वानों की धारणा है कि सिंधु सभ्यता अनार्य सभ्यता थी। गार्डन चाइल्ड ने 1934 में इस सभ्यता के अंत के लिए आर्यों के उस पर हावी होने की संभावना व्यक्त की। व्हीलर ने भी 1946 में इसी तरह का मत व्यक्त किया, उनके अनुसार लगभग द्वितीय सहस्राब्दी ई० पू० के मध्य तक सिंधु संस्कृति विद्यमान थी, यद्यपि वह पतनोन्मुख थी, लगभग इसी समय आर्य लोग आक्रान्ता के रूप में अपनी विजय-वाहिनी के साथ भारत में आये।[1] उनके अनुसार ऋग्वेद के कुछ मंत्रों में, जिनकी रचना उन्होंने द्वितीय सहस्राब्दी के मध्य में मानी है, अनार्यों के उनके दुर्ग रूप में सुरक्षित नगरों का उल्लेख है जिन्हें आर्य विजेताओं ने धराशायी किया था।[2] आर्य अपने देवता इन्द्र से इन शत्रुओं के दुर्गों को नष्ट

1. इस संबंध में यह उल्लेखनीय है कि एशिया माइनर के बोगाज कोई नामक स्थान में लगभग चौदहवीं शताब्दी ईसापूर्व के लेख में इन्द्र, वरुण और नासत्य (द्वय) का उल्लेख है जो उस समय आर्यों के उस क्षेत्र में होने के द्योतक हैं। बलूचिस्तान के मुगल घुण्डई नामक स्थान में तिपाया बर्तन, घोड़े की घंटियां, छल्ले और चूड़ियां मिली हैं, जिनकी तुलना मध्य ईरान में सियाल्क में लगभग 1000 ई० पू० की तिथिवाले वस्तुओं से की गयी है। फोर्ट मुनरो की तलवार की तिथि लगभग 1200 ई० पू० आंकी गयी है। कुर्रम की घाटी में प्राप्त छेददार कुल्हाड़ी का मूल ईरान और काकेशश में उन्होंने माना। व्हीलर के अनुसार ये सब पश्चिम की ओर से लाये गए और आर्य भी भारत में पश्चिम की ओर से ही आये।

2. इन नगरों के लिए 'पुर' शब्द का इस्तेमाल किया गया है जिसका अर्थ दुर्ग भी होता है। एक को विस्तृत दूसरे को चौड़ा कहा है। कहीं-कहीं दुर्गों को, प्रतीकात्मक रूप में (metaphorically) धातु का कहा गया है, और कहीं शारदी (शरद ऋतु के)। दुर्ग पत्थर के (अश्ममयी) और कच्ची ईंट (?) (आमा) के बने उल्लिखित हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करने की प्रार्थना करते हैं और इन्द्र को इनका विजेता कहा गया है (पुरंदर)। कुछ विद्वानों के अनुसार इन अनार्य पुरों की पहिचान हड़प्पा एवं मोहेंजोदड़ो के दुर्गों से की जानी चाहिए। व्हीलर प्रश्न करते हैं कि ऋग्वेद में उल्लिखित आर्यों के शत्रुओं के पुर (दुर्ग) कहां हैं या थे? पुर या दुर्ग हड़प्पा संस्कृति के स्थलों—हड़प्पा, मोहेंजोदड़ो, कालीबंगां इत्यादि को छोड़ कर किसी अन्य इतनो प्राचीन संस्कृति के संदर्भ में नहीं मिलते। यदि यह मान भी लिया जाय कि ये सिंधु सभ्यता के वाद के रहे होंगे, जिन्हें अभी पुरातत्ववेत्ता ढूंढ नहीं पाये, तो हमें कल्पना करनी होगी कि सिंधु सभ्यता के अंत और आर्यों के आक्रमण के बीच में अल्प काल में एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण सभ्यता का उदय हुआ जिसमें काफी मजबूत दुर्ग बनाये गये और जिन्हें आर्यों ने विजय किया। किंतु यह मत अधिक तर्कसंगत नहीं लगता।[1]

मोहेंजोदड़ो में सिंधु सभ्यता के विनाश के लिए आर्य विजेताओं को दोषी ठहराते हुए व्हीलर साक्ष्य के तौर पर मोहेंजोदड़ो के अंतिम स्तर से प्राप्त स्त्री, पुरुष एवं बालकों के कंकालों का, जिनमें कुछ पर पैने शस्त्र के घाव के निशान हैं और जो संभवतः सामूहिक रूप से मौत के घाट उतारे गये थे, का संदर्भ देते हैं।[2] ऐसा लगता है कि जीवन-रक्षार्थ भागते समय, कोई जीने पर चढ़ते समय,

1. लेकिन इस संदर्भ में यह उल्लेख भी समीचीन होगा कि कुछ लोग सिंधु सभ्यता को ही आर्यों की संस्कृति मानते हैं, और अब कोटदीजी और कालिबंगां में सिंधु सभ्यता के पूर्व की संस्कृति के संदर्भ में किलेबंदी का साक्ष्य मिलना उनके पक्ष में एक और तर्क प्रस्तुत करता है। जैसे सांकलिया का कथन है, अब केवल आर्यों को ही 'पुरंदर' (पुरों का भेत्ता) संज्ञा देना ठीक नहीं क्योंकि स्वयं सिंधु सभ्यता के लोगों द्वारा पूर्व संस्कृति के दुर्गों का भेदन किये जाने की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता।

मोहेंजोदड़ो में कुल अड़तीस नर-कंकाल मिले हैं। इसमें पांच तो समूहों में और एक अलग मिला है। मार्शल के निर्देशन में जो उत्खनन हुए थे, वे परतों के आधार पर नहीं किये गये थे अतः इन नरकंकालों का ठीक ठीक तिथि निर्धारण कठिन है। लेकिन व्हीलर ने कहा है कि कम से कम तीन समूह (I)-(III) ऐसे हैं जो निश्चित रूप से समकालीन हैं और अंतिम चरण के हैं। (I) 'डी के' क्षेत्र में एक सार्वजनिक कुएँ वाले कमरे में चार कंकाल मिले हैं। इस कुएँ में जाने के लिए जो सीढ़ियां हैं दो उसमें पड़े थे जैसे कि भागने का भरसक प्रयास करते हुए मारे गये हों। दो कंकाल समीप ही थे। मैके के विवरण के अनुसार ये अंतिम प्रकाल के हैं और निश्चित रूप से हत्या के शिकार हुए थे। (II) 'एच आर' क्षेत्र में घर नं. V में तेरह कंकाल मिले जो वयस्क पुरुष, स्त्री

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कोई सड़क पर ही और कोई मकान के भीतर ही मार डाले गये । मृतकों के शव बिना किसी उचित शवोत्सर्ग के पड़े रह गये, मानों उनके निकट संबंधी भी नहीं रहे हों जो कम से कम उनका अंतिम संस्कार तो करते। उनके मतानुसार ऐसी संभावना है कि लगभग तृतीय सहस्राब्दी ई० पू० के मध्य से कुछ पूर्व भारत में आर्यों के आक्रमण ने हड़प्पा संस्कृति का विनाश किया । मानों बर्बर

और बच्चों के हैं, जिनमें से कुछ के शरीर पर आभूषण भी पाये गये हैं । इनमें से कुछ पर तलवार जैसे पैने शास्त्र से घाव किये जाने के निशान हैं जो अनुमानतः उनकी मृत्यु के कारण बने। (III) डेल्स ने 'एच० आर०' क्षेत्र के उत्खनन में 1964 में 5 नरकंकाल पाये जो अंतिम चरण के दीवारों के मध्य बिना उपयुक्त रूप से दफनाये पड़े थे और किसी भयानक विपत्ति के शिकार हुए थे। (IV) 'वी. एस.' क्षेत्र में छह नरकंकाल (जिनमें से एक बच्चे का है) बिखरे पड़े थे । इनके विषय में विस्तृत जानकारी का अभाव है । (V) 'एच आर' क्षेत्र में पड़ा एक कंकाल । (VI) 'डी के' क्षेत्र में नौ कंकाल, जिनमें पांच बच्चों के थे, अस्त-व्यस्त रूप में पड़े मिले। इस समूह के साथ दो हाथी दांत मिले । मैके का मत है कि इनमें से कुछ हाथी दांत का कार्य करते थे जो आक्रमण के समय हाथीदांत लेकर भागना चाहते थे, पर मार डाले गये । उनका यह भी कथन है कि मृत्यु के बाद इन्हें जल्दी में ढक दिया गया। कंकालों में एकमात्र यही समूह है जिसमें शवों को ढकने का प्रयास किया गया था, अन्य तो खुले ही छोड़ दिये गये थे । व्हीलर का अनुमान है कि इन कंकालों का नगर के बीच में यों ही पड़े रहना इस बात का द्योतक है कि इन हत्याओं के बाद नगर में बस्ती नहीं रही। गढ़ी वाले टीले में इस तरह के कंकालों का न मिलना इस बात का द्योतक है कि उसकी महत्त्वपूर्ण स्थिति के कारण आक्रांता उसमें कुछ समय तक रहे, वहां पर विजेताओं ने इस तरह से हत शवों को हटा दिया था। उपर्युक्त शवों का पूरा पूरा कंकाल मिलना इस बात का द्योतक है कि पशु-पक्षियों ने इन्हें नोचा नहीं। व्हीलर का मत है कि संभवतः आक्रांत नगर में यत्र-तत्र छिटपुट आग जलते रहने के कारण ये जानवर शायद इन शवों तक नहीं पहुँच पाये । यह भी संभावना व्यक्त की गयी है कि शायद प्लेग जैसी बीमारी के फैलने से लोग नगर छोड़ कर कुछ समय के लिए चले गये लेकिन कुछ असमर्थ बचे रह गये । कुछ कंकाल, जिन पर शस्त्रों के प्रहार के निशान नहीं हैं, ऐसे ही असमर्थ बीमार लोगों के हो सकते हैं। डेल्स भी आक्रमणवाले मत में विश्वास नहीं करते, उनके अनुसार हजारों लोगों की बस्ती में थोड़े से लोगों का आकस्मिक आपत्ति से मृत्यु को प्राप्त होना कोई आश्चर्य की बात नहीं । वे इस बात की भी संभावना मानते हैं कि ये बाढ़ की विभीषिका के शिकार हो सकते थे ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आक्रमणकारियों को नगर जीवन से कोई वास्ता ही नहीं था, वे तो नये प्रदेश प्राप्त करने और लूटपाट में ही रुचि रखते थे। व्हीलर ने मोहेंजोदड़ो के विषय में लिखा है—ह्रास दीर्घीकृत और क्रमिक रहा और अंत विध्वंसात्मक (decline was long drawn out and progressive, and the final fall catastrophic)।

हड़प्पा में सिंधु सभ्यता के अंत के बारे में भी व्हीलर ने कुछ मोहेंजोदड़ो की तरह की धारणा व्यक्त की है। इस संबंध में यह भी सुझाव दिया गया है कि हड़प्पा की पहचान ऋग्वेद में उल्लिखित हरियूपिया से की जानी चाहिए, जहां पर संभवतः आर्यों ने अनार्यों पर विजय पायी थी। इस संदर्भ में व्हीलर ऋग्वेद के संदर्भ का उल्लेख करते हैं जिसके अनुसार वृचीवन्तों जिनका उल्लेख इंद्र के शत्रुओं के रूप में हुआ है (और इसलिए जिसे हम अनार्य मान सकते हैं), को अभ्यावर्तिन चयमान ने पराजित किया। व्हीलर ने आर्यों का तादात्म्य कब्रिस्तान 'एच' संस्कृति के लोगों से किया था, किंतु ब्रजवासी लाल ने जब तर्कों से स्पष्ट किया कि स्तर विज्ञान के साक्ष्य के आधार पर यह कब्रिस्तान 'एच' हड़प्पा संस्कृति के कब्रिस्तान 'आर-37' के न केवल बाद का है अपितु दोनों के बीच काल-व्यवधान भी है[1], तो व्हीलर भी अब अपने पूर्व मत पर अधिक बल नहीं देते। अपनी पुस्तक 'Early Indus Civilizatian' में मैके ने लिखा है कि मोहेंजोदड़ो का अंत 17वीं शती ईसवी पूर्व में हुआ, और यह ध्यान देने योग्य बात है कि उनकी यह धारणा कार्बन–14 विधि से प्राप्त तिथियों के साक्ष्य के बहुत निकट है।[2] उनका यह कहना है कि इसी समय बेबोलीनिया पर Hyksos लोगों का आक्रमण हुआ और ईरान में इसी समय प्रथम बार इण्डो-ईरानी (आर्य) लोगों ने पदार्पण किया। निश्चय ही मैके भी बाहरी आक्रमण को काफी हद तक मोहेंजोदड़ो के पतन के लिए उत्तरदायी समझते हैं। उनके अनुसार मोहेंजोदड़ो में धातुओं के उपकरणों (बर्तन इत्यादि) के जो संचय मिले हैं वे इस बात के द्योतक हैं कि आक्रमण की आशंका से लोग इन्हें गाड़ कर अन्यत्र चले गये और फिर दुर्भाग्य से लौट न सके।

मोहेंजोदड़ो से 130 कि० मी० की दूरी पर चन्हुदड़ो में भी हड़प्पा संस्कृति के अंत के लिए कुछ विद्वानों ने आक्रमणकारियों को उत्तरदायी बतलाया है लेकिन इसके निश्चित साक्ष्य नहीं हैं और दूसरी ओर इस बात के साक्ष्य हैं कि अंतिम चरण में यह स्थल भयानक बाढ़ से ग्रसित हुआ। यहां पर झूकर नामक

1. विस्तार के लिए देखिए परिशिष्ट 'उत्तरकालीन संस्कृतियां'।

2. यद्यपि उन्होंने यह मत तब व्यक्त किया था जब कार्बन–14 विधि ज्ञात नहीं थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संस्कृति के लोग सिंधु सभ्यता के बाद कुछ अंतराल से आये जिस कारण उन्हें इस सभ्यता के विनाश के लिए उत्तरदायी मानना ठीक नहीं लगता। इस संस्कृति की सांस्कृतिक सामग्री सिंधु सभ्यता की तुलना में निम्नकोटि की है। इसके बाद झांगर लोगों ने कुछ अंतर के बाद चन्हुदड़ो को अपना निवास बनाया।

सिंधु सभ्यता के अंत के संदर्भ में उसके सौराष्ट्र और नर्मदा के समीप की बस्तियों की कहानी कुछ भिन्न रही। रंगपुर, लोथल आदि से प्राप्त अवशेषों से निश्चित रूप से ज्ञात होता है कि वहां ह्रासोन्मुखी संस्कृति शनैः-शनैः कुछ परिवर्तित होकर पर्याप्त काल तक जीवित रही। सिंधु सभ्यता में चमकदार लाल रंग के मृद्भाण्ड काफी संख्या में बनने लगे जिनपर चित्रण के कुछ अभिप्राय सिंधु सभ्यता के बर्तनों पर अंकित अभिप्रायों से भिन्न थे। पकी ईंटों के स्थान पर कच्ची ईंटों का प्रयोग हुआ। अब चकमक पत्थर (फ्लिंट) की जगह जैस्पर के फलक बनने लगे। इन स्थलों पर बस्ती एक छोटे क्षेत्र तक सीमित रही और उसमें स्वच्छता का प्रबंध नगण्य था लेकिन गुजरात और मध्य-भारत में द्वितीय सहस्राब्दी के मध्य और उससे पूर्व कुछ समानांतर किनारेवाले अश्म-फलक मिले हैं जो सिंधु सभ्यता के अश्म-फलकों से मिलते जुलते हैं। रोपड़ और विशेषतः आलमगीरपुर में ह्रासोन्मुखी सिंधु सभ्यता के स्थल हैं। आंबखेड़ी और बड़गांव से भी कुछ ऐसी सामग्री मिली है जो ह्रासोन्मुख हड़प्पा संस्कृति से कुछ मिलती जुलती है। इनमें खंडित मृद्भाण्ड और मृण्मूर्तियां उल्लेखनीय हैं। इन स्थानों में तांबे के उपकरण तो मिले, किंतु पत्थर के उपकरण नहीं मिले।[1]

●

1. कुछ विद्वानों का मत है कि गेरुए रंग के मृद्भाण्ड, जो कई स्थानों में मिले हैं, वास्तव में ह्रासोन्मुखी सिंधु सभ्यता के लोगों के ही मृद्भाण्ड हैं अतरंजीखेड़ा में इनकी छोटी ग्रामीण बस्ती और तांबे के कुछ उपकरण भी मिले हैं। यही लोग ताम्र निधियों के निर्माता भी थे (देखिए परिशिष्ट 'उत्तरकालीन संस्कृतियां')।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिशिष्ट 1

प्राचीन मेसोपोटामिया, मिस्र और सिंधु की ताम्र-पाषाण संस्कृतियां—कुछ समानताएं और विशिष्टताएं

सिंधु सभ्यता के निर्माता सुनियोजित नगर-व्यवस्था और सार्वजनिक स्वास्थ्य के प्रति सजग थे। हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो जैसे नगरों में भवन-निर्माण पक्की ईंटों से किया गया जबकि अधिकांश अन्य स्थलों पर कच्ची ईंटों से। वे विभिन्न पशुओं को पालते, कृषि करते और स्थल और जल-मार्गों द्वारा व्यापार करते थे। वे सोना, चांदी, तांबा, टीन का उपयोग आभूषणों, अस्त्र-शस्त्रों और अन्य उपकरणों के लिए करते थे। उनके बर्तन, चाकनिर्मित थे और कुछ विभिन्न अभिप्रायों से चित्रित हैं। वे कांचली मिट्टी, हाथी दाँत, विभिन्न प्रकार के कीमती पत्थर, शंख और मिट्टी के आभूषण और अन्य उपकरण बनाते थे। ये मुद्राओं का प्रयोग करते थे और विशिष्ट प्रकार की लिपि में लेख लिखते थे जो अभी तक पढ़े नहीं गये। सिंधु सभ्यता ताम्र-पाषाण संस्कृति थी, अर्थात् इसमें पाषाण का प्रयोग तो पाषाण युग से दाय भाग के रूप में मिला था किंतु साथ ही तांबा, कांसा, सोना, चांदी तथा कुछ अन्य धातुओं का प्रयोग आरंभ हो गया था। किंतु उस संस्कृति के लोग लौह के प्रयोग से अपरिचित थे। उपर्युक्त बातें मिस्र और मेसोपोटामिया की प्राचीन संस्कृतियों पर भी लागू होती हैं। प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण ताम्र-पाषाणयुगीन संस्कृतियों का विकास नदियों की घाटियों में हुआ। नदियों की घाटियों में संस्कृतियों के पनपने के कई कारण थे। नदियां अपने साथ लायी मिट्टी से भूमि को उपाजाऊ बनाती हैं और सिंचाई के लिए पर्याप्त मात्रा में जल प्रदान करती हैं। उनके माध्यम से नौकाओं पर आवागमन हो सकता है। जिस तरह मिस्र में नील, मेसोपोटामिया में दजला-फरात नदियों का वहां की संस्कृति के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा, उसी प्रकार पंजाब तथा सिंध में सिंधु तथा उसकी सहायक नदियों ने भी सिंधु सभ्यता के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी।[1]

---

1. स्वयं मार्शल ने सुझाव दिया था कि अगर भविष्य में सभ्यता का विस्तार सिंधु से दूर स्थलों में सिद्ध हो जायगा तो शायद 'सिंधु सभ्यता' के बनिस्पत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वातावरण और मानवीय अध्यवसाय की भिन्नता के फलस्वरूप विभिन्न संस्कृतियों के विकास में भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। प्राचीन ताम्रपाषाण संस्कृतियों के विकास में विभिन्न जाति-प्रजातियों के लोग सहायक थे। उनकी लेखन शैली उनके देवी देवता, सामाजिक स्थिति और उनकी नैतिक मान्यता में अंतर होता स्वाभाविक था। किंतु स्थानीय आवश्यकताओं और सुविधाओं के कारण इन संस्कृतियों का विकास एक-सा न होते हुए भी उनके विचारसूत्र में पर्याप्त समानता पायी जाती है। मिस्री, सुमेरी, क्रीट और सिंधु सभ्यताओं में विचारों की अभिव्यक्ति के लिए लेखन-कला अपनायी गयी और उनमें चित्र-शैली का पर्याप्त प्रयोग हुआ, कितु उनके लिपि-चिह्न भिन्न रहे। सिंधु और मेसोपोटामिया दोनों की सभ्यताओं में लोग कताई-बुनाई करते थे, किंतु हड़प्पा संस्कृति वालों ने वस्त्रों के लिए कपास का प्रयोग किया, नील की घाटी में सन (फ्लेक्स) को वरीयता दी गयी। इसी तरह मृद्‌भाण्डों पर चित्रांकन सभी संस्कृतियों में हुआ किंतु चित्रांकन की विधा एवं विषय में पर्याप्त भिन्नता रही।

सिंधु सभ्यता का सुमेरी और मिस्री सभ्यताओं की भांति अपना विशिष्ट व्यक्तित्व है। शि० रंगनाथ के इस कथन में कुछ सच्चाई दिखती है कि सिंधु सभ्यता के लोगों ने अपनी संस्कृति की विशिष्टता को विदेशी संस्कृति के प्रभाव से बलपूर्वक बचाया। सुनियोजित नगर व्यवस्था, सार्वजनिक स्नानागार, विशिष्ट प्रकार की अभिलिखित मुद्राएं और विशिष्ट प्रकार के मृद्‌भाण्ड और उन पर अलंकरण की विधा सिंधु सभ्यता को प्राचीन विश्व संस्कृति के इतिहास में एक अलग स्थान प्रदान करते हैं। सिंधु सभ्यता की मूर्तियां भी अपनी विशिष्टता लिए हैं जो अन्य सभ्यताओं की कृतियों से अलग पहचाने जाते हैं। मिस्र और मेसोपोटामिया में साधारण जनों के भवन तो साधारण कोटि के किंतु राजाओं की कब्रें और देवताओं के मंदिर अत्यंत वैभवशाली बनाये गये थे। सिंधु सभ्यता के नगरों के साधारण जनों के भवन मेसोपोटामिया और मिस्र के नागरिकों के भवन की तुलना में कहीं विशाल और आरामदेह हैं, लेकिन भव्य कब्रों और विशाल मंदिरों का, जो मिस्र और मेसोपोटामिया के स्थापत्य की विशिष्टता हैं, सिंधु सभ्यता में नितांत अभाव है। अन्य सभ्यताओं के धर्म से

भारतीय सभ्यता अधिक उपयुक्त होगा। हाल ही में एम० आर० मुगल ने इस सभ्यता के लिए 'विशाल सिंधु सभ्यता' (Greater Indus Civirlization) नाम सुझाया है। पुरातात्विक खोजों से प्रमाणित हो चुका है कि भारत में गंगा-यमुना और ट्रांस-काकेशिया में अक्षु नदी का योगदान भी मानवी कार्यकलापों एवं संस्कृति'के विकास में कम नहीं रहा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिंधु सभ्यता के धर्म में कुछ समानता अवश्य लगती है किंतु यह समानता मात्र ऊपरी है, और सिंधु सभ्यता की इससे अधिक विशिष्टता यह है कि वह परवर्ती हिंदू धर्म के कितने ही मुख्य तत्त्व लिये हुए है। जैसा मार्शल का कहना है, संभवतः कुछ वस्तुओं की खोज या अविष्कार सिंधु घाटी में हुआ होगा और कुछ का इतर प्रदेशों में, फिर इन स्थानों से उनका अन्यत्र प्रसार हुआ होगा। यह भी संभव है कुछ सभ्यताओं के निर्माताओं के आदि पूर्वज एक ही थे जिनसे इन्होंने दाय के रूप में विचार प्राप्त किये किंतु अपनी सूझबूझ से विभिन्न परिस्थितियों में आवश्यकतानुसार परिवर्तित परिवर्द्धित कर उसे अमली जामा पहनाया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिशिष्ट 2

सिंधु सभ्यता से पूर्व की कुछ संस्कृतियां

सिंधु सभ्यता के उदय से पूर्व अफगानिस्तान, बलूचिस्तान एवं सिंध में कई संस्कृतियां पनपीं । इन संस्कृतियों का वर्गीकरण का मुख्य आधार उनके भाण्डों का आकार-प्राकार तथा चित्रण शैली और अभिप्राय है । इन संस्कृतियों के उद्-घाटन करने वाले विद्वानों में स्टाइन, मजुमदार, डिकार्डी, रास, फेयर सर्विस, डेल्स एवं कसाल मुख्य हैं । विद्वानों ने इन संस्कृतियों से संबंधित सामग्री का समाकालित अध्ययन कर उनका वर्गीकरण, कालनिर्धारण और उनका सांस्कृतिक महत्त्व दर्शाया है ।[1]

दक्षिणी अफगानिस्तान में स्थित मुण्डीगाक की सांस्कृतिक सामग्री को उत्ख-ननकर्ता कसाल ने छह प्रकालों में बांटा है । प्रथम काल के प्रथम चरण में हाथ से बने गुलाबी भाण्ड प्रयुक्त हुए । द्वितीय चरण में पश्चिमी एशिया की संस्कृति से प्रभावित चाक-निर्मित मृद्भाण्ड प्रचलन में आये और तांबे का उपयोग शुरू हुआ । इस काल के अंतिम चरण में आमरी संस्कृति के संपर्क के साक्ष्य मिलते हैं । द्वितीय काल में संस्कृति का स्वतंत्र विकास अधिक और पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव गौण हो गया । तांबे की सुइयां, रीढ़दार कटार, सेलखड़ी की अलंकृत मोहरें बनने लगीं । तृतीय काल के मृद्भाण्डों तथा अन्य उपकरणों में विविधता है जो विभिन्न संस्कृतियों के प्रभाव का द्योतक है । तांबे की हत्थेदार छेदवाली कुल्हाड़ी और वसूले पाये गये । द्विरंगी भाण्ड (जो आमरी संस्कृति की विशेषता है) और बहुरंगी भाण्ड (जो नाल संस्कृति की विशेषता है) प्रयोग में आये । मुण्डीगाक का यह काल नामजगा II अ और अनाउ II का समकालीन था । क्वेटा प्रकार के भाण्ड भी मिले । सीस्तान के सहर-ए-सोख्ता I से संपर्क के साक्ष्य मिलते हैं। इस काल की तिथि लगभग 2600 ई० पू० है । चौथे प्रकाल में आवास में विस्तार हुआ । प्रासाद, मंदिर और रक्षा-प्राचीर का निर्माण नागरिक

---

1. पिगट ने बलूचिस्तान एवं सिंध की प्राचीन संस्कृतियों को भाण्डों के आधार पर दो वर्गों में बांटा—(1) लाल भाण्ड उत्तरी वाले क्षेत्र और (2) पाण्डु रंग के भाण्ड वाले क्षेत्र । किंतु यह देखा गया है कि लाल भाण्ड बहुल क्षेत्र में कुछ स्थलों पर पाण्डु भाण्ड मिले हैं, और पाण्डु भाण्ड बहुल क्षेत्र के कुछ स्थलों में लाल भाण्ड मिले हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जीवन के विकास के द्योतक हैं। मृद्भाण्डों के कुछ अभिप्राय ईरानी संपर्क के और लोहित (स्कारलेट) भाण्ड पश्चिमी एशिया के प्रभाव के द्योतक हैं। कुल्ली शैली के अनुरूप पशुओं को स्वाभाविक से कहीं अधिक लम्बा दिखाया गया है। लेकिन कुल्ली भांडों पर पशुओं के साथ वनस्पति भी दिखलाई गई है जबकि मुण्डीगाक के पात्रों पर नहीं। सिंधु सभ्यता से प्रभावित कुछ मातृदेवी की मूर्ति, मृद्भांड और पत्थर का पुरुष का सिर मिला।

दक्षिण-मध्य अफगानिस्तान में स्थित देह मोरासी घुंडई में दुप्री द्वारा किये उत्खनन में एक विकसित गांव के अवशेष मिले हैं। कच्ची ईंटों की चहारदीवारी के भीतर कुछ निर्माण-कार्य, मृद्भाण्ड, तांबे की नली और अलाबास्टर का प्याला मिला। सीस्तान के सदृश पाण्डु पर काले चित्रणयुक्त, धूसर भांड, तकुए, तांबे के टुकड़े, पत्थर की खानेदार मुद्रा, कंघेदार कुदाली और झोब संस्कृति की तरह की मातृदेवी की मूर्तियां मिलीं। बलूचिस्तान में ईरानी तत्वों के प्रसारण में इस स्थल की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही।

सीस्तान प्राचीन काल में पूर्व और पश्चिम को जोड़ने वाली कड़ी रहा है। यहां हेल्मंद नदी के डेल्टा में तोसी द्वारा सह्र-ए-सोख्ता में किये गये उत्खनन से ज्ञात चार प्रकालों वाली सांस्कृतिक सामग्री में प्रारंभ से लेकर अंत तक निरंतरता रही। इन प्रकालों की रेडियो-कार्बन तिथियां क्रमशः 3500-3200; 2660-2400; 2400-2380 तथा 1800-1530 ई० पू० ज्ञात हुई हैं। प्रथम प्रकाल में ईंटों से निर्मित इमारतों के बारे में अल्प सूचना मिली। द्वितीय प्रकाल में कई कमरों वाले भवन बने। कई कीमती पत्थरों के मनके मिले हैं बलुए पत्थर और अलाबास्टर के बर्तनों पर मेसोपोटामिया का प्रभाव लगता है। उत्खननों से मृण्मय स्त्री (मातृदेवी), पुरुष और पशु-आकृतियां मिली हैं। बैल की लगभग 200 मृण्मूर्तियों का मिलना उसके धार्मिक महत्त्व का द्योतक लगता है। मृद्भाण्ड और कुछ अन्य उपकरण पश्चिमी एशिया, मुण्डीगाक, ईरानी संस्कृति एवं सिंधु संस्कृति के संपर्क का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं।

ईरानी मकरान के बामपुर नामक स्थल पर, जिसे पहले स्टाइन ने खोदा था, डिकार्डी के उत्खननों में प्रथम से चतुर्थ काल तक मुख्यतः दूधिया रंग के लेप वाले लाल भाण्ड मिले। तृतीय काल के डिजाइन मुंडीगाक के चतुर्थ काल से मिलते जुलते हैं और इस तरह दक्षिणी अफगानिस्तान और बलूच ईरानी सीमा में सिंधु सभ्यता से थोड़े पहले के चरण में पारस्परिक संबंधों के द्योतक हैं। बामपुर में चतुर्थ काल के पश्चात् दूधिया लेप के स्थान पर लाल लेप वाले न्ये भाण्ड पाये गये। अलंकरण में कुछ कुल्ली प्रकार के अभिप्राय भी हैं, किंतु विशिष्ट कुल्ली प्रकार के गोल आंख वाले डिजाइन का अभाव है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्वेटा के आस-पास के टीलों पर 'क्वेटा' भाण्ड मिले हैं जो गुलाबी लिए सफेद रंग से लेकर हरीतिमा लिए हैं। इनकी दूधिया या पाण्डु सतह पर नीला-रुण-बभ्रु रंग से अधिकांशतः ज्यामितीय अभिप्राय अंकित मिलते हैं। पशुओं की आकृति वाले चित्रण अत्यल्प हैं। इस प्रकार के बर्तनों की तुलना चौथी या तीसरी सहस्राव्दी की ईरानी संस्कृतियों से की गई है। मुंडीगाक में ऐसे बर्तन (चतुर्थ काल के) कुल्ली-हड़प्पा प्रकार के बर्तनों से पहले (तृतीय काल में) पाये गये हैं।

डिकार्डी के सर्वेक्षण के फलस्वरूप क्वेटा के दक्षिण की ओर और सिंधु के मैदान तक कई टीलों में टोगाऊ प्रकार के मृद्भाण्ड मिले हैं। ये चाक से बने हैं। इन पर लाल लेप और पशु-चित्रण है। पशु कभी पूरे दिखाये गये हैं और कभी केवल उनका सींग मात्र। कुछ चिड़ियां और मानवाकृतियां भी अंकित हैं। कुछ स्थलों पर टोगाऊ प्रकार के भाण्ड नाल और कुल्ली भाण्डों वाली सतहों से नीचे की सतहों में मिले।

क्वेटा घाटी में स्थित दम्ब सदात के उत्खनन में सबसे प्राचीन (प्रथम काल) अवशेषों के साथ केची वेग मृद्भांड मिलने से उसे किले गुलमोहम्मद का सम-कालीन माना है। इस काल में ईंटों से निर्मित वास्तु के अवशेष मिले। द्वितीय काल में सांस्कृतिक निरंतरता रही और घाटी में विशाल पैमाने पर निर्माण कार्य हुए। तृतीय काल के अवशेष मुंडीगाक III से तुलनीय हैं। इस काल के उप-करणों में खानेदार मोहरें, पशु-मूर्तियां, तराशे और घिस कर बनाये पाषाण उपकरण, मिट्टी और पत्थर की गोली, कीमतीपत्थरों के मनके और तांबा विशेष उल्लेखनीय हैं। भाण्ड प्रकार रानाघुंडई, सूरजंगल, डाबरकोट इत्यादि से समानता रखता है। झोब संस्कृति की तरह की मातृदेवी की मूर्तियां भी मिलीं। भाण्डों पर अंकित कुछ चिह्नों का सिंधु लिपि से साम्य होना महत्त्वपूर्ण है। निर्माण-कार्यों में एक अपेक्षाकृत विशाल चबूतरा उल्लेखनीय है।

क्वेटा से जैकोबाबाद जाने वाले मार्ग पर बलूचिस्तानी मैदान में स्थित पीराक दंब का पता राइक्स ने 1957 में लगाया। कसाल द्वारा 1968 में किये सीमित उत्खनन से बिना व्यवधान के तीन कालों के साक्ष्य मिले। निचले स्तरों से एकांगी अलंकरण वाले, पांडु भांड, मध्य प्रकाल में द्विरंगी मृद्भांड और तीसरे प्रकाल में काले धूसर और कुछ अन्य प्रकार के भांड के साथ लोहा मिला। यह स्थल ताम्रयुग से लौहयुग में प्रवेश के साक्ष्य के लिए महत्त्वपूर्ण है।

बलूचिस्तान के झालवान और लासबेला की सीमा पर बोरली नदी के दोनों ओर संस्कृति के आवास मिले हैं जिन्हें एडिथ साहिर समूह नाम दिया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस संस्कृति को दो प्रकालों में बांटा गया है। प्रथम चरण में संस्कृति कुल्ली संस्कृति से प्रभावित रही। मुख्य टीले पर 'जिगुरेट' की तरह का निर्माण कार्य हुआ था जिसमें ऊपर तक पहुँचने के लिए मार्ग था। टीलों पर प्राप्त शिलाखंडों के ढेर मूलतः इमारतों के निर्माण में प्रयुक्त हुए थे। एक शिलाखंड निर्मित कई प्रवेशद्वार वाली विशाल (64·5 मी० × 13·5 मी०) इमारत और एक वृत्ताकार इमारत महत्त्वपूर्ण लगती है। एक क्षेत्र में 40 से भी अधिक इमारतों का समूह देखा गया है। यहां पर सिस्ट शवाधान के अवशेष भी मिले। द्वितीय चरण में नाल के समान कुछ मृद्भाण्ड और सिंधु सभ्यता के सदृश मृत्पिंड (केक), मृण्मय चित्रित कूबड़वाला बैल, मृण्मय चूड़ियां खिलौना-गाड़ी इत्यादि पाये गये हैं।

मध्य बलूचिस्तान के सुरब क्षेत्र में अंजीरा और स्याह दंब की सामग्री का उत्खननकर्त्री डिकार्डी ने पांच भागों में वर्गीकरण किया है। प्रथम प्रकाल में ईरान की नवाश्मयुगीन सियाल्क संस्कृति की तरह के पाषाण-फलक तथा लाल लेप वाले मृद्भाण्ड मिले। इस काल में अंजीरा में अर्धयायावरों की बस्ती बसी जिसकी सादृश्यता किले गुलमोहम्मद II (3500-3100 ई० पू०) से की गई है। द्वितीय काल में शिलाखंडों की नींव वाली कच्ची ईंटों की इमारतें बनीं। किले गुलमोहम्मद II-III की भांति के कुछ बर्तन बने, यथा लाल लेप वाले चमकीले भांड, टोकरी के सांचे पर निर्मित भांड और चमकीले धूसर भाण्ड। तृतीय काल के प्रथम चरण में टोकरी के सांचे से बनाए मृद्भाण्ड और टोगाऊ तथा आमरी-केचीबेग प्रकार के बहुरंगी मृद्भाण्ड पाये गये। द्वितीय चरण में पहले के कुछ भांडों का चलन बंद हो गया। एक विशाल मंच का निर्माण हुआ जिसका निश्चित प्रयोजन अज्ञात है। तृतीय चरण में 'जरी' मृद्भाण्ड और नाल संस्कृति के भांड से मिलते जुलते भांड मिले। आमरी-केचीबेग भांडों के कारण तृतीय काल को किले गुलमोहम्मद के चतुर्थ काल के अंत और दंब सदात I का समकालीन माना गया है। चतुर्थ काल की सामग्री दंब सादात II के सदृश रही। अंजीरा में अपेक्षाकृत अच्छी तरह तराशे पत्थरों से कई इमारतें बनीं। कुछ नाल प्रकार के भांड मिले। कुछ भांडों पर कुल्ली संस्कृति का प्रभाव दिखता है और 'अंजीरा' प्रकार के मृद्भाण्ड का सर्वप्रथम ज्ञान हुआ। पेरियानो घुंडई की तरह के आर्द्र और सीमित लेप वाले और रानाघुंडई के तृतीय काल के तृतीय चरण में पाये गये भाण्डों सदृश डिजाइन वाले भांड मिले।

गोमल घाटी से होकर अफगानिस्तान और भारत का प्राचीन काल से संपर्क रहा था। इस घाटी में अहमद हसन दानी द्वारा खोजे कई सिंधु तथा प्राग् सिंधु सभ्यता कालीन बस्तियों में गुमला (जहां उत्खनन भी हो चुका है) विशेष उल्लेखनीय है। गुमला में सांस्कृतिक सामग्री के चार प्रकाल हैं प्रथम और द्वितीय में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आवासीय निरंतरता रही और जो लोग आकर बसे उन्हें कृषि, तांबे, कांसे और मृद्भाण्डों का ज्ञान था। रहने के लिए उन्होंने झोंपड़ियां बनायीं। चर्च के लंबे फल, सफेद चित्रित मृद्भाण्डों की परंपरा में चित्रित किनारीदार प्यालों का निर्माण हुआ। गुमला के तीसरे प्रकाल की सामग्री कोटदीजी कालीबंगा के सदृश है। सींगदार देव की आकृति और असंख्य मातृदेवी की मूर्तियां बहुतायत से मिलीं। चौथे प्रकाल में सिंधु सभ्यता का प्रसार हुआ जिसमें मृत्पिड (केक), खिलौना-गाड़ियों के ढांचे और पहिये, चूड़ियां, बाट, रेखांकित कार्नीलियन मनका, चकमक और चर्ट-फलक उपलब्ध हुए। 'सिंधु' प्रकार की मुद्राएं नहीं मिलीं। मकानों की योजना शतरंज के पट की तरह की थी। सिंधु सभ्यता का प्रसार तीसरे प्रकाल की बस्ती को जलाने के बाद हुआ था और स्वयं उनकी बस्ती भी अग्निकांड से नष्ट हुई। कुछ हथगोले मिले जो युद्ध में अस्त्र की तरह प्रयुक्त होते रहे होंगे।

क्वेटा से 3·21 किमी दूरी पर स्थित किले गुल मोहम्मद में फेयर सर्विस ने 1950 में खोदाई कराई। उन्होंने यहां की पुरातात्विक सामग्री को दो प्रकालों में वर्गीकृत किया है। प्रथम काल के स्तरों की दो रेडियो-कार्बन तिथियां 3688 ई० पू० तथा 3712 ई० पू० ज्ञात हुई हैं। इस प्रकाल की आवासित भूमि पर भेंड़, बकरी और बैल की हड्डियां इन पशुओं के फालतू होने के द्योतक हैं। प्रथम प्रकाल के अन्तिम चरण में कच्ची ईंटों के साक्ष्य मिले हैं। वे कई तरह के पत्थर के पलक बनाते थे। धातु का प्रयोग सम्भवतः उन्हें ज्ञात न था। कुछ घिसी हुई खंडित शिलाएं मिली हैं जिन पर अन्न पीसा गया होगा। हड्डी के कुछ सूजे मिले हैं। किले गुल मोहम्मद के दूसरे प्रकाल के अवशेष पर्याप्त सांस्कृतिक विकास के साक्ष्य लगते हैं। अब भाण्ड बनने लगे थे। भाण्डों पर टोकरी की छाप उनके टोकरी की सहायता से बनाये जाने का प्रमाण है। मकानों की दीवालें कच्ची ईंटों की थीं। धातु प्रयोग के साक्ष्य नहीं। तीसरे प्रकाल की सामग्री के साथ प्रथम बार तांबे के दर्शन होते हैं। हाथ से बने बर्तनों के साथ चाकनिर्मित बर्तन भी बने। भाण्डों पर काले या लाल रंग के अलंकरण भी मिलते हैं। पत्थर के फलक और हड्डियों के सूजे का प्रयोग पूर्ववत रहा। इस प्रकाल के लोग भी अर्द्ध-घुमक्कड़ ही थे। भोजन चूल्हों पर बनाते थे। पशुओं में भेड़, बकरी, गधा और बैल पालते थे। कुछ हड्डियों की पहचान कतिपय विद्वान घोड़े और अन्य गधे से करते हैं। किले गुलमोहम्मद की इस प्रकाल की सामग्री से मिलते-जुलती सामग्री बलूचिस्तान के रानाघुंडई I तथा सूर जंगल से भी मिली हैं जो समकालीनता की द्योतक लगती हैं।

उत्तरी बलूचिस्तान में रानाघुंडई टीले (जो पिगट के वर्गीकरण के अनुसार झोब संस्कृति का स्थल है) के सर्वेक्षण से रास को पांच प्रकालों के साक्ष्य मिले।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इमारतों के अवशेषों का न होना इस बात का द्योतक है कि प्रथम काल में यायावर लोग वहाँ रहे इस काल के अनलंकृत भाण्ड, चकमक पत्थर के फलक, हड्डी के सूजे और बैल, भेंड़, गधे तथा घोड़े की हड्डियां मिलीं। द्वितीय काल में यहां पर नये लोग आये जिनके बर्तन सुन्दर और चाक से बने थे और उन पर कलात्मक शैली में बैल और हिरन (जिनके पैर काफी लम्बे दिखाये गये हैं) पाण्डु या लाल रंग से अंकित हैं। इस संस्कृति की हिसार के प्रथम काल (लगभग 3500 ई० पू०) से कुछ समानता है। द्वितीय काल के बाद यहां पर कुछ समय तक बस्ती नहीं रही। भवनों के तीन निर्माण चरण तृतीय काल के दीर्घावधि तक चलते रहने के प्रमाण हैं। मृद्भाण्ड सुन्दर बने किंतु द्वितीय काल से भिन्न थे। कुछ बर्तनों पर लाल सतह पर काले और लाल दुरंगे अभिप्राय अंकित हुए। बहुरेखीय वर्गों के अभिप्राय का प्रयोग आमरी के पात्रों के अधिक निकट हैं। तृतीय काल के प्रथम चरण की तुलना सूरजंगल के आवास से की गई है। तृतीय काल के द्वितीय चरण में ऊँचे (सुराही) की तरह के बर्तन मिले हैं। रानाघुंडई तृतीय काल के तृतीय चरण के बर्तनों की तुलना पेरियानो घुंडई के बर्तनों से की जाती है। लाल लेप पर काले रंग के चित्रण की विधा रही। कुछ पशुओं और मछली का भी चित्रण मिलता है। झोब संस्कृति के कई स्थलों से नारी (मातृदेवी ?) की रौद्र रूप में मूर्तियां मिली हैं।

झोब संस्कृति का सम्पर्क एक ओर पुरैतिहासिक ईरान और मेसोपोटामिया की संस्कृतियों और दूसरी ओर परवर्ती चरणों में सिंधु सभ्यता के साथ भी रहा। डाबरकोट की बराबर भुजाओं वाले सलीबनुमा अभिप्राय युक्त हरिताम पत्थर की मुद्रा, एक अन्य स्थल (सम्भवतः पेरियानो घुंडई) से प्राप्त इसी अभिप्राय वाली अन्य मुद्रा, मोगल घुंडई से कार्नीलियन का रेखांकित मनका, पेरियानो घुंडई से लहरदार अलंकरण वाला मिट्टी का कंगन—ये सब सिंधु सभ्यता से संपर्क के द्योतक लगते हैं।

पाण्डु भाण्डों की परम्परा में आमरी-नाल प्रकार के बर्तनों का महत्त्वपूर्ण स्थान है जो सिंधु और बलूचिस्तान के कुछ स्थलों पर मिले हैं। बर्तनों के कुछ ऐसे आकार प्रकार अथवा चित्रण हैं जो आमरी में हैं पर नाल में नहीं, अथवा नाल में है पर आमरी में नहीं। लेकिन कई ऐसे तत्व हैं जो दोनों में समान हैं। दोनों ही का पेस्ट अच्छे प्रकार और पाण्डु रंग का है। उन पर दूधिया लेप है। दोनों चाक निर्मित हैं। दोनों पर ही पैनल डिजाइन है। लेकिन नाल मृद्भाण्डों पर पशुओं की आकृतियां, मछली, हिरन और वृषभ हैं। आमरी मृद्भाण्डों पर पशुओं के अंकन न के बराबर है। ज्यामितीय अलंकरण में दोनों में कुछ समानता और कुछ भेद है। आमरी में चित्रण के लिए लाल और काले

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रंग का प्रयोग हुआ है लेकिन नाल में इन दोनों के अलावा पीला, नीला और हरा रंग भी प्रयुक्त हुआ है। पीले और नीले रंग का भाण्ड चित्रण के लिए प्रयोग पूरे प्रागैतिहासिक पश्चिमी एशिया में नहीं मिलता।

नाल और मुंडीगाक के भाण्डों में कुछ समानता है जो दक्षिणी अफगानिस्तान से बलूचिस्तान में प्रभाव के द्योतक हैं। नाल में छेदवाला एक सिंधु सभ्यता प्रकार का बाट मिला है। दो ताम्र निधियां मिली हैं जिनके उपकरणों में आर्सेनिक का अत्यल्प मात्रा में होना सिंधु सभ्यता के ताम्र उपकरणों के ताम्र के स्रोत से भिन्न स्रोत के द्योतक हैं। नाल में मिले कब्रिस्तान में पूर्ण तथा आंशिक दोनों प्रकार के शवोत्सर्ग प्रचलित थे। तीन कब्रों के किनारे कच्ची ईंटें लगी थी। शवों के साथ विभिन्न उपकरण और पशुओं की हड्डियां मिलीं। एक सेलखड़ी की मुद्रा पर पावों में सर्प दाबे हुए गरुड़ का चित्रण है जो सूसा से लगातार 2400 ई० पू० और टेलब्राक की मुद्राओं के ऐसे अभिप्राय के सदृश है।

1929 में ननिगोपाल मजुमदार ने सिंधु में सर्वेक्षणात्मक उत्खनन से प्राप्त सामग्री के आधार पर ही आमरी संस्कृति के कुछ चरण सिंधु सभ्यता से पहले और कुछ चरण में सिंधु सभ्यता के समकालीन बताया था। बाद में इसकी पुष्टि हुई एम० कसाल ने 1959-61 में यहाँ पर पुनः उत्खनन कराया। कुल पांच प्रकालों में प्रथम चार ही पुरैतिहासिक हैं प्रथम काल के प्रथम चरण में अधिकांश बर्तन हाथ से निर्मित हैं। चाकनिर्मित बर्तनों के किनारे पतले हैं। पेस्ट पीला या गुलाबी है। अलंकरण ज्यामितीय हैं। कुछ द्विरंगी (काले और लाल) चित्रणयुक्त हैं। इस काल में तांबे के टुकड़े, पत्थर के फलक, पत्थर की गोलियाँ, मिट्टी के मनके आदि मिले हैं। स्थायी निवास के चिह्न नहीं पाये गये। द्वितीय चरण (IB) में कच्ची ईंटों के घर बने। पहले से चाकनिर्मित बर्तनों की संख्या बढ़ी। चित्रण में पुराने अभिप्रायों के साथ नए अभिप्रायों को स्थान मिला। 'हीरक' चेक, लटकन, सिरमा और टोगाउ भाण्डों के समान हिरन के सीग आदि डिजाइन, मिलते हैं। तृतीय चरण (IC) आमरी संस्कृति के चरम विकास का द्योतक है जिसमें द्विरंगी और तिरंगी चित्रण मिलते हैं जो IB से ही विकसित हैं। ID में सिंधु सभ्यता के तत्त्व दिखते हैं यथा पशुओं, विशेषतया बैल, का चित्रण, मत्स्य शल्क डिजाइन का बहुलता से प्रयोग और अल्प संख्या में सिंधु सभ्यता के बर्तनों के प्रकार। दूसरे (II) काल में आमरी प्रकार के भांड बनते रहे किंतु सिंधु सभ्यता की विशेषता वाले बर्तनों की संख्या में वृद्धि हुई तृतीय काल में प्रथम तीन चरण सिंधु सभ्यता के चौथा और अंतिम चरण झूकर संस्कृति का। चतुर्थ काल झांगर संस्कृति का है।

कुछ विद्वानों ने आमरी संस्कृति के प्रारंभ में स्थानीय ईरानी तत्वों (जो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बलूचिस्तान के माध्यम से पहुँचे) का मिश्रण पहचाना है। प्रथम काल तक उसका अपना अलग व्यक्तित्व है। शनैः शनैः इसमें सिंधु सभ्यता के तत्वों का प्रवेश हुआ। विद्वानों का अनुमान है कि आमरी में संस्कृति का प्रारंभ तृतीय सहस्राब्दी के प्रारंभिक चरण के लगभग हुआ।

'कुल्ली संस्कृति' नाम कोलवा जिले के इसी नाम के स्थल पर दिया गया है। स्टाइन ने कुल्ली में सर्वेक्षणात्मक उत्खनन किये थे। कुल्ली संस्कृति का प्रारंभ सिंधु सभ्यता के प्रारंभ से पहले हो गया था किंतु यह कुछ समय तक समकालीन भी रही। कुल्ली संस्कृति में प्राप्त वर्तनों का निम्न प्रकार से वर्गीकरण किया गया है :-(1) कुल्ली मृद्भाण्ड (2) हड़प्पा प्रकार के भाण्डों के साथ पाये गये कुल्ली प्रकार के भाण्ड और (3) हड़प्पा तथा कुल्ली संस्कृति के पारस्परिक संपर्क के फलस्वरूप विकसित भाण्ड।

कुल्ली प्रकार के वर्तनों में गोल बर्तन, बोतल की आकृत्ति के बर्तन, छोटे सीधे किनारे वाले बर्तन, तश्तरियाँ, साधार तश्तरियाँ और छिद्रित बेलनाकार बर्तन मिले हैं। अंतिम दो आकार सिंधु सभ्यता में भी मिलते हैं। बर्तन सादे और चित्रित दोनों प्रकार के मिले हैं। चित्रण काले रंग से है। पशुओं का चित्रण अधिकाशंतः वृक्षों या वनस्पति के साथ किया गया है। पशु में अधिकांशतः कूबड़ वाला पशु पर बिल्ली जैसी आकृति और हिरन या बकरी का चित्रण है। बड़े पशुओं का स्वाभाविक से अधिक लंबा और लंबवत छाया किया दिखाया गया है। बैल को अधिकांशतः एक ध्वज से बंधा दिखाया गया है। जो भाव में सिंधु सभ्यता मुद्राओं पर एक शृंगी पशु के आगे दिखाए ऐसे अभिप्राय से मिलता जुलता है। अन्य अभिप्रायों में पक्षी, कंचीनुमा अभिप्राय, ओमेगा जैसा अभिप्राय, फुल्ल, तिकोन लटकन आदि हैं। काले रंग के साथ लाल रंग का भी चित्रण के लिए प्रयोग हुआ है।

कुल्ली संस्कृति की नारी मृण्मूर्तियां विभिन्न आभूषणों से सज्जित हैं और उन्हें धड़ के नीचे चपटा बनाया गया है। ये गृह-पूजा और देवताओं को चढ़ावे के लिए अभिप्रेत लगती हैं। पशु मृण्मूर्तियों में बैल की आकृति सर्वाधिक हैं और उन पर आड़ी तिरछी रेखाओं का चित्रण है।

शवोत्सर्ग में जलाना और गाड़ना दोनों प्रथाएं कुल्ली संस्कृति में प्रचलित थीं। कुल्ली संस्कृति के मेही नामक स्थल में पात्र शवोत्सर्ग के भी उदाहरण मिले। मेही के कब्रों में मृद्भाण्ड, मृण्मूर्तियां, दो तांबे के दर्पण इत्यादि वस्तुएं मिलीं। एक दर्पण का हत्था सिर रहित नारी की आकृति वाला है। दर्पण में निहारते हुए नारी का सिर का अक्ष मानों उसे सिर युक्त बना देता। पिगट ने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस सुन्दर कल्पना के लिए कलाकार की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। कुल्ली संस्कृति के स्थल टोजी और मजेरा दम्ब में रक्षा प्राचीर से आवास घिरे होने के साक्ष्य मिले हैं। कुल्ली संस्कृति के स्थलों में भवन निर्माण में पत्थर का प्रयोग हुआ है। मेही में कच्ची ईंटों के प्रयोग के साक्ष्य मिले हैं। कुल्ली में पत्थर की दीवारों पर सफेद पलस्तर लगाया गया था और वे अंदर की ओर थोड़ी तिर्यक भी थी। कमरों की रूपरेखा और सीढ़ियों की उपस्थिति मकानों के दुमंजिले होने के साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। पत्थर के सिलवट्टे मिले हैं जिन पर अनाज कूटा जाता रहा होगा। पत्थर के फलक (शाही तम्प, मेही), चर्ट का घनाकार बाट, मिट्टी की चूड़ियां एक सोने का पत्र (कुल्ली) इत्यादि कुछ वस्तुएं सिंधु सभ्यता से प्रेरित लगती हैं। मेही से प्राप्त पत्थर के बर्तन बड़े आकर्षक हैं। इनमें चार खाने हैं और उनकी बाहरी दीवाल पर बारीकी से वर्ग और छाया का अलंकरण है।

सिंधु-कुल्ली समन्वय के द्योतक चित्रणों के संदर्भ में ओर्नेख घाटी में स्थित निन्दोवारी नामक कुल्ली संस्कृति का स्थल महत्त्वपूर्ण है। यहाँ पर कसाल ने उत्खनन कराया। इस स्थल पर दो टीले हैं। उत्तरी टीला सीढ़ीदार है और दीवाल से विभाजित है। उसके शिखर पर बुर्जनुमा अवशेष हैं जो मंदिर का द्योतक हो सकता है। दक्षिणी टीला छोटा है और इसमें रक्षा-प्राचीर और इतर संस्कृति के बर्तन मिले हैं। बड़े टीले पर सिंधु और कुल्ली प्रकार के मृद्भाण्ड तथा मातृदेवी और वृषभ की मृण्मूर्तियां पायी गयीं। कुछ हड़प्पा अभिप्राय कुल्ली शैली में चित्रित हैं। उदाहरणार्थ विशिष्ट सिंधु अभिप्राय प्रतिच्छेदी वृत्त कुल्ली भाण्ड की सतह पर अंकित हैं। विद्वान अभी निश्चित नहीं हैं कि यह परस्पर समानता ग्रामीण संस्कृति वालों का सिंधु सभ्यता से प्रेरित होने अथवा सिंधु सभ्यता के लोगों का ग्रामीण शैली से प्रभावित होने का द्योतक है। इतना निश्चित है कि निन्दोवारी में बस्ती कुछ काल तक सिंधु सभ्यता की समकालीन थी।

कोटदीजी में खान द्वारा की गयी खुदाइयों से यहां गढ़ी और आवास स्थल प्राप्त हुए। कुल 16 आवास स्तरों में नीचे के 12 सिंधु सभ्यता के पहले की (कोटदीजी) संस्कृति के, तेरहवीं अग्निकाण्ड के साक्ष्य वाली परत संक्राति काल की, और अंतिम तीन सिंधु सभ्यता काल की हैं। कोटदीजी संस्कृति में चर्ट (चकमक) के फलक और वाणाग्र मिले। पत्राकार वाणाग्र कोटदीजी के अतिरिक्त केवल तीन अन्य स्थलों—पेरियानो घुंडई, क्रनै और पण्डिवाही—में मिले हैं। सिलवट्टे, पत्थर की पालिश की गई गेंदें, पत्थर की गोफन गोलियां, और मिट्टी और शंख की चूड़ियां मिली हैं। कीमती पत्थरों के मनके नहीं मिले। मिट्टी का एक वृषभ अत्यंत प्रभावशाली और कलापूर्ण है। कोटदीजी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के नियंत्रित भवन, सुदृढ़ सुरक्षा दीवार तथा नालियों का प्रबंध उसे सिंधु सभ्यता के पूर्व का नगर की संज्ञा देने के पक्ष में है; लेकिन इस संस्कृति के लोग अभी लेखन-कला से परिचित नहीं थे। तांबे के प्रयोग के अत्यल्प साक्ष्य हैं। इस संस्कृति के भाण्ड चाक पर बने पतले और हलके हैं। ये गुलाबी से लाल रंग लिए हैं और अधिकांशतः रिम और कंधों पर सीधी रेखायें या लहरियों से अलंकृत हैं। इस तरह के अभिप्राय कुछ हद तक हड़प्पा में पूर्व हड़प्पा संस्कृति के संदर्भ में और आमरी के IB-IIB चरण में मिले हैं। इसी संस्कृति के संदर्भ में सिंधु सभ्यता की तरह के मिट्टी के पिण्ड ('केक') मिले हैं। मत्स्य शल्क का अभिप्राय भी मिलता है। इनका नगर सुनियोजित और रक्षा-प्राचीर से सुरक्षित था। प्रारंभ से ही चाक द्वारा भाण्डों के निर्माण के आधार पर अनुमान लगाया गया है कि कोटदीजी संस्कृति के लोग बाहर से आये थे। यद्यपि इन लोगों ने सुरक्षा दीवार तथा घरों की दीवारों की नींव में पत्थर का प्रयोग किया तथापि निर्माण के लिए मुख्यतया कच्ची इंटों का ही प्रयोग हुआ। 5730 के अर्ध जीवन के आधार पर चतुर्थ परत के लिए 2100±138 ई० पू० और 14वें परत के लिए 2605±145 रेडियो कार्बन तिथि मिली है।

कालीबंगां के दो टीलों में गढ़ी वाले टीले में सिंधु सभ्यता की गढ़ी के नीचे पूर्वकाल के रक्षात्मक दीवार के अवशेष मिले हैं। रक्षा प्राचीर मूलतः 1.90 मीटर चौड़ी थी लेकिन बाद में इसे लगभग दुगना चौड़ा बना दिया गया। रक्षित क्षेत्र उत्तर-पश्चिम में 250 मीटर है। सिंधु सभ्यता से पूर्व की सभ्यता के संदर्भ में मिले भाण्ड कोटदीजी, आमरी और बलूचिस्तान के कई स्थलों में प्राप्त पूर्व हड़प्पा संस्कृति के बर्तनों की तरह के हैं ये उतनी अच्छी तरह नहीं पकाये गये हैं जितना की सिंधु सभ्यता के भाण्ड पकाये गये हैं और उनकी अपेक्षा छोटे और पतले हैं। इनका रंग गुलाबी से लाल तक है और इनपर काले रंग से ज्यामितीय अभिप्राय चित्रित हैं। कुछ पर सफेद रंग से छाया की गई है। चित्रण में रिम पर काली मोटी धारी विशेष उल्लेखनीय है। खानेदार तिकोन, मत्स्य शल्क आदि अभिप्राय हैं किंतु पशुओं (हिरन को छोड़कर) के अंकन का अभाव है। एक प्रकार का भाण्ड ऐसा है जिसे चाक पर बनाया गया किंतु उसकी बाह्य धरातल में मुख्यतः नीचे का भाग खुरदरा बनाया गया। कुछ नांदों के भीतरी भाग को उथले उत्कीर्ण अभिप्रायों से और बाहरी भाग को रस्सी की छाप के अभिप्राय से अलंकृत किया गया था। सिंधु सभ्यता के कुछ विशिष्ट पात्र—पान पात्र, बेलनदार छिद्रित बर्तन और साधार तश्तरी—इस संस्कृति में नहीं मिले। उपलब्ध प्रकारों में एक साधार कटोरा उल्लेखनीय है। सांकलिया ने इसकी तुलना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ईरान के सियाल्क तथा हिसार और भारत में नवडाटोली से प्राप्त इस तरह के वर्तनों से की है। इस संस्कृति के लोगों का सक्कर और रोहरी के फ्लिट खदानों से सम्पर्क नहीं था। और इन्होंने अपने पाषाण उपकरण गोमेद, कैल्सीडोनी और कार्नीलियन से बनाये थे। सेलखड़ी, शंख कार्नीलियन, पकी मिट्टी और तांबे के मनके मिले हैं; लेकिन कांचली मिट्टी के मनके और कार्नीलियन के रेखांकित मनके, जो सिंधु सभ्यता की विशिष्टता है, इस संस्कृति में नहीं पाये गये। पकी मिट्टी और तांबे की चूड़ियां, पत्थर के सिलबट्टे मिट्टी के खिलौने, गाड़ी के पहिये इस संस्कृति में मिलते हैं। इस काल की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि जुते हुए खेत का मिलना है।

ह्वीलर द्वारा 1946 में हुए हड़प्पा उत्खनन में सिंधु सभ्यता के नीचे अप्रयुक्ता धरती के ऊपर सिंधु सभ्यता से निम्न प्रकार के मृद्भाण्ड मिले। कुछ मानों में ये सिंधु सभ्यता के भाण्डों से भी अधिक परिष्कृत हैं। इनपर गहरे बैंजनी या लाल लेप है और सतह अनाकर्षक सादी है।

अधिकांश अलंकरण कोर (रिम) तक सीमित हैं और मुख्यतः सावधानी से बने आड़े काली धारियाँ हैं जिन पर कुछ उदाहरणों में लटकन दिखाई गई हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिशिष्ट 3

सिंधु सभ्यता के काल में मोहेंजोदड़ो क्षेत्र की जलवायु

आज तो मोहेंजोदड़ो और उसका समीपवर्ती क्षेत्र काफी हद तक रेगिस्तान बन गया है। यहां ग्रीष्म ऋतु में तापमान 120 अंश फारेनहाइट तक और शीतकाल में हिमांक तक पहुँच जाता है। आजकल मोहेंजोदड़ो के आसपास साल भर में औसतन केवल 75 मिलीमीटर वर्षा होती है। जहां पर नदी को भली भांति नियंत्रित किया गया है और नहरें निकाली गई हैं वहां काफी अच्छी फसल होती है, अन्यत्र जहां ये सुविधाएं नहीं हैं साधारण प्रकार की घास और ईंधन की लकड़ी ही साधारणतः उगती है। अनुमानतः सिंधु सभ्यता के काल में शायद ऐसा नहीं रहा होगा। नगर, विशेषतया सुनियोजित विशाल नगर के निर्माण के लिए लोग उपयुक्त जलवायु, वातावरण और सुविधाओं वाला स्थल ही चुनते हैं। उसकी स्थिति एवं विकास के लिए अनिवार्य है कि समीपवर्ती क्षेत्र से उसे पर्याप्त मात्रा में अन्न एवं अन्य सामग्री उपलब्ध होती रहे। ऐसा सोचना स्वाभाविक है कि यदि उस समय मोहेंजोदड़ो का क्षेत्र रेगिस्तानी होता तो सिंधु सभ्यता के निर्माता उसे महान् नगर-निर्माण के लिए भला क्यों चुनते? कई विद्वानों ने पहले यह धारणा व्यक्त की थी कि सिंधु सभ्यता की जलवायु पहले आज से बहुत भिन्न थी और आज की अपेक्षा सभ्यता के विकास के कहीं अनुकूल थी।[1] मोहेंजोदड़ो में भवन निर्माण के लिए पकाई गई ईंटों का ही मुख्य रूप से उपयोग हुआ है, कच्ची ईंटें ज्यादातर भराई के लिए ही प्रयुक्त हुई थीं। पकाई

---

1. इस सिलसिले में बीरबल साहनी पुरावनस्पति संस्थान लखनऊ, के गुरदीप सिंह द्वारा राजस्थान की कुछ झीलों के तल से प्राप्त पराग के अध्ययन से निकाले निष्कर्ष महत्त्वपूर्ण हैं। उनके अनुसार 3000 ई० पू० से 1800 ई० पू० तक राजस्थान अधिक आर्द्र और शस्य-श्यामल रहा था। किंतु लगभग 1800 ई० पू० से जलवायु में शुष्कता के प्रमाण मिलते हैं। पुरातात्विक और रेडियो कार्बन तिथि का साक्ष्य भी इस बात की ओर इंगित करते हैं कि लगभग 1800 ई० पू० में कालीबंगां की बस्ती ह्रासोन्मुखी थी। जिसका एक कारण शुष्कता का बढ़ना रहा लगता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गई ईंटें महंगी बैठती हैं। दूसरी ओर कच्ची ईंटें सस्ती तो होती ही हैं गरमी के मौसम में ये मकान को पकाई गयी ईंटों की अपेक्षा अधिक शीतल रखती हैं। ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि मोंहेंजोदड़ो में भवन-निर्माण के लिए पक्की ईंटों के प्रयोग का एक कारण उस समय उस क्षेत्र में वर्षा का अधिक होना रहा होगा। इन ईंटों को पकाने के लिए पर्याप्त ईंधन इस्तेमाल किया गया होगा और इसका अर्थ है उस काल में वृक्ष-वनस्पति का पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होना, काफी मात्रा में वनस्पति उगने के लिए पर्याप्त वर्षा का होना अपेक्षित है। मुद्राओं पर गैंडा, बाघ, हाथी आदि वन्य पशुओं के अंकन हैं और बाघ को छोड़ कर इन पशुओं की अस्थियां भी उत्खनन के दौरान मिली हैं। गैंडा नम और दलदली जगह में रहना पसंद करता है। और बाघ तथा हाथी जंगल में। यदि ये पशु वहां थे, जैसा कि कलाकारों द्वारा उनके यथार्थ एवं सजीव चित्रण से तथा वहां प्राप्त हुए उनके अस्थि अवशेषों से संभव लगता है, तो यह मान लेना पड़ेगा कि उस समय वहां की जलवायु और वातावरण उनके अनुरूप ही रहे होंगे और ऐसे वातावरण का अर्थ है पर्याप्त वर्षा का होना। दूसरी ओर ऊँट की हड्डी का अति न्यून संख्या में मिलना भी रेगिस्तानीपन के होने के विपरीत साक्ष्य प्रस्तुत करता है। सिंधु सभ्यता के स्थलों की खोदाई में बबूल और इमली की लकड़ी के साक्ष्य मिले हैं जो झाड़दार वन की उपज हैं। ऐतिहासिक काल में भी यहां पर अधिक वर्षा होने का अनुमान विद्वानों ने लगाया है। जिस विशाल पैमाने पर और सुनियोजित ढंग से मोहेंजोदड़ो (और सिंधु सभ्यता के कुछ अन्य स्थलों में भी) नालियों का निर्माण हुआ है उससे सिंधु सभ्यता के लोगों की सफाई के प्रति जागरूकता प्रकट होती है। लेकिन कुछ विद्वानों ने ऐसी भी धारणा व्यक्त की है कि नगर नियोजकों ने नालियों का इतने बड़े पैमाने पर निर्माण वर्षाजल का सुचारू रूप से निकास करने के उद्देश्य से किया हो। इसे भी वे प्राचीन सिंध में आज से कहीं अधिक वर्षा होने के समर्थन में एक साक्ष्य मानते हैं। सिंध और पंजाब की क्षत्रपी (प्रांत) ईरान के राजा दारा (6ठी शती ई० पू०) की बीस क्षत्रपियों में से सबसे अधिक जनसंख्या वाली और सबसे अधिक समृद्ध थी। सिकन्दर के आक्रमण के समय (चतुर्थ शती ई० पू० का अंतिम चरण) में भी सिंध काफी उपजाऊ था, उसकी जनसंख्या काफी थी और उसमें दलदली जंगल थे। मुस्लिम इतिहासकारों के उल्लेख भी इस मत की पुष्टि में विद्वानों ने उद्धृत किये हैं।

कुछ विद्वानों ने यह भी मत व्यक्त किया कि सिंध प्रदेश सिंधु सभ्यता के काल में मानसूनी हवाओं के क्षेत्र में आता था। कालांतर में मानसूनी हवाओं के रुख में परिवर्तन हो गया जिससे दक्षिणी-पश्चिमी मानसूनी हवाओं ने पूर्व की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ओर अपना रुख बदल दिया और सिंध प्रदेश उसके क्षेत्र से निकल गया।[1] स्टाइन को बलूचिस्तान में जो प्राचीन काल के मानव-निर्मित बांधों के अवशेष मिले हैं वे एक ओर तो इस बात के सूचक हैं कि पर्याप्त वर्षा होती थी जिससे उनमें पानी एकत्र हो पाता था, और दूसरे यह कि साल की सभी ऋतुओं में वर्षा एक समान नहीं होती थी और वर्ष भर में कभी-कभी सूखा भी पड़ता रहा होगा; अन्यथा बांध निर्माण की आवश्यकता ही क्यों होती ?

लेकिन हाल ही में जल-वैज्ञानिकों ने वैज्ञानिक विधि से इस समस्या का अध्ययन किया है और सिंधु तथा उसके समीपवर्ती क्षेत्रों के संदभ में इस बारे में आर० एल० राइक्स ने अतिमहत्त्वपूर्ण तथ्य प्रकाशित किये हैं जो जलवायु परि-वर्तन संबंधी उपर्युक्त धारणा के विपरीत पड़ते हैं।[2] वातावरण में परिवर्तन के लिए अन्य कारणों को उत्तरदायी बताया गया है जिनमें मानव द्वारा विशाल पैमाने पर पेड़ों को काटना, मवेशियों, विशेष रूप से भेड़-बकरियों, को चराने के लिए चरागाहों का अत्यधिक उपयोग किया जाना भी है। इससे हरियाली नष्ट हो गयी होगी और भूमि में आर्द्रता घट जाने से वर्षा की मात्रा पर थोड़ा बहुत प्रभाव अवश्य पड़ा होगा। लेकिन इससे जलवायु पर बहुत अधिक प्रभाव नहीं पड़ा होगा। विशाल पैमाने पर वनस्पति नष्ट करने से रेगिस्तान बढ़ता जाना स्वाभाविक था।

स्वयं ह्वीलर भी, जो पहले जलवायु परिवर्तन के मत के समर्थक थे और जिनके तर्कों से इस मत को समर्थन ही नहीं काफी बल भी मिला था तथा इसे प्रचलित करने में जिनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा, अब राइक्स के मत से अत्य-धिक प्रभावित हुए लगते हैं। अब वह मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा में भवन निर्माण के लिए पक्की ईंटों के निर्माण का कारण उस समय काफी मात्रा में वर्षा होना नहीं मानते, बल्कि उसे उच्चवर्गीय लोगों के अपने फायदे के लिये बनाया जाना मानते हैं। सिंधु सभ्यता के अन्य कई प्रमुख स्थलों, यथा सौराष्ट्र के स्थलों, में पकाई गई ईंट का प्रयोग मोहेंजोदड़ो की अपेक्षा बहुत कम हुआ है। शायद इस-लिए कि वहां ईंधन के साधन सीमित थे।

---

1. पिगट के मतानुसार यह मत उस मत से भी अधिक समीचीन लगता है जिसके अनुसार उत्तरी तूफानी कटिबंध उत्तर-हिमनद काल के तुरंत बाद दक्षिण की ओर मुड़ गया। सामान्य जलवायु की स्थिति आने पर भी इसकी स्थिति में परिवर्तन नहीं हुआ।

2. ह्वीलर ने अपने **इंडस सिविलिजेशन** के तृतीय संस्करण में इसका संक्षेप में उल्लेख किया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कई विद्वानों (यथा राइक्स, डायसन और फेयरसर्विस) का मत है कि जल-विज्ञान, प्राणिशास्त्र, वनस्पति विज्ञान, पुरातत्व एवं स्थापत्य कला के साक्ष्य इस बात का निश्चित समर्थन नहीं करते कि बलूचिस्तान या सिंध में रेगिस्तान क्रमशः बढ़ता गया था। फेयरसर्विस का कहना है कि पिछले चार हजार वर्षों में सिंध प्रदेश की जलवायु में कोई मूलभूत अंतर नहीं आया है। उनके अनुसार सिंध प्रदेश में आज भी वहां उगने वाली कंडी, बबूल तथा अन्य लकड़ियों से हड़प्पा संस्कृति की ईंटों से भी अधिक मजबूत ईंटें पकाई जा सकती हैं। चूंकि ये झाड़ बहुत जल्दी उग आते हैं इसलिए जंगल कटने वाली बात बहुत नहीं जमती। लैम्ब्रिक, जो सिंध में बहुत साल तक प्रशासक का कार्य करते रहे, का कहना है कि आजकल नदी के आसपास जो पेड़ हैं वे सारे प्रदेश के ईंट पकाने के लिए पर्याप्त हैं और प्राचीन काल में इससे कम ईंधन नहीं रहा होगा। सांकलिया ने बताया है कि सिंधु सभ्यता के भवनों में खिड़कियों के निश्चित साक्ष्य नहीं मिलते और आज भी सिंध और बीकानेर के क्षेत्र के लोग साधारणतया बिना खिड़कियों के मकान बनाते हैं। उनके अनुसार सिंध के प्राचीन एवं बीकानेर में अर्वाचीन काल के भवनों में खिड़कियों का न होना इस बात की ओर इंगित करता है कि प्राचीन सिंध की जलवायु आजकल के बीकानेर की तरह रही होगी। कुछ विद्वानों ने यह भी बताया है कि आधुनिक सिंध में जितनी वर्षा होती है उससे पांच गुना अधिक वर्षा वाले क्षेत्र (50 सेमी) में भी कच्ची ईंटें प्रयुक्त होने के साक्ष्य मिलते हैं। यह भी मत व्यक्त किया गया है कि निरंतर बाढ़ के कारण ही नहीं अपितु समुद्रतट के समीप भूमि के ऊपर उठने के फलस्वरूप नदियों का पानी समुद्र में गिरने के बजाय वापस लौटने के कारण झील बन जाने के कारण भी मोहेंजोदड़ो के लोगों के लिए यह आवश्यक हो गया होगा कि वे इस तरह के जल-प्लावन के प्रतिरोध में पक्की ईंटों की चिनाई वाले मकान बनायें

राइक्स ने मोहेंजोदड़ो की नालियों के आकार-प्रकार का गहराई से विवेचन कर यह मत व्यक्त किया है कि इस नगर की नालियां वर्षाजल के निकास के लिए पर्याप्त नहीं थीं, वे घरों के गंदे पानी के निकास के लिए ही उपयुक्त लगती हैं। अतः यह सोचना समीचीन नहीं कि उन्हें वर्षा-जल के निकास हेतु बनाया गया था और इस आधार पर सिंध में उस समय पर्याप्त वर्षा होने की धारणा बनाना भी ठीक नहीं। राइक्स ने यह भी बताया है कि सिंधु के बाढ़ प्रभावित क्षेत्र में छोटे-छोटे जंगल और बड़ी-बड़ी घास उग सकती थी जैसे आज भी सिंध में कहीं-कहीं दिखाई देती है। ऐसे स्थल हाथी, बाघ, गैंडा आदि जंगली पशुओं के रहने के लिए उपयुक्त थे। उत्तरी सिंध में बाघ अब भी दिख जाते हैं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और लगभग तीन शताब्दी पहले तक सिंघ के तीर में गैंडे होने के साक्ष्य हैं। हाथी शायद अन्यत्र से ही सिंधु प्रदेश में लाया गया होगा। राइक्स का यह भी कहना है कि आधुनिक काल में सिंध नदी को सिंचाई के लिए नियंत्रित करने से पूर्व बिना वर्षा के भी बाढ़ प्रभावित क्षेत्र में उथले आंतर्भौम जलस्तर की भूमि को साफ करके खेती की जा सकती थी, और यदि आज भी नदी को अनियंत्रित कर दिया जाय तो इस तरह की ताम्र-पाषाण युगीन परिस्थितियां पुनः लौट आ सकती हैं। राइक्स की यह धारणा उन विद्वानों की धारणा से भी मेल खाती है जिनके अनुसार लगभग नौ हजार वर्षों से, जब से मनुष्य ने वातावरण पर प्रभुत्व स्थापित करना शुरू किया, जलवायु में नाममात्र का ही परिवर्तन हुआ है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिशिष्ट 4

दिल्मुन, मेलुह्ह और मगन

मेसोपोटामिया में प्राप्त विभिन्न कीलाक्षर लिपि में लिखे लेख वाली बहुत सी मृत्पट्टिकाएं मिली हैं जिनमें मेसोपोटाटिया के व्यापारियों द्वारा विभिन्न क्षेत्रों से वस्तुएं आयात करने के संदर्भ में तीन जगहों–दिल्मुन, मेलुह्ह और मगन का उल्लेख है।

लगभग 2450 ई० पू० के एक लेख में दिल्मुन से लकड़ी से लदे जहाज आने का उल्लेख है। सारगन काल (लगभग 2350 ई० पू०) के लेखों में दिल्मुन, मगन और मेलुह्ह के जहाजों का उसकी नयी राजधानी अगेड (बेबीलोन) में आने का उल्लेख है। दिल्मुन के व्यापारी उर में बसे हुए थे। दिल्मुन के क्षेत्र को जहां सूर्योदय होता है वहां स्थित बताया है और उसे लोकोत्तर स्वर्ग की संज्ञा दी गई है। पहले विशेषण सूर्योदय का क्षेत्र से इस क्षेत्र का मेसोपोटामिया के पूर्व में स्थित होना सिद्ध होता है।

बाद के कुछ लेखों में भी जहाज द्वारा उर में इन स्थलों से सोना, चांदी, तांबा, लाजवर्द, पत्थर के मनके, हाथीदांत की कंघी, आभूषण, अंजन, काठ और (शायद) मोती लाये जाने के उल्लेख हैं।

दिल्मुन, मेलुह्ह और मगन की निश्चित पहिचान कठिन है। विद्वानों ने इस संबंध में अलग अलग मत व्यक्त किये हैं। कुछ विद्वानों (यथा बिब्बी (Bibby) एम० ई० एल० मैलोवन, आल्चिन और श्रीमती आल्चिन) ने दिल्मुन की पहिचान बहरीन के द्वीप से की है। यहां पर रस-अल-कला और फैलका में डेन पुरातत्त्वविदों द्वारा किये उत्खनन में विशाल संख्या में वृत्ताकार सेलखड़ी की मुद्राएं मिली हैं। चूंकि बहरीन उन वस्तुओं का मूल स्रोत नहीं लगता जो लेखों में उसके संदर्भ में उल्लिखित हैं अतः यह धारणा व्यक्त की गई है कि बहरीन के लोग भारत और मेसोपोटामिया के व्यापार में बीच की आढ़ती दलाली का काम करते थे।

ए० एल० ओपेनहाइम ने मेलुहह को सिंध प्रदेश का द्योतक मानने का सुझाव दिया है। मेलोवन मेलुह्ह और मगन को मेसोपोटामिया और भारत के मार्ग में समुद्रतट पर स्थित स्थल मानते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लीमान्स ने मगन, जिसका तांबे के स्रोत के रूप में विशेष उल्लेख मिलता है, की पहचान बलूचिस्तान के मकरान तट से की है। अन्य बातों के अलावा, मगन और मकरान नामों में बहुत कुछ ध्वनि साम्य इस मत को बल देता है। उन्होंने मेलुह्ह की पश्चिमी भारत के क्षेत्र और सौराष्ट्र से पहचान करने का सुझाव दिया है। कुछ के अनुसार मगन की पहचान ओमन या दक्षिणी अरब के किसी और क्षेत्र से की जानी चाहिए। मेलुह्ह के सिंधु सभ्यता के क्षेत्र से पहिचान किए जाने के पक्ष में आल्चिन ने संस्कृत भाषा के म्लेच्छ शब्द का उल्लेख किया है जिसका अर्थ 'बर्बर' है (म्लेच्छ शब्द अनार्यों के लिए प्रयुक्त हुआ है और सिंधु सभ्यता को अधिकांश लोग अनार्य मानते हैं)। मेसोपोटामिया के एक आभिलेखीय साक्ष्य के अनुसार अक्कद काल में मेलुहह की भाषा का रूपांतर करने के लिए शासन की ओर से अनुवादक की व्यवस्था थी। मेलुह्ह से उपलब्ध वस्तुओं में लकड़ी (जिसमें काली लकड़ी का उल्लेख है जिसका शायद आबनूस से तात्पर्य था), लाल पत्थर (जिससे कार्नीलियन अभिप्रेरित रहा होगा), हाथी-दांत विशेष उल्लेखनीय हैं।[1] धर्मपाल अग्रवाल का सुझाव है कि मेलुह्ह से आयातित वस्तुओं में तांबे का उल्लेख होना इस बात का द्योतक है कि यह राजस्थान के क्षेत्र का द्योतक रहा हो क्योंकि वहां तांबा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है।

इस संदर्भ में एस० एन० क्रेमर के मत का उल्लेख करना भी ठीक होगा। वे दिल्मुन को ही सिंधु प्रदेश के क्षेत्र के लिए प्रयुक्त मानते हैं। मृत्तिका-पट्ट लेखों में दिल्मुन को वह क्षेत्र बताया गया है 'जहां सूर्योदय होता है' और 'जहां के नगर साफ सुथरे हैं' और 'जो लोकोत्तर स्वर्ग हैं' और 'जहां हाथी रहते हैं'। राव का कहना है कि हाथियों का उल्लेख इस बात की ओर इंगित करता है कि सौराष्ट्र के क्षेत्र से तात्पर्य है जहां ऐतिहासिक काल तक हाथी पाये जाते थे। उनका कहना है कि लोथल एक 'स्वच्छ नगर' था और वहां हाथी भी थे, अतः दिल्मुन की पहचान लोथल से हो सकती है। उन्होंने यह भी उल्लेख किया है कि सौराष्ट्र से ही हथब के पास कूड़ नामक एक सिंधु संस्कृति का स्थल मिला है

---

1. अल्चिन और श्रीमती अल्चिन का कहना है कि कपास, जिसके लिए सिंधु प्रदेश अतिप्राचीन काल से सुप्रसिद्ध था, का इस संदर्भ में उल्लेख न होना मेलुह्.ह के सिंधु सभ्यता के क्षेत्र के लिए प्रयुक्त होने के बारे में संदेह पैदा करता है और यों जो वस्तुएं इस संदर्भ में उल्लिखित हैं वे अफ्रीका से भी आ सकती थीं। लेकिन फिर भी वे इस बात की ही अधिक संभावना मानते हैं कि मेलुह्.ह से सिंधु सभ्यता के क्षेत्र का ही तात्पर्य रहा होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जो प्राचीनकाल में एक बन्दरगाह था और जहां समुद्र देवी वाणुवती सिकोतरी-माता के लिए एक मन्दिर बना है। उन (राव) के अनुसार कूड़ को स्थानीय लोग दिल्मुन नाम से जानते हैं। लेकिन राव इस संदर्भ में निश्चित नहीं हैं और उनका कहना है कि अगर दिल्मुन की पहचान लोथल और कूड़ का दावा मान्य न हो तो दिल्मुन की पहचान बहरीन के द्वीप से, मगन की मस्कट के समुद्रतट से और मेलुह्ह की पहचान सिंधु सभ्यता के क्षेत्र से की जानी चाहिए।[1]

---

1. उनके अनुसार यदि यह पहचान ठीक मान ली जाय तो मस्कत की तांबे की खान से तांवा एक ओर सुमेरीय नगरों को और दूसरी ओर सिंधु सभ्यता के नगरों को भेजा गया होगा और दिल्मुन के व्यापारियों ने इसमें बिचौलियों की भूमिका निभाई होगी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिशिष्ट 5

सिंधु सभ्यता की संभावित राजधानियां

हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो एक दूसरे से लगभग 640 किमी की दूरी पर स्थित है। इन दोनों में एक दुर्ग और एक एक निचला नगर होने के साक्ष्य मिलने के कारण पिगट ने इनके हड़प्पा साम्राज्य की दो राजधानियां होने की संभावना व्यक्त की। उन्होंने इस सिलसिले में ऐतिहासिक काल में कुषाण-काल में साम्राज्य की दो राजधानियों का उदाहरण दिया है जिसमें कुषाण लोग दो राजधानियों, उत्तर में पेशावर और दक्षिण में मथुरा, से राज्य करते थे। ह्वीलर ने इस संदर्भ में नवीं शताब्दी में अरब शासन के अंतर्गत दो राजधानियों-मुल्तान और मन्सूरा से शासन संचालन का उदाहरण दिया है जो भौगोलिक दृष्टि से सिंधु सभ्यता के नगरों के निकट हैं, क्योंकि मुल्तान हड़प्पा के काफी करीब है और मंसूरा मोहेंजोदड़ो के। ह्वीलर ने यह भी सुझाया है कि पहले मोहेंजोदड़ो प्रमुख नगर रहा होगा किंतु जब भूगर्भशास्त्रीय कारणों से उनके इर्द गिर्द झील बन गई और नगर ह्रासोन्मुख होने लगा तो ऐसी स्थिति में हड़प्पा नगर का राजनैतिक और आर्थिक महत्त्व बढ़ जाना स्वाभाविक था और वही प्रमुख नगर बन गया। कुछ साल बाद कालीबंगां के उत्खनन से वहां पर भी हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो की तरह गढ़ी और निचले नगर के अवशेष प्राप्त हुए तो पुरातत्ववेत्ताओं ने इसके हड़प्पा साम्राज्य की तीसरी राजधानी होने की संभावना व्यक्त की जो राजस्थान और उसके समीपवर्ती क्षेत्र के प्रशासन के लिए उत्तरदायी थी। और इसी तरह लोथल को हड़प्पा संस्कृति के सौराष्ट्र और समीपवर्ती क्षेत्र की राजधानी माना जा सकता है। शि. रंगनाथ राव के मतानुसार इस बात की अधिक संभावना है कि ये एक साम्राज्य की राजधानियाँ थीं और इस साम्राज्य का केन्द्र-स्थल सिंधु की घाटी में था। वे इसे विश्व में प्रथम महान् साम्राज्य की संज्ञा देते हैं जिसने विभिन्न जातियों और धर्म के लोगों को एक सूत्र में बांधा। लेकिन हाल ही के उत्खननों से सुरकोटड़ा में भी गढ़ी और निचला नगर की रूपरेखा स्पष्ट हुई है। यह लोथल से अधिक दूर नहीं। निश्चय ही गढ़ी और निचले नगर की योजना मात्र से राजधानी का अनुमान लगाना समीचीन नहीं वैसे इनमें से कुछ नगर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजधानियां ह़ो सकते हैं। यद्यपि यह धारणा संगत लगती है तथापि यह नहीं भूलना चाहिए कि हड़प्पा सभ्यता के क्षेत्र की हड़प्पा साम्राज्य का क्षेत्र सिद्ध करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य नहीं हैं। यह भी हो सकता है कि अलग अलग क्षेत्रों के लोग अपने अपने क्षेत्र में शासन कर रहे थे, लेकिन उनमें सांस्कृतिक एकता थी। लिखित साक्ष्यों के उपलब्ध न होने के कारण कुछ भी निश्चयपूर्वक कहना कठिन है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिशिष्ट 6

सामाजिक एवं आर्थिक वर्गभेद और रूढ़िवादिता

हमने सामाजिक जीवन के कुछ पहलुओं यथा वेशभूषा, आभूषण, आमोद-प्रमोद, शव-विसर्जन, खानपान (अध्याय 'आर्थिक जीवन') आदि का विवेचन विभिन्न अध्यायों के अंतर्गत किया है। इस परिशिष्ट में वर्गभेद और रूढ़िवादिता का विवेचन किया गया है।

वर्गभेद

सिंधु सभ्यता में कई जातियों के होने के साक्ष्य का उल्लेख अन्यत्र किया गया है। अतः यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि सिंधु सभ्यता के समाज में कई सामाजिक वर्ग थे। विभिन्न उपकरणों से अनुमान लगाया जा सकता है कि कुम्भकार, राज, बढ़ई, टमटा, सोनार, दस्तकार, जुलाहे, ईंट बनाने वाले, मनके बनाने वाले, मुद्रा बनाने वाले इत्यादि पेशेवर लोग रहे होंगे। ऐसा सोचना स्वाभाविक है कि उस काल में पुरोहितों का एक अलग वर्ग रहा होगा और तत्कालीन समाज में उसका अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रहा होगा। शासक के स्वरूप का ठीक ठीक ज्ञान नहीं। कुछ विद्वानों ने कल्पना की है कि शासक धर्म का भी महत्वपूर्ण अधिकारी था। राजकर्मचारियों व सेनाधिकारियों का समाज में अच्छा स्थान रहा होगा। किंतु संपन्नता की दृष्टि से व्यापारियों का प्रमुख स्थान रहा होगा। गढ़ी वाले टीले में शासक, महत्वपूर्ण कर्मचारी, संभ्रांत एवं संपन्न लोग रहते रहे होंगे और निचले नगर में अधिकतर सामान्य जन।

हड़प्पा के विभिन्न प्रकार के मकानों और उनकी स्थिति को देखकर उस समय जातिप्रथा के प्रचलन की संभावना कुछ विद्वानों ने मानी है। विशाल आन्नागारों और गढ़ी की पश्चिमी एशिया से तुलना कर पुरोहित-राजाओं की कल्पना की गई है। उपकरणों के निर्माण-शैली में जो रुढ़िवादिता है उसे धर्म का प्रभाव का फल माना गया है और धर्म का स्रोत राजा था ऐसा सुझाया गया है। लेकिन दूससे विद्वान इसे स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार यह रूढ़िवादिता और विभिन्न स्थलों के उपकरणों में समानता आर्थिक क्षेत्र में अत्यधिक अनुशासनबद्धता का परिणाम थी। यह तो लगभग निश्चित लगता है कि हड़प्पा के बैरकों में रहने वालों की स्थिति समाज में निम्न थी, किंतु यह कहना कठिन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है कि इन मजदूरों की स्थिति दासों जैसी थी। इन बैरकों को देख कर वत्स को तेल-अल-अमर्ना के मजदूरों के गांव का ध्यान आया। ह्वीलर का कहना है कि मिस्र के दीर-अल-मदीना, काहुन या गीजे के गांव का भी उल्लेख समानता की दृष्टि से इस संदर्भ में किया जा सकता है। मिस्र के इन गांवों में छोटे-छोटे घरों को हड़प्पा के बैरकों की तरह कतार में बनाया गया था। पर जहां तक उनमें रहनेवालों का प्रश्न है उनकी स्थिति और हड़प्पा के बैरकों में रहनेवालों की स्थिति में अंतर लगता है। उदाहरणार्थ दीर-अल-मदीना के ग्रामीण लोग राजाओं के लिए कब्रें तैयार करते थे और उनके घर नगर या अन्य बस्तियों से दूर एकांत में होते थे। काहुन और गीजे के बैरकों में रहनेवालों का वास्ता इन मिस्र में रहनेवालों की तरह मृतकों के शवाधान संबंधित संरचनाओं के निर्माण में नहीं बल्कि राजकीय प्रशासन संबंधी कार्यों से रहा होगा। वे गढ़ी में रहने-वाले शासक और संभ्रांत व्यक्तियों के आवासों के निकट ही निवास करते थे जिससे आवश्यकता पड़ने पर उनकी सेवा तुरंत उपलब्ध हो सके। ह्वीलर ने सुझाया है कि शायद उनकी स्थिति सुमेर के धर्म-प्रभावित शासन के अंतर्गत दासों अथवा अर्ध-दासों की तरह रही हो। सुमेर में इस तरह के अनेक लेख मिलते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि मंदिरों में विभिन्न कार्यों, यथा कपड़ा मिल चलाने, बेकरी या कताई-बुनाई के लिए दास और अर्ध-दासों को काम पर लगाया जाता था। लेकिन रंगनाथ राव ने ठीक ही कहा है कि सिंधु सभ्यता में विभिन्न कार्यों के लिए मजदूर अवश्य लगाये जाते रहे होंगे किंतु इस धारणा की पुष्टि के लिए अकाट्य साक्ष्य उपलब्ध नहीं हैं कि इन मजदूरों की स्थिति दासों जैसी थी। गढ़ीवाले टीले के लोगों का समाज और राजनीति में महत्त्व तो लगता है किंतु निचले नगर में पर्याप्त संख्या में विशाल और अति छोटे घर मिलते हैं जो इस बात का द्योतक है कि उस समय धनी और निर्धन लोग पास-पास के मकानों में रहते थे।

राव का मत है कि आधुनिक ग्रामों के साक्ष्य के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि दो कमरेवाले घरों में पांच या छह लोग रहते रहे होंगे और बड़े घरों में अधिक से अधिक दस से बारह लोग।

लोथल की एक ही कब्र के दो शवों में एक दीर्घशिरस्क है और दूसरी लघु-शिरस्क। ऐसी धारणा व्यक्त की गयी है कि इनमें एक शव स्त्री का और दूसरा पुरुष का है और यदि यह पति-पत्नी साथ ही गाड़े जाने का उदाहरण है तो यह दो भिन्न जातियों के मध्य वैवाहिक संबंध का द्योतक है। लेकिन इस एकमात्र और अनिश्चित साक्ष्य के आधार पर तत्कालीन समाज में अंतर्जातीय विवाह के सामान्य प्रचलन होने की धारणा बनाना ठीक नहीं होगा। यह सोचना स्वाभाविक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है कि सिंधु सभ्यता में समाज की इकाई परिवार रही होगी। स्त्री मूर्तियों के बहुसंख्या में प्राप्त होने से कुछ विद्वानों की यह धारणा है कि तत्कालीन धर्म में मातृदेवी की प्रधानता थी और संभवतः परिवार मातृ-प्रधान था। किंतु पुष्ट प्रमाणों के अभाव में इस विषय में भी निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

रूढ़िवादिता

फेयरसर्विस के अनुसार एक ओर सिंधु सभ्यता के कस्बे और गांव नगरों के ही लघु रूप हैं और दूसरी ओर नगर भी ग्रामों के ही विस्तृत और परिष्कृत रूप। अंतर मात्र इतना है कि ग्रामों की अपेक्षा नगरों में भव्य भवन थे और उनमें पर्याप्त संपन्नता भी थी। एक ओर तो हम हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो जैसे नगरों में प्रारंभ से लेकर अंत तक लगभग एक ही तरह के नगर विन्यास और उपकरण पाते हैं। दूसरी ओ सिंधु सभ्यता के विस्तृत क्षेत्र के विभिन्न स्थलों के मृद्भाण्ड तथा कुछ अन्य उपकरणों में भी पर्याप्त समानता मिलती है। तकनीकी क्षेत्र में शायद ही विश्व की अन्य सभ्यता में इतनी एकरूपता मिले जितनी हम सिंधु सभ्यता में पाते हैं। फेयरसर्विस का विचार है कि उपकरणों की एकरूपता शासन की निरंकुश तानाशाही के कारण नहीं, जैसा कि कुछ विद्वानों ने सुझाया है; बल्कि जनता का एक खास रहन-सहन का ढंग इसका कारण था, जो कुछ उसी तरह का था जैसा कि पिता-पुत्र का संबंध। ग्रामीणों का नैतिक-लोक नगरों में भी विद्यमान था। सिंधु सभ्यता के विभिन्न नगरों की योजना में पर्याप्त समानता होना, जनता का एक खास परंपरा के प्रति मोह होना, उसमें रंग जाना और उसका निर्वाह करने का फल है। उनके अनुसार परंपरा ही उनके नैतिक मूल्यों का आधार बन गयी थी और धर्म ने इस परंपरावाद को और मजबूत बना दिया होगा। प्रारंभ में नगर और ग्रामों में घनिष्ठ संपर्क रहा जिससे दोनों के मूलभूत उपकरणों में समानता रही किंतु जैसे-जैसे समय बीतता गया उनके संपर्क में ढिलाई आने लगी। दूरस्थ स्थलों में तो संपर्क बहुत कम हो गया और वे नगरों की छाया मात्र रह गये।

वस्तुओं के निर्माण में उपयोगिता और मजबूती की ओर विशेष ध्यान और कल्पनाशीलता और नवीनता की ओर कुछ उदासीनता, आल्चिन और श्रीमती आल्चिन के अनुसार, उनकी परलोक के प्रति अत्यधिक आस्था तथा चिंतन के कारण हो सकता है। उनके परंपरावाद में बहुत कुछ परवर्ती काल के बाद के भारतीय समाज की रुढ़िवादिता का पूर्वरूप मिलता है। अत्यंत आदिम प्रकार की चपटी हत्थे के लिए विना छेदवाली कुल्हाड़ियां और बिना रीढ़दार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाले इस सभ्यता के प्रारंभ से अंत तक हर चरण में मिले हैं । समकालीन मेसोपोटामिया में हत्थे के लिए छेदवाली कुल्हाड़ी और बीच में रीढ़दार भाले काफी पहले से बनने लगे थे । और मेसोपोटामिया से व्यापारिक संपर्क के बावजूद सिंधु सभ्यता के लोगों ने उन्नत प्रकार के उपकरणों का निर्माण नहीं किया ।[1]

---

1. तांबे की हत्थे के लिए छेदवाली एकमात्र कुल्हाड़ी मोहेंजोदड़ो की ऊपरी सतह पर मिली है जिसे कुछ विद्वान् पश्चिम की ओर आये आक्रमणकारियों द्वारा लायी गयी मानते हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिशिष्ट 7

सिंधु सभ्यता के कुछ नगरों की अनुमानित जनसंख्या

फेयरसर्विस ने मोहेंजोदड़ो के एक छोटे से मान (गढ़ी, VS और D K क्षेत्र) को छोड़कर शेष मान के लिए 41,250 जनसंख्या आंकी है। हड़प्पा के लिए, गढ़ी क्षेत्र को छोड़कर, उन्होंने 23,544 जनसंख्या का अनुमान लगाया है। इस तरह के निर्णय लेने में उन्होंने दो बातों को ध्यान में रखा, एक तो 400 फीट वर्गाकार क्षेत्र एक व्यक्ति के लिए पर्याप्त होता है और दूसरा एक भवन में 6 व्यक्ति रह सकते हैं।

दत्तमजुमदार ने हड़प्पा की जनसंख्या को आंकने के लिए अन्नागार के आकार को आधार बनाया और 37,155 के लगभग जनसंख्या आंकी। रंगनाथ राव का कहना है कि लोथल में करीब 4500 वर्गमीटर के क्षेत्र में छोटे-बड़े करीब 80 घर हैं। लोथल के तृतीय चरण में करीब 90,000 वर्गमीटर का क्षेत्र था जिसमें 1600 घर बन सकते थे। एक घर में औसतन 6 व्यक्ति होने का अनुमान है और इस तरह लोथल की जनसंख्या लगभग 10 हजार हुई। उनका कहना है कि यदि नगर की चाहदीवारी के बाहर के भी आवासों को इसमें शामिल कर दिया जाय तो जनसंख्या 15000 हो सकती है जो उनके अनुसार एक ताम्र-पाषाणकालीन नगर के लिए काफी है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिशिष्ट 8

गोदी-बाड़ा (Dockyard)

(फ० VI, 2),

लोथल में पकी ईंटों से निर्मित एक ढांचा मिला है जिसे शि० रंगनाथ राव ने गोदी पहचाना है।[1] इसके भीतर का क्षेत्र समलम्बक है और इसका औसत आकार 214 × 36 मीटर है। इसकी गहराई 3.3 मीटर है। लेकिन राव के अनुसार अनुमातः मूलरूप में गहराई 4.15 मीटर रही होगी। राव के विवरण के अनुसार इसकी उत्तरी दीवार में 12 मीटर चौड़ा प्रवेशद्वार था जिससे जहाज आते-जाते थे। यह प्रवेशद्वार एक नाली के द्वारा भोगावा नदी से जुड़ा था, जिससे गोदी में पानी आता था। राव के अनुसार उन लोगों ने जानबूझ कर गोदी को समुद्र तट अथवा भोगावा नदी पर नहीं वनाया क्योंकि वहां पर स्थित होने से वाढ़ और गाद से गोदी को हानि पहुँचने की संभावना थी। दक्षिणी दीवार में एक मीटर चौड़ी जल-निकास के लिए नाली बनी थी। यहां पर ईंटों पर खांचे मिले हैं जो इस बात के द्योतक हैं कि यहां पर लकड़ी का दरवाजा लगा था जिसे आवश्यकतानुसार उठाया या गिराया जा सकता था। उच्च ज्वार के समय इसे खोल कर अतिरिक्त पानी को बाहर निकलने दिया जाता था और निम्न ज्वार में दरवाजे को वंद कर गोदी में अपेक्षित मात्रा में पानी बने रहने दिया जाता था।

राव का मत है कि डिजाइन, आकार और निर्माण की दृष्टि से लोथल की गोदी फिनीशिया और रोम की गोदियों से कहीं अधिक विकसित थी और निश्चय ही अपने ढंग का विश्व में सबसे प्राचीन उदाहरण है। उन्होंने बी० एस० लेले द्वारा किये गये अध्ययन के आधार पर अन्य गोदियों से लोथल की गोदी की तुलना की है और निष्कर्ष निकाला है कि प्राचीन ही नहीं आधुनिक गोदियों की तुलना में भी इसका आकार कोई खास कम नहीं था। उन्होंने डाइरेक्टर आफ पोर्ट्स्, अहमदाबाद के मत का उल्लेख किया है जिसके अनुसार पुरैतिहासिक काल में समुद्र का एक अंग लोथल तक फैला था और इसलिए यहां पर गोदी का होना संभव लगता है।

---

1. आगे दिये विवरण में जहां किसी अन्य के मत का उल्लेख नहीं किया गया है तो इस विषय की पूरी सामग्री राव के विवरण पर आधारित है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राव के अनुसार लोथल में गोदी के मिलने से सिंधु सभ्यता के विदेशों से व्यापार में लोथल का महत्वपूर्ण योगदान स्वीकार करना पड़ेगा। उत्खनन के आधार पर राव का कहना है कि लोथल में लगभग 2000 ई० पू० में एक बाढ़ आयी जिससे नगर और गोदी दोनों को क्षति पहुँची और भोगावा नदी अब दो किलोमीटर दूर बहने लगी। लोथलवासियों ने दो मीटर गहरी एक नहर खोद कर गोदी को नदी से जोड़ दिया। लेकिन अब गोदी बड़े जहाजों के आने के उपयुक्त नहीं रह गयी थी और केवल छोटी-छोटी नावें ही उसमें आती रहीं। उनके अनुसार लगभग 1900 ई० पूर्व में एक और भीषण बाढ़ आयी। जिसने गोदी को रेत से पूरी तरह पाट दिया और इसके बाद उसका उपयोग नहीं हो पाया।

अधिकांश विद्वान श्री राव के इस मत से सहमत लगते हैं कि यह ढांचा गोदी ही है, लेकिन कुछ विद्वानों ने इसे तालाब माना है। सबसे पहले यू० पी० साह ने गोदी के मत को चुनौती दी और उसके पश्चात् लौरेंस लैश्निक ने काफी जोर-शोर से राव के मत का खंडन किया और इसे तालाब माना है।[1] राव ने लैश्निक के तर्कों का उत्तर दिया है और अपने मत की पुष्टि में निम्नलिखित तर्क दिये हैं—(1) यदि यह तालाब होता तो लोगों ने इसके लिए पक्की ईंटों, जो काफी खर्चीली होती हैं, का प्रयोग नहीं किया होता और कच्ची ईंटों से ही निर्माण किया होता, (2) यदि यह तालाब होता तो इसमें पानी जमा होने के लिए काफी चौड़ी खुली जगह होनी चाहिए थी, (3) इसकी दीवारें सीधी हैं, यदि यह तालाब होता तो इसमें भीतर जाने के लिए या तो सीढ़ियां होतीं या फिर ढाल होती, (4) इसके समीप उत्खनन में एक विशाल चबूतरा मिला है जिसका तालाब के संदर्भ में तो कोई विशेष महत्व नहीं लगता लेकिन गोदी के संदर्भ में जहाज में लादने के लिए और जहाज से उतारा हुआ माल रखने के लिए उसका प्रयोग स्वाभाविक लगता है, (5) इसके तल की मिट्टी में खारापन पाया गया और उसमें घोंघे भी मिले हैं जो इस बात के द्योतक लगते हैं कि इसमें समुद्र का पानी भी आता था। इसके अंदर खारे पानी के होने का साक्ष्य इसके जल का सिंचाई अथवा पीने के लिए प्रयोग होने के पक्ष में नहीं है, अतः यह भी इसके तालाब होने के मत के विरुद्ध ही जाता है, (6) भीतरी

1. लैश्निक के कुछ तर्कों में तो काफी बल है लेकिन उनके तर्क में एक मुख्य कमजोरी यह है कि वे लोथल को एक नगर मानने के लिए तो क्या बल्कि एक बड़ा गांव मानने को भी तैयार नहीं। उनका यह तर्क है कि भला छोटे से गांव में गोदी की क्या आवश्यकता।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दीवार में कुछ छेद मिले हैं जिसमें लकड़ी के खम्भे रहें होंगे। इन खम्भों से जहाजों को लंगर डालते समय बांधा जाता रहा होगा। (7) इसके भीतर कुछ छेद वाले पत्थर मिले हैं जिसका उपयोग जहाजों के लंगर डालने के संदर्भ में उन्हें बांधने के लिए किया गया होगा।

यद्यपि राव के उपर्युक्त तर्क काफी प्रभावशाली हैं तथापि यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि अभी भी कुछ विद्वान् उनके इस मत से सहमत नहीं हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिशिष्ट 9

सिंधु सभ्यता में खोपड़ी की शल्य-चिकित्सा

सिंधु सभ्यता में खोपड़ी की शल्य चिकित्सा के दो उदाहरण ज्ञात हैं, एक कालीबंगां से जो निश्चित है और दूसरा लोथल से जो संदिग्ध है। कालीबंगां से प्राप्त एक बालक की खोपड़ी पर छह छेद हैं। निरीक्षण से पाया गया कि ये छेद कुछ भर गये थे। स्पष्ट है कि बालक की खोपड़ी की शल्य-चिकित्सा की गई थी और वह सफल हुई तथा बालक उसके बाद कम से कम कुछ दिनों तक अवश्य जीवित रहा।

लोथल से प्राप्त एक बालक की खोपड़ी पर भी छेद पाया गया।[1] इस बालक की उम्र नौ-दस साल के लगभग रही होगी। कालीबंगां के साक्ष्य के विपरीत लोथल से प्राप्त इस खोपड़ी में किये छेद के भरने के कोई साक्ष्य नहीं दिखे। या तो शल्य-चिकित्सा सफल नहीं हुई और उसके थोड़े ही समय बाद बालक मर गया, या फिर हमें यह मानना पड़ेगा कि छेद मरणोपरान्त किया गया था। यदि छेद मरने के बाद किया गया तो उसका संबंध शवोत्सर्ग संबद्धी किसी धार्मिक विश्वास से जोड़ना होगा, न कि शल्य-चिकित्सा से।

इन दो सिंधु सभ्यता के उदाहरणों के अलावा भारत में शल्य-चिकित्सा के केवल दो अन्य उदाहरण मिले हैं—एक बुर्जाहोम (काश्मीर) से और दूसरा लंघनाज (गुजरात) से।

खोपड़ी की शल्य-चिकित्सा सिरदर्द और चोट आदि के कारण होनेवाली असह्य पीड़ा को ठीक करने के लिए की गयी होगी। पेरु (मध्य अमेरिका) की जनजातियों में इस तरह की शल्य-चिकित्सा आज भी की जाती है। भारत के ऐतिहासिक काल के साहित्य में भी इस तरह की चिकित्सा के उल्लेख मिलते हैं।

---

1. राव ने अपनी पुस्तक 'लोथल एण्ड दि इण्डस सिविलिजेशन' में लोथल के इस उदाहरण को खोपड़ी पर शल्य-चिकित्सा किये जाने का प्राचीनतम उदाहरण कहा है। उनका यह कथन सही नहीं लगता। भारत में सिंधु सभ्यता में ही कालीबंगां के उदाहरण को लोथल से बाद का नहीं कहा जा सकता, और जहां तक विश्व के संदर्भ का प्रश्न है, योरप के नवपाषाणयुग के साक्ष्य निश्चय ही भारतीय उदाहरण के पहले के हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिशिष्ट 10

सिंधु सभ्यता की परवर्ती भारतीय सभ्यता को देन

अनेक विद्वान् सिंधु सभ्यता में ऐतिहासिक काल के कुछ तत्त्वों का मूल देखते हैं। चूंकि सिंधु सभ्यता के अंत और ऐतिहासिक काल के प्रारंभ के बीच लम्बा काल-व्यवधान रहा है अतः इस संबंध में मतमतांतर होना स्वाभाविक है और निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। नीचे हमने उन संभावित तत्वों का उल्लेख किया है जो, कुछ विद्वानों के अनुसार, ऐतिहासिक काल को सिंधु सभ्यता की देन माने जा सकते हैं। इन तत्वों का पिछले पृष्ठों में विभिन्न संदर्भों में कुछ विस्तार से वर्णन हो चुका है, अतः यहां उनका उल्लेख मात्र ही पर्याप्त होगा :—

(1) मातृदेवी का देवोपासना में प्रमुख स्थान जिसका अत्यंत विकसित रूप शाक्त धर्म में पाते हैं। वैदिक देवताओं में देवियां हैं तो, पर देवों की अपेक्षा उनका स्थान गौण है।

(2) शिव-पशुपति जैसे देवता की धारणा सिंधु सभ्यता की ही देन लगती है।

(3) लिंगपूजा—इसका महत्व इसलिए विशेष रूप से है कि ऋग्वेदीय आर्य लिंगपूजा नहीं करते थे अपितु अनार्यों को लिंगपूजक कहकर भर्त्सना करते थे। लेकिन लगता है विजेता आर्य विजित अनार्यों से प्रभावित हुए और यजुर्वेद तक आते-आते राजकीय कर्मकाण्ड में लिंग को स्थान मिलने लगा। कालांतर में तो यही शिव का विशेष प्रतीक हो गया और इसे मानव प्रतिमाओं से भी अधिक महत्व मिला।

(4) कुछ विद्वान् हड़प्पा मुद्राओं के अंकनों में पौराणिक आख्यानों के अनुरूप आख्यानों का अंकन होने की संभावना मानते हैं। उदाहरण के लिए मनुष्य द्वारा भैंसे को सींग से पकड़ कर उसकी नाक पर पांव रख कर उस पर भाला भोंकने के दृश्य को मैके ने शिव द्वारा दुंदुभी का वध और जितेन्द्रनाथ बनर्जी ने देवी द्वारा महिषासुर-मर्दन के जैसे आख्यान का अंकन माना है। मनुष्यों द्वारा वृक्ष को उखाड़ने के अंकन को बनर्जी ने महाभारत में उल्लिखित कृष्ण द्वारा यमलार्जुन वृक्षों को उखाड़ने जैसे किसी आख्यान का अंकन माना है।

(5) सिंधु सभ्यता की मुद्राओं पर ऐसे अंकन जिनमें विभिन्न पशुओं के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अवयवों के संश्लेषण से आकृति बनी हैं, की तुलना ऐतिहासिक काल के किन्नर, गंधर्व, कुंभाण्ड आदि के अंकनों से की जा सकती है।

(6) सिंधु सभ्यता की कुछ मुद्राओं पर ध्वज बना है। परवर्ती काल में देवताओं के लिए ध्वज के निर्माण की परंपरा बहुत लोकप्रिय हुई।

(7) कई प्रतीक, यथा स्वस्तिक, चक्र आदि जो सिंधु सभ्यता की मुद्राओं पर मिले हैं ऐतिहासिक काल में भी पर्याप्त धार्मिक महत्व के रहे।

(8) सिंधु सभ्यता में मातृदेवी और कुछ अन्य देवताओं को नग्न दिखाया गया है। ऐतिहासिक काल में भी कुछ देवी-देवताओं को, विशेषतः जैन तीर्थंकरों को, नग्न दिखाया गया है।

(9) सिंधु सभ्यता में, विद्वानों का अनुमान है, पशुओं का पर्याप्त धार्मिक महत्व था, और ऐतिहासिक काल में भी ऐसा ही रहा है जब पशुओं को स्वतंत्र रूप से या देवताओं के वाहन के रूप में आदरपूर्ण स्थान दिया गया।

(10) जिस तरह से सिंधु सभ्यता की मुद्राओं और वर्तनों पर वृक्षों का अंकन है वह उनके धार्मिक प्रभाव का द्योतक है। इस संदर्भ में पीपल का वृक्ष विशेष उल्लेखनीय है। ऐतिहासिक काल में भी पीपल आदि कई वृक्षों की पूजा होती रही है और उन्हें धार्मिक महत्व का माना गया है।

(11) कला के क्षेत्र में भी सिंधु सभ्यता का प्रभाव लगता है। सिंधु सभ्यता की मुद्राओं पर वृषभ का अत्यंत सजीव और प्रभावोत्पादक आलेखन है। कुछ विद्वानों ने अशोक कालीन रामपुरवा-वृषभ में इसी कला-परंपरा का निर्वाह हुआ माना है। मोहेंजोदड़ो की कांस्य नर्तकी में भारतीय नारी सौंदर्य के आदर्शों का कुछ रूप मिलता है।

(12) सिंधु सभ्यता की कुछ मूर्तियां कायोत्सर्ग मुद्रावाली जैन तीर्थंकरों की मूर्तियों से मिलती हैं।

(13) मूर्तियों में प्रजनन अंगों का स्वाभाविक से कहीं अधिक बढ़ा-चढ़ा कर दिखाना, दोनों—सिंधु सभ्यता काल और ऐतिहासिक काल—की मूर्तियों में दिखाई देता है।

(14) मनुष्य-पशु-युद्ध का चित्रण सिंधु सभ्यता की मुद्राओं और ऐतिहासिक काल की बसाढ़ से प्राप्त एक मुद्रा और अहिच्छत्रा की मृण्मय फलक पर मिलता है।

(15) मोहेंजोदड़ो के गढ़ीवाले टीले में स्तंभ-युक्त भवन के अवशेष अशोक के पाटलिपुत्र के स्तंभों पर आधारित भवनों की याद दिलाते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(16) कुछ विद्वान् तो सिंधु सभ्यता की ताम्रपट्टिकाओं को आहत सिक्कों का पूर्वरूप मानते हैं ।

(17) मोहेंजोदड़ो की शिव-पशुपति की मुद्रा पर जो ग्रैवेयक दिखाया गया है, ऐतिहासिक काल में यक्ष मूर्तियों के गले में उसी तरह का ग्रैवेयक बना मिलता है ।

(18) सिंधु सभ्यता में जिस तरह की बैलगाड़ियां थीं वे आज की बैल-गाड़ियों से विशेष भिन्न नहीं थीं ।

(19) अधिकांश विद्वानों का मत है कि भारत में सिंधु सभ्यता के लोगों ने ही सबसे पहले हाथी पालना शुरू किया । प्रारंभिक ऐतिहासिक काल में हाथी का सेना में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रहा ।

(20) कनिंघम और कुछ अन्य विद्वान् सिंधु सभ्यता की लिपि को ब्राह्मी लिपि का मूल मानते हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिशिष्ट 11

तिथि निर्धारण की रेडियो कार्बन विधि

तिथि निर्धारण की रेडियो कार्बन (अथवा कार्बन–14) विधि लिब्बी ने 1949 में खोज निकाली थी और पिछले 25 सालों में अनेक संकृतियों की तिथि निर्धारण में इसकी सहायता ली गयी है। सिंधु सभ्यता के कुछ स्थलों के लिए कार्बन–14 तिथियां उपलब्ध हैं। इस विधि में कार्बन पदार्थों की तिथि निर्धारित करने का आधार है उस पदार्थ में उपलब्ध कार्बन–14 तत्त्व के अर्ध-जीवन का आकलन करना। जीवधारियों अर्थात् मनुष्य, पशु-पक्षी और वनस्पति में दो तरह का कार्बन पाया जाता है—कार्बन–12 और कार्बन–14। जीविता-वस्था में कार्बन–12 और कार्बन–14 का अनुपात सभी जीवधारियों और वन-स्पति में समान होता है। जीवधारी के मरने अथवा वनस्पति के कटने और सूखने के बाद भी कार्बन–12 तो उतना ही रहता है जितना जीवितावस्था में था, लेकिन कार्बन–14 धीरे-धीरे कम होने लगता है। उसमें यह क्षय एक निश्चित गति से होता है। कुछ विद्वानों का यह मत है कि जैविक (कार्बनिक) पदार्थों में कार्बन–14 की मात्रा 5568±30 साल[1] में अपनी मूल मात्रा से आधी

---

1. धन-ऋण (±) का चिह्न इस बात का द्योतक है कि इस चिह्न से पहले दी गई संख्या एकदम निश्चित नहीं है और इस बात की गुंजाइश है कि इस चिह्न के बाद दी हुई संख्या को इसमें एक बार बढ़ाने से और इसमें से घटाने से जो दो संख्याएं मिलें वास्तविक तिथि उन दोनों के बीच कहीं भी हो सकती है। उदाहरण के लिए 5730±40 का अर्थ है कि तिथि परीक्षण के समय से (5730 + 40 =) 5770 तथा (5730 – 40 =) 5690 वर्षों के बीच कहीं भी हो सकती है। यों तो इन दो संख्याओं के बीच की संख्या निकालने से उसमें गलती होने की सीमा कम हो जाती है, लेकिन जैसे कुछ विद्वानों ने चेतावनी दी है कि जब तक किसी स्थल के चरण विशेष के बारे में अनेक संगत कार्बन–14 तिथियां ज्ञात न हों तब तक बीच की संख्या को सही तिथि के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता और इसलिए ± का चिह्न लगाना ही वैज्ञानिक दृष्टि से अधिक उपयुक्त है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हो जाती है। कुछ दूसरे विद्वान् कार्बन–14 का अर्धजीवन (half life) 5730±40 वर्ष मानते हैं। अब प्रायः सभी विद्वान् दूसरे मत को स्वीकार करते हैं और इस पुस्तक में भी हमें दी गयी रेडियो कार्बन तिथियां उसी पर आधारित हैं।

इस संबंध में यह उल्लेख आवश्यक है कि कार्बन 14 तिथि के लिए जो प्रतिदर्श (Sample) भेजा जाय उसमें यह उल्लेख करना आवश्यक है कि यह जले अनाज के दाने का है या लकड़ी का; और फिर लकड़ी के प्रतिदर्श में भी यह उल्लेख होना आवश्यक है कि यह भवन के खम्भे का है या साधारण लकड़ी का। यह इसलिए आवश्यक है कि कार्बन–14 विधि से लकड़ी के सूखने की तिथि का ज्ञान होगा न कि उसके भवन में प्रयोग किये जाने का; और पुराने मकान की अच्छी लकड़ी का प्रयोग पुनः नये मकान में हो सकता है और ऐसी दशा में मकान की तिथि लकड़ी के लिए प्राप्त कार्बन–14 तिथि से बाद की हो सकती है। साधारणतया किसी भवन में प्राप्त जले अन्न के दानों की तिथि और उस भवन की तिथि एक ही होगी।

किसी संस्कृति के तिथि निर्धारण के संदर्भ में कार्बन-14 विधि के प्रयोग संबंधी कुछ बातों का उल्लेख आवश्यक है। अच्छा यह है कि उस संस्कृति विशेष के न केवल किसी स्थल विशेष के विभिन्न चरणों से अपितु एक ही परत के लिए भी अनेक कार्बन–14 तिथियां ज्ञात हों। ऐसा करने से ही सही तिथि ज्ञात होने की संभावना है। निश्चय ही किसी स्थल विशेष से प्राप्त केवल एक या दो कार्बन–14 तिथियां उस स्थल की निश्चित तिथि निर्धारित करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। अक्सर यह धारणा हो सकती है कि 'प्रारंभिक' प्रतिदर्श (सैम्पल) लगभग संस्कृति के प्रारंभ के द्योतक हैं और 'बाद' के सभ्यता के अंत के। लेकिन यह आवश्यक नहीं है बल्कि अधिकांशतः ऐसी संभावना कम ही रहती है। इससे बस इतना ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि 'पहले' वाली तिथि के समय संस्कृति विद्यमान थी और 'बाद' वाले के बाद तक यह बनी रही। फिर किसी स्थल पर सभ्यता के प्रारंभ और अंत और उसके विभिन्न चरणों के संदर्भ में कार्बन–14 विधि से ज्ञात की गयी तिथियां उस स्थल विशेष के लिए मान्य हो सकती हैं। उन तिथियों को उसी संस्कृति के अन्य स्थानों के लिए भी स्वीकार नहीं किया जा सकता, विशेष रूप से जबकि यह स्थल दूर-दूर स्थित हों और उनके भौगोलिक वातावरण में भी भिन्नता हो। सिंधु सभ्यता के संदर्भ में, जिसका विस्तार एक अत्यंत विस्तृत भू-भाग पर रहा था, जिसके स्थल विभिन्न भौगोलिक और जलवायु की परिस्थितियों में हैं और साधारण ग्राम्य-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संस्कृति से लेकर विकसित नगर सभ्यता के द्योतक हैं, यह सोचना स्वाभाविक है कि बस्तियों का उदय और उनका अंत अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग कारणों से अलग-अलग समय में हुआ होगा ।

एक बात स्पष्ट है कि अब विद्वान कार्बन–14 विधि के महत्त्व को स्वीकार करते हुए भी उसे अब उतनी निश्चित रूप से सही तिथि बतानेवाली विधि नहीं मानते जितनी कि शुरू-शुरू में, जब इस विधि की पहली खोज हुई थी। विदेशों में वृक्ष-काल (डेण्ड्रोक्रोनोलॉजी) और अनुवर्ण मृत्तिका (Clay varve) परीक्षण से प्राप्त तिथियों और कार्बन–14 विधि से प्राप्त तिथियों में पर्याप्त अंतर पाया गया। भारत में उपर्युक्त दोनों ही विधियों का प्रयोग अभी तक संभव नहीं हो सका है, अतः यहां पर कार्बन–14 तिथियों की तुलना के लिए उनका साक्ष्य उपलब्ध नहीं । किंतु विदेशों से प्राप्त तथ्य हमें कार्बन–14 तिथि के बारे में सचेत करने के लिए पर्याप्त हैं ।

कुछ समय पूर्व तक ऐसी धारणा थी कि जीवधारियों में कार्बन–14 ग्रहण करने की मात्रा विश्व के सभी क्षेत्रों में सदैव एक ही रही है, लेकिन अब विद्वानों ने इस पर संदेह व्यक्त किया है। कुछ कारणों, यथा औद्योगिक वस्तुओं में ईंधन के रूप में अत्यधिक कोयला प्रयोग होने से अथवा परमाणु विस्फोट के कारण इसमें अंतर आ सकता है। यह देखा गया है कि मिस्र और मेसोपोटामिया के इतिहास के तृतीय और द्वितीय सहस्राब्दी ई० पू० के मध्य की बहुत सी ऐसी तिथियां हैं जो लिखित ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर लगभग निश्चित हैं किंतु कार्बन–14 विधि से इस काल के स्तरों के लिए जो तिथियां ज्ञात हैं वे इन लिखित साक्ष्यों से ज्ञात तिथियों की बहुत बाद की निकली हैं। यदि यह भी मान लें कि ऐतिहासिक साक्ष्यों से निर्धारित तिथियों को पूर्णतया निश्चित तिथियां स्वीकार करना कठिन है, तो भी कुछ कार्बन–14 तिथियां ऐसी हैं जिन्हें न केवल संदिग्ध अपितु असंभव की संज्ञा देनी होगी। उदाहरण के लिए कार्बन विधि के अनुसार तृतीय राजवंश के जोसेर (Djoser) की जो तिथि मिलती है वह उसके उत्तराधिकारी हुनी (Huni) की लगभग निश्चयपूर्वक ज्ञात तिथि से 8 शताब्दी बाद की है।[1] ह्वीलर का कहना है कि हो सकता है कि इस तरह की विसंगति किन्हीं कारणों से सिंधु सभ्यता की कार्बन तिथियों पर भी लागू होती हो ।

---

1. वैसे यह भी हो सकता है कि तिथि का यह भेद प्रतिदर्शों के दूषित होने के कारण हो। लेकिन ऐसा एक नहीं अनेक प्रतिदर्शों के साक्ष्य का इस तरह से होना इस बात का समर्थन नहीं करते ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राग सिंधु तथा सिंधु सभ्यता स्थलो की कार्बन तिथियां

स्थल	कार्बन तिथियां ई० पू० (अर्धायु 5730 वर्ष)
आमरी (पाकिस्तान)	TF–863, 2665±100
	TF–864, 2900±115
दब सदात (पाकिस्तान)	UW–60, 2200±165
	P–523, 2200±75
	L–180 E, 2200±360
	L–180 C, 2220±410
	P–522, 2500±200
	L–180 B, 2320±360
	UW–59, 2510±70
कोटदीजी (पाकिस्तान)	P–195, 2100±140
	P–180, 2250±140
	P–179, 2330±155
	P–196, 2600±145
मुण्डिगाक (अफगानिस्तान)	TF–1129, 3145±110
	TF–1132, 2995±105
	TF–1131, 2755±105
कालीबंगां I (राजस्थान)	TF–154, 1820±115
	TF–156, 1900±110
	TF–165, 1965±105
	TF–161, 2095±105
	TF–240, 1765±115
	TF–162, 2105±105
	TF–241, 2255±95
	TF–157, 2290±120
	TF–155, 2370±120
मोहेंजोदड़ो (पाकिस्तान)	PF–75, 1755±115
	P–1182 A, 1865±65
	P–1176, 1965±60

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्थल	कार्बन तिथियां ई० पू० (अर्धायु 5730 वर्ष)
	P–1178 A, 1965±60
	P–1180, 1995±65
	P–1179, 2085±65
	P–1177, 2155±65
	TF–143, 1665±110
	TF–946, 1765±105
	TF–149, 1830±145
	TF–150, 1900±105
	TF–605, 1975±110
	P–481, 2050±75
	TF–153, 2075±110
	TF–25, 2090±115
	TF–942, 2225±115
कालीबंगां II	TF–152, 1770±90
(राजस्थान)	TF–142, 1790±105
	TF–141, 1860±115
	TF–139, 1930±105
	TF–151, 1960±105
	TF–948, 1980±100
	TF–147, 2030±105
	TF–145, 2060±105
	TF–608, 2075±110
	TF–947, 1925±90
	TF–163, 2080±105
	TF–607, 2090±125
	TF–160, 2230±105
लोथल	TF–19, 1800±140
(गुजरात)	TF–23, 1865±110
	TF–29, 1895±115
	TF–26, 2000±125

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्थल	कार्बन तिथियां ई० पू० (अर्धायु 5730 वर्ष)
	TF–27, 2000±115
	TF–22, 2010±115
	TF–133, 1895±115
	TF–136, 2080±135
रोजदी	TF–199, 1745±105
(गुजरात)	TF–200, 1970±115
सुरकोटड़ा	TF–1301, 2000±135
(गुजरात)	TF–1305, 2055±100
	TF–1310, 1970±100
	TF–1295, 1940±100
	TF–1294, 1780±100
	TF–1297, 1790±95
	TF–1307, 1660±110
	TF–1311, 1780±90
बाड़ा	TF–1204, 1845±155
(पंजाब)	TF–1205, 1890±95
	TF–1207, 1645±90

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिशिष्ट 12

सिंधु सभ्यता और वैदिक संस्कृति

सिंधु सभ्यता की खोज होने के समय से यह प्रश्न बराबर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट करता रहा है कि इस सभ्यता के जनक कौन थे ? कई विद्वानों ने वैदिक और सिंधु सभ्यता की कुछ आधारभूत विभिन्नताओं की ओर ध्यान आकर्षित कर उन्हें अलग परिस्थितियों की उपज माना है ।

मार्शल और कुछ अन्य विद्वानों ने सिंधु सभ्यता और ऋग्वैदिक सभ्यता के मध्य अंतर को इस प्रकार दिखाया है[1] :—(1) ऋग्वैदिक सभ्यता ग्रामीण संस्कृति लगती है जबकि सिंधु सभ्यता के लोग सुनियोजित नागरिक जीवन से भलीभांति परिचित थे । (2) आर्य धातुओं में सोने तथा चांदी से परिचित थे और यजुर्वेद में लोहे के प्रयोग के भी निश्चित संदर्भ मिलते हैं । सिंधु सभ्यता के लोग सोने, चांदी का प्रयोग करते थे, किंतु उन्होंने चांदी का उपयोग सोने से अधिक किया, तांबे और कांसे के विभिन्न आयुधों तथा उपकरणों का निर्माण करना वे जानते थे, किंतु लोहे से परिचित नहीं थे । (3) ऋग्वैदिक आर्यों के जीवन में अश्व का बड़ा महत्व था । किंतु सिंधु सभ्यता के लोग अश्व से परिचित थे—इस विषय में निश्चित साक्ष्य नहीं हैं । (4) वेदों में व्याघ्र का उल्लेख नहीं मिलता और हाथी का अत्यल्प मात्रा में उल्लेख मिलता है । किंतु सिंधु सभ्यता की मुद्राओं पर व्याघ्र और हाथी दोनों ही का पर्याप्त मात्रा में अंकन उपलब्ध है । (5) आर्य विभिन्न अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण करते थे । वे रक्षा उपायों में कवच बनाना जानते थे, जबकि सिंधु सभ्यता के किसी भी स्थल की खोदाई से निश्चित रूप से रक्षा संबंधी कोई भी वस्तु अभी तक नहीं मिली । (6) आर्य गाय को विशेष आदर देते थे । पर सिंधु सभ्यता में मुद्राओं तथा अन्य कलाकृतियों से लगता है कि गाय की विशेष महत्ता नहीं थी, गाय की अपेक्षा बैल का अधिक महत्व था । (7) आर्यों के जीवन संभवतः मूर्तिपूजक नहीं थे । दूसरी ओर सिंधु सभ्यता के लोग मूर्तिपूजक थे । (8) सिंधु सभ्यता के स्थलों से नारी मूर्तियां प्रभूत संख्या में उपलब्ध होने से ऐसा लगता है कि सिंधु सभ्यता के देवताओं में मातृदेवी को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था । आर्यों में पुरुष देवता अधिक महत्वपूर्ण रहे हैं । देवियों का महत्व अपेक्षाकृत कम है । (9) मार्शल ने मोहेंजोदड़ो

1. मुख्य रूप से मार्शल पर आधारित ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और हड़प्पा में अग्निकुण्डों के अवशेषों का न मिलना इस बात का प्रमाण माना है कि यहां पर यज्ञादि का प्रचलन नहीं रहा होगा। जबकि आर्यों के धार्मिक जीवन में यज्ञों का अत्यंत महत्व रहा है। (10) सिंधु सभ्यता की मुद्राओं और अन्य उपकरणों से स्पष्ट है कि लोग लिखना जानते थे किंतु आर्यो के विषय में कुछ विद्वानों की धारणा है कि वे लिखना नहीं जानते थे और अध्ययन-अध्यापन मौखिक रूप से करते थे। (11) ऋग्वेद में असुरों के दुर्गों का उल्लेख है और हम यह जानते हैं जानते हैं कि सिंधु सभ्यता के सभी प्रमुख नगर दुर्ग के रूप में निर्मित थे। (12) अनार्यों को चपटी नाकवाला भी कहा गया है। हड़प्पा संस्कृति की कुछ मूर्तियों में भी चपटी नासिका दिखलायी गयी है। आर्यों की नाक प्रखर होती थी।

कुछ विद्वानों ने हड़प्पा सभ्यता और आर्य संस्कृति को एक ही माना है। उनके अनुसार दोनों में जो विभेद है वह समय का अंतर मात्र है। उनके अनुसार ऐसी स्थिति में वैदिक सभ्यता या तो हड़प्पा सभ्यता की जन्मदात्री थी अथवा उससे ही विकसित थी। किंतु मार्शल के अनुसार इस मत को स्वीकार करने में कई कठिनाइयां हैं। उनके अनुसार यदि यह मान लिया जाय कि वैदिक संस्कृति हड़प्पा सभ्यता से पहले की है तो ऐसी कल्पना करना युक्तिसंगत ही होगा कि वैदिक ग्रामीण संस्कृति से शनैः शनैः हड़प्पा, मोहेंजोदड़ो जैसे नगरों का विकास हुआ। ऐसी स्थिति में विकास के लिए काल का अंतर अवश्य रखना होगा। किंतु प्रश्न यह है कि संस्कृति संबंधी जिस तरह की सामग्री का ऋग्वेद में उल्लेख है वह आगे हड़प्पा सभ्यता के काल में क्यों नहीं मिलती? उदाहरण के लिए यदि हड़प्पा सभ्यता की वैदिक संस्कृति पूर्वगामिनी है तो रक्षात्मक वस्तुओं (कवच आदि) का सिंधु सभ्यता में अभाव क्यों है। सिंधु सभ्यता में लोहे का प्रयोग क्यों नहीं मिलता, और अश्व जो वैदिक साहित्य का सबसे महत्वपूर्ण पशु है, सिंधु सभ्यता के हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो जैसे नगरों में उसके निश्चित और प्रभूत मात्रा में साक्ष्य क्यों नहीं मिलते? गाय के स्थान पर वृषभ का धार्मिक महत्व कैसे हो गया? सिंधु सभ्यता के कुछ स्थलों में नव पाषाण कालीन उपकरणों का मिलना इंगित करता है कि सिंधु सभ्यता वैदिक संस्कृति की पूर्वागामिनी थी।

दूसरी ओर यदि सिंधु सभ्यता को ही वैदिक संस्कृति मानें और कालक्रम की दृष्टि से उसे वैदिक संस्कृति के पहले की मानें तो इस बात का समुचित उत्तर नहीं मिल पाता कि जिन आर्यों ने हड़प्पा, मोहेंजोदड़ो और अन्य स्थलों पर ईंटों के भवनों का निर्माण किया था वही आगे चल कर वैदिक युग में लकड़ी-बांस के मकान बना कर क्यों रहने लगे? कैसे उन्होंने लिंग और मूर्तिपूजा को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भुला दिया (या उसे एकदम गौण स्थान दिया) और आगे चल कर ऐतिहासिक काल में पुनः बड़े पैमाने पर अंगीकार कर लिया ? इसका भी उत्तर देना कठिन है कि किन कारणों से सिंध प्रदेश को, जहां पर सिंधु सभ्यता के कुछ सबसे महत्वपूर्ण स्थल मिले हैं, वेदों में विशेष महत्व नहीं दिया गया है। उपर्युक्त साक्ष्यों के संदर्भ में इन दोनों संस्कृतियों के एक ही स्रोत होने का निश्चय न कर सकना दुष्कर लगता है। ऐसी संभावना अधिक है कि वैदिक संस्कृति हड़प्पा संस्कृति की उत्तरगामिनी ही नहीं थी अपितु उसका विकास ही इतर परिस्थितियों में हुआ था।

इसी प्रसंग से संबंधित यह प्रश्न भी है कि यदि सिंधु सभ्यता और वैदिक संस्कृति भिन्न हैं और वैदिक संस्कृति बाद की है तो क्या सिंधु सभ्यता के अंतिम चरण में वैदिक संस्कृतिवालों से उनका संपर्क हुआ या वैदिक संस्कृति सिंधु सभ्यता के समाप्त होने के बहुत बाद में आयी। इस विषय में विद्वान् एकमत नहीं हैं।

मार्शल, जिन्होंने सिंधु सभ्यता की तिथि 3250 से 2750 ई० पू० मानी थी, ने इस सभ्यता को न केवल अनार्य ही माना है, अपितु आर्यों के आगमन से बहुत पूर्व समाप्त हुई बताया है। गॉर्डन चाइल्ड और ह्वीलर, जो इस सभ्यता का प्रारंभ लगभग 2500 ई० पू० और अंत 1500 ई० पू० आंकते हैं, ने आर्यों को इस सभ्यता के अंत के लिए उत्तरदायी ठहराया है।

किंतु इस सिलसिले में यह उल्लेख करना आवश्यक है कि वैदिक साहित्य के अध्ययन से अभी ठीक-ठीक इतिहास का निर्माण आसान नहीं। किसी वस्तु विशेष का उल्लेख न होना इस बात का प्रमाण नहीं कि वह वस्तु थी ही नहीं। फिर हाल ही की कुछ खोदाइयों से नये साक्ष्य भी उपलब्ध हुए हैं (जो मार्शल के समय तक ज्ञात् नहीं थे)। उदाहरणार्थ अब लोथल से घोड़े की मृण्मूर्तियां मिली हैं। सुरकोटड़ा में भी सिंधु सभ्यता के संदर्भ में घोड़े की हड्डियां मिली हैं। यों मोहेंजोदड़ो से प्राप्त मृण्मूर्ति को भी कुछ लोगों ने घोड़े की आकृति पहचाना था। मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा के उत्खनन में तो अग्निकुंड के निश्चित साक्ष्य नहीं मिले थे किंतु कालीबंगां और लोथल में अग्निकुंडों के निश्चित प्रमाण मिल चुके हैं। यद्यपि कुछ विद्वान मार्शलके मत को ही मानते हैं। किंतु कई विद्वान् जिनमें टी० एन० रामचन्द्रन, केदारनाथ शास्त्री, पुसालकर, स्वामी शंकरानन्द, बुद्ध प्रकाश, शि० रंगनाथ राव आदि उल्लेखनीय हैं, सिंधु-सभ्यता को आर्यों की ही सभ्यता मानते हैं।

बुद्ध प्रकाश तथा कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार ऋग्वेद की बहुत सी सूक्तों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को मुद्राओं के अंकन द्वारा समझाया गया है। हड़प्पा के जिस स्थान में व्हीलर ने मंदिर होने की संभावना बतायी है वहीं के आयताकार राख युक्त अलग-अलग बंटी हुई इमारत की पहिचान बुद्ध प्रकाश ने वैदिक यज्ञवेदी से की है। कालीबंगां और लोथल की खोदाइयों में तो अग्निवेदियों के निश्चित् प्रमाण प्राप्त हुए हैं। कुछ विद्वान् इन्हें यज्ञभूमि मानते हैं। ऋग्वेद के अनुसार सोम यज्ञ की परि-समाप्ति पर पापों से विमुक्ति के लिए अवमृथ स्नान करना पड़ता था। मोहें-जोदड़ो का विशाल स्नानागार ऐसे ही कार्यों के लिए प्रयुक्त रहा होगा। मोहेंजोदड़ो के कुछ स्थलों से जो बर्तनों के ढेर के ढेर मिले हैं वे बुद्ध प्रकाश के अनुसार, यज्ञीय पात्र (कपाल) हो सकते हैं जिन पर यज्ञ के समय पिण्ड अर्पित किये जाते थे। ऋग्वैदिक एवं हड़प्पा संस्कृतियों के शवोत्सर्ग की परंपराओं में भी कुछ समानता थी। बुद्ध प्रकाश ने वैदिक साहित्य में उल्लिखित दास, दस्यु और पणि की सिंधु सभ्यता के व्यापारियों से पहिचान की है जिन्हें ऋग्वेद में लालची, धनी, भेड़िये के समान क्रूर कहा गया है। उनके अनुसार नागरिकों के शोषण और अत्याचार के विरुद्ध ग्रामवासियों ने विद्रोह किया और नगरों को बर्बाद कर दिया। इस संदर्भ में वह यह भी उल्लेख करते हैं कि दिवोदास को 'ऋण-च्युत' अर्थात् लोगों को ऋण से मुक्ति प्रदाता बतलाया गया है।

शि० रंगनाथ राव का मत है कि हड़प्पा सभ्यता में विभिन्न जातियां थीं। इनमें एक जाति भा-योरपीय (इंडो-योरपीय) थी और जिसका उस संस्कृति में अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान रहा। उनके अनुसार आर्य कई समूहों में आये थे और इनमें कुछ ऋग्वेदी आर्यों से भी पहले आ चुके थे। जिस समय ऋग्वेदीय आर्य भारत में आये उस समय तक पहले के आये हुए आर्य यहां के लोगों के साथ घुल-मिल गये थे और वे उनके रहन-सहन और भाषा आदि से बहुत प्रभावित हुए थे। ऋग्वेदीय आर्यों ने उनको असुर, मृध्रवाच् और वैदिक परंपरा को न मानने उल्लिखित वालों के रूप में किया है। वैदिक साहित्य में ही सुरों और असुरों को मूलत. एक ही मूल का माना गया है। राव के अनुसार ऋग्वेद में वर्णित दाश-राज्ञ-युद्ध भी पहले आये हुए आर्यों (पुरुओं) और बाद में आये आर्यों (भरतों) के बीच हुआ था।

राव लोथल का संदर्भ देते हुए कहते हैं कि यहां पर सिंधु सभ्यता के लोगों द्वारा पशु-बलि दिये जाने और अग्निपूजा किये जाने तथा घोड़े और चावल का ज्ञान होने के स्पष्ट साक्ष्य मिले हैं। उनका यह भी अनुमान है कि लोथल के लोग रथों से भी परिचित थे। वे यह भी कहते हैं कि ऋग्वेदीय आर्य भले ही ग्रामवासी रहे हों लेकिन उनसे पहले के आर्य नगरों की जनसंख्या का एक भाग थे। यों सिंधु सभ्यता के हर नगर के आसपास ग्राम थे और स्वयं इस सभ्यता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के लोग भी अंतिम चरण में बहुत कुछ ग्रामीण हो गये थे। उनका कहना है कि लगभग 1900 ई० पू० में आर्यों का एक और समूह आया था। इन आर्यों को अपने अभियान के संदर्भ में सिंधु सभ्यता के लोगों का सामना करना पड़ा था, जिनकी संस्कृति उस समय ह्रासोन्मुख थी। सिंधु सभ्यता की कई जातियों में से एक ऋग्वेदीय आर्यों से पहले के आर्य भी थे। मातृदेवी और शिव अनार्य देवता हो सकते हैं, किंतु पशुबलि और अग्निपूजा आर्यों में ही प्रचलित थी। जहां तक सिंधु सभ्यता के लोगों के लेखनकला से भलीभांति परिचित होने और आर्यों के लेखनकला से अनभिज्ञ होने के तर्क का प्रश्न है, राव के अनुसार यह हो सकता हैं कि आर्य लेखनकला से परिचित थे लेकिन उनके लेख शीघ्र नष्ट होनेवाली वस्तुओं पर लिखे होने के कारण उपलब्ध नहीं हैं। राव के अनुसार इस मत में ज्यादा बल नहीं कि आर्य 1500 ई० पू० में ही आये, यह अधिक तर्क संगत लगता है वे उससे काफी पहले यहां आ चुके थे।

ऑल्चिन और श्रीमती ऑल्चिन का भी कहना है कि कार्बन–14 और अन्य नवीनतम विधियों के प्रचलन के बाद अब सिंधु सभ्यता की जो तिथियां ज्ञात हैं उनसे उसके आर्यों के संपर्क में आने की बात में कोई विरोध तो नहीं ही मिलता है बल्कि उनके अनुसार यह मान लिया जाय कि सिंधु सभ्यता एक सांस्कृतिक इकाई के रूप में लगभग 2150 ई० पू० में प्रारंभ हुई तो आर्य लोग इस सभ्यता के प्रारंभ के प्रेरणा स्रोत के लिए भी उत्तरदायी हो सकते हैं। वे यह भी लिखते हैं कि हाल ही में यूनान और एशिया-माइनर में हुए शोध कार्य से ज्ञात होता है कि इस तिथि के आसपास भा-योरपीय लोगों की हलचल शुरू हो गयी थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिशिष्ट 13

सिंधु सभ्यता के बाद की कुछ उत्तर भारतीय संस्कृतियां

सिंधु सभ्यता के विश्रृंखलन के वाद उत्तर भारत में, इस सभ्यता के क्षेत्र में विभिन्न संस्कृतियों के अवशेष पाये गये हैं। हड़प्पा में 'एच समाधि' संस्कृति, चन्हुदड़ो में क्रमशः झूकर और झांगर संस्कृति, लोथल और रंगपुर में चमकदार लाल रंग के मृद्भांडों की संस्कृति के अवशेष मिले हैं। 'गेरुए भांड' संस्कृति का काफी विस्तार मिला है और उसे ताम्र-निधानों से भी संबद्ध किया गया है। रोपड़ और आलमगीरपुर में सिंधु सभ्यता के बाद कुछ अंतराल से चित्रित धूसर भाण्ड मिले हैं। इन संस्कृतियों का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है।

एच कब्रिस्तान संस्कृति

हड़प्पा में सिंधु सभ्यता के कब्रिस्तान से भिन्न एक और कब्रिस्तान मिला है जिसे 'एच' कब्रिस्तान संस्कृति नाम दिया गया है। इस संस्कृति के धारकों के विषय में अधिक जानकारी नहीं, ज्ञात सामग्री कब्रों में प्राप्त वस्तुओं और शवों तक ही सीमित है। इस तरह के मृद्भाण्ड पहले केवल वहावलपुर के दो स्थानों पर ही प्राप्त हुए थे किंतु अब छिटपुट रूप से ऐसे मृद्भाण्ड पंजाब में रोपड़, बाड़ा, संघोल इत्यादि कई स्थानों में पाये गये हैं। सहारनपुर जिले के आंत्रखेड़ी और बड़ागांव के अवशेषों में कुछ उस तरह के बर्तनों के प्रकार उपलब्ध हैं। सांकलिया के अनुसार बीकानेर और मध्यभारत में भी इस तरह के बर्तन मिले हैं।

इस कब्रिस्तान के दो स्तर थे। 'स्तर दो' पहले का तथा 'स्तर एक' बाद का है। शायद इन स्तरों के बीच समय का अधिक अन्तर नहीं रहा। सबसे निचले स्तर (दो) में शवों को 2·438 मीटर नीचे रखा गया था। शवों को पूरा लिटा कर दफनाया गया था। सामान्यतौर पर शव को पूर्व से पश्चिम या उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम दिशा में लिटाया गया। प्रायः सभी उदाहरणों में मृतकों के साथ भोज्य सामग्री रखी गयी थी। एक क़ब्र में जीवित बकरी रख दी गयी थी। दो कब्रों को छोड़कर सभी में मिट्टी के बर्तन मिले। एक नारी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कंकाल के हाथ में सोने की एक चूड़ी थी। एक शव के तीन दांत सोने के तार से बंधे मिले उसके साथ कुछ मृद्भाण्ड भी मिले। सांकलिया ने प्याले, आधार विहीन तश्तरी, 'फ्लास्क' तथा चपटे ढक्कनों की इसके विशिष्ट बर्तनों में गणना की है। गुहा के अनुसार दूसरे स्तर के कंकाल दीर्घशिरस्कों के हैं; यह बात सिंधु सभ्यता के भी कई शव-कंकालों पर भी लागू होती हैं।

कब्रिस्तान एच के दूसरे स्तर के शव ·61 मीटर से ·91 मीटर की गहराई में थे। इनमें आंशिक शवोत्सर्ग किया गया। इस प्रकार की लगभग 140 समाधियां मिली हैं, जिनमें से लगभग एक दर्जन शव बच्चों के हैं। अस्थियों को मटके में रखने के बाद एक ढक्कन से उसे ढक दिया जाता था। ये मृत्पात्र अच्छी तरह से पकाये हैं और लाल रंग के हैं। इन पर चमकीले रंग का लेप है।

इन मृत्पात्रों पर तरह-तरह के चित्रण हैं। मुख्यतया इन पर पौधे, वृत्त, विन्दु, सीधी तथा त्रिभुजाकार रेखायें इत्यादि हैं। पशु-आकृतियों में बकरी, मोर और मछली विशेष उल्लेखनीय हैं। कुछ मृत्पात्रों पर ऐसे दृश्य चित्रित हैं जिनका संबंध धार्मिक कथानक से हो सकता है। एक में तो मोरों की पंक्ति, नक्षत्र या सूर्य तथा वृत्त के अन्दर मानवाकृति है। एक अन्य बर्तन पर मोर तथा बड़े सींगवाली बकरी चित्रित है।

एक मृत्पात्र बड़े महत्व का लगता है जिस पर एक कथानक का क्रकिक चित्रण है। सर्वप्रथम इसमें दो मोर चित्रित हैं जिनके बाद एक मनुष्य दो गायों को पकड़े खड़ा है। उसके समीप ही एक कुत्ता है। तत्पश्चात् एक विशिष्ट आकृति का सांड है जिसके सींगों पर सात त्रिशूल की सी आकृत्तियां बनी हैं जो ध्वज हो सकते हैं। एक अन्य व्यक्ति दो गायों (या बैलों) तथा एक ध्वज के साथ चित्रित हैं। इस संपूर्ण चित्रण की पृष्ठ भूमि छोटे-छोटे चिह्नों, पत्तियों और टेढ़ी मेढ़ी रेखाओं से भरी हैं। इस चित्रण का अर्थ क्या है यह निश्चित रूप से कहना कठिन है। ऋगवेद के 10वें मंडल में शवविसर्जन संबंधी कुछ सूत्रों की ओर वत्स ने ध्यान दिलाया है। इसके संदर्भ में कुत्ते यम के दूत हो सकते हैं, त्रिशूल आदि के साथ दिखाये गये पशु स्वर्ग के द्योतक, और बकरी मृतक के लिए दिशा खोजने वाला। लेकिन उक्त मंडल में शव दाह का उल्लेख है न कि आंशिक मृद्भाण्ड शव विर्सजन और इसलिए समानता केवल ऊपरी है।

पशुओं की आकृतियों तथा दृश्यांकन में थोड़ी सी समानता कुल्ली संस्कृति में ही उपलब्ध है। वैसे इनकी भाण्डों की कुछ विशेषताएं सुमेरी मृत्पात्रों में भी प्राप्त हैं। रंगपुर के चमकदार लाल रंग वाले बर्तनों से भी किंचित् साम्य उल्लेख्य है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वत्स, जिन्होंने यहां पर खोदाई करायी थी उनकी यह धारणा थी कि उक्त मृदभाण्ड सिंधु सभ्यता के अंतिम चरण के समकालीन हैं जो उसके साथ चलती रही, और इसमें कुछ विदेशी तत्व भी हैं। गार्डन चाइल्ड का अनुगमन करते हुए ह्वीलर ने इस संस्कृति के लोगों की पहिचान आर्यों से करने का सुझाव दिया। उनके अनुसार इस संस्कृति के धारकों का सिंधु सभ्यता के विनाश में योगदान रहा। किंतु ब्रजवासी लाल ने निर्दिष्ट किया कि ह्वीलर द्वारा 1946 में हड़प्पा में कराये गये उत्खननों से एच-समाधि संस्कृति तथा सिंधु सभ्यता का कोई संबंध नहीं प्रमाणित होता है। एच-कब्रिस्तान संस्कृति और आर-37 के क्षेत्र में दोनों को आच्छादित करनेवाली तहें अलग-अलग हैं। सिंधु सभ्यता और एच-समाधि की तह के मध्य लगभग 4 फीट मोटाई की तह का अंतर रहा। इन दोनों संस्कृतियों का परस्पर साक्षात्कार ही नहीं हुआ। अतः लाल ने बताया कि इस संस्कृति के लोगों को विजेता कैसे स्वीकार किया जा सकता है जबकि उस समय जिन्हें विजित माना गया है उन लोगों का अस्तित्व ही शेष नहीं रह गया था।

लाल का दूसरा तर्क यह है कि इस संस्कृति के अवशेष सरस्वती एवं गंगा-यमुना दोआब में नहीं मिले हैं जब कि यह क्षेत्र आर्यों को प्रमुख निवास भूमि रही, केवल बहावलपुर के दो स्थलों से ही इस तरह के पात्र उपलब्ध हुए हैं जबकि आर्यों का विस्तार कहीं अधिक भूभाग पर था। जब लाल ने यह तर्क दिया था तब तो स्थिति ऐसी ही थी, लेकिन अब यह तर्क उतना प्रभावशाली नहीं रहा क्योंकि, जैसा ऊपर कहा गया है, इस तरह के भाण्डों से मिलते-जुलते भाण्ड कुछ अन्य स्थलों से प्राप्त हो चुके हैं।

लाल का तीसरा तर्क यह है कि कतिपय विद्वानों का मत है कि इंडो-आर्य संस्कृति के जन्मदाता उत्तरी स्टैप्स के निवासी थे। उनका सिर बड़ा होता था। किंतु इन समाधियों में जो अस्थिपंजर उपलब्ध हैं उनमें उत्तरी स्टेपी लोगों की विशेषतायें नहीं हैं।

अल्चिन द्वय के अनुसार सिंधु सभ्यता के प्रारंभिक मृद्भाण्डों तथा एच-कब्रिस्तान के मृद्भाण्डों के बीच उतना अंतर नहीं है जितना कि माना जाता है। यह सच है कि भाण्डों के कुछ प्रकार और डिजाइन सिंधु सभ्यता की परंपरा से भिन्न हैं, किन्तु दूसरी ओर मृद्भाण्डों पर लाल लेप और काले रंग से अभिप्रायों की चित्रण विधा सिंधु सभ्यता के मृद्भाण्ड परंपरा के ही अनुरूप हैं। ऐसा लगता है कि सिंधु सभ्यता और नवागंतुकों के कुम्हारों की कला में सामंजस्य स्थापित हो गया था। आल्चिन द्वय का कहना है कि चूंकि कब्रिस्तान-एच के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मृद्भाण्ड टेपे गियान (स्तर II, III) और जमशिदी II के समान हैं अतः कब्रि-स्तान-एच की तिथि 1750 और 1400 ई० पू० के बीच होनी चाहिए।[6]

चंहुदड़ो में सिंधु संस्कृति कालीन भग्नावशेषों को जिन लोगों ने अपना आवास योग्य स्थान चुना वे झूकर संस्कृति के लोग थे। इस संस्कृति के अवशेष 1928 में सिंध के लरकाना से 6 मील दूर झूकर नामक स्थान पर सर्वप्रथम मिले थे। चंहुदड़ो में आकर ये लोग वहीं की पुरानी ईंटों को लेकर और पुराने खंडहरों का जीर्णोद्धार कर रहने लगे थे। वे सांस्कृतिक दृष्टि से हड़प्पा-संस्कृति से भिन्न थे। यह भिन्नता उनके द्वारा बनाये गये मृद्भाण्डों में भी देखने को मिलती है। ज्यामितीय आलेखन यद्यपि हड़प्पा विधा के अनुरूप ही काले रंग से लाल बर्तनों पर किया गया है किंतु भाण्ड हाथ से निर्मित हैं और सिंधु सभ्यता की अपेक्षा घटिया क़िस्म के हैं। इनका निचला भाग अधिकांशतया अच्छी तरह से तराशा गया है। यह विशेषता हड़प्पा संस्कृति के बर्तनों में नहीं मिलती है। इस संस्कृति की भाण्डों के अलंकरण बलूचिस्तान, हड़प्पा-संस्कृति और मेसोपो-टामिया की संस्कृतियों के अधिक निकट है। उदाहरण के लिए दौड़ती हुई लंबे सींगवाली बकरी का चित्रण बलूचिस्तान के पेरियानो घुंडई और मटकों तथा तश्तरियों पर कमल पुष्प जैसा अलंकरण दक्षिणी बलूचिस्तान के जारी-दंब के एक मृद्भाण्ड खंड पर प्राप्त हैं। बड़े-बड़े मटके, साधारण तश्तरियां, प्याले सदृश मटके जिनमें घुंडीदार हत्थे और पालिशदार लेप सिंधु सभ्यता के मृद्भाण्डों के अनुरूप हैं। बर्तनों का साम्य केवल प्रकार तक ही सीमित है, उनकी बनावट, अलंकरण और आकार में काफी भिन्नता है। पीपल पत्र अलंकरण जो हड़प्पा संस्कृति में लोकप्रिय था उसका झूकर संस्कृति में अभाव है। झूकर संस्कृति के बर्तनों पर चित्रित कुछ अभिप्राय आमरी संस्कृति के अभिप्रायों से समानता रखते हैं। इनमें लाल रंग की मोटी रेखाओं से बनाये तुल्य चतुर्भुज (rhomb), सनाल पुष्प, लटकन जैसे अभिप्राय सम्मिलित हैं। यों मेसोपोटामिया के टेल हलफ और झूकर संस्कृति के बर्तनों में आकार-प्रकार में कोई समानता नहीं है, लेकिन कुछ अभिप्रायों में समानता है जैसे मोटी लाल रंग की रेखाओं का क्षैतिजीय विभाजन, चेक, टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएं, तुल्य चतुर्भुज, समतल लंबवत छाया जो सबसे पहले मेसोपोटामिया के बर्तनों पर ही मिलती है।

झूकर संस्कृति के मृद्भाण्ड कुछ अन्य संस्कृतियों के मृद्भाण्डों से भी थोड़े-बहुत मिलते-जुलते हैं लेकिन इसे किसी संस्कृति विशेष से संबद्ध करना कठिन है। मैलोवन का विचार है कि टेल हलफ प्रकार के मृत्पात्रों (जिसका उद्भव सीरिया में हुआ था) के निर्माता घुमक्कड़ थे और उनका संपर्क भारतीयों तथा बलू-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चियों के साथ हुआ । झूकर संस्कृति के अवशेषों से कुछ पत्थर की मुद्राएं भी प्राप्त हुई हैं जिनमें से दो उदाहरण छेददार मुद्राओं के हैं । इन्हें मैके ने सिंधु संस्कृति के प्रभाव का द्योतक माना है। इन पर अभिप्राय के तौर पर मोर, मानव, पशु, हरिण, लम्बे सींगवाली बकरी, संयुक्त पशु और दो बैलों की आकृतियां हैं । ये सिंधु संस्कृति की मुद्राओं पर अंकित अभिप्रायों से भिन्न हैं । इनकी बनावट शाही तम्प और एलम कैम्पेडोसिया की मुद्राओं के समान हैं । इसके अतिरिक्त चंहुदड़ों से प्राप्त हत्थे के लिए छिद्रवाली कुल्हाड़ी के समान कुल्हाड़ियों के उदाहरण पश्चिमी एशियायी देशों में ही प्राप्त हैं ।

चंहुदड़ो को झूकर के बाद झांगर संस्कृतिवालों ने अपना निवासस्थान चुना । इस संस्कृति के सर्वप्रथम अवशेष चंहुदड़ो से उत्तर-पूर्व लगभग 43 मील दूर झांगर नामक स्थान से पाये गये थे । इस संस्कृति के अवशेषों के साथ रंगीन मृद्भाण्ड नहीं पाया गया है । उनके कुछ मृद्भाण्डों पर चाकलेट क्रीम या हल्के लाल रंग का लेप मिलता है । कुछ जुड़वा बर्तन भी मिले हैं । जिनके सादृश्य हमें बलूचिस्तान के लाल रंग के मृद्भाण्डों में प्राप्त हैं । काजल (?) के लिए प्रयुक्त वर्तनों को छोड़कर प्रायः सभी बर्तन धीरे-धीरे चलते हुए चाक पर बनाये गये थे । इन पर रेखांकन मिलता है । उनके भौतिक संस्कृति के अन्य उपादानों के विषय में जानकारी नहीं है । शायद वे लोग झोपड़ियों में रहते थे । मैके ने झांकर संस्कृति को भील जैसे आदिवासी लोगों की संस्कृति होने की संभावना बतायी है ।

इधर काठियावाड़ और कच्छ क्षेत्र में सिंधु संस्कृति के आकस्मिक अन्त का कोई प्रमाण नहीं है । अपितु वहाँ के निवासियों ने सिंधु संस्कृति के ही तत्वों को नया रूप और रंग देकर एक नयी परंपरा का प्रारंभ किया । अब वे चमकीले लाल भाण्डों का निर्माण करने लगे थे । पहले चरण में इनका अल्प मात्रा में निर्माण हुआ, बाद के चरण में (II C) वह विशाल पैमाने पर बनने लगे । प्याले, तश्तरियां और मटके की आकृतियां कुछ बदली बनायी गयीं । और चित्रण वर्तनों के ऊपरी भाग में सीमित हो गया । चित्रणों में सीढ़ी, त्रिअरीय डिजाइन, प्रतिच्छेदी लटकन, छाया किये हीरक, अपुष्पपर्ण तिरछी और लहरीय रेखाओं के साथ कुछ पौधों को वरीयता दी गयी ।

साधार प्याले और तश्तरियां राजस्थान के आहाड़ II में प्राप्त इस तरह के भाण्डों के समान हैं । उल्लेख्य है कि इस तरह के प्याले और तश्तरियां रोपड़ तथा हड़प्पा (आर–37) की समाधियों से भी उपलब्ध हैं । प्यालों और तश्तरियों को तिर्यक, लहरिया, सीढ़ीनुमा, अभिप्रायों से अलंकृत किया गया ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तश्तरियों के किनारे में गोलाई आ गयी। 'काले और लाल' मृद्भाण्ड जो इससे पहले चरण में बहुत थोड़ी संख्या में मिले थे काफी संख्या में मिले।

चमकीले लाल मृत्पात्रों के साथ मनके, मृण्मूर्तियां और लघुपाषाण उपकरण भी मिले हैं। कांचली मिट्टी और सेलखड़ी के मनकों का स्थान मिट्टी के मनकों ने ले लिया था जो उनकी बिगड़ी आर्थिक दशा का द्योतक हो सकता है। मृण्मूर्तियों में लोथल से एक घोड़े (चरण III) की आकृति का मिलना विशेष महत्त्वपूर्ण है। अब घर कच्ची मिट्टी से बनाये जाने लगे थे। नालियों की योजना और फर्श का ईंटों द्वारा निर्माण यह अतीत बातें रह गयी थीं।

लोथल और रंगपुर के अतिरिक्त सोमनाथ के निकट हिरण्या नदी के तट पर प्रभास और राजकोट के समीप भादर नदी के तट पर रोजदी की खोदाइयों से भी हड़प्पा संस्कृति के बाद की सामग्री उपलब्ध हुई है। प्रभास II के मृत्पात्रों में क्रमिक ह्रास दिखलायी देता है। वहां से उपलब्ध प्यालों पर फलकों में चित्रण है जो मालवा संस्कृति के साथ सम्पर्क होने का परिचायक है। रोजदी में निम्नतम स्तरों में तो हड़प्पा संस्कृति की विशेषताएँ रहीं किंतु आगे चलकर अंतिम स्तर में चमकीले लाल भाण्ड के साथ सफेद चित्रित 'काले और लाल भाण्ड का प्रसार हुआ।

वाड़ा (पंजाब) में प्राप्त अवशेष उत्तर हड़प्पा कालीन हैं। पिछले वर्षो में यहां पुनः उत्खनन कराने और अन्य स्थानों से प्राप्त सामग्री का समकालिक अध्ययन करने से शर्मा इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि वाड़ा संस्कृति में कुछ तत्त्व प्राँग् हड़प्पा संस्कृति की परंपरा में हैं, जिसके सादृश्य बलूचिस्तानी संस्कृतियों में प्राप्त हैं। यह परंपरा ग्रामीण संस्कृति के रूप में हड़प्पा संस्कृति के नागरिक जीवन के साथ-साथ चलती रही और कालान्तर में सिंधु सभ्यता के विशृंखलित होने के बाद इस संस्कृति के तत्व कुछ अधिक उभरे। अब तो वाड़ा की तरह के मृद्भाण्ड सतलज घाटी से लेकर दिल्ली के आस-पास कई स्थानों पर पाये गये हैं। इस संस्कृति में सिंधु सभ्यता के कुछ तत्व भी आत्मसात हो गये, जैसे वर्तनों के कुछ आकार प्रकार और चित्रित अभिप्राय।

बड़ागांव और आंबखेड़ी, जिनका परीक्षात्मक उत्खनन कराने का श्रेय मधुसूदन नरहर देशपाण्डे को है, से गेरुए मृद्भाण्ड मिले। साथ ही कुछ मृद्भाण्डों में हड़प्पा संस्कृति के अंतिम प्रकाल की तथा कुछ कब्रिस्तान एच और झूकर संस्कृत के मृद्भाण्डों की विशेषतायें भी देखी गयी हैं। बड़गांव के निम्नतम स्तर में अलंकरण की विविधता से युक्त मृत्पात्र खंड मिले जिन्हें साधारण तौर पर ग्रीवा से मोटी रेखाओं द्वारा चित्रित किया गया था। यहां के ऊपरी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्तरों से बर्तनों पर आंवखेड़ी से साधार प्याले, मुड़े हुए किनारेवाले छिछले पात्र, छोटे प्याले और बर्तन, रस्सी के निशान के तरह के अभिप्रायवाले भाण्ड और फैले (flaring) किनारे वाले पात्र पाये गये हैं। मृण्मय कूवड़ा बैल और कुछ मृत्पिड (केक) की प्राप्ति सिंधु सभ्यता की निकटता के द्योतक हैं। उत्खननों में ताम्र निर्मित कोई वस्तु नहीं पायी गयी है। कुछ चर्ट फलक अवश्य मिले हैं। आंवखेड़ी के निवासी ईंटें बनाना व पकाना जानते थे। उन्होंने इनसे चूल्हे तो बनाये किंतु मकान नहीं।

उत्खनन के निदेशक देशपाण्डे का विचार है कि बड़गांव की वस्तुएं हड़प्पा संस्कृति के अंतिम प्रकाल की तथा आंवखेड़ी की ह्रासोन्मुख सिंधु संस्कृति की परिचायक लगती हैं। उत्खननों से कुछ अनगढ़ लाल भाण्ड पाये गये हैं जिनपर उभारदार लहरिया अलंकरण है। इससे मिलता-जुलता अलंकरण परवर्ती कालीन कुछ चित्रित धूसर भाण्डों पर भी देखा गया है।

सिंधु सभ्यता के बाद की संकृतियों में गेरुए मृद्भाण्ड संस्कृति का कम महत्त्व नहीं है। ये भाण्ड कुछ विद्वानों के अनुसार दीर्घ काल तक जलमग्न अवस्था में रहने के फलस्वरूप बहुत जीर्ण शीर्ण दशा में मिले हैं। यह लगभग 1,35,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में पाये जा चुके हैं। यह हरियाणा, पंजाब, राजस्थान और उत्तर प्रदेश में मिले है। उत्तर प्रदेश में ऐसे मृद्भाण्ड बहादराबाद, आंवखेड़ी और बड़गांव, हस्तिनापुर, अहिच्छत्रा तथा अतरंजीखेड़ा के उत्खननों से भी प्राप्त हुए हैं। कुछ स्थलों पर वे लौह युग के प्रारंभिक काल की चित्रित धूसर भाण्ड के प्रयोग करनेवाली संस्कृति के नीचे कुछ अंतर के साथ पाये गये हैं। बहादराबाद में गंगा नहर की खादाई के दौरान एक ताम्रोपकरण निधान की प्राप्ति हुई थी। यह जानने के लिए कि इनके साथ और कौन-सी भौतिक सामग्री संबंधित है वहां पर एक परीक्षात्मक उत्खनन किया गया। इस उत्खनन में गेरुए रंग के मृत्पात्र उपलब्ध हुए। राजपुर पार्शु (कानपुर जिले में) जहाँ पर पहले एक ताम्र निधि पायी जा चुकी थी के उत्खननों से ऐसे ही प्रमाण मिले हैं। अब सैफाई की खोदाई से ताम्रोपकरण निधान के कुछ उपकरण और गेरुए रंग के मृत्पात्रों के एक साथ मिलने से दोनों का एक ही संस्कृति के होने की संभावना बढ़ी है। हस्तिनापुर और कुछ अन्य स्थलों में ये भाण्ड चित्रित धूसर भाण्ड से नीचे (पहले) के स्तरों में मिले हैं।

निधानों में प्राप्त ताम्र उपकरण निम्नलिखित हैं—चपटी कुल्हाड़ियां, लम्बी कुल्हाड़ियां, 'कंधे' वाली कुल्हाड़ियां, फैली मूंठवाली तलवार, हारपून, छल्ले और मानवाकृति। इनमें से लम्बी कुल्हाड़ियां (छेनियां) और चपटी कुल्हाड़ियां सिंधु

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सभ्यता में भी मिलती हैं। उपर्युक्त उपकरणों के प्राप्ति स्थानों का क्षेत्र काफी व्यापक है। अबतक के साक्ष्यों के अनुसार यह पंजाब, राजस्थान, गंगा-यमुना की घाटी, बिहार, उड़ीसा और हैदराबाद के क्षेत्र में विभिन्न स्थलों के उपलब्ध हो चुके हैं।

हाइने गेल्डेर्न का विचार था कि यह उन आर्यों के आगमन के सूचक हैं जो काकेशस (रूस) और पश्चिमी ईरान से भारत लगभग 1200–1000 ई० पू० आये। उनके मत का आधार पंजाब और पश्चिमी एशिया के ताम्रोपकरणों में समानता मानना था। प्रारंभ में स्टुअर्ट पिगट ने इसी मत को स्वीकार किया था किंतु आगे चलकर उन्होंने अपनी धारणा बदल दी और यह सुझाव दिया कि ये हड़प्पा-संस्कृति के उन विस्थापित लोगों के चिह्न हैं जिन्होंने पश्चिम की ओर से हुए आक्रमणों से बचने के लिए पूर्व की ओर गंगा घाटी में आश्रय लिया। राव भी इन्हें ह्रासोन्मुख सिंधु सभ्यता के लोगों की कृतियां मानते हैं। मिर्जापुर की एक प्रागैतिहासिक गुफा में गैंडे के शिकार के दृश्य में कांटेदार हारपून के चित्रण के आधार पर ब्रजवासी लाल ने यह मत व्यक्त किया है कि इन ताम्र उपकरणों के निर्माता मुण्ड आदिवासी थे जिनका विस्तार किसी समय उत्तरी भारत के विस्तृत क्षेत्र में था। स्वराज्य प्रसाद गुप्त भी इन्हें मुण्ड जाति की कृति मानते हैं। उनका सुझाव है कि ताम्रोपकरण निधान के उपकरणों का निर्माण बिहार में हुआ जहां पर ताम्र की खदाने भी थीं। सर्वप्रथम साधारण किस्म के औजार कुल्हाड़ियां आदि बनायी गयीं तत्पश्चात इन्हीं से गंगा-घाटी में विकसित औजारों का निर्माण हुआ। 'मानवाकृति' उपकरण इसी वर्ग में रखा जा सकता है।

इस संदर्भ में खुर्दी (राजस्थान के नागौर जिले में) को ताम्रोपकरण निधान का उल्लेख करना असंगत न होगा जिसमें कुछ नालीदार आकर्षक प्याले प्राप्त हुए हैं। इस तरह के मृण्मय तथा धातु निर्मित प्याले ईरान के गियान-प्रथम और सियाल्क (नेक्रोपोलिस 'बी') में विशेष लोकप्रिय थे। ताम्रोपकरण निधान के लोगों का सम्पर्क मध्य भारतीय ताम्राश्म संस्कृति के साथ भी हुआ था। कुछ चपटी कुल्हाड़ियां नावदाटोली के उत्खनन में मिले थे। सांकलिया का विचार है कि इनका सम्बन्ध पुलिंद जाति से रहा होगा क्योंकि यह क्षेत्र प्राचीन काल से इस जाति का कार्यस्थल रहा है। किंतु इन कुल्हाड़ियों पर वृत्ताकार छिछले गर्त मिले हैं जो ताम्र निधानों की कई कुल्हाड़ियों पर मिली हैं। इसे ताम्रनिधि संस्कृति एवं मध्य भारत की ताम्र-पाषाण संस्कृति के मध्य सम्पर्क का द्योतक मानना युक्तिसंगत लगता है। मीताथल (हरियाणा) में भी अंतिम हड़प्पा संस्कृति के संदर्भ में ताम्र-संचय के उपकरण मिले हैं और चांदोली से 'मध्य-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय ताम्रश्म संस्कृति के संदर्भ में जैसा ऊपर कहा जा चुका है, कुछ विद्वान गेरुए मृद्भाण्ड को ह्रासोन्मुखी सिंधु सभ्यता के लोगों की कृति मानते हैं, किंतु अभी तक ऐसा कोई स्थल नहीं ज्ञात है जहां पर सिंधु और गेरुए मृद्-भाण्ड संस्कृतियों के बीच की निश्चित कड़ी मिली हो। हस्तिनापुर में लाल ने गेरुए भाण्ड की तिथि 1200 ई० पू० आंकी थी। ताम्रोपकरण समूह के मानवाकृति से बहुत मिलता-जुलता उपकरण लोथल में उपलब्ध हुआ है जिसकी तिथि लगभग 1900 ई० पू० आंकी गयी है। अभी हाल ही में अतरंजी खेड़ा, लालकिला, झिझन तथा नसीरपुर से कुछ मृद्भाण्ड खंडों को लेकर तापसंदीपनी विधि से तिथिकरण किया गया है। अधिकांश तिथियां 2000 ई० पू० के पहले पड़ी हैं, तीन तिथियां 2000 ई० पू० से 1500 के बीच की तथा दो 1500 ई० पू० के बाद की हैं (देखिये परिशिष्ट 11)।

रोपड़ और आलमगीरपुर में सिंधु सभ्यता के बाद जो नवागंतुक आये जो लौह के प्रयोग से परिचित थे और एक विशिष्ट प्रकार के भाण्ड 'चित्रित धूसर भाण्ड' का प्रयोग करते थे। इनकी सर्वप्रथम उपलब्धि अहिच्छत्रा के सन् 1941-44 के उत्खननों में हुई थी। ब्रजवासी लाल को हस्तिनापुर (जिला मेरठ) की खोदाइयों में इस प्रकार के भाण्ड गेरुए रंग के पात्रों के बाद कुछ अंतर से, और काले ओपदार उत्तर भाण्ड के स्तरों के नीचे मिले थे। अब तक इनकी प्राप्ति पानीपत, इन्द्रप्रस्थ, तिलपत, सोनपत, बैराट, नोह, कौशाम्बी, श्रावस्ती इत्यादि कई अन्य स्थलों में हो चुकी है। उज्जैन में भी सर्वेक्षण के दौरान सतह से अत्यल्प संख्या में इस तरह के मृद्भाण्ड खंड प्राप्त हुए हैं। इनके कई प्राप्ति स्थल ऐसे हैं जिनका महाभारत में उल्लेख है। लाल ने हस्तिनापुर के उत्खननों से प्राप्त चित्रित धूसर-भाण्ड की तिथि 1100-800 ई०पू० निर्धारित की थी। इधर कुछ स्थानों के उत्खननों से कार्बन-तिथियां ज्ञात हुई हैं। अतरंजीखेड़ा (जिला एटा) में इस संस्कृति के प्रारंभिक स्तर की तिथि 1025 + 110 ई०पू० और अंतिम स्तर की 535 ई०पू० पायी गई है। नोह (भरतपुर) की कार्बन–14 तिथि 821 से 604 ई०पू० के बीच और अहिच्छत्रा की 475 ई०पू० ज्ञात हुई है। विभिन्न कार्बन–14 तिथियों का परीक्षण कर अब कुछ पुरातत्ववेत्ता इस संस्कृति का प्रारंभ लगभग 800 ई०पू० मानने के पक्ष में हैं। चित्रित धूसर-भाण्ड का निर्माण विशुद्ध और अच्छी तरह घुटी हुई मिट्टी द्वारा किया गया था। ये ऐसे बंद भट्ठों में पकाये गये थे जिनमें ताप को शनैः शनैः कम करने की व्यवस्था थी। बर्तनों में प्रमुखतया छिछली और गहरी तश्तरियां और कटोरे मिले हैं इन पर काले रंग से स्वस्तिक, वृत्त, बिंदु, लहरदार रेखाओं आदि का ज्यामितीय अलंकरण मिलता है। इस संस्कृति के संदर्भ में लोहे के बाणाग्र, छेददार चूल,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और भाले के फल मिले हैं। नोह से कुल्हाड़ियां भी मिली हैं। पत्थर के उपकरण नहीं मिले। तांबे की वस्तुओं में बाणाग्र, पिन और अंजनशलाकाएं उल्लेखनीय हैं। शीशे के मनके और चूड़ियां भी बनाये गये थे। कुछ वस्तुओं की पहचान खेल की गोटी से की गयी है। विस्तृत खोदाई के अभाव में आवास व्यवस्था की विशेष जानकारी नहीं, किंतु इतना स्पष्ट है कि भवन मिट्टी और लकड़ी से बने थे। अन्नों में चावल से भी परिचित थे। मांस भोजन भी प्रचलित था खिलौने गड़ियों से आवागमन के लिए पहियों वाली गाड़ी का प्रयोग होने का अनुमान लगा सकते हैं।

हस्तिनापुर-उत्खनन के निदेशक लाल ने चित्रित धूसरभाण्ड का आर्य संस्कृति का परिचायक होने की संभावना व्यक्त की थी। इस भाण्ड से कुछ मिलते जुलते भाण्ड सिसली, शाही तम्प (बलूचिस्तान) और हाल ही में गंधार प्रदेश में ज्ञात 'गंधार-कब्रिस्तान संस्कृति' के संदर्भ में मिले हैं। लेकिन इस संस्कृति के धारकों के बारे में निश्चित धारणा बनाने से पूर्व विस्तृत सर्वेक्षण एवं उत्खनन अपेक्षित है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुख्य संदर्भ-ग्रंथ सूची

1. Agrawal, D. P., *The Copper Bronze Age in India*, (Delhi, 1971).
2. Agrawal, D. P. and Ghosh, A. (ed.), *Radio-Carbon and Indian Archaeology* (Bombay, 1973).
3. Agrawal D. P. and Kusumgar, S., *Prehistoric Chronology and Radio-Carbon dating in India* (Delhi, 1974).
4. अग्रवाल, धर्मपाल तथा अग्रवाल, पन्नालाल, **भारतीय पुरैतिहासिक पुरातत्त्व** (लखनऊ, 1975).
5. Allichin, Bridget and Raymond, *The Birth of Indian Civilization* (Harmondsworth, 1968).
6. Childe, V. G., *New Light on the Most Ancient East* (New York, 1957).
7. Fairservis, W. A, *The Roots of Ancint India*, (New York 1971).
8. Gordon, D. H., *The Prehistoric Background of Indian Culture* (Bombay, 1958).
9. Gupta, S. P., *Disposal of the Dead and Physical Types in Ancient India* (Delhi, 1972)
10. काला, सतीशचन्द्र, **सिंधु सभ्यता** (इलाहाबाद, 1955).
11. Mackay, E. J. H., *Early Indus Civilization*, 2nd ed., (London, 1948).
12. Mackay, E. J. H., *Chanhudaro Excavations, 1935-36* (New Haven, 1943).
13. Mackay, E. J. H., *Further Excavations at Mohenjodaro*, 2 vols, (Delhi, 1934-38).
14. Marshall, J. (ed.) *Mohenjodaro and the Indus Civilization*, 3 vols. (London, 1931).
15. Misra, V. N. and Mate M. S. (ed.) *Indian Prehistory : 1964* (Poona, 1965).

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

16. Piggott, S., *Prehistoric India* (Harmondsworth, 1961).
17. Majumdar, R. C. and Pusalker, A. D., (ed.) *The History and Culture of the Indian, People, Vol. I, The Vedic Age* (London, 1951).
18. Rao, S. R., *Lothal and the Indus Civilization* (Bombay, 1973).
19. Sankalia, H. D., *Prehistory and Proto-history of India and Pakistan*, 2nd ed. (Poona, 1974).
20. Sastri, K. N., New Light on the *Indus Civilization*, 2 Vols. (Delhi, 1957, 1965).
21. शास्त्री, केदारनाथ, **सिंधु सभ्यता का आदि केंद्र हड़प्पा** (देहली, 1959).
22. Vats, M. S., *Excavation at Harappa*, 2 Vols. (Delhi, 1940).
23. Wheeler, R. E. M., *Erly India and Pokistan* (London, 1959).
24. Whecter, R. E. M., *Civilization of the Indus Vally and Beyond* (London, 1965).
25. Wheeler, R. E. M., *The Indus Civilization* (Supplementary volume to Cambridge History of India) 3rd ed. (Cambridge, 1968).

सिंधु सभ्यता संबंधी विस्तृत ग्रंथ-सूची एवं लेख-सूची के लिए देखिए B. M. Pande and K. S. Ramchandran, *Bibliography of the Harappan Culture* (Florida, 1971).

State Museum Library * Lucknow *

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

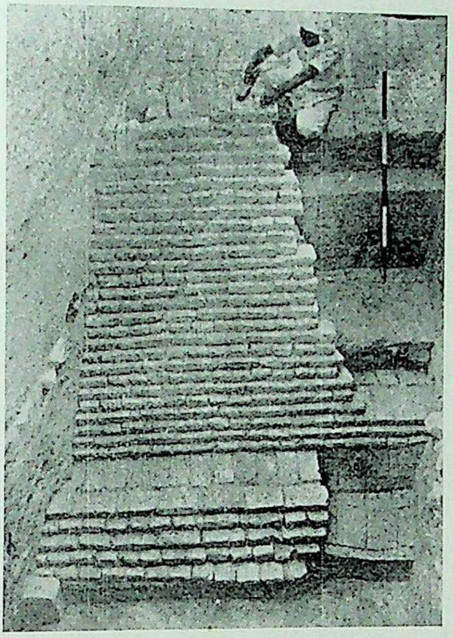

1. कच्ची ईंटों की सुरक्षा दीवार (दो चरण), हड़प्पा (एं. इ.)

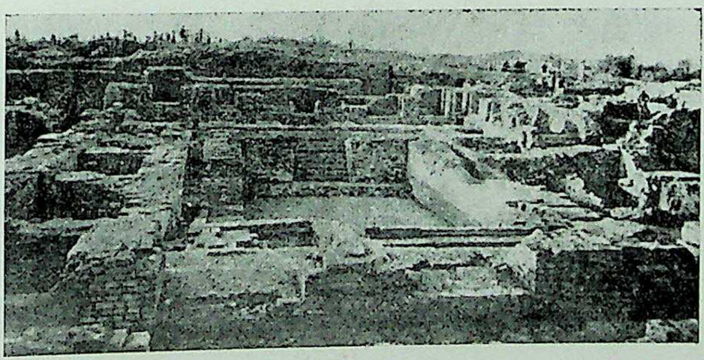

2. विशाल स्नानागार, मोहेंजोदड़ो (मो. इं. सि. XXI, B)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

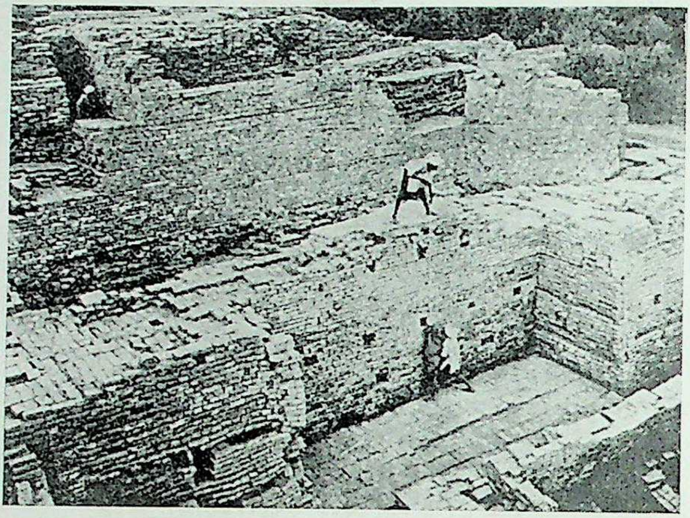

1. विशाल अन्नागार का एक भाग, मोहेंजोदड़ो

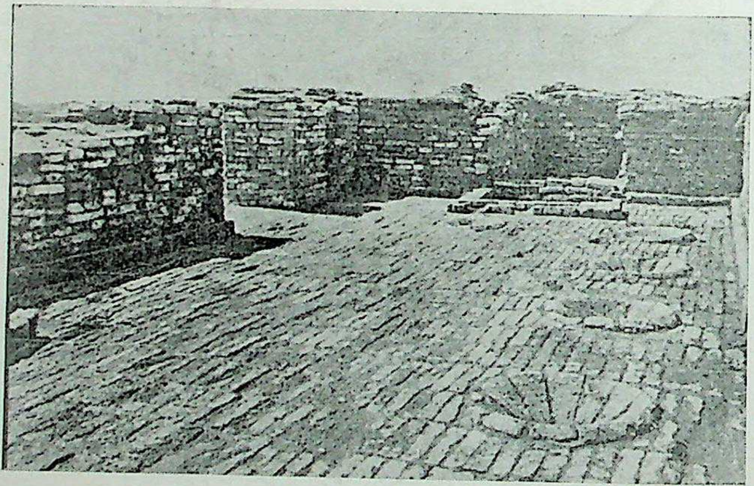

2 अन्न कूटने के लिए ईंटों के वृत्ताकार चबूतरे, हड़प्पा (मो. इं. सि. LIVA)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

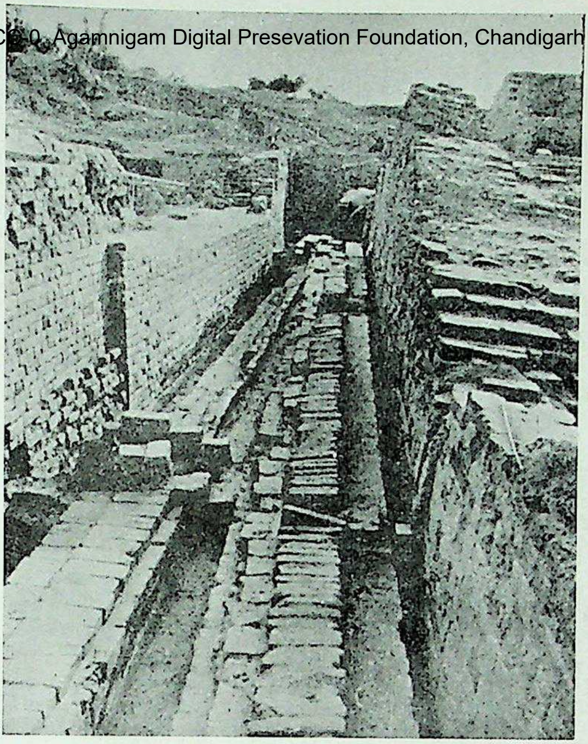

1. ढकी नाली, मोहेंजोदड़ो

2. टोड़ा मेहराब, मोहेंजोदड़ो (मो. इं. सि. XXIV, b)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

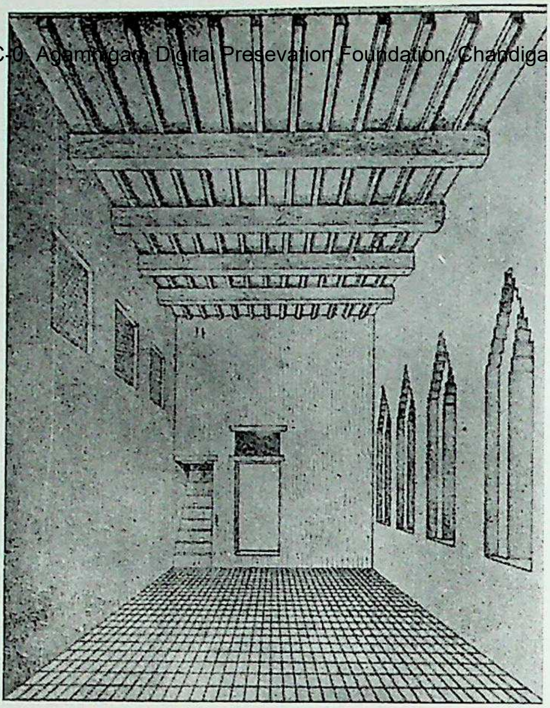

1. एक हाल के भीतरी भाग का पुनर्गठन, मोहेंजोदड़ो (मो. इं. सि. LXIII)

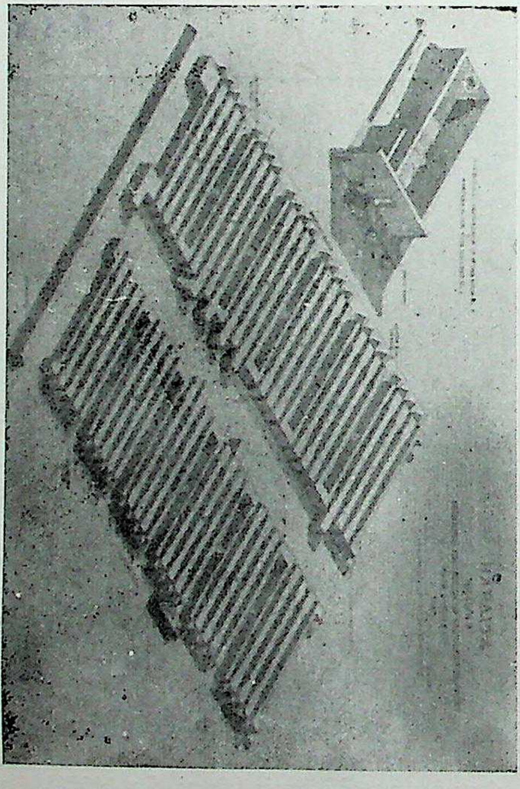

2. अन्नागार, हड़प्पा (ए. ह. VI.)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

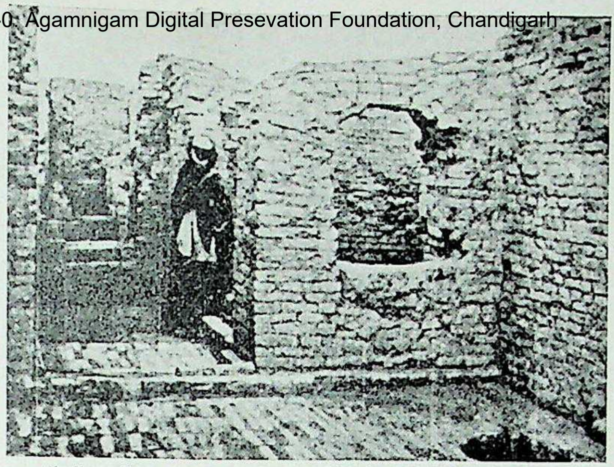

1. भवन में खिड़की का एक उदाहरण, मोहेंजोदड़ो (मो. इ. सि. LV, C.)

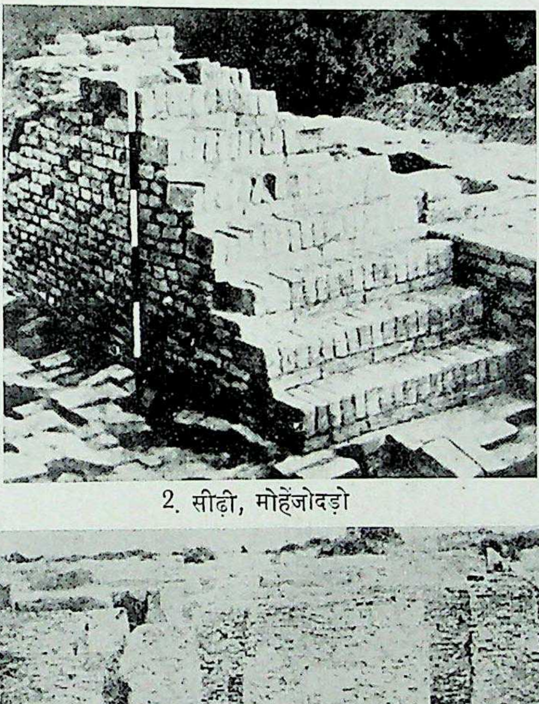

2. सीढ़ी, मोहेंजोदड़ो

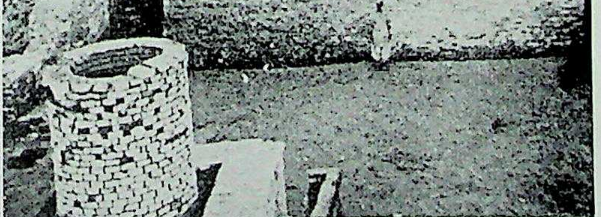

3. घर के भीतर कुआँ, मोहेंजोदड़ो (फ. ए. ए. मो. XL a)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

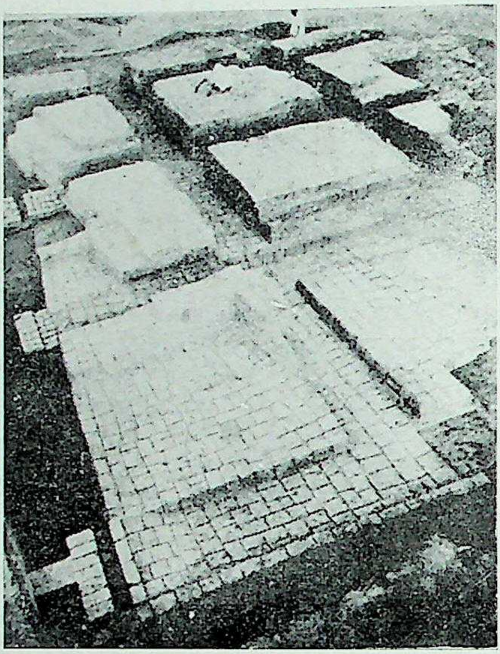

1. भाण्डागार के अवशेष, लोथल (लो. इ. सि. IX A)

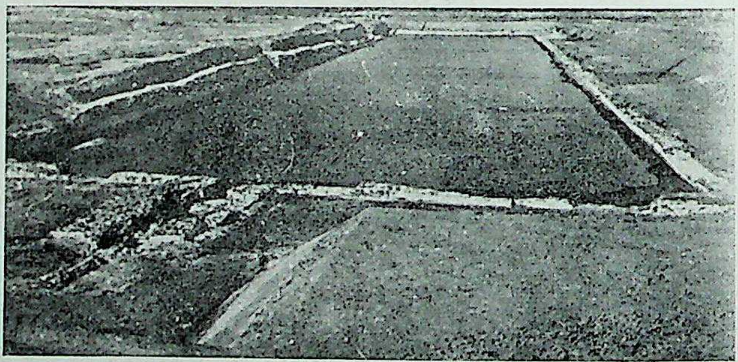

2. गोदीवाड़ा, लोथल (ह्वीलर, इं. सि.)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

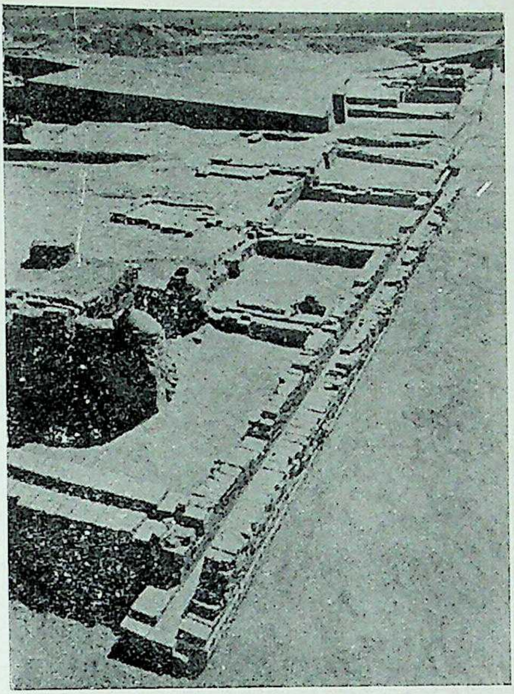

1. नालियाँ, लोथल (ललितकला)

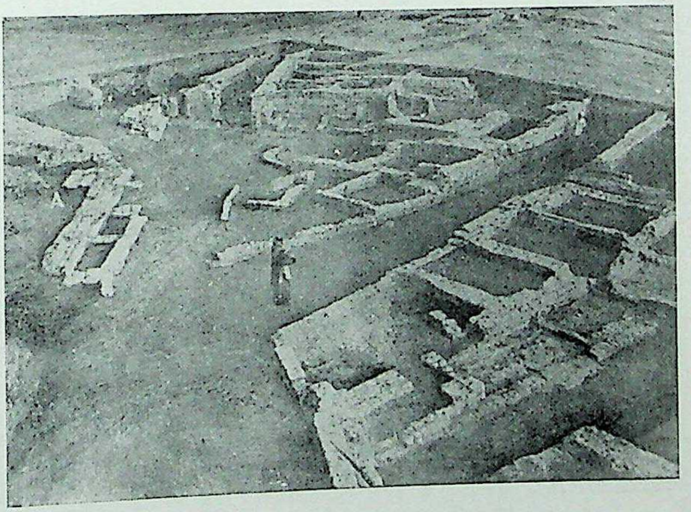

2. भवन और सड़कें, कालीबंगां (इ. आ. रि.)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

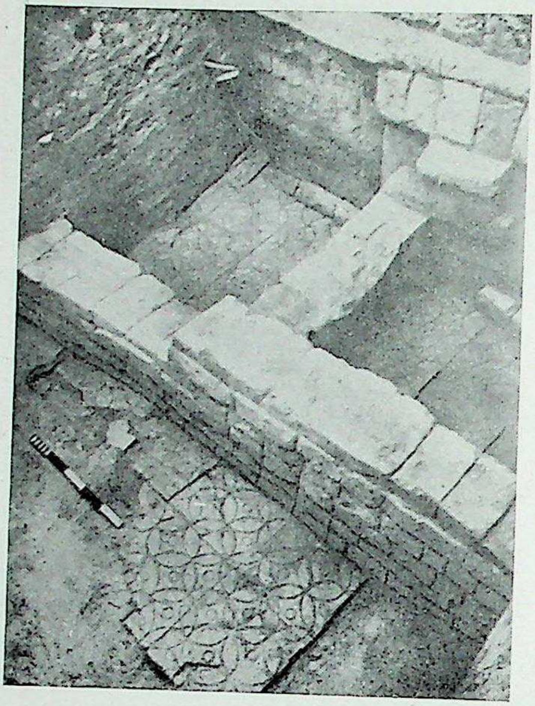

1. अलंकृत ईंटों से निर्मित फर्श, कालीवंगां (कल्चरल फोरम)

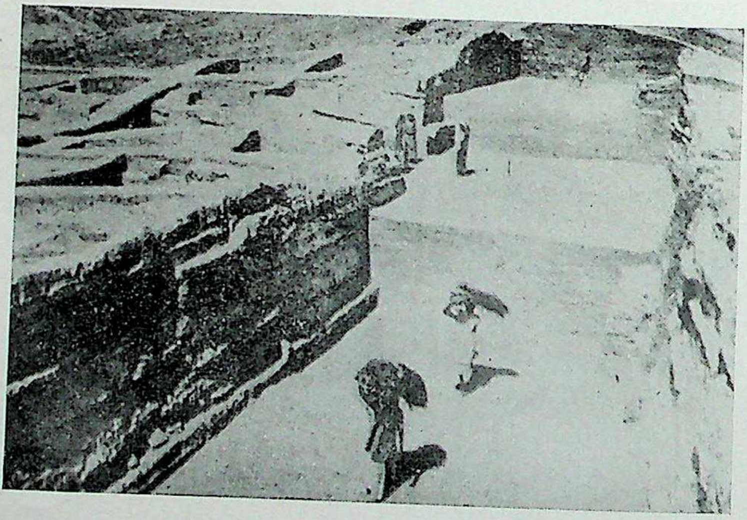

2. सड़क, कालीवंगां (इ. आ. रि.)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

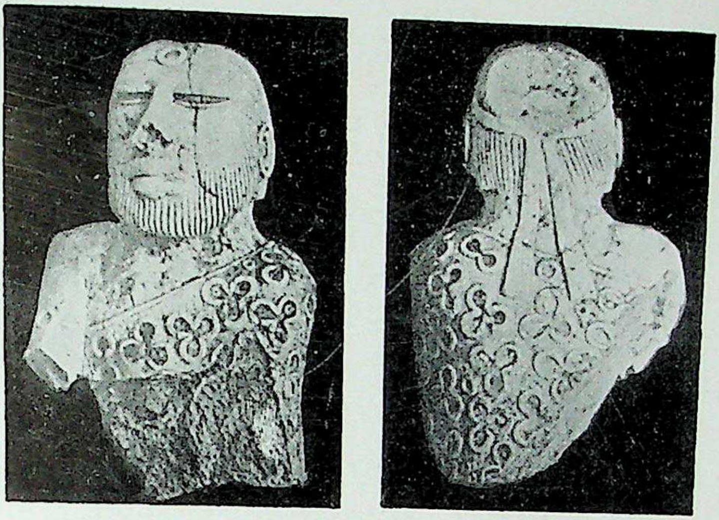

1

2

3

1. योगी (पुरोहित), मोहेंजोदड़ो (मो. इ. सि. XCVIII, 1-2)
2. पत्थर का धड़ (नर्तकी ?) हड़प्पा, (ए. ह.)
3. लाल बलुआ पत्थर का धड़, हड़प्पा (ए. ह.)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

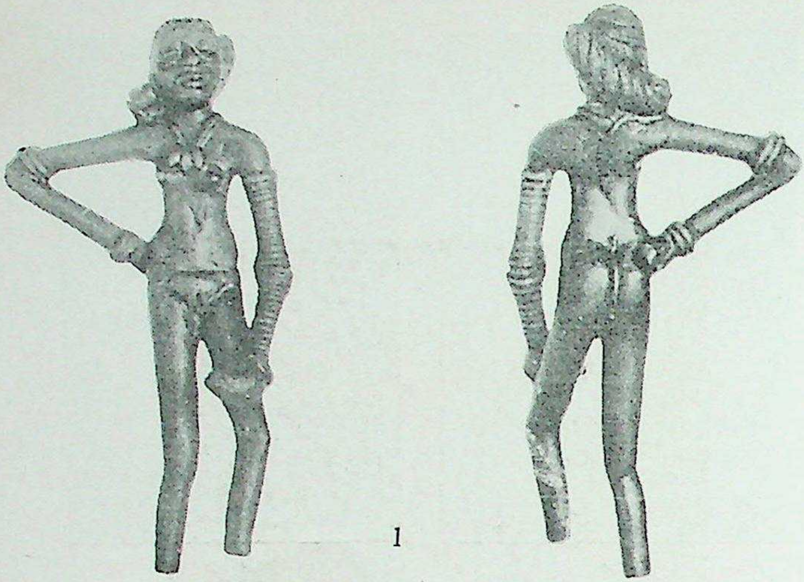

1

2

1. कांस्य नर्तकी, मोहेंजोदड़ो (मो. इं. सि. XCIV, 6-8)
2. पुरुष शीर्ष मोहेंजोदड़ो, (मो. इं. सि. XCIX, 4-5)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नारी (मातृदेवी), मृण्मूर्ति (मो. इं. सि. XCIV, 14)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

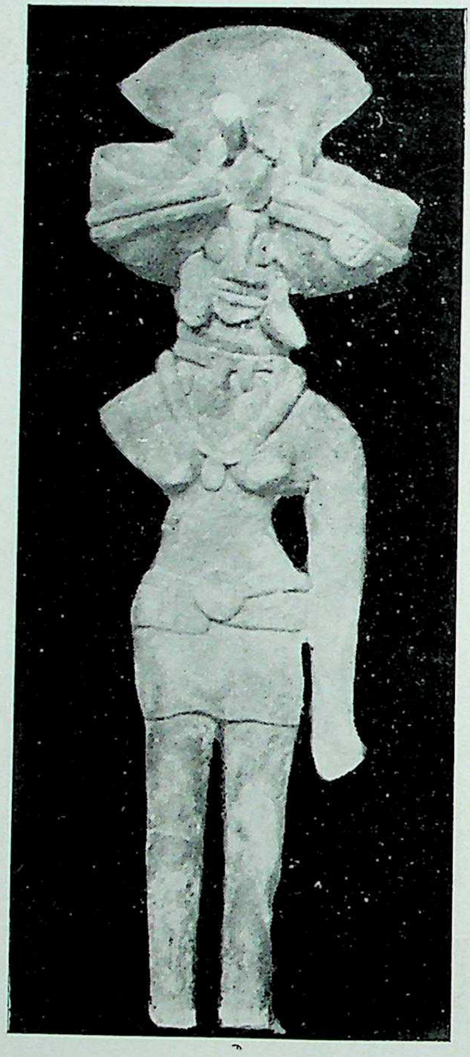

नारी (मातृदेवी), मृण्मूर्ति, मोहेंजोदड़ो
(फ़. ए. मो. LXXV, 21)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

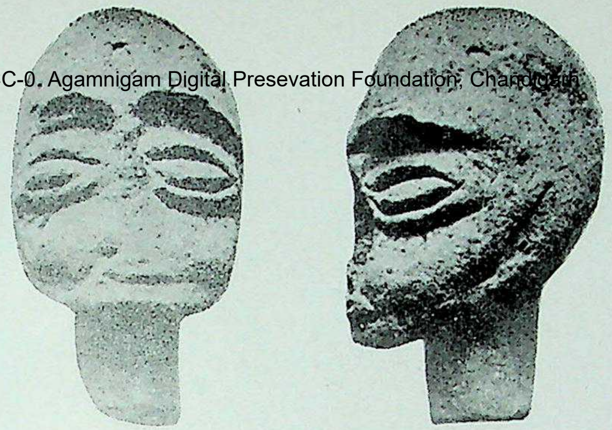

1

2

3

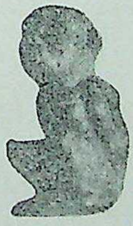

4

1. मृण्मय शीर्ष, चन्हुदड़ो (ए. च.)
2. मृण्मय शीर्ष, मोहेंजोदड़ो (फ. ए. मो. LXXIV, 21)
3. गिलहरी, काँचली मिट्टी, हड़प्पा (ए. ह. LXXVIII 29)
4. बंदर, काँचली मिट्टी, मोहेंजोदड़ो (मो. इं. सि. XCVI, 13)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

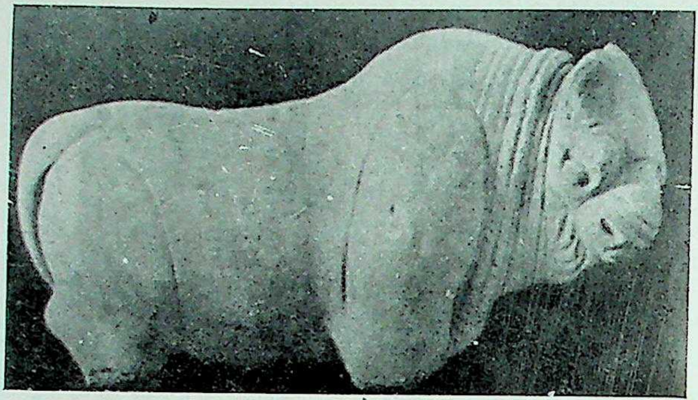

1. वृषभ मृण्मूर्ति, मोहेंजोदड़ो (मो. इं. सि. XCVII, 23)

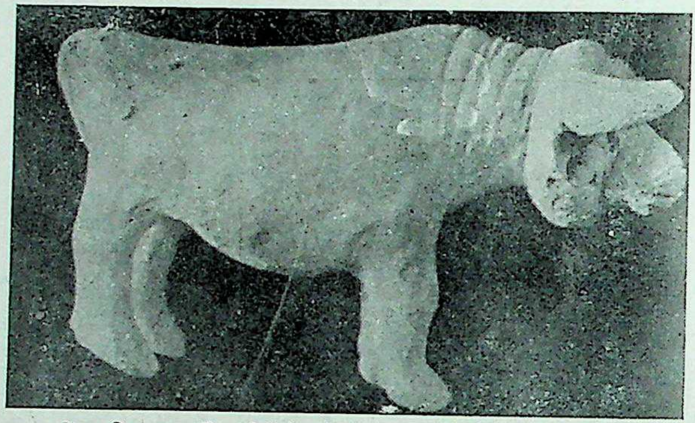

2. महिष मृण्मूर्ति, मोहेंजोदड़ो (मो. इं. सि. XCVII, 22)

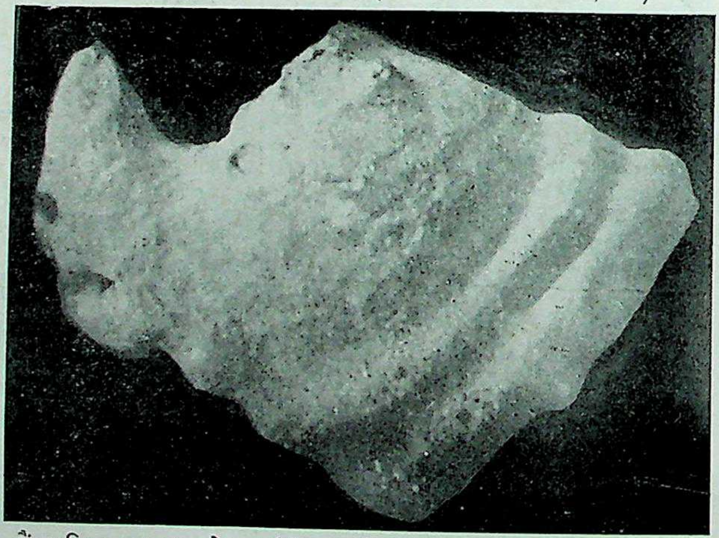

3. गैंडा-सिर, मृणमय, लोथल (इं. आ. रि. 1957-58 XVIII, top left)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

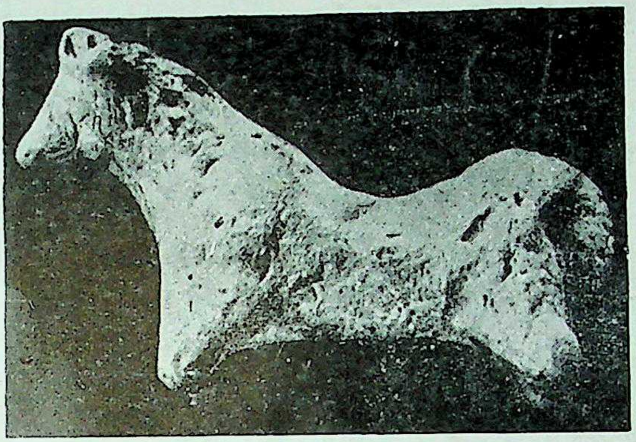

1

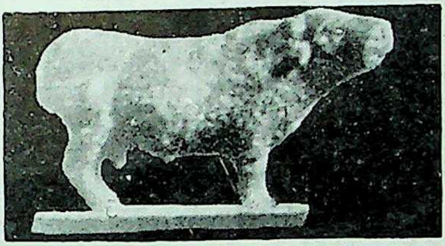

2

3

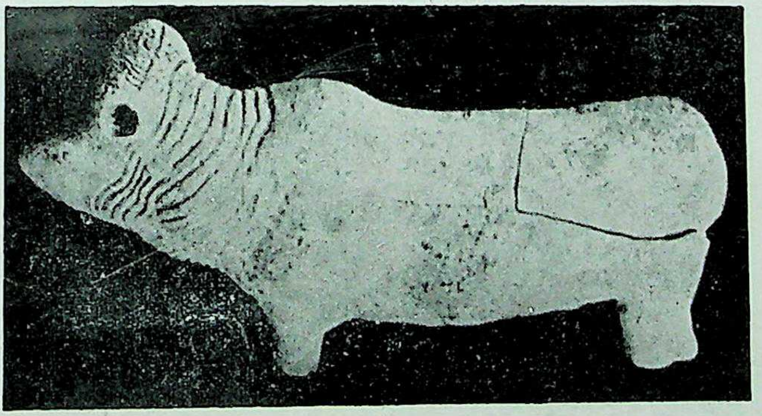

1. घोड़ा, मृण्मूर्ति, लोथल (लो. इं. सि. XXIII A.)
2. महिष, कांस्य, मोहेंजोदड़ो (फ. ए. मो. LXXI, 23)
3. वृषभ मृण्मूर्ति, लोथल (लो. इं. सि.)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

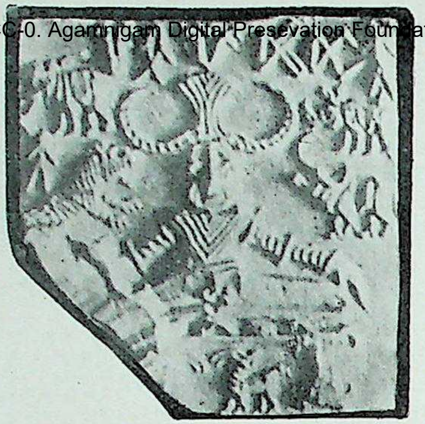

1

2

3

4

5

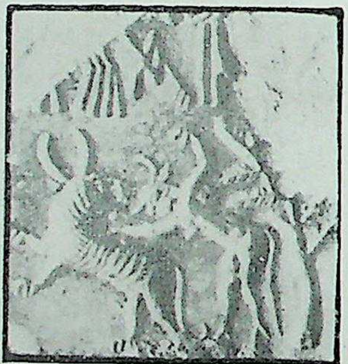

6

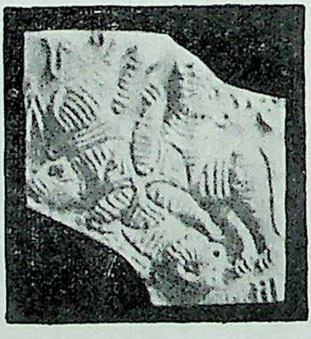

7

1. पशुपति (?) मुद्रा, मोहेंजोदड़ो (फ. ए. मो. C, F), 2. कालीबंगां वेलनाकार मुद्रा एवं मुद्रा छाप, 3. मुद्रा छाप, 4. तीन सिर वाला काल्पनिक पशु (फ. ए. मो. XCVI, 494), 5. काल्पनिक पशु, 6. श्रृंग-युक्त पुरुष बाघ पर आक्रमण करता हुआ (मो. इं. सि. CXI, 357), 7. काल्पनिक बाघ मुद्रा, मोहेंजोदड़ो (मो. इं. सि. CXII, 386)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

1

2

3

4

5

1. एकश्रृंगी पशु, 2. वृषभ, 3. बलि दृश्य (?), 4. गैंडा, मोहेंजोदड़ो (फ. ए. मो. XCIX, 651), 5. 'फारस की खाड़ी' मुद्रा प्रकार, लोथल (लो. इं. सि. XXVID.)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

A.CC.NG
4714

1. कपड़े के निशान वाला मुद्रा छाप, लोथल
(एं. इं. 18-19, XLIX, 6)

अ

आ

2. (अ) श्रृंगी देवता मृत्पिड कालीबंगां, (आ) उपर्युक्त वलिदृश्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

1

2

3

4

5

मृदभाण्ड 1. मोहेंजोदड़ो (मो. इं. सि. LXXXVII, 4), 2. मोहेंजोदड़ो (मो. इं. सि. XXVIII, 1), 3. लोथल (लो. इं. सि. XXVIII E), 4. हड़प्पा (एं. इं.)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

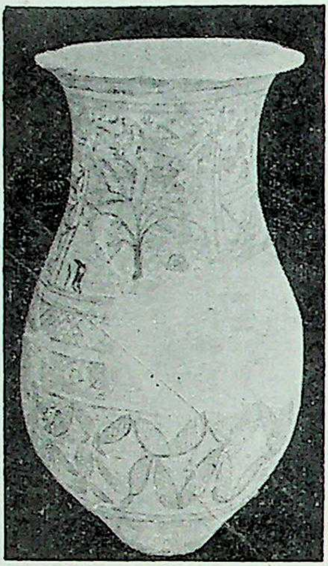

1

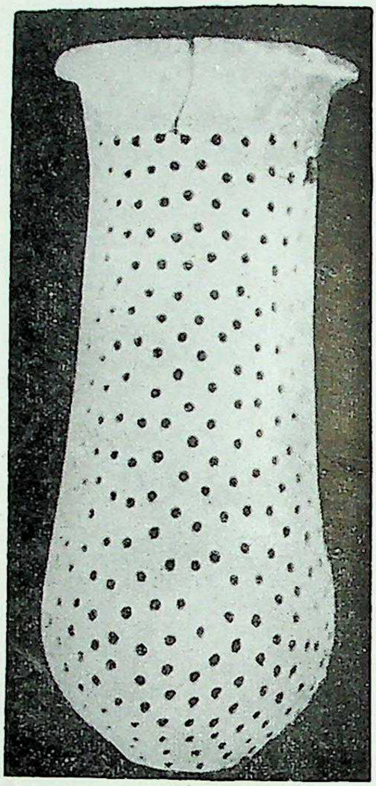

2

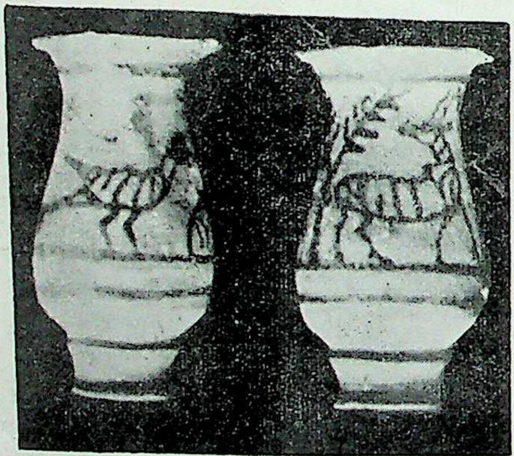

3

1. कलश, लोथल (लो. इं. सि.XXVIII B), 2. सछिद्र पात्र, लोथल (लो. इं. सि. XXVIII D), 3. पक्षी, वृक्ष तथा हरिण चित्रण युक्त पात्र, लोथल (इं. आ. रि. 57-8, XVII a)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

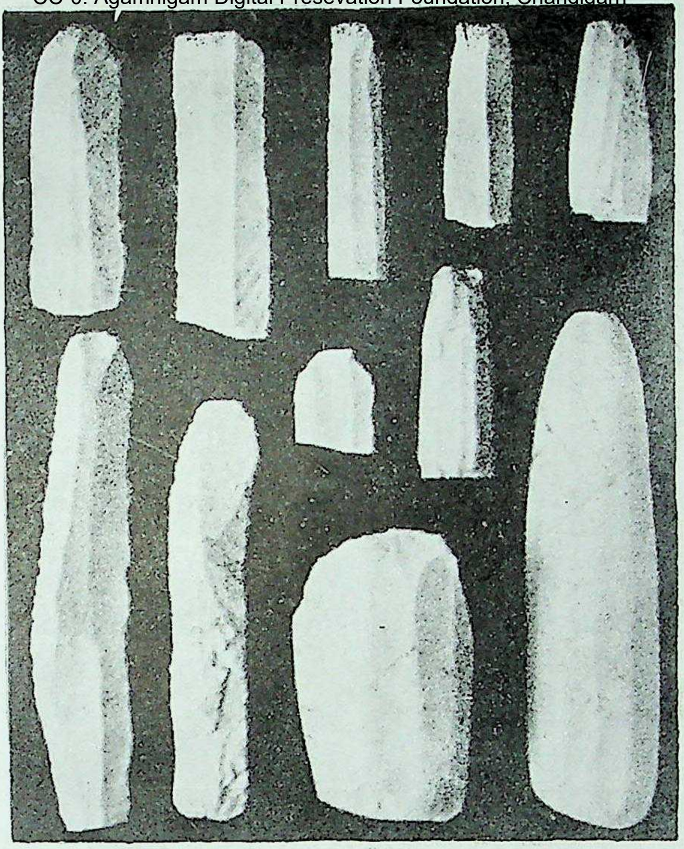

1

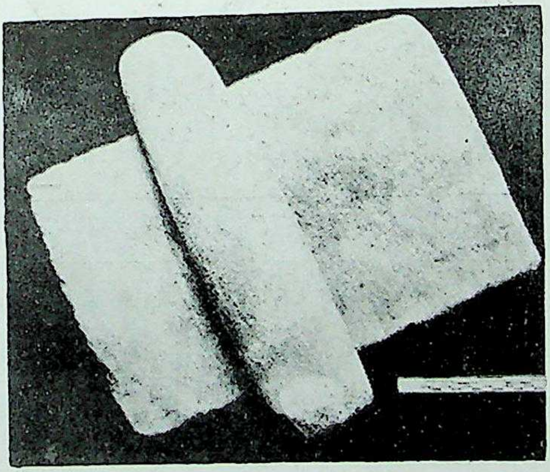

2

1. चर्ट फलक, हड़प्पा, 2. सिल बट्टा, पत्थर, लोथल
(लो. इं. सि. XXXI A)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

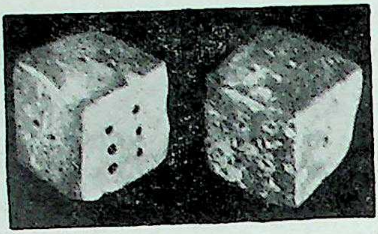

1

2

3

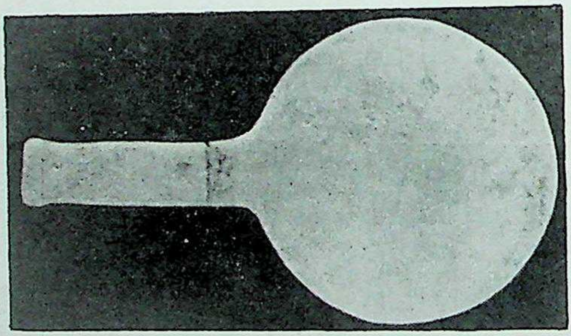

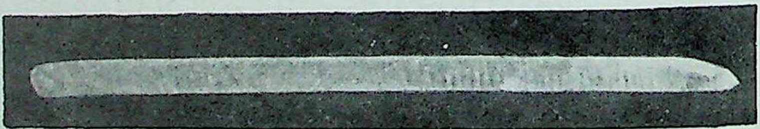

4

1. पांसे, मिट्टी, लोथल (लो. इं. सि. XXXIIIC), 2. बाट, पत्थर कालीबंगां (एक्सपीडीशन, Vol. 17, 2, winter 1975, p. 28, Fig. 3), 3. दर्पण, तांबा, हड़प्पा, 4. पैमाना, हाथी दांत, लोथल (लो. इं. सि. XXXIIB)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

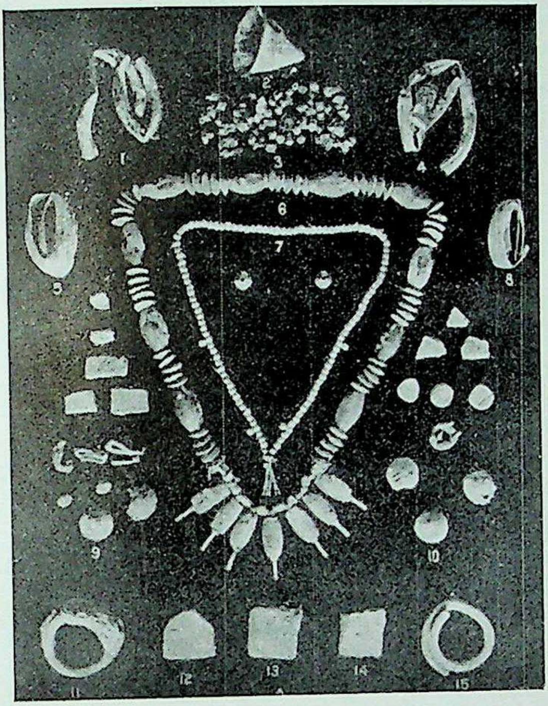

1. आभूषण, मोहेंजोदड़ो

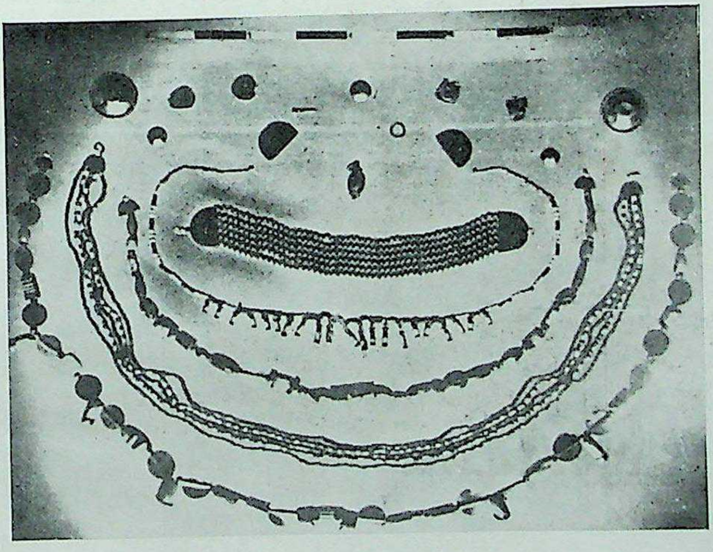

2. आभूषण, मोहेंजोदड़ो (मो. इं. सि. CXLIX)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

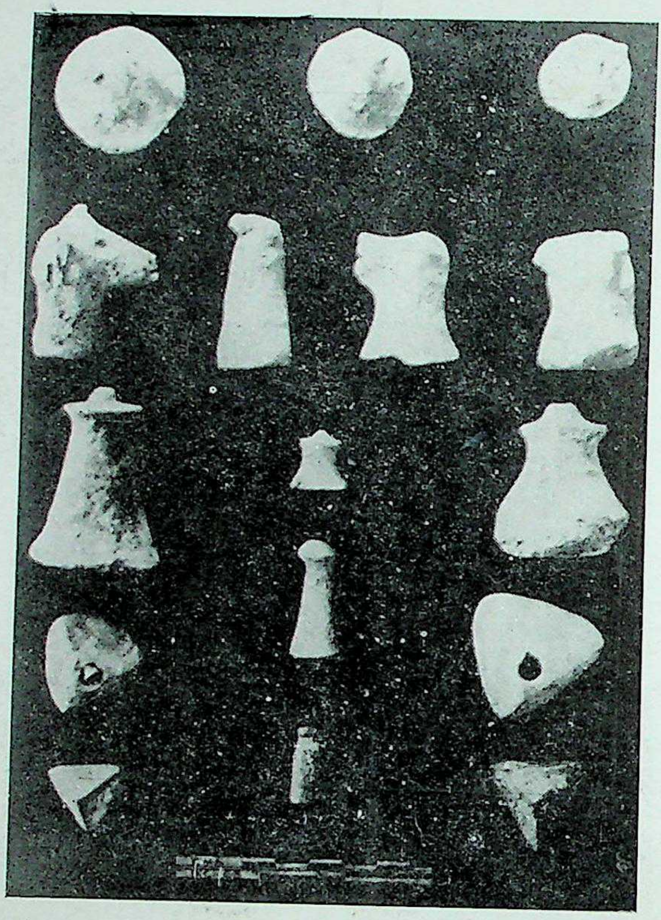

1. शतरंज जैसे खेल की गोटियां, लोथल (लो. इं. सि. XXXIV A.)

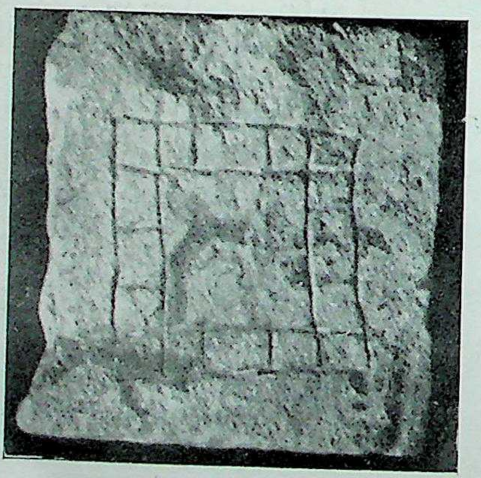

2. ईंट पर अंकित खेल के लिये निशान, लोथल
(लो. इं. सि. XXXIII D)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

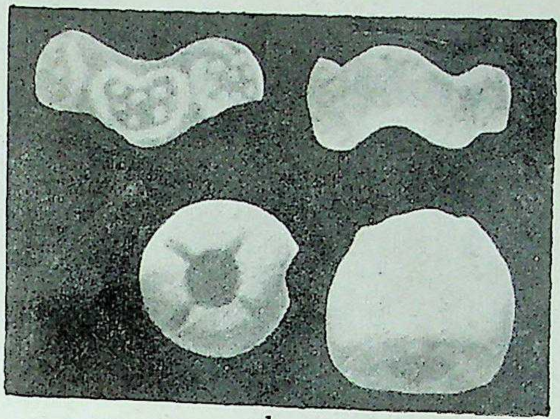

1

2

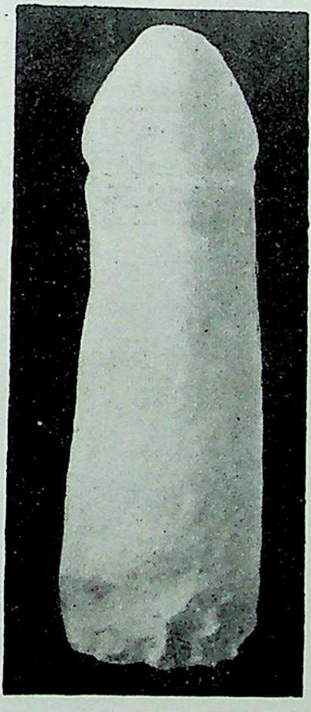

3

1. चक्र, मोहेंजोदड़ो 2-3. लिङ्ग, मोहेंजोदड़ो (मो. इं. सि.)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

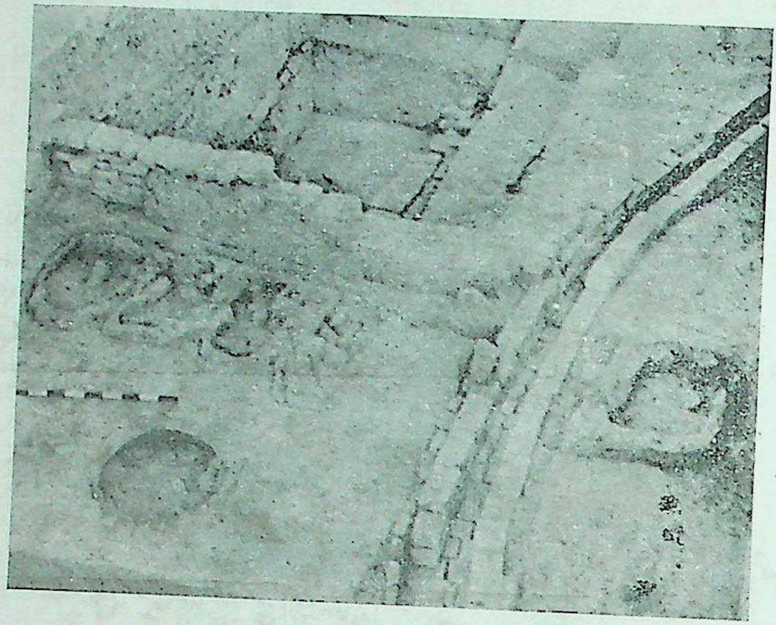

1. अग्निस्थान, कालीबंगां (इं. आ. रि.)

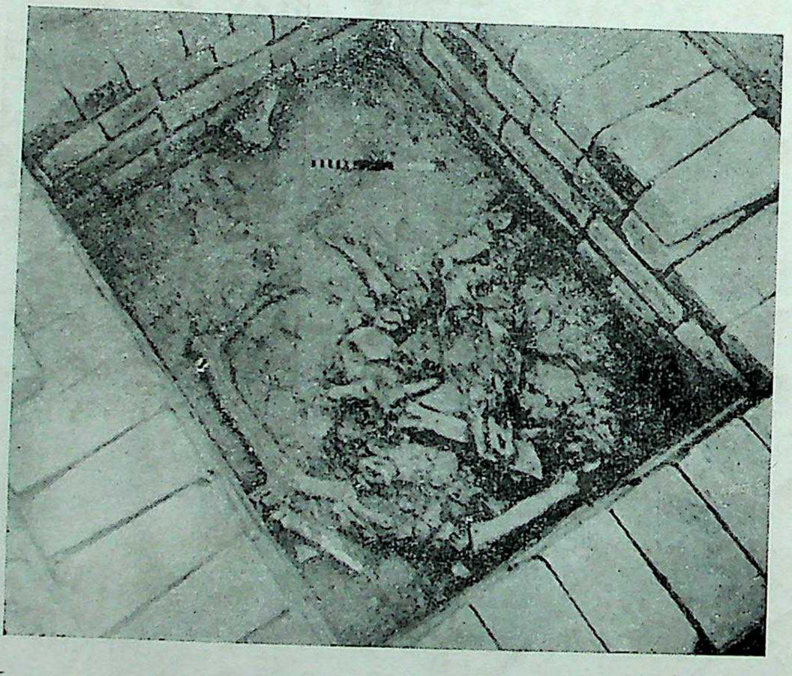

2. अग्निवेदिका, कालीबंगां (इं. आ. रि.)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

1. सामूहिक नरकंकाल, मोहेंजोदड़ो (मो. इं. सि. XLIV, a)

2. पात्र शवाधान, हड़प्पा (ए. ह. L, a)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

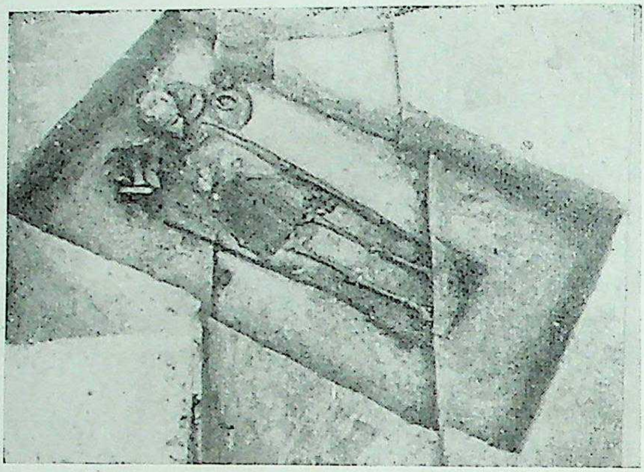

1. शवपेटिकायुक्त शवाधान, हड़प्पा (एं. इं.)

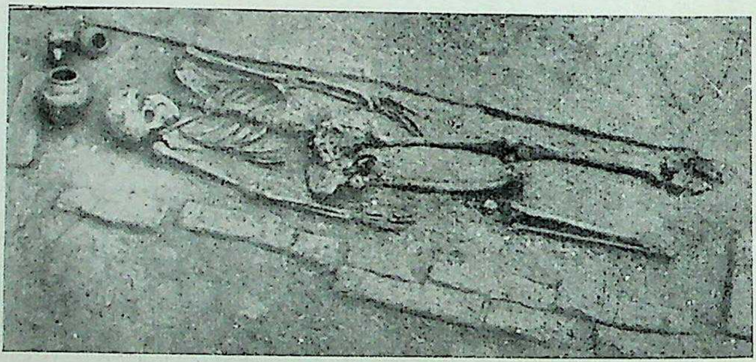

2. ईंटों से चिह्नित शवाधान, हड़प्पा (एं. इं.)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

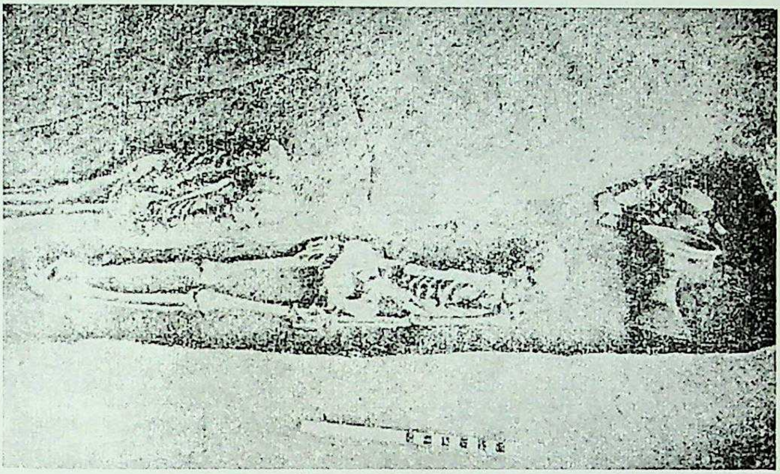

1. युगल एवं एकाकी शवाधान, लोथल (लो. इं. सि. XXXVIII, C)

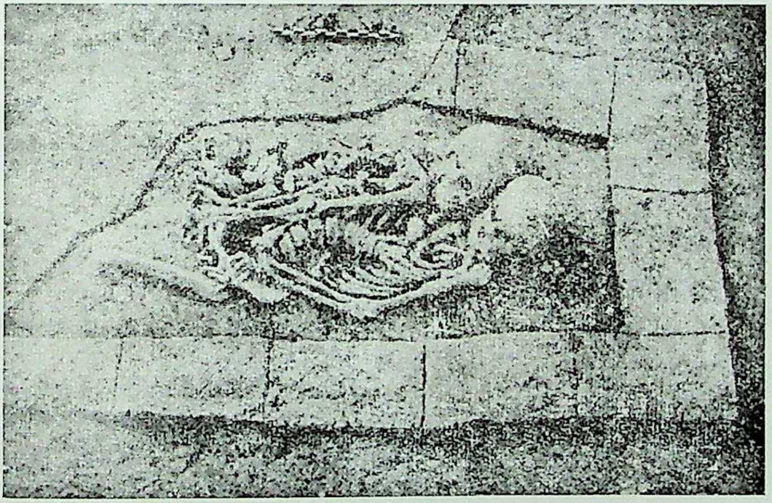

2. युगल शवाधान, लोथल (लो. इं. सि. XXXVIII, B)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

A.CC NO

4714

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh